ISSN 2349 - 137X
UGC CARE-listed, Peer Reviewed

प्रतिध्वनि कला संस्कृति की

शोध लोक

वर्ष 7 अंक –14
2021

ISSN 2349-137X
UGC CARE-Listed Peer Reviewed

अनहद लोक

(प्रतिध्वनि कला संस्कृति की)

वर्ष-7, 2021, अंक-14
(अर्धवार्षिक शोध पत्रिका)

सम्पादक

डॉ. मधु रानी शुक्ला

सम्पादक मण्डल

डॉ. राजश्री रामकृष्ण, डॉ. मनीष कुमार मिश्रा,
डॉ. धनंजय चोपड़ा, डॉ. ज्योति सिन्हा

सहायक सम्पादक

सुश्री शाम्भवी शुक्ला

व्यंजना
आर्ट एण्ड कल्चर सोसायटी
109 डी/4, अबुबकरपुर, प्रीतमनगर, सुलेमसराय
प्रयागराज - 211011

अनहद लोक

(प्रतिध्वनि कला संस्कृति की)

सम्पादक : डॉ. मधु रानी शुक्ला

सम्पादक मण्डल : डॉ. राजश्री रामकृष्ण, डॉ. मनीष कुमार मिश्रा, डॉ. धनंजय चोपड़ा, डॉ. ज्योति सिन्हा

सहायक सम्पादक : सुश्री शाम्भवी शुक्ला

मल्टीमीडिया सम्पादक : श्रेयस शुक्ला

प्रकाशक

व्यंजना

(आर्ट एण्ड कल्चर सोसायटी)

109 डी/4, अबुबकरपुर, प्रीतमनगर

सुलेमसराय, प्रयागराज-211 011

मो. : 9838963188, 8419085095

Email: anhadlok.vyanjana@gmail.com

वेबसाइट : vyanjanasociety.com/anhad_lok

वितरक : पाठक पब्लिकेशन, महाजनी टोला, इलाहाबाद-211 011

फोन नं. 0532-2402073

मूल्य : 200/- प्रति अंक, पोस्टल चार्जेज अलग से

सदस्यता शुल्क

वार्षिक : 500/-

तीन वर्ष : 1500/-

आजीवन : 10,000/-

© सर्वाधिकार सुरक्षित

- रचनाकारो के विचार मौलिक हैं
- समस्त न्यायिक विवाद का क्षेत्र इलाहाबाद न्यायालय होगा

मुद्रक : विकास कंप्यूटर एंड प्रिंटर्स, ट्रोनिका सिटी, लोनी, ग़ाज़ियाबाद-201 102

मार्गदर्शन बोर्ड :

डॉ. सोनल मानसिंह, पं. विश्वमोहन भट्ट, पं. भजन सपोरी, पं. रोनू मजुमदार, पं. विजय शंकर मिश्र, पं. रामकृष्ण दास 'नादरंग', प्रो. कमलेश दत्त त्रिपाठी, प्रो. चित्तरंजन ज्योतिषी, प्रो. ऋत्विक् सान्याल, प्रो. दीप्ति ओमचारी भल्ला, प्रो. के. शशि कुमार, डॉ. राजेश मिश्रा, डॉ. आशा आस्थाना

सहयोगी मंडल :

प्रो. संगीता पंडित, प्रो. लावण्य कीर्ति सिंह 'काब्या', प्रो. निशा झा, प्रो. प्रभा भारद्वाज, प्रो. नीलम पॉल, प्रो. अर्चना अंभोरे, डॉ. राम शंकर, डॉ. इंदु शर्मा, डॉ. सुरेंद्र कुमार, प्रो. भावना ग्रोवर, डॉ. अंबिका कश्यप, डॉ. स्नेहाशीष दास, डॉ. सुजाता व्यास, डॉ. कस्तूरी पाइगुड़े राणे, डॉ. शान्ति महेश, डॉ. कल्पना दुबे

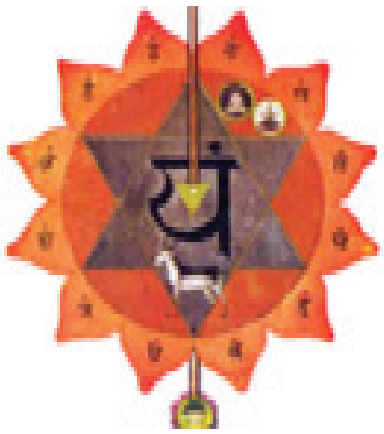

संगीत नाटक अकादेमी
के
सहयोग से प्रकाशित

संगीत नाटक अकादेमी

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरितासउद्भिदः

अनहद लोक अंक चौदह आपके शुभ हाथों में सौंपते हुए अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है, आपके सहयोग व मार्गदर्शन से यह पत्रिका यू.जी.सी. केयर लिस्ट में आई, जिसके लिए हम सभी का हृदय से आभार व्यक्त करते हैं। अमूर्त रूप संगीत व्यापक रूप से नाद ब्रह्म की अनुभूति व ईश्वरीय सुन्दरतम् सृष्टि की मधुरतम् अभिव्यक्ति है। नाद भौतिकीय व्याख्या से परे है, जो स्वयं ब्रह्म स्वरूप सृष्टि का आदि और अंत है। नाद से वर्ण, वर्ण से पद, पद से वाणी की अभिव्यक्ति होती है, जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण विश्व है, नादाधीनमिदं जगत अर्थात यह सृष्टि नाद ब्रह्म का ही परिणाम है।

भारतीय चिन्तन में संगीत के आनन्द, प्रमोद की अपेक्षा अर्चना तथा मोक्ष का सहज मार्ग माना गया और यही दृष्टि भेद उसे अन्य देशों के संगीत से अलग करता है। हमारे संगीत के नाद, काल, वाक्, भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी भाव समस्त विश्व के संगीतानुरागियों के हृदय में स्थित हैं, सप्त स्वर स्पन्दन सृष्टि का आधार है, जो समस्त विश्व के संगीतानुरागियों को साधारणी.त कर लेता है।

भाव, राग, ताल तथा लय पर निर्मित धुनें विश्वव्यापी है, मानव मात्र के हृदय में इन तत्वों का समावेश है। सप्त स्वर विश्व में मान्य है, जो लय के साथ जुड़कर अनुरणन युक्त होकर सम्पूर्ण सृष्टि को स्पन्दित करने का सामर्थ्य रखते हैं। मानव तो वैसे भी संवेदनशील है जिसमें भाव सम्प्रेषण हेतु भाषा की अपेक्षा ध्वनि, लय और आघात के समुचित प्रयोग की अपक्षित है, जो व्यंजना वृत्ति को प्राप्त कर भावानुभूति कराती है, किसी भी भाषा में गायन या वादन किया जाए, मानव हृदय ग्रहण मात्र भावों का ही करता है। अगर एक जानवर के मुख से उच्चारित ध्वनि से हम उसकी भावनाओं को समझ सकते हैं, तो मनुष्य द्वारा प्रदर्शित भावों को समझना तो और भी आसान है और जहाँ भाव सम्प्रेषण हो गया, वहाँ किसी पार्थक्य की संभावना ही नहीं, अतः सुर, लय ने मिलकर जो समरसता प्रदान की है, वो देश, काल की परिधि से निकल विश्वव्यापी हो गई है। भारतीय संगीत, सृष्टि के उद्गम के साथ ही विश्व की अनेकानेक गतिविधियों में समाहित है, संगीत ऐसी जीवनधारा है जो समस्त चर-अचर को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित करती है।

भारतीय जनमानस आध्यात्मिक भावनाओं से ओतप्रोत है, जो नाद ब्रह्म एंव धर्म की अभिव्यंजना से अनुप्राणित है तथा भारतीय संस्कृति का आध्यात्मिक चिंतन व्यश्टिगत न होकर समष्टिगत खोज है। संगीतकार विशिष्ट आध्यात्मिक भावना को सुरों के माध्यम से भावप्रवण जिस कला आकाश की संरचना करता है, वह सभी को आकर्षित करती है, हमारे शास्त्रीय संगीतज्ञ, लोक संगीत विद्, फिल्मी गायकों ने यह प्रमाणित कर दिखाया है।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो ब्रिटिश शासन काल से ही विद्वानों ने जब भारतीय कलाओं में रूचि ली, तो उससे संगीत भी अछूता नही रहा। कैप्टन एन. आगस्टस विलियर्ड ने 'म्यूजिक ऑफ हिंदुस्तान' में भारतीय सांस्कृतिक धरोहर को सहेजा, उन्होंने संगीत के शाश्वत स्वरूप को विश्व के सम्मुख लाने का प्रयास किया है। इसी सन्दर्भ में भारतीय संगीत को विष्व संगीत का बीज तत्व बताते हुए बड़ौदा के सूफी संत हज़रत इनायत खाँ के अनुसार भारतीय संगीत पर्शियन, अरेबिक, पाश्चात्य सभी की जड़ो में निहित माना है। कालान्तर में अनेक संगीतज्ञों ने पाश्चात्य संगीत के तत्वों का मेल करके संगीत के नवीन स्वरूप का सृजन किया। भारतीय संगीत में पाश्चात्य संगीत का समावेश कर, निर्मित सांगीतिक रचना का प्रारम्भिक परिचय हमें बीज रूप से रविन्द्र संगीत में मिलता है। रविन्द्र संगीत में शास्त्रीय संगीत, लोक संगीत, सुगम संगीत के साथ ही पाश्चात्य संगीत का भी समावेश है और यही से संगीत में उदार भावना प्रायोगिक रूप से दिखाई देती है।

कालांतर में लगभग 1925 में पं. रविशंकर जी ने यहुदी मेनन के साथ मिलकर अनेक सांगीतिक रचनाओं की सृष्टि की, आंद्रे प्रेविन के निर्देशन में पं. रविशंकर जी ने सिम्फनी आर्केष्टा के साथ राग खमाज, सिंधु भैरवी, अड़ाना, मांझ खमाज आदि रागों में धुनों का निर्माण किया। स्त्राविंस्की, जॉन केज आदि ने भी उपज जैसे कुछ नवीन प्रयोग किये, जूलीयन ब्रीम जैसे गिटार वादक ने अली अकबर खाँ के साथ मिलकर रचनायें की। ऑलिवियर मेसियाएन, बेजामिन ब्रिटन आदि के साथ मिलकर पं. रविशंकर, वी. जी. जोग, अमजद अली खाँ, जाकिर हुसैन ने अनेक संगीत संरचना की। एम. एस. सुबुलक्ष्मी एवं डागर ब्रदर्स के उत्तर-दक्षिण संगीत के सुन्दर मेल को विदेशों में भी काफी सराहा गया, वॉयलिन, गिटार, कीबोर्ड जैसे पाष्चात्य वाद्यों को भी हम लोगों ने अपना लिया।

इसी सांस्कृतिक एकता के लिए भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद, संगीत नाटक एकेडमी ने इस दिशा में अनेक कदम बढ़ाये है, अनेक संगीत विद्यालयों की स्थापना, अनेक गुरूओं को विदेशों में भेजकर संगीत शिक्षा प्रदान कराना, संगीत महोत्सवों का आयोजन, अनेक देशों के सभागारों में शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रमों का आयोजन कर रहे है। SPIC-MA CAY जैसी संस्थाओं ने भी वैश्विक स्तर पर संगीत को सहज सुलभ कराया है लाईव प्रोग्राम, सी.डी., डी.वी.डी, यूट्यूब आदि के माध्यम से हम किसी देश के किसी भी कलाकार को सहज रूप से सुन सकते है। Distance education से भी संगीत शिक्षण प्रदान कर सांस्कृतिक सद्भाव को प्रस्तार दिया जाता है, ई-मेल, वीडियो कान्फ्रैसिंग एवं व्यवसाय हेतु ई-कामर्स के प्रयोग से सांस्कृतिक सोहार्द में वृद्धि हो रही है, वेब साईटस से कलाकारों व उनसे जुड़ी विस्तृत जानकारी, विषय वस्तु का ज्ञान प्राप्त होता है। विकीपीडीया से विषयों का विस्तृत ज्ञान सहज रूप से ही प्राप्त कर लेते है, साथ ही संगीत विषय पर लिखे जा रहे अनेक ब्लॉग्स से वैश्विक स्तर पर विचारों का आदान-प्रदान, शंकाओं का निस्तारण, नवीन विचारों का संकलन प्राप्त होता है। प्रयाग संगीत समिति जैसी संस्थाएँ विश्व के अनेक देशों में अपनी ब्रांच के जरिए संगीत शिक्षण प्रदान कर रही है।

वर्तमान समय में पं. विश्वमोहन भट्ट, पं. शिव कुमार शर्मा, पं. हरि प्रसाद चौरसिया, उस्ताद अमजद अली खाँ, पं. भजन सोपोरी, अभय सोपोरी, उस्ताद जाकिर हुसैन, पं. रोनू मजूमदार जैसे अनेक संगीतज्ञ है जो विदेशी संगीतज्ञों के साथ मिलकर संगीत संरचना कर रहे है और इसके माध्यम से सद्भाव की जड़ो को मजबूती प्रदान कर रहे है।

संगीत की भाषा सार्वभौमिक है किसी देश, काल, स्थिति, परिस्थिति से ये प्रभावित नही होती, हम बाक्, बिथोवेन, मोज़ार्ट की रचनाओं का आनन्द लेते है, माईकल जैक्सन के वॉयस

माड्यूलेशन पूर्व गायकी के दिवाने है, तो बड़े गुलाम अली खाँ, फैय्याज खाँ, बिसम्मिला खाँ, उस्ताद अली अकबर खाँ, मो. रफ़ी, किशोर कुमार, मुकेश, लता मंगेश्कर, आशा भोसले, शंकर जयकिशन, नौशाद, खय्याम, ए. आर. रहमान के गीतों के दिवाने पूरे विश्व में है। कथक, भरतनाट्यम, ओडिसी, कुचिपुड़ी ने जहाँ विदेशीयों को आकर्षित किया है, वहीं ब्रेक डांस, हिप-हॉप, बैली डाँस, ट्वीस्ट, सालसा आदि ने भारतीय सुगम नृत्य विधा को एक मोड़ दे दिया है। फिल्मी नृत्य में तथा रियलिटी शोज में आप इन्हे प्रचूर मात्रा में देख सकते हैं, मारिया डेल मार फर्नाडीज जैसी स्पेन की गायिका भारतीय फिल्मों में गा रही हैं तो लता, आशा ने अनेक देशों के गीतों में अपना स्वर दिया है।

ग्लोबलाईजेशन, भूमंडलीकरण या वैश्वीकरण का सामान्य सा अर्थ है विश्व मे चारो ओर अर्थ व्यवस्थाओं का बढ़ता हुआ एकीकरण। यजुर्वेद में कहा गया है-

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरितासउद्भिदः।
देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे।।

अर्थात हे परमप्रकाशक परमात्मा काल से ही वसुधैव कुटुम्बकम् की विचार धारा भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रही वैश्वीकरण के आधुनिक परिवेश में संगीत की विश्व की सांस्कृतिक व सामाजिक एकता में महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

अनहद लोक का यह अंक संस्कृति के अनेक पक्षों से समृद्ध रूप में आपके समक्ष है, हमने यू.जी.सी मानक के अनुरूप ही लेखों के प्रकाशन का प्रयास किया है, इसमें कुछ कलाकारों के भी लेख हैं जो उनकी अनुभूतियों पर रचे गए, आपकी प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा रहेगी। त्रुटियों के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

–डॉ. मधु रानी शुक्ला

अनुक्रम

गान

1.	बंदिशें	प्रो॰ ओजेश प्रताप सिंह	15
2.	ग़ज़ल का अर्थ और परिभाषा : एक अवलोकन	डॉ. सरस्वती नेगी	22
3.	Dawn of Melody	Dr. Shanti Mahesh	26
4.	Analytical study of the Stylistic impressions, tradition and changing trends evolved in Gwalior Gharana of Hindustani Classical Music	Dr. Atindra Sarvadikar	29
5.	Applicability of simple quantitative methods to Research in Indian Vocal Music	Abhijith Shenoy K	36
6.	दरभंगा में ध्रुपद गायन शैली के विकासात्मक सोपान : एक विश्लेषण	प्रेरणा कुमारी लावण्य कीर्ति सिंह ''काव्या''	40
7.	ठुमरी शैली का उद्‌भव एवं विकास	दीपक सिंह, मेघना कुमार	43
8.	Compositions of Ustad Amir Hussain Khan	Nikhil Bhagat	48
9.	ग्वालियर घराने के स्तम्भ एवं महान संगीतज्ञ स्व. हस्सू खाँ एवं हद्दू खाँ का सांगीतिक योगदान	अर्चना कुमारी	53
10.	Musical Style of Gharānā of Hindustani Classical Vocal Music: A Study	Sumedha Singh Abhishek Smith	56

आतोद्य

11.	उत्तर प्रदेश में तबला वादन की संस्थागत शिक्षा का विकासः एक अवलोकन (वर्ष 1906 से 2020 तक)	डॉ. अमित कुमार वर्मा	63
12.	An Overview of Tāla in Musical Forms of Karnāṭaka Music – with Special Reference to Varṇam	Anuthama Murali Dr Rajshri Ramakrishna	71
13.	उस्ताद आफ़ाक हुसैन खाँ साहब की बन्दिशों का तकनीकी पक्ष	कल्याणी गुप्ता डॉ. शिवेन्द्र प्रताप त्रिपाठी	82

14. लखनऊ घराने की तबला वादन परम्परा में उस्ताद जहाँगीर खाँ साहब का योगदान — ज्योति चौधरी, प्रो.(डॉ.). सुनील पावगी — 87
15. तरबदार सितार की उत्पत्ति एवं विकास का अध्ययन — विधुश्री पाण्डेय — 92
16. 'वायलिन की उत्पत्ति एवं विकास' — प्रशान्त मिश्र — 97
17. An Overview of the Dēśī Tāla Simhalīlā — Bhavana Prabhakaran, Dr. R.Hemalatha — 100

शास्त्र

18. A Comparative study of the Rāga-s in the Rāgalakṣaṇamu of Śāhaji and Rāgalakṣaṇam of Muddu Vēṅkaṭamakhī — Dr. R. Hemalatha — 109
19. पं. भातखंडे की ग्रंथसंपदा - संशोधन एक अध्ययन — प्रो. विशाल विजय कोरडे — 117
20. 27 Nakshatra Charana Ragamalika – An unpublished work of Sri Gali Penchala Narasimha Rao – A Study — Mrs. E. Sreelakshmi, Dr. J. Sankar Ganesh — 121
21. संगीतशास्त्रज्ञ पं. सोमनाथ प्रणीत राग विबोध : एक परिचयात्मक अध्ययन — आवेश कुमार, प्रो. के. शशि कुमार — 131
22. Rāgataraṅgiṇi of Lōcana – An overview — Lakshmipriya R, Dr. Rajshri Ramakrishna — 135
23. The Mēla-s and Rāga-s of Svaramēlakalānidhi – An Overview — S Suchitra, Dr R Hemalatha — 143
24. References to Music Therapy in Lakṣaṇa Grantha-s - A Literature Review — Deepa Iyer S, Dr Rajshri Ramakrishna — 151
25. Description of Rāga-s in select Tamil Publications — Dr. M Subhasree — 158
26. A study of Rāga Varāli with special reference to Gīta-s seen in the early Telugu Publications — Pranathi G, Dr. Rajshri Ramakrishna — 164

संस्कृति

27. भारतीय संस्कृति में गुरु शिष्य परम्परा 'गुरु पूर्णिमाः' सार — डॉ. रमा सिंह — 179
28. काशी के संस्कृति में आध्यात्म व संगीत — डॉ. प्रेम किशोर मिश्र — 184
29. मिसिंग जनजाति की लोकसंस्कृति और समाज — डॉ. नुरजाहान रहमातुल्लाह — 189
30. भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में छठ पूजा — डॉ. रीना सिंह — 194

31. मानव विकास की प्रक्रिया में संगीत की अहम भूमिका — डॉ. अंकिता चतुर्वेदी — 197
32. जैन धर्म और संगीतः राग के विशेष संदर्भ में — सुखवीर कौर — 201
33. हिमाचल प्रदेश की गद्दी जनजातिकी लोकसंस्कृति का विश्लेष्णात्मक अध्ययन — भरत सिंह — 206
34. Devi Krithis And Their Potential Influence on Human Values — Narayanan P Iyer, Dr Meera Rajaram Pranesh — 210
35. भारतीय संस्कृति एवं लोक संगीत — रीनु शर्मा — 221

थाती

36. राजस्थान की लोकसंस्कृति का शाश्वत जीवनदर्पण : लोकसंगीत — डॉ. आकांक्षा गुप्ता — 229
37. कोल जनजाति का लोक संगीत : मध्यप्रदेश के सन्दर्भ में — डॉ. वेणु वनिता — 233
38. पूर्वांचल का लोकगीत "बिरहा" — कृतिका पाण्डेय — 239
39. हरियाणवी गीतों में जीवन जगत — कांता देवी — 242
40. लोकनाट्य नौटंकी की समकालीनता — सुनील कुमार — 247

सौन्दर्य

41. Antiquity of Sārdā Temple at Maihar — Dr Sanju Mishra — 253
42. संगीत कला में भाव, रस एवं ध्वन्याभिव्यक्ति — कामाक्षी यादव, डॉ. रामशंकर — 257
43. ABC of Kalpana Swaram Singing Aesthetics Brilliance Creativity — NJ Nandini — 261

व्यक्तित्व

44. हरियाणा के लोक नाट्यकवि - मुंशीराम जांडली — डॉ कामराज सिंधु — 271
45. यादों के झरोखे से- 'स्मरण मन्नू भण्डारी' — डॉ. कल्पना दुबे — 276
46. 'कुमार गंधर्व' गायकी एवं दृष्टिकोण — डॉ. अनुभव पाण्डेय — 279
47. विदुषी प्रेमलता शर्मा : सांगीतिक यात्रा — कुमारी बन्दना, प्रो. के.शशि कुमार — 282
48. Contribution of Violin Vidwan V.V. Srinivasa Rao to Karnatic Music — Devu Treesa Mathew, Dr. Shanti Mahesh — 287

साहित्यिकी

49. चंद्रलाल बादी के संगों में लोकधर्मिता : एक विवेचन — डॉ कामराज सिन्धु — 295
50. राग बहार में निर्मित रचनाओं का साहित्यिक अवलोकन — श्यामा कुमारी — 300

51. अमृतलाल मदान व धर्मपाल साहिल के उपन्यासों में सांस्कृतिक मूल्य एक विवेचन — सोनिया, डॉ. रीता सिंह 305

प्रकीर्णक

52. खेल के सौन्दर्य बोध में उपभोक्तावाद का प्रभाव — डॉ. आलोक मिश्र 311
53. हिंदी सिनेमा और मेरा भारत देश : एक सांस्कृतिक अध्ययन — डॉ. दादासाहेब नारायण डांगे 315
54. कथक नृत्य शिक्षण में ई. लर्निंग : एक समीक्षात्मक अध्ययन — डॉ. रंजना उपाध्याय 320
55. मध्य प्रादेशिक की लोक चित्रकला परम्परा : एक अध्ययन — डॉ. किरन मिश्रा 328
56. संगीत और पर्यावरण का सम्बन्ध — डॉ चिंकी रानी 334
57. हिंदी चित्रपट संगीत का आठवां दशक — डॉ. देश गौरव सिंह 336
58. Music listening in Workplace Environment - A Review Study — Deepika Theagarajan, Dr. Shanti Mahesh 342
59. संगीत, कला और प्रारब्ध - ज्योतिषीय दृष्टिकोण से — श्रीमती प्रज्ञा त्रिवेदी, डॉ. स्नेहाशीष दास 350
60. Raga Chikitsa through the compositions of Muthuswami Dikshitar — B. Utpala Karanth, Dr. Varsha Karanth 358
61. Influence of World music on Indian music — Snigdha Haldar 368
62. Role & Relevance of I.C.T in modern teaching of Music: A Survey Study — Harmeet Singh 373

गान

बंदिशें

प्रो॰ ओजेश प्रताप सिंह

संगीत विभाग

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

हिन्दुस्तानी संगीत के परिप्रेक्ष्य में 'बंदिश' शब्द का अर्थ 'गेय सांगीतिक रचना' होता है। हिन्दुस्तानी संगीत में जहाँ शास्त्रीय गायन के अंतर्गत ऐसी निबद्ध रचना को ही 'बंदिश' कहा जाता है जिसमें स्वर-रचना अथवा स्वरांकित पद भली-भाँति किसी तालचक्र में बंधा होता है, वहीं वाद्य संगीत के अंतर्गत तंत्री वाद्यों पर बजाई जाने वाली ऐसी ही तालबद्ध रचनाओं को 'गत' कहा जाता है। संगीत के निबद्ध रूप को किसी बंदिश अथवा सांगीतिक रचना के माध्यम से ही प्रस्तुत किया जा सकता है। अनिबद्ध संगीत को प्रस्तुत करने का माध्यम 'आलाप' अथवा 'आलप्ति' तथा मुक्त स्वरावलि हैं। इन सांगीतिक गेय रचनाओं अर्थात् बंदिशों के रचनाकार को पूर्वकाल से ही 'वाग्गेयकार' संज्ञा दी गयी है और पंडित शारंगदेव ने 'वाग्गेयकार' के अनेक अनिवार्य गुणों का विवेचन किया तथा गुणों के आधार पर 'उत्तम', 'मध्यम' तथा 'अधम' वाग्गेयकार के रूप में श्रेणियाँ भी उल्लिखित की हैं। ख्याल के सन्दर्भ में देखें तो 18वीं शताब्दी में न्यामत खां 'सदारंग' एवं फिरोज खां 'अदारंग' महान वाग्गेयकार हुए जिन्होंने अनगिनत रागों में ख्याल विधा की सैकड़ों रचनायें कीं जो न केवल आज भी अत्यंत प्रचलित तथा लोकप्रिय ही हैं अपितु रागों का प्रमाण स्वरूप मानी जाती हैं। सदारंग-अदारंग के पश्चात् उनके शिष्य-प्रशिष्यों ने भी विभिन्न रागों में अनेकानेक बंदिशों की रचना की और इस प्रकार यह रचनाक्रम निरंतर चलता आया है जिससे हिन्दुस्तानी संगीत का रचना-भण्डार समृद्ध होता रहा है। गत शताब्दी में पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर, पंडित विष्णु नारायण भातखंडे, उस्ताद फैयाज खां, उस्ताद विलायत हुसैन खां, पंडित जगन्नाथ बुवा पुरोहित, पंडित श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकर, उस्ताद महबूब खां, पंडित कुमार गन्धर्व, उस्ताद अज़मत हुसैन खां, उस्ताद बड़े गुलाम अली खां, उस्ताद अल्लादिया खां, पंडित अनंत मनोहर जोशी, पंडित गजानन बुवा जोशी, पंडित रामाश्रय झा इत्यादि अनेक विद्वान गायक हुए जिन्होंने विभिन्न प्रचलित, अल्प-प्रचलित तथा अप्रचलित रागों में अपनी अनेक उत्तमोत्तम बंदिश रुपी कृतियों के रूप में भी अगली पीढ़ियों के लिये अत्यंत महत्वपूर्ण विरासत छोड़ी है। हिन्दुस्तानी संगीत के सभी विद्यार्थियों को, किसी भी राग के स्वरूप को समग्र रूप से समझने के लिये, उसकी अनेकानेक बंदिशों का अध्ययन अनिवार्य है। एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि किसी भी रागविशेष की किसी भी बंदिश के विश्लेषण से उस बंदिश के रचनाकार की, उस राग के सन्दर्भ में अपने गुरु से प्राप्त समझ, गायन शैली, निजी दृष्टिकोण, रागात्मक चिंतन तथा सृजनशील कल्पना का अंदाज़ मिलता है। विद्वान कलाकारों की सृजनशीलता तथा रचनात्मक कृतित्व से अगली पीढ़ी के कुछ कलाकार भी प्रेरणा लेते हुए नवसृजन की और उद्यमित होते हैं और फलस्वरूप नवीन बंदिशों की रचना का क्रम चलता रहता है। इसी परिप्रेक्ष्य में कुछ रागों में स्वरचित बंदिशें यहाँ प्रस्तुत हैं -

राग भीमपलासी - तीनताल (मध्यलय)

स्थाई : उन्हीं संग लागी लगन ऐसी जियरा तरसे।
अंतराः माने नाहीं जियरा उन बिन चैन न पावे जोहत मगवा नित तरसे।।

स्थाई

														सांनि		धप	मग	रेसा	निसा
														उऽ		न्हीं	ऽऽ	संऽ	गऽ
																3			
सां		सां		प		म		म		म		सा		सा	
सां	–	नि	–	ध	–	प	–	ग	म	म	ग	रे	सा	रे	नि
ला	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	अ	ऽ	ऽ	गी	ल	ग	न	ऐ	ऽ
x				2				0				3			
			सां												
साम	–	प	नि	सांगं	रेंसां	निसां	निध	पम	गरे	सा					
सीऽ	ऽ	जि	य	राऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	तऽ	रऽ	से					
x				2				0							

अंतरा

														नि		म	म		
														प		प	ग	ग	म
														मा		ने	ना	ऽ	हीं
																3			
		सां								सां						सांमं			
प	नि	सां	–	–	–	सां	प	नि	सां	सां	प	नि	सां	गं	गं				
जि	य	रा	ऽ	ऽ	ऽ	उ	न	बि	ऽ	न	चै	ऽ	न	ऽ	न				
x				2				0				3							
सां				सां		नि		प							सां				
रें	–	सां	–	नि	–	सां	नि	ध	–	प	म	–	प	–	नि				
पा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	वे	ऽ	ऽ	जो	ऽ	ह	ऽ	त				
x				2				0				3							
प																			
ध	ध	प	–	सांनि	धप	मग	रेसा		निसा	गम	पनि			,सांनि					
म	ग	वा	ऽ	निऽ	तऽ	तऽ	रऽ		सेऽ	ऽऽ	ऽऽ	उऽ							
x				2					0										

राग कामोद - तीनताल (मध्यलय)

स्थाई : जानूँ तुमरी बात, झूठी झूठी पियरवा।
अंतरा : हम सन झूठी बतियाँ बनावो, औरन से तुम नेहा लगावो, हम से करत हो रार।।

स्थाई

पध	सांध पग मध मंप	गम रे सारे सा
जाऽ	ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ	नूँऽ तु मऽ री
	0	3

अंतरा

म रे		प प	प
रे – प –	– प – –	ध ध प –	ग म रे सा
बा ऽ ऽ ऽ	ऽ त ऽ ऽ	झू ऽ ठी ऽ	झू ऽ ठी पि
×	2	0	3
म मं			
रे प ध रे	– प –		
य र वा ऽ	ऽ ऽ ऽ		
×	2		

अंतरा

		प प प प	सां ध सां –
		ह म स न	झू ऽ ठी ऽ
		0	3
		सां	सां
सां सां सां सां	सां रें सां –	सां रें सां सां	ध – पध प
ब ति याँ ब	ना ऽ वो ऽ	औ ऽ र न	से ऽ तुऽ म
×	2	0	3
		म म	मं
ग गम प ग	त रे सा –	रे रे प प	ध ध प –
ऽ नेऽ हा ल	गा ऽ वो ऽ	ह म से क	र त हो ऽ
×	2	0	3
पप सांसां	रें रे – प प		
राऽ ऽऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ र		
×	2		

राग सालगवराली तोड़ी - तीनताल (मध्यलय)

स्थाई : शरन हूँ तिहारी, करो तुम पार, हो गुन-निधान, गुन देहो दान।
अंतरा : मन आनंद दरस जो पाए, बाँह धरो तुम, दीजो ज्ञान।।

स्थाई

										सांनि		धप	गरे	सा	रे
										शऽ		रऽ	नऽ	हूँ	ति
			ग												
ग	–	ग	रे	ग	प	पध	निध		पग	रेग	रेसा	सा	–	नि̇	ध	नि̇
हा	ऽ	री	क	रो	ऽ	तुऽ	मऽ		पाऽ	ऽऽ	रऽ	हो	ऽ	गु	न	नि
×				2					0				3			
			ग					ग								
सा	–	सा	रे	ग	पध	निध	धप		रे	ग	रेसा					
धा	ऽ	न	गु	न	देऽ	ऽऽ	होऽ		दा	ऽ	ऽन					
×				2					0							

अंतरा

												ध			
												प	ध	नि	
												म	न	आ	
												3			
						गं			गं			प			
सं	–	सां	नि	सां	सां	रें	गं		रें	–	सां	–	सां	नि	ध	नि
नं	ऽ	द	द	र	स	जो	ऽ		पा	ऽ	ये	ऽ	बाँ	ऽ	ह	ध
X				2					0				3			
				प												
ध	प	धप	प	ग	गप	पध	निध		पग	रेग	रेसा					

रो ऽ तुऽ म ऽ दीऽ जो ऽऽ ज्ञाऽ ऽऽ नऽ
X 2 0

राग भूपाली - तीनताल (मध्यलय)

स्थाई : हे गणराज गनेस गजानन देवा।
अंतरा : सब सुख पावे ध्यान धरन सों कोटिक पाप कटे सुमिरन सों विघन हरन देवा।।

स्थाई

		सारे गप धसां सांध	पप गरे सा सा
		हेऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ	ऽऽ ऽऽ ग ण
		0	3
सा ग		ग	
ध़ सा सा रे	ग रे ग –	ग ग – रे	ग प ध सां
रा ऽ ज ग	ने ऽ स ऽ	ग जा ऽ न	न ऽ दे ऽ
X	2	0	3
पध सारें गरें सांसां	धरें सांसां धप गरे		
वाऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ	ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ		
X	2		

अंतरा

			प
		सां सां ध प	ग रे ग प
		स ब सु ख	पा ऽ वे ऽ
		0	3
सां		सां सां	सां
ध सां सां सां	सां रें सां –	सां – ध ध	सां – रें रें
ध्या ऽ न ध	र न सों ऽ	को ऽ टि क	पा ऽ प क

x				2				0				3			
						ग				ग				सां	
सां	रें	सां	ध	प	ग	रे	ग	ग	ग	ग	रे	ग	प	ध	सां
टे	ऽ	सु	मि	र	न	सों	ऽ	वि	घ	न	ह	र	न	दे	ऽ
x				2				0				3			
पध	सारें	गरें	सांसां	धरें	सांसां	धप	गरे								
वाऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ								
x				2											

राग सरस्वती - एकताल (मध्यलय)

स्थाई : उन बिन मोहे आवे नाहीं चैन, का से कहूँ री, जब से गये, मोरे कटत नाहीं दिन-रैन।
अंतरा : घरि-घरि पल-पल जुग-सी लागत बाट तकत नित, अँसुवन झर लागी नैन।।

स्थाई

			सां		प					म	सा		
रे	म	प	नि	ध	प	म	प	रे	नि	–	ध़
उ	न	बि	न	मो	हे	आ	ऽ	वे	ना	ऽ	ही
x		0		2		0		3		4	
			म						सां		
सा	–	सा	रे	–	म	–	म	पनि	पध	–	प
चै	ऽ	न	का	ऽ	से	ऽ	क	हूऽ	ऽऽ	ऽ	री
x		0		2		0		3		4	
	म										
–	रे	म	प	–	ध	सांनि	–	धप	ध	प	–
ऽ	ज	ब	से	–	ग	येऽ	ऽ	ऽऽ	मो	रे	ऽ
x		0		2		0		3		4	
			सां				प		सा		
धप	मरे	म	पनि	सां	सां	ध	म	रे	नि	सा	सा
कऽ	टऽ	त	नाऽ	ऽ	ही	दि	न	ऽ	रै	ऽ	न
x		0		2		0		3		4	

अंतरा

म				सां		नि					
रे	म	–	प	नि	ध	सां	–	सां	सां	–	सां
घ	री	ऽ	घ	री	ऽ	प	ऽ	ल	प	ऽ	ल
X		0		2		0		3		4	
सां						सां					
नि	सां	–	रेम	पं	रें	नि	–	सां	नि	ध	ध
जु	ग	ऽ	सीऽ	ऽ	ऽ	ला	ऽ	ऽ	ग	ऽ	त
X		0		2		0		3		4	
प											
म	–	–	प	–	प	धसां	नि	धप	ध	प	–
बा	ऽ	ऽ	ट	ऽ	त	कऽ	ऽ	तऽ	नि	त	ऽ
X		0		2		0		3		4	
धप	मरे	मप	सांनि	ध	प	म	रे	रे	रे	नि	सा
अंऽ	सुऽ	वऽ	नऽ	झ	र	ला	ऽ	गे	नै	ऽ	न
X		0		2		0		3		4	

ग़ज़ल का अर्थ और परिभाषा : एक अवलोकन

डॉ. सरस्वती नेगी

संगीत विभाग

महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

सार-संक्षेप

प्रस्तुत लेख में हम देखेंगे कि किस प्रकार ग़ज़ल भारत में पहुँची, कैसे इसका प्रचार-प्रसार हुआ, कैसे यह हिन्दी (खड़ी बोली) में प्रविष्ट हुई, और किस प्रकार भारतीय संगीतज्ञों ने इस विधा को हाथों हाथ लिया

ग़ज़ल साहित्य और संगीत दोनों विधाओं में प्रमुख रूप से प्रसिद्ध है। यह उर्दू, फारसी, अरबी, हिन्दी और कभी-कभी अंग्रेज़ी में भी देखने को मिल जाती है। लेकिन प्रस्तुत लेख में हम ग़ज़ल के भारतीय उर्दू स्वरूप का ही अध्ययन करेंगे। साहित्य की वह विधा जो हिन्दी में कविता कहलाती है, वही उर्दू में शायरी हो जाती है। प्रस्तुत लेख में हम देखेंगे कि किस प्रकार ग़ज़ल भारत में पहुँची, कैसे इसका प्रचार-प्रसार हुआ, कैसे यह हिन्दी (खड़ी बोली) में प्रविष्ट हुई, और किस प्रकार भारतीय संगीतज्ञों ने इस विधा को हाथों हाथ लिया।

संकेत शब्द

ग़ज़ल, साहित्य, सूफ़ी, मुशायरा

ग़ज़ल क्या है?

ग़ज़ल छठी शताब्दी में अरब क्षेत्र में विकसित हुई। इसका विकास एक प्रचलित काव्य परंपरा - 'कसीदा' से हुआ। वास्तव में कसीदा नामक इस काव्य परंपरा में प्रेमी प्रेमिका के सौन्दर्य का अतिशयोक्ति से भरा वर्णन करता है। कभी-कभी ऐसे कसीदे भी मिलते हैं, जिनमें धर्म-युद्धों का वर्णन बहुत बढ़ा-चढ़ाकर किया गया है। ऐसे ही काव्य रूप कसीदे से ग़ज़ल धीरे-धीरे अस्तित्व में आई।

आरंभ में शायरी का यह रूप अरबी में होता था। धीरे-धीरे ग़ज़ल फारसी में भी लिखी जाने लगी। ग़ज़ल में नायक और नायिका के बीच की दूरी और इस दूरी से उत्पन्न होने वाले विरह को दर्शाया जाता है। माशूका की बेवफाई, उसकी कठोरता, उसकी शोखी इत्यादि के साथ-साथ महबूब की मनःस्थिति का भी काव्यात्मक चित्रण ग़ज़ल में देखने को मिलता है। इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ग़ज़ल प्रेमी के हृदय से निकली वह दर्द भरी पुकार होती है जिसमें विरह का दुख और मिलन की आशा दोनों शामिल रहती हैं। मूलतः यह इश्क-ए-मिजाज़ी से इश्क-ए-हकीकी तक पहुँचने का एक अनुपम रास्ता है।

सूफी पीर और ग़ज़ल

यद्यपि ग़ज़ल का उद्भव छठी शताब्दी में ही हो गया था, लेकिन भारत में इसका प्रवेश हुआ बारहवीं शताब्दी में - जब पश्चिम एशिया की ओर से अनेक मुस्लिम आक्रांता भारत में घुस रहे थे। इन्हीं आक्रान्ताओं के साथ अनेक सूफी भी भारत आए। इन्हीं सूफियों ने भारत में अनेक खानकाहें स्थापित

कीं। इसी काल में आमिर खुसरो (1253-1325) नामक एक विद्वान का जन्म पंजाब के पटियाला नामक स्थान पर हुआ इनके पूर्वज अफगानिस्तान की हज़ारा नामक घुमंतू जाति से संबंध रखते थे जो कुछ समय पूर्व ही भारत या गए थे। खुसरो की आरंभिक शिक्षा फारसी में हुई। उन्होंने देशी भाषाओं को भी सीखा। बाद में खुसरो एक सूफी संत फकीर निज़ामुद्दीन चिश्ती के शिष्य हो गए थे। यहीं इन्होंने अनेक काव्य रचनाएं लिखीं जिनमें से अधिकतर फारसी में थीं। इन्होंने कई ग़ज़लें भी लिखीं जिनमें आशिक के दिल में महबूब से मिलने की बेचैनी और कसक का सुंदर वर्णन प्राप्त होता है। वास्तव में ये ग़ज़लें सूफी दर्शन को ध्यान में रख कर लिखी गईं थीं लेकिन इनका सांसारिक अर्थ भी बहुत ही रूमानी प्रतीत होता है और फारसी के जानकार इन ग़ज़लों को बहुत सरसता के साथ सँजोते हैं।

फारसी से ग़ज़ल उर्दू में आई। उर्दू का पहला शायर जिसका काव्य-संकलन (दीवान) प्रकाशित हुआ हैं, वह हैं मोहम्मद कुली कुतुबशाह। वे दक्कन के बादशाह थे और उनकी शायरी में फारसी के अलावा उर्दू और उस वक़्त की दक्कनी बोली भी शामिल थी। इनकी शायरी का एक उदाहरण देखिए-

पिया बाज पयाला पिया जाये ना।
पिया बाज यक तिल जिया जाये ना।।

कुली कुतुबशाह के बाद के शायर हैं ग़व्वासी, वज़ही, बहरी और कई अन्य। इस दौर से गुज़रती ग़ज़ल वली दकनी तक आ पहुँची और उस समय तक ग़ज़ल पर छाई हुई दकनी छाप काफी कम हो गई। वली ने सर्वप्रथम ग़ज़ल को अच्छी शायरी का दर्जा दिया और फारसी शायरी के बराबर ला खडा किया। दकन के लगभग तमाम शायरों की ग़ज़लें बिल्कुल सीधी और सुगम शब्दों के माध्यम से हुआ करती थीं।

वली के साथ-साथ उर्दू शायरी दक्कन से उत्तर की ओर आई। यहाँ से उर्दू शायरी का पहला दौर शुरू होता है। उस वक़्त के शायर आबरू, नाजी, मज़्मून, हातिम इत्यादि थे। इन सब में वली की शायरी सबसे अच्छी थी। इस दौर में उर्दू शायरी में दकनी शब्द काफी हद तक कम हो गये थे। इसी दौर के आख़िर में आने वाले शायरों के नाम इस प्रकार हैं - मज़हर जाने-जानाँ, सादुल्ला 'गुलशन', ख़ान 'आरजू' इत्यादि। यक़ीनन इन सब ने मिलकर उर्दू शायरी को अच्छी तरक़्क़ी दी।

इस दौर के सब से मशहूर शायर हैं 'मीर' और 'सौदा'। इस दौर को उर्दू शायरी का 'सुवर्ण काल' कहा जाता हैं। इस दौर के अन्य शायरों में मीर 'दर्द' और मीर गुलाम हसन का नाम भी काफी मशहूर था। इस ज़माने में उच्च कोटि की ग़ज़लें लिखी गईं जिसमें ग़ज़ल की भाषा, ग़ज़ल का उद्देश्य और उसकी नज़ाकतों को संवारा गया।

बाद के शायरों मे ग़ालिब का नाम सबसे प्रमुख रूप से लिया जाता है। आज भी इनकी ग़ज़लें उर्दू शायरी का अनुपम उदाहरण मानी जाती हैं।

ग़ज़ल की रचना प्रक्रिया

ग़ज़ल शेरों से बनती हैं। हर शेर में दो पंक्तियां होती हैं। शेर की हर पंक्ति को मिसरा कहते हैं। ग़ज़ल की ख़ास बात यह है कि उसका प्रत्येक शेर अपने आप में एक संपूर्ण कविता होता है और उसका संबंध ग़ज़ल में आने वाले अगले पिछले अथवा अन्य शेरों से हो, यह ज़रूरी नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी ग़ज़ल में अगर 25 शेर हों तो यह कहना ग़लत न होगा कि उसमें 25 स्वतंत्र कविताएं हैं। शेर के पहले मिसरे को 'मिसर-ए-ऊला' और दूसरे को 'मिसर-ए-सानी' कहते हैं।

मत्ला–ग़ज़ल के पहले शेर को 'मत्ला' कहते हैं। इसके दोनों मिसरों में यानि पंक्तियों में 'क़ाफिया' होता हैं। अगर ग़ज़ल के दूसरे शेर की दोनों पंक्तियों में भी क़ाफिया हो तो उसे 'हुस्ने-मत्ला' या 'मत्ला-ए-सानी' कहा जाता है।

क़ाफिया–वह शब्द जो मत्ले की दोनों पंक्तियों में और हर शेर की दूसरी पंक्ति में रदीफ के पहले आये उसे 'क़ाफिया' कहते हैं। क़ाफिया बदले हुए रूप में आ सकता है। लेकिन यह ज़रूरी है कि उसका उच्चारण समान हो, जैसे बर, गर तर, मर, डर, अथवा मकां, जहां, समां इत्यादि।

रदीफ–प्रत्येक शेर में 'क़ाफिये' के बाद जो शब्द आता है उसे 'रदीफ' कहते हैं। पूरी ग़ज़ल में रदीफ एक होती है। कुछ ग़ज़लों में रदीफ नहीं होती। ऐसी ग़ज़लों को 'ग़ैर-मुरद्दफ ग़ज़ल' कहा जाता है।

मक़्ता–ग़ज़ल के आखिर शेर को जिसमें शायर का नाम अथवा उपनाम हो उसे 'मक़्ता' कहते हैं। अगर नाम न हो तो उसे केवल ग़ज़ल का 'आख़री शेर' ही कहा जाता है। शायर के उपनाम को 'तख़ल्लुस' कहते हैं। निम्नलिखित ग़ज़ल के माध्यम से अभी तक ग़ज़ल के बारे में लिखी गयी बातें आसान हो जायेंगी।

कोई उम्मीद बर नहीं आती।
कोई सूरत नज़र नहीं आती।।1।।
मौत का एक दिन मुअय्यन है।
नींद क्यूं रात भर नहीं आती।।2।।
आगे आती थी हाले दिल पे हंसी।
अब किसी बात पर नहीं आती।।3।।
हम वहां हैं जहां से हमको भी।
कुछ हमारी ख़बर नहीं आती।।4।।
काबा किस मुंह से जाओगे 'ग़ालिब'।
शर्म तुमको मगर नहीं आती।।5।।

इस ग़ज़ल का 'क़ाफिया' बर, नज़र, भर, पर, ख़बर, मगर हैं। इस ग़ज़ल की 'रदीफ' "नहीं आती" है। यह हर शेर की दूसरी पंक्ति के आख़िर में आयी हैं। ग़ज़ल के लिये यह अनिवार्य हैं। इस ग़ज़ल के प्रथम शेर को 'मत्ला' कहेंगे क्योंकि इसकी दोनों पंक्तियों में 'रदीफ' और 'क़ाफिया' हैं। सब से आख़िरी शेर ग़ज़ल का 'मक़्ता' कहलाएगा क्योंकि इसमें 'तख़ल्लुस' हैं।

बहर , वज़न या मीटर (meter)

शेर की पंक्तियों की लंबाई के अनुसार ग़ज़ल की बहर नापी जाती हैं। इसे वज़न या मीटर भी कहते हैं। हर ग़ज़ल उन्नीस प्रचलित बहरों में से किसी एक पर आधारित होती है। बोलचाल की भाषा में सर्वसाधारण ग़ज़ल तीन बहरों में से किसी एक में होती है-

हासिले-ग़ज़ल शेर - ग़ज़ल का सबसे अच्छा शेर 'हासिले-ग़ज़ल शेर' कहलाता है।

हासिलें-मुशायरा ग़ज़ल - मुशायरे में जो सब से अच्छी ग़ज़ल हो उसे 'हासिले-मुशायरा ग़ज़ल' कहते हैं।

एक ज़माना था जब आशिक और माशूका की मोहब्बत भरी गुतगू को ग़ज़ल कहा जाता था। हुस्न-इश्क और साक़ी-शराब की रसीली अभिव्यक्ति उसकी भावभूमि हुआ करती थी, जिससे परे जाकर दूसरी भावभूमि पर ग़ज़ल कहना ग़ज़लकारों के लिए दुस्साहस भरा कार्य हुआ करता था। ऐसी परिस्थिति में नयी क्रांति की प्रस्तावना किसी भी कवि के लिए संभव नही थी। सच तो यह है कि ग़ज़ल के रुप में उसी कलाम को स्वीकार किया जाता था जो औरतों के हुस्न और जमाल की तारीफ करे।

हिन्दी ग़ज़ल

उर्दू से धीरे-धीरे यह विदहा हिन्दी के कवियों ने भी स्वीकार कर ली। हिन्दी के सबसे प्रसिद्ध ग़ज़ल लिखने वाले कवि 'बच्चन' थे, जिन्होंने 'मधुबाला' 'मधुशाला' और 'मधुकलश' नामक खंडकाव्यों की रचना करके तहलका मचा दिया। हिन्दी की आरंभिक ग़ज़लों में उर्दू ग़ज़लों का व्यापक प्रभाव देखा जाता था। यही कारण था कि जब पहली वार शमशेर ने पारंपरिक रूमानी संस्कार से ऊपर उठकर ग़ज़ल रचना की तो डॉक्टर राम विलास शर्मा ने यह कहकर खारिज कर दिया कि ''ग़ज़ल तो दरबारों से निकली हुई विधा है, जो प्रगतिशील मूल्यों को व्यक्त करने में अक्षम है।'' किन्तु अब स्थिति बदल चुकी है, हिन्दी वालों ने ग़ज़ल को सिर्फ स्वीकार हीं नही किया है, बल्कि उसका नया सौन्दर्यशास्त्र भी गढ़ा है। परिणामस्वरूप आज ग़ज़ल उर्दू ही नहीं हिन्दी की भी चर्चित विधा है, तो आईये समकालीन हिन्दी ग़ज़ल के स्वरूप, विकास और उसकी संभावनाओं पर विचार करते हैं।

हिन्दी और उर्दू ग़ज़लों में मुख्य अंतर यह है की उर्दू ग़ज़ल प्रेम भावनाओं का चित्रण है। अच्छी ग़ज़लें वही समझी जाती हैं, जिसमें इश्क़-ओ-मोहब्बत की बातें सच्चाई और असर के साथ लिखी जाये, जबकि हिन्दी ग़ज़लकार इस परिभाषा को नहीं मानते। इनका उर्दू ग़ज़लकारों से सैद्धांतिक मतभेद है, नचिकेता का मानना है कि "हिन्दी ग़ज़ल उर्दू

ग़ज़लों की तरह न तो असंबद्ध कविता है और न इसका मुख्य स्वर पलायनवादी ही है, इसका मिजाज़ समर्पणवादी भी नहीं है।" ज़हीर कुरैशी का मानना है कि "हिन्दी प्र.ति की ग़ज़लें आम आदमी की जनवादी अभिव्यक्ति है, जो सबसे पहले अपना पाठक तलाश करती है।" जबकि ज्ञान प्रकाश विवेक का कहना है कि "हिन्दी कवियों द्वारा लिखी जा रही ग़ज़ल में शराब का ज़िक्र नही होता, जिक्र होता है गंगाजल में धुले तुलसी के पत्तों का, पीपल की छाँव का, नीम के दर्द का, आम-आदमी की तकलीफों का।

प्रेमधन, श्रीधर पाठक, राम नरेश त्रिपाठी, शमशेर, त्रिलोचन आदि ने ग़ज़ल को मांजने का प्रयास किया। हालांकि शमशेर ने इस विधा को गति और दिशा दी। फिर हंस राज रहवर, जानकी बल्लभ शास्त्री, रामदरश मिश्र आदि ने नए सौन्दर्यशास्त्र गढ़ने का महत्वपूर्ण कार्य किया। इतिहास साक्षी है कि हिन्दी कविता के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर दुष्यंत कुमार ने ग़ज़ल के माध्यम से एक नई क्रांति की प्रस्तावना की। ग़ज़ल रचना के नए क्षितिज का उद्घाटन ही नही किया, वरन हिन्दी कविता की स्वतन्त्र विधा की स्वीकृति का आधार भी तैयार किया। दुष्यंत के बाद अदम गोंडवी ही एक ऐसे ग़ज़लकार हैं, जिन्होंने ग़ज़ल के माध्यम से कल्पना के सुरम्य सतरंगे आलोक में धुआंधार प्रकाश उड़ेलने का काम किया और इस परंपरा को आगे बढाने का पुनीत कार्य कर रहे हैं।

ग़ज़ल में संगीत

अब हम यह चर्चा करेंगे की भारतीय उपमहाद्वीप के गायकों ने किस प्रकार ग़ज़ल को लोकप्रिय बनाने में अपना योगदान किया।

हम जानते हैं की साहित्य एवं संगीत कलाओं का परस्पर गहरा संबंध रहा है। संगीत के कलाकारों ने उत्कृष्ट हिन्दी साहित्य को हं-हंकर देश भर में लोकप्रिय कर दिया। सूरदास, मीरा, तुलसीदास इत्यादि कवियों के पद और चौपाइयाँ आज भी चाव से गाई और सुनी जाती हैं। भारतीय फिल्म संगीत में ग़ज़लों का खूब प्रयोग किया गया है। गैरफ़िल्मी गीतों में भी ग़ज़लों का प्रमुख स्थान रहा है। बीसवीं शताब्दी में बेग़म अख़्तर ने ग़ज़ल गायकी का विकास किया। बाद में पाकिस्तानी गायक मेहंदी हसन ने भी इस विछोह को खूब प्रचारित किया। मन्ना डे ने 'मधुशाला' की कुछ पंक्तियों को अपनी सुरीली आवाज में जब गाया तो जनसामान्य के साथ-साथ कलाकारों ने भी इसकी भूरी-भूरी सराहना की। ब०लीवुड फिल्म गायकों में मुहम्मद रफी, चंदनदास, लता मंगेशकर, आशा भोसले, गुलाम आली, परवेज़ मेहंदी, भूपेन्द्र और मिताली, हरिहरण इत्यादि प्रमुख ग़ज़ल कलाकार रहे जिन्होंने इस विछोह को गाया और लोकप्रिय बनाने मे अपना योगदान किया। इस क्षेत्र में जब तक जगजीत सिंह का नाम न लिया जाए तब तक ग़ज़ल की चर्चा अधूरी ही मानी जाएगी। जगजीत सिंह ने चित्रा सिंह के साथ ग़ज़लों को नया आयाम दिया। इन्होंने ग़ज़ल के साथ गिटार, वायलिन इत्यादि वाद्यों का प्रयोग करके इसे एक नई छवि प्रदान की। आज भी इनकी ग़ज़लें बड़े चाव से सुनी जाती हैं। देश-विदेश में इन ग़ज़ल-गायकों के लाखों प्रशंसक विद्यमान हैं। इस प्रकार, आधुनिक समय में ग़ज़ल पर लगातार नए प्रयोग किये जा रहे हैं। जगजीत सिंह की ही परंपरा को आगे बढ़ाते हुए अनेक कलाकार इसका पश्चिमीकरण करने का प्रयास कर रहे हैं। आज ग़ज़ल से संबंधित अनेक स्टेज शो हो रहे हैं जिनमें हज़ारों लोग पहुँचते हैं। अनेक कलाकार ग़ज़ल गायकी को अपना रहे हैं। हमारे उपशास्त्रीय संगीत कलाकार भी ग़ज़ल की ओर आकर्षित हो रहे हैं। ग़ज़ल गाना और सुनना एक फैशन सा हो गया है।

संदर्भ

1. Regula B. Qureshi, 'Tarannum: The Chanting of Urdu Poetry', Journal of the Society for Ethnomusicology, Vol. 13, No. 3, 1969, pp. 425-468.
2. https://www.definitions.net/definition/ghazal
3. https://allpoetry.com/Amir-Khusro
4. अंग्रेजी का एक लेख जो उपलब्ध है : 'Ghazal', Encyclopaedia of Islam, Vol. II, Leiden, 1965, pp. 10281036.
5. 'Ghazal', Encyclopaedia Iranica, Vol. X, New York, 2001.
6. https://zarinasani.org/
7. https://www.deepawali.co.in/harivansh-rai-bachchan-biography-poem-hindi.html

Dawn of Melody

Dr. Shanti Mahesh

Assistant Professor, Department of Music,
Queen Mary's College (Autonomous), Chennai

Abstract

Music the universe paved through melody is embedded with most intricate features in Science, Mathematics (vigyaan and ganith)- cohesion of tone, rhythm exhibiting the aura of heavenly bliss, spirituality, happiness, peace. The write-up is aimed to focus the aspects, features in Riyaz of basic exercises in Indian Music.

Key Words

Karaikudi Veena Gharana, Abhyasa Gana, Svarasthana Varisais, Tala

Introduction

The sweetest tone is the first sound of the baby- the magnificent Tamil Poet Thiruvalluvar has remarked in a 'Thirukkural' the 1,330 couplets (each of the couplet-poem like doha). Pulse in each may be referred as ultimate depiction of time-rhythm.

Each being is embodied with melody, rhythm. Belonging to the Tenth Generation of the Karaikudi Veena Gharana, below are briefed the vitality of practice (riyaz) enabling ease resulting in production of melody- any system of music- Classical (Shastriya) or semi classical (Sugam Sangeet).

Melody

Melody is "a sweet or agreeable succession or arrangement of sounds"- as P.B. Shelley has remarked. Melody, Rhythm, Harmony are three basic components in music. Indian Music chiefly focusses on the melodic constituent engulfed with rhythm.

Indian Music

Important features to render Hindustani Music and Karnatik Music

Abhyasa Gana in Karnatik Music

First the sthana of the Svara Shadja, Panchama are imbibed, rendered as Madhyasthayi Shadja, Madhya Sthayi Panchama and Tara Sthayi Shadja in almost all traditions. I have an observation to this point. In my tradition and the eminent musician Ramanathapuram. Shri. C. S. Sankarasivam, the sthana is sung on the point, but I note many gliding from the starting svara to the next in this basic sa-pa-sa

My experience is, touching the tone direct enables more ease, comfort perfection to melodious music.

Set of exercises- Sarali, Janta, Sapta Tala Alankara are taught. TriSthayi, Daattu varisais are also taught, then, Sapta Tala Alankara in the Raga Mayamalavagaula equivalent to the scale Bhairav in Hindustani Sangeet.

It may be noted that the first Varisai in each is given. Remaining are available in Books, Webs, YouTubes

The varisais are rendered in Adi Tala

Sarali

1. Aaroh: S r G m P D N S+ Avroh: S+NdPmGrS

Janta

These Varisais emphasize rendering of Sphurita from the starting Svara to the next- enabling comprehension of logic, melody, rhythm.

1. Aaroh: SS rr GG mm PP dd NN S+S+

Avroh: S+S+ NN dd PP mm GG rr SS

Daattu

Zigzag sequences increasing the overall command of Svarasthanas in the learner.

Aaroh:

SmGm rGSr SGrG SrGm

rPmP GmrG rmGm rGmP

Similar sequence upto PS+NS+ gNPd PndN PDNS+

Avroh:

S+PdP NdS+N S+dNd S+NdP

NmPm dPND NpdP NdPm sequence till mSrS GrmG mrGr mGrs

Tristhayi Varisais validating range in the Octaves Mandra, Madhya, Tara. Range of Svara in AnuMandra, Ati Tara Sthayi are also obtained to singers. The available Octave range in each musical insrrument is feasible with ease, comfort by practising the sequence.

Melsthayi Varisais validating range in the higher Octave.

Sapta Tala Alankara

Alankarams: These are multi-tala sequences composed in the 35 talas. But usually, 7 of these are selected and taught to the students. In Tala, the has three anga-s

Laghu: Beat/clap followed by finger count-

BEAT	FINDER COUNT	TOTAL NUMBER OF UNITS	NAME OF JAATI
1	2	(1+2)=3	Tisra
1	3	(1+3)= 4	Chatusra
1	4	(1+4)=5	Khanda
1	6	(1+6)=7	Mishra
1	8	(1+8)=9	Sankirna

Dhrutam: Beat/clap followed by waving of hand

Anudhrutam: Waving of hand

Dhruva Tala – Laghu +Chrutam+Laghu+Lagfhu

1. Chatusra Jati Dhruva Tala- 4+2+4+4-16

Aaroh

LAGHU	DHRUTAM	LAGHU	LAGHU
Srgm	Gr	Srgr	SrGm
rgmP	mG	rGmG	RgmP
GmPd	Pm	GmPm	GmPd
mPdN	dp	mPdP	mpdN
PdNS+	Nd	PdNd	PdNS+

Avroh

LAGHU	DHRUTAM	LAGHU	LAGHU
S+NdP	dN	S+NdN	S+NdP
NdPm	Pd	NdPd	NdPm
dPmG	mP	dPmP	dpmG
PmGr	Gm	PmGm	PmGr
mGrS	rG	mGrG	mGrS

Note: To denote Tara Sthayi. + after the sur is used. Indication of Svarasthanas as in the web paatantara.com by Dr. K.S. Srikumar.

	Name of Svara in Karnatik Music	Name of Equivalent Sur in Hindustani Sangeet	Symbol Used
1.	Shadja	Shadj	S
2.	Shuddha Rishabha	Komal Rishabh	r
3.	Chatushruti Rishabha	Shuddh Rishabh	R
4.	Sadharana Gandhara	Komal Gandhar	g
5.	Antara Gandhara	Shudh Gandhar	G
6.	Shudhha Madhyama	Komal Madhyam	m
7	Prati Madhyama	Teevra Madhyam	M
8.	Panchama	Pancham	P
9.	`Shuddha Dhaivata	Komal Dhaivat	d
10	Chatushruti Dhaivata	Shudh Dhaivat	D
11.	Kaisiki Nishadha	Komal Nishad	n
12.	Kakali Nishadha	Shudh Nishadh	N

Hindustani Music

The Sthan of Sur Sa cohering with the Madhyam Sthayi Shadja is imbibed as Sur, hmm, Vowels ae, ee, aa, oa,oo

Basic exercises are initially learnt in the Bilaval Thaat - equivalent to the scale Dheera Sankarabharanam in Karnatik Sangeet.

Palta, Alankar, Merukhand are to be imbibed initially.

Execution of the aspects in the Hindustani system of music, results in clear, untwisted tonal production- in vocal as well as instrumental music

Significance of Practising the basics in Music

It may be noted that all performers and teachers insist on learning the basic exercises and practising them regularly- the necessity of Riyaz is very important. Eminent Performers are observed to have Riyaz of the basic exercises as part of routine.

Belonging to the Tenth generation of the Karaikudi Veena Gharana, my grandmother Karaikudi. Lakshmi Ammal (1917-1985) belonging to the eighth generation was a Veena teacher at the city Madurai. I was fortunate to reside with my grandparents- my father being her eldest son. She used to teach the basics to each student for sight months to an ear and proceed further after that. She belonged to the period when women learning, performing music was not prevalent in many families. She used to indicate to me how my aunt- father's elder sister Karaikudi. Rajeswari Padmanabhan used to practise the basics before dawn each day from her childhood.

The web would display how magnificent a musician Karaikudi. Rajeswari Padmanabhan was. I wish to submit how blessed I was to be guided by her.

Conclusion

Practice of basic exercxises aptly in each classical system- with committed dedication, also work on, go through the exercises in both the systems, maintaining the distinctive aspect in each without dilution can definitely result in immaculate euphony.

References:

This Paper has been aimed to present the salient musical seed empowering knowledge, learning, performing music. The basic structure of Karnatik and Hindustani Music are available in various books, the study has given examples of Varisais, Sapta Tala Alankara etc., pivotal to the aspect of classical music.

Analytical study of the Stylistic impressions, tradition and changing trends evolved in Gwalior Gharana of Hindustani Classical Music

Dr. Atindra Sarvadikar

Assistant professor,

Department of Music, University of Mumbai

*A glorious tradition commencing from an epoch-making artist could be termed as **Gharana**. A **Gharana** reflects the stature, personality, richness and qualities of the epoch-making artist. The **Gharanas** in music are no exception to this phenomenon, and the concerned epoch-maker musician earns respect and curiosity among listeners and connoisseurs. Examples like Agrewali Malkajaan and Bhendibazaarwale Amaan Ali indicate how a person's name becomes closely associated with the concerned **Gharana**.*

*"The difference in Swar and **Taal's presentation** resulted in different performing music styles. We began calling them as **Gayaki** and every tradition of these **Gayakis** was then termed as **Gharanas**." [1]*

*We can observe that all these legendary musicians and inceptors of their respective **Gharana** had studied in the Gwalior tradition and later found their path through a few significant creative changes in the then existing **Gayaki**. Hence, we can call the Gwalior **Gharana Gayaki** the mother of all **Gharanas**.*

Keywords:

Gharana, Gayaki, taleem, Ashtang Pradhan Gayaki, madhyalay

1.1) Gwalior Gharana: Background:-

It is believed that 'Gwalior Gharana' is the origin of all the *Gharanas,* the first Gharana of Khyaal music. Gwalior City was the mecca of music when this Gharana had attained the peak of prosperity. Many students travelled to Gwalior then to learn music.

"According to Pandit Sharadchandra Arolkar, Gwalior Gharana is the origin of all Gharanas, and Nattahn Peer Baksh is its founder. He was born around 1773, and the period from the end of the eighteenth century to the end of the nineteenth century is said to be the golden period of this Gharana." [2]

Sushilkumar Chaube says, "The Gwalior Gayaki, whose inceptor was Natthan Peer Baksh was closely related to the Dhrupad Gayaki. Hence we consider it as a real *Gharanedar Gayaki*. Never was the prestige of the Khyaal Gayaki tampered with, and it enjoyed the most prestigious position among all performing arts. It would be appropriate to say that the Gwalior style of Khyaal Gayaki enjoys a paramount position among all Khyaal Gayakis of the modern era." [3]

1.1.A) Artists belonging to the Gwalior Gharana and the Gayaki:

Musicologist Vamanrao Deshpande says, "Huddu Khan-Hussu Khan, Shankar Pandit, Eknath Pandit, Baba Dikshit, Nisar Hussain Khan (guru of Vaze Buwa), Vazebuwa, Rahmat Khan, Balkrushnabuwa Ichalkarajikar (who brought the Khyaal Gayaki to Maharashtra), Balkrishnabuwa's guru Vasudevbuwa Joshi, Vasudevbuwa's son Bhaiyyasaheb, Pandit Vishnu Digambar Paluskar, Faiz Mohommad Khan (first guru of Bhaskarbuwa Bakhale), Anant Manohar Joshi, Mirashibuwa and his disciples are all the illustrious products of this Gharana. Apart from this, the Gwalior Gharana *taleem* gave rise to other Gharanas. For example, Ghagge Khuda Baksh got the *taleem* of this Gharana and went on to become the founder of the Agra Gharana. Most of the present-day Gharanas trace their origin to the Gwalior style, and hence this is the pioneer of all those styles of music." [4]

Now let us gather some more information about the prominent artists of this Gharana.

"Natthan Khan had two grandsons – Hassu Khan and Haddu Khan. He also had an adopted son named Natthu Khan. Hassu Khan passed away early and had a moderate approach to his style. Haddu Khan had a trained voice, and his Gayaki was heavy and loud. "Your voice should be loud like a mountain, and yet fine like a needle", he used to say. Natthu Khan possessed a vast collection of *Bandishes.* He was more a teacher than a performing musician. [5]

Baba Dikshit and Vasudevbuwa Joshi were students of Hassu Khan. It is said that Baba Dikshit was a trained musician, and he not only possessed a nuanced approach but also possessed great depth in knowledge. He was administered an oath that he would not sing for the king, and he remained loyal to it. His music could reach the listeners through Ganpatrao Apte, Krushnarao Mulye and Sharadchandra Arolkar. [6]

One can experience Antubuwa's style here – http://www.gajananbuwajoshi.com/anant_manohar_joshi

Antubuwa's son and disciple Gajananbuwa Joshi was a trained vocalist and a violinist. Apart from his father's G*ayaki,* he was also influenced by the G*ayaki* of the Jaipur and the Agra *Gharanas*. We can get a glimpse of these influences in the *Gayaki* of Ulhas Kashalkar, Antubuwa's student, and one of today's most prominent vocalists.

(Gajananrao Joshi: Gwalior Gharana – The Heritage HMV's Gharana Series Cat. No. STC850610 Ragas- Bhimpalas, Shree, Basant Bahar, Bhairavi)

Gundubuwa Ingale's son Keshav Gundo Ingale was also a vocalist. It is also necessary to mention another prominent offshoot of the Gwalior G*ayaki.* It begins with Rajabhaiyya Poochwale, a student of Shankar Pandit. This

style was popularized by Rajabhaiyya's son Balasaheb Poochwale. "Students of Balasaheb Poochwale made the G*ayaki* more simplified, and a prominent example is Malini Rajurkar."

We should also mention eminent vocalist Sharad Sathe, who was influenced by the G*ayaki* of D.V Paluskar and Sharadchandra Arolkar. Krishnarao Shankar Pandit contributed by opening many music schools and teaching many students.

Kumar Gandharva is a musician from this G*harana* who established his prominence through his path-breaking experiments and contribution to music. Through his creative contributions and the introduction of aesthetics, he redefined the concept of tradition.

(Pandit Kumar Gandharva A Journey – label – Saregama – 2 CD Set – CDNF 150533/34 – Vol 1 – Ragas – Puriya Dhanashree, Malavati, Chaiti Bhoop, Lagan Gandhar, Bahar, Nirguni Bhajan in Mishra Mand; Vol 2 – Ragas – Saheli Todi, Sawani, Sohoni Bhatiyar, Nirguni Bhajan, Nirguni Bhajan).

Through these recordings, one gets a glimpse of Kumarji's innovations and aesthetic elements in his style. Of these, Malavati, Chaiti Bhoop, Lagan Gandhar, Saheli Todi, Sohoni Bhatiyar were Kumarji's creations. He called many of his creations '*Dhun-ugam Raag'* as they, according to him, emerged from folk tunes. He also published his collection of *bandishes* titled *Anupraagvilas.* In some of the *bandishes* he composed, Kumar Gandharva has used the pen name *Shok* or *Shok Piya.*

Veena Sahasrabuddhe was another eminent vocalist from this G*harana.* Her G*ayaki* gives us a glimpse of the balance between the melody of notes and the otherwise forceful Gwalior G*ayaki.*

1.2) Tradition:

In Sadarang's tradition, we have Ghulam Rasool Shori, and his nephews Shakkar Khan and Makkhan Khan; Shakkar Khan's son Bade Mohammad Khan and Makhkhan Khan's son Natthan Pee rBaksh. [7]

Natthan Peer Baksh is considered the founder of the Gwalior Gharana.

- Bade Mohammad Khan- Four sons- Murad Ali, Kutub Ali, Munavvar Ali and Mubarak Ali
- Nathan Peer Baksh: Son – Qadar Baksh; Grandsons – Haddu Khan, Hassu Khan and Natthu Khan Disciples: Ghagge Khuda Baksh (The Jaipur Gharana begins from Mubarak Ali, whereas Ghagge Khuda Baksh initiated the Agra Gharana)
- Haddu Khan: Son – Mohammad Khan and Rahmat Khan (Bhu-Gandharva); Disciple: Babbu Khan, Balasaheb Guruji, Baba Dikshit, Devji Buwa, Inayat Hussain Khan, Banne Khan, Vishnupant Chhatre, Bande Ali Khan (Kirana Gharana), Nanu Gopal etc.
- Hassu Khan: Disciple – Bade Balkrushnabuwa, Vasudevbuwa Joshi, Anantshastri Kashikar
- Natthu Khan (Natthe Khan): Disciple – Nissar Hussain Khan, Maharaj Jiyajirao Shinde, Mehndi Hussain (maternal grandson of Hassu Khan), Jaysukh Bai etc
- Nissar Hussain Khan: Disciples – Shankarrao Pandit, Eknath Pandit, Ramkrushnabuwa Vaze, Gopalrao Marathe, Balabhau Umdekar

(Kundalguru), Bhaurao Joshi, Shankarrao Hardekar etc

- Mushtaq Hussain Khan of Rampur Gharana studied under Inayat Hussain Khan, the son-in-law of Haddu Khan
- Vasudevbuwa Joshi: Disciple – Balkrushnabuwa Ichalkaranjikar
- Balkrushnabuwa Ichalkaranjikar: Discplies – Gundubuwa Ingale, Vishnu Digambar Paluskar, Anant Manohar Joshi, Yashwantbuwa Mirashi, Bhatebuwa, Ganpati Bhilwadikar, Vamanrao Chaphekar etc
- Shankarrao Pandit: Disciples – Ganpatrao Gune, Ramkrushna Telang, Kashinathpant Mule, Rajabhaiyya Poonchwale, Bhaiyyasaheb Malwankar, Haribhau Valangaonkar, Dinkarrao Patwardhan; Son – Krushnarao Shankar Pandit
- Ramrushnabuwa Vaze: Son– Shivrampant Vaze; Discples– Haribhau Ghangrekar, Bhalchandra Pendharkar, Deenanath Mangeshkar, Gajananrao Joshi etc
- Nilkanthbuwa Mirajkar: Discples – Mallikarjun Mansur, Panchaksharibuwa Gadgaiyya, Basavraj Rajguru, Arujunsa Nakod, Puttaraj Gawai
- Vamanbuwa Chaphekar: Disciple – N. R Marukar
- Gundubuwa Ingale: Son – Keshavbuwa Ingale

1.3) Prominent features of the Gwalior Gharana:

Krishnarao Shankar Pandit, one of the most prominent vocalists of this Gharana says, "In the past 150 years, among all the Gharanas who attained fame, the Gwalior *Khyaal Gayaki* has been at the forefront. While every *Gharana* has its features, Gwalior's *Ashtang Pradhan Gayaki* is found nowhere else."

Ashtang Pradhan Gayaki is frequently mentioned while referring to the Gwalior Gharana. Krishnarao Shankar Pandit, further adds, "Only my G*harana* has the eight G*unas* of music. They are *Alap, bol-alaap, bol-taan, taan,* various forms of *Laykari, Meend, Gamak* and *Murki.* All of these contribute to my *Khyaal Gayaki. Meend* and *Behlawa* are the special features in this *Gharana.* This is a complex form of presentation, and it is influenced by *Dhrupad, Dhamar, Thumri, Tappa* and to an extent *Tarana.*"

To sum up this statement, we can say that other *Gharanas* developed one or two of the eight forms mentioned above, but the Gwalior Gharana has included all these forms in its style and presentation.

The use of the *Madhyalaya,* a structured presentation of the *Bandish,* use of typical melodic patterns, an open-throat voice and use of the higher pitch while singing has made this *Gayaki* very attractive. Apart from these features, there are certain other characteristics of this Gharana, which are as follows: [8]

1. Use of an open-throat voice
2. Presentation of known, popular Raags, and the *bandishes* of Sadarang and Adaarang.
3. The *Sthayi* and *Antara* are sung twice, followed by the improvisation as per the *bandish.*
4. *Tilwada* is the most prominent *Taal* used during the presentation. *Jhoomra* and *Ada Chautaal* are also often employed. The tempo is often fast as compared to other *Gharanas.*

For the compositions in *Drut laya, Teentaal* and *Ektaal* are used.

5. The Gharana also gives importance to the element of *Taal*. Elements of rhythm like *Laykari* and *Ateet-Anagat* are part of this Gharana.
6. Apart from the *Behlawa,* this *Gharana* also uses *Gamak.* The use of the *Gamak* is also prominent when singing the *taans.*
7. At many instances, one observes the use of a linear pattern of *taans (*even in Raags which have a non-linear pattern of notes – *vakri swar*) during the presentation. For example, the use of the following pattern of notes **Copies from the original document** is seen in Raag Kedar, Miya Malhar and Gaud Malhar. However, despite the same pattern of notes, the usage is perfectly in sync with Raag's mood, and hence it sounds melodious during every presentation. This is an important feature of this *Gharana*, and it is called *Avrohi Satta.*
8. The Gwalior Gurus train their students in *Ashtapadi* and *Tappa*. While the latter is known for its typical structure, the former is known for the poetry of Jaidev.

1.4. The importance of the *Gwalior Gharana Taleem:*

The tradition of reciting the Vedas dates back thousands of years. The style of this recitation is fixed and rigid and no matter when and how many times it is sung, its pronunciation, melody and speed do not change. This style is termed as 'Santha.' The Gwalior tradition of music has been preserved similarly for many years.

B.R Deodhar has written the following in his book *Thor Sangeetkar*, Deodhar was learning with Vishnu Digambar Paluskar when Mr Paluskar had organized Gandharva Mandal's second music conference. It was presided by Paluskar's guru and the doyen of Gwalior Gharana, Balkrushnabuwa Ichalkaranjikar. Balkrushnabuwa sang at the end of the conference, and Deodhar was one among the audience. Deodhar recalls that Buwa was accompanied on the Tanpura by four of his students, and Paluskar was among them. Deodhar writes, "Four students and Buwasaheb sang '*Jabahi Sab Nirpat Niraas Bhaye'* in Raag Bhoop. Every performer on stage was totally in sync with the melody and the rhythm, and the effect was as if one person sang instead of five." This narration gives us a glimpse of the rigid and structured *taleem* of the Gwalior Gharana. [9]

1.5) Changes in the Gwalior Gharana tradition:

Even though this book attempts to analyze the changes in the traditions of the Kirana Gharana, it is necessary to understand the changes in other Gharanas. While we will discuss the Kirana Gharana in detail, we will try to gather a glimpse of the specialities in other Gharanas as well.

1. Laya: *Madhya laya* or medium tempo is the Gwalior Gharana characteristic. Ram Deshpande, one of the popular and well-known vocalists from this Gharana, had the following to say, "In olden times, owing to the use of the medium tempo, artists from the Gwalior Gharana could improvise a Raag for almost twenty minutes. Hence, he/she had to present many Raagas during the concert. Today

the tempo of the presentation has become slower." Ram Deshpande cites this change in his *Gayaki* and his guru, Ulhas Kashalkar's style.

2. **Raag Selection:** This Gharana prefers to present known and popular Raagas like Hameer, Kedar, Basant, Kamod, Gaud Malhar etc. However, in the later years, this Gharana also adopted itself in presenting lesser-known Raagas. For example, Yashvantbuwa Joshi – Kalavati, Gavati, Abhogi, Gorakh; Malini Rajurkar – Chakradhar, Kirwani, Charukeshi, Basant Mukhari; Veena Sahasrabuddhe – Bhupaltodi, Gavati, Ahir Lalat; Ram Deshpande – Shivranjani, Virat Bhairav. Gajananbuwa Joshi studied the presentation and style of other Gharanas and included those Raagas in his presentation. His students also sang those Raagas, which further enriched the tradition of the Gharana.
3. **Kumar Gandharva:** Kumar Gandharva, through his style, presentation and creations, stood out and created a unique Gharana identity. Some of his special features were the Raag presentation, composing new Bandishes and Raags, singing thematic concerts, participating in discussions and debates on music and presenting many forms of music, apart from Classical music. Considering the number of people he influenced through his style and thoughts, he must be credited with starting a new style within the Gharana.
   (Ref – Pandit Kumar Gandharva A journey – label – Saregama – 2CD Set – CDNF 150533/34; Vol 1 – Ragas – Puriya Dhanashri, Malavati, Chaiti Bhoop, Lagan Gandhar, Bahar, Nirguni Bhajan in Mishra Mand, Vol 2 – Ragas – Saheli Todi, Sawani, Sohani Bhatiyar, Nirguni Bhajan, Nirguni Bhajan). These recordings give us a glimpse of the Raags created by Kumarji, his Nirguni Bhajans, the influence of folk music on his thoughts, a different treatment to Bhajans, and his thoughts on *laya* and *taal.*
4. **Bandishes:** Artists from this Gharana often sing the Bandishes of Sadarang and Adarang. In the later years, however, artists like Ramkrushnabuwa Vaze, Vishnu Digambar Paluskar, Vinayakrao Patwardhan, Onkarnath Thakur (Pranav Piya), Kumar Gandharva (Shok Piya), Anant Manohar Joshi, Gajananrao Joshi, Balwantrai Bhatt, S.N Ratanjankar (Sujaan), Ashok Ranade, Shankar Abhyankar composed a few Bandishes. A few of them were documented and released in the form of a book. These bandishes also found a place on the concert platform, thanks to these maestros students. In the present day, maestros like Arun Kashalkar, Vikas Kashalkar, Ram Deshpande, Savani Shende, Neela Bhagwat have composed Bandishes.
5. **Sargam:** There is hardly any reference to the use of the Sargam by artists like Haddu Khan, Hassu Khan, Mohommad Khan, Balkrushnabuwa, Shankar Pandit, Bhaskarbuwa Bakhle, Krushnarao Shankar Pandit, Anant Manohar Joshi, Vishnu Digambar Paluskar, Vazebuwa in their presentation.

We do not find its usage in their recordings. However, artists in the later years have included this form, for example, Malini Rajurkar, Veena Sahasrabuddhe, Madhukar Joshi, Shashwat Mandal etc. We also find Kumar Gandharva doing the same in a few of his recordings. However, Sargam is not an essential feature of this Gharana, and most of the artists do not use it in their performances. For many artists, Sargam usage is a new addition to their presentation.

6. **Female performers:** Artists like Tanibai Ghorpade, Kesarbai Kerkar, Lakshmibai Jadhav, Mogubai Kurdikar represented the Jaipur Gharana at the national level and attained fame. On similar lines, the Kirana Gharana could boast of performers like Chunnabai, Tarabai Mane, Hirabai Barodekar and Roshanara Begum. Anjanibai Malpekar was an iconic artist from the Bhendibazaar Gharana. Malini Rajurkar adds her point of view on using the *gamak* and the Gharana voice culture. "The tradition of this Gharana is to sing in a free and loud voice, and it reflects in our voice production. But how could an upright voice suit a lady and was it appropriate to use *gamak taans?* Hence, after careful thought, I cut down on the gamak *taans' usage.* After listening to Kumar Gandharva, I understood the importance of voice modulation. Kumarji's usage of notes and his appropriate timing in their usage appealed to me, and I tried to incorporate it in my presentation. However, these changes were as per my personality and singing style. While the traditionalists criticized me for making those changes, I continued singing in a style which I liked and agreed to." [10]

The above anecdote presents the fact that despite receiving a *taleem* in the Gwalior Gharana, Malini Rajurkar chose to incorporate changes in her gayaki. We intend to understand the rationality, the intention, and the thought process behind this step. It helps us understand how traditions in Gharanas change at certain stages in their history.

References

1. Nadkarni Mohan, translation by Susheel Trivedi, Madhya Pradesh Ke Pandrah Sangeetkar, Chapter 6. Krushnarao Shankar Pandit: Gwalior Gharane ke Agraganya, Publisher Ustad Allauddin Khan Sangeet Akademi Bhopal, First Edition February 1982, page 45-46
2. Mukt Sangeet Samvad, Editor, Dr Shreerang Sangoram, Publisher Gaanvardhan Pune, 10 Jan 1995, interview of Pt. Sharadchandra Arolkar.
3. Marulkar N.R., Sangeetatil Gharani, Sarvoday Mudranalay Pune, 1962 page 93
4. Interview of Dr Ram Deshpande Dated – 30 May 2014 11 am at his place Kandivali Mumbai.
5. Haldankar S.S, Mukt Sangeet Samvad, Editor, Dr. Shreerang Sangoram, Publisher Gaanvardhan Pune, 10 Jan 1995, page 178.
6. Deshpande V.H, Gharandaj Gayaki, Mauj Prakashan Gruh Mumbai, Second Edition 1985, chapter 6 – Suvarna Madhyatli Gharani page 60.
7. Marulkar N.R. Sangeetatli Gharani, Sarvoday Mudranalay Pune 1962, Chapter 13 Jaipur Gharane, page 119
8. Marulkar N.R. Sangeetatli Gharani, Sarvoday Mudranalay Pune 1962, Chapter 13 Jaipur Gharane, page 119
9. Ranade A.D., Sangeetache Saundarya Shastra, Publisher Dr G.C. Banerjee 1971, page 78
10. Ranade A.D., Sangeetache Saundarya Shastra, Publisher Dr G.C. Banerjee 1971, page 77.

Applicability of simple quantitative methods to Research in Indian Vocal Music

Abhijith Shenoy K

Head of Department, Human Networking Academy,
Jain University, Bangalore

Abstract

Vocalists, post their practice session or concert session, may 'FEEL' they have done a good job. But they are unable to quantify this 'FEELING', to track improvement over a duration. Progress tracked can help reinforce the self-belief in one's vocal abilities, and justify the validity of long-standing vocal practices and systems. Owing to Subjectivity, Vague Nature and Equipment, qualitative research falls short of practical application. Thus arises the need to explore which vocal parameters could be measured, aided by readily-available software / tools for physical pre-post analysis. The research paper dwells on 7 vocal parameters, exercises for enhancing each parameter, with suggestions about tracking equipment: Range, Tempo (Speed of singing / Speed of thought), and Frequency of the note, Volume, Breath Control, Relation to pitch, and musical embellishments

Keywords:

Voice, Range, Tempo, Frequency, Volume.

Introduction

The human voice in Indian Vocal Music has always been placed on the highest pedestal, bestowed with the coveted titles – Sublime, Surreal, and God-Gifted. This flattery, though genuine, has somehow led to two notions – 1. The voice *should not be* measured, and 2. The voice *cannot be* measured. Both notions have hampered the possibility of good quantitative research in the field.

Till date, majority of research undertaken in Indian Vocal Music has been qualitative, owing mostly to three reasons: **1. *Subjectivity*** - In the field of Performing Arts, there is a great amount of subjective bias, causing every artist to believe they are right, thus becoming less open to critical feedback and pardoning oneself on several occasions; **2. *Vague nature*** – The human voice, a most judicious mix of a wind and string instrument, is not scientifically / anatomically understood by students, performers and even the Teachers at times, leading to loosely-prescribed solutions; and **3. *Equipment*** – The tools used in Vocal tracking are

expensive, technically sophisticated and often *invasive*.

Hence, we witness a lot of thesis left wanting for quantitative validation, adorning university library shelves for lack of practical application.

Purpose

This paper aims to suggest simple quantitative methods of tracking personal improvements in vocal music. It will first outline the parameters which can be measured on a daily / weekly / monthly basis, also suggesting equipment / software required in recording / tracking the change / progress.

Scope

The scope of this study would be seen in creating practical exercise modules with guidelines and preset mathematical parameters, so participants/volunteers could keep a self-check on their own progress. The exercise modules can further take into consideration parameters such as – Age of participant, time prescribed for exercise V/S actual time spent, number of repetition cycles, number of and time gap for taking up self-check tests. The results can then be collected, classified/ segregated and analyzed statistically, thereby validating the impact of the said exercises.

Limitations / Challenges

A string instrument kept aside, vertically or horizontally, loses its tuning. The same is true with an unused voice. Even body posture and position of the larynx come into play. So, it would be best if these tracking measures are put into place when a vocalist is at ease with his / her voice and well in touch with practice.

Is Age a factor? Yes. Just as any natural quality declines with age, the voice *may* go down in range, speed, flexibility and volume. However, exceptions are seen considering the maturity and experience of the vocalist in *managing* the moment.

With any man-made musical instrument, a predetermined placement of the fingers or breath would give the desired result. The same does not always hold true of the human voice, given its susceptibility to natural and induced factors.

Do seasons, weather and climatic conditions have a role? Research has proved that – as hot air tends to rise, but cold air stays closer to the ground, the voice tends to audibly reach a further distance in winter/ cold climate, also reducing the strain for amplification. So, should tracking measures be put in place accordingly for the best result?

Any medicine, only when taken as prescribed, can give the necessary relief. Similarly, the said exercises must be practiced systematically and recorded *honestly*.

Methodology

The following parameters can be tracked for improvement: Range, Tempo (Speed of singing / Speed of thought), and Frequency of the note, Volume, Breath Control, Relation to pitch, and musical embellishments.

A pre-test of these parameters would be recorded. Then, the participants will be guided through a set of exercises specifically designed for enhancing that parameter. Following which, a post-test will be recorded to track progress.

Analysis

RANGE – A long-standing belief is that Vocal range is inherent / inbuilt. It

cannot be increased, but only realized. Using the 'Savaal – Javaab' technique, a participant can, not only realize this range, but also strengthen the voice in both the lower and higher octaves, easing out unnecessary strain through vocal stretches. An example of 'Savaal – Javaab' is given below:

srs - pdp - SRS - ndpmgrs (Here, 'srs' is the Savaal / question; 'pdp' and 'SRS' are the Javaab / answers)

SRS - pdp - srs - rgmpdnS (In the Reverse, 'SRS' is the Savaal / question; 'pdp' and 'srs' are the Javaab / answers)

TEMPO – For Speed of Singing - Fixing the Digital Tabla to a particular Taal (for example – Teentaal) and tempo (for example – 220), a participant sings a predetermined Taana. Post practice of certain prescribed exercises, the participant now attempts the same Taana at a faster tempo (for example – 230). Provided the Swarasthaanas were accurate in both tempos, the participant can now embrace the newfound speed with confidence.

Reinforcement of a set phrase – Select a phrase of swaras – for example 'GMPP'. Sing this phrase 50 times at a certain tempo. One finds the voice, pronunciation and required note placement starts falling into place. Next, increase the tempo and repeat the exercise. The participants can also track the number of times they successfully sang the phrase continuously, and try improve on this number in future attempts.

Reinforcement of a single swara – Singing a swara in multiples helps establish its pronunciation and clarity.

Each swara 2 times

ss, rr, gg, mm, pp, dd, nn, SS

SS, nn, dd, pp, mm, gg, rr, ss

Each swara 3 times

sss, rrr, ggg, mmm, ppp, ddd, nnn, SSS

SSS, nnn, ddd, ppp, mmm, ggg, rrr, sss

For Speed of Thought (UPAJ) – The objective being to create unlimited ideas within a boundary of limited notes, the participant can practice '*MERUKHAND*', made popular by Ustad Amir Khan.

For example - let's take three swaras - Shadja, Rishabh, and Gandhaar.

Now, sing these swaras in different combinations, taking into consideration the no. of times the swara is sung -

In groups of three - srg, srs, sgs, sgr, rsr, rgr, rsg, rgs, grs, gsr, grg, gsg, ssr, ssg, rrs, rrg, ggr, ggs, srr, sgg, rss, rgg, grr, gss, sss, rrr, ggg.

In groups of four - srgr, srrg, sgrr, rsgr, rggs, rggr, rgsg, gsss, grrr, gssr, gssg, ggss, ggrr, ggrs, ggsr, grss, grgg, gggr, gggs, gsgs, gsrs, grgs, gsgr, grrs, grrg.

Try in groups of five, six ... and so on.

FREQUENCY OF THE NOTE - The same swara is sung with different frequencies across raags. The same raag is sung differently across Gharanas / singing styles.

The participant is asked to use a Korg meter to measure the required frequency of a particular swara in a particular raag, and then assessing his / her proximity to the set standard.

Though a Perfect 440 is neither possible nor desirable on all occasions, the problem sometimes lies in adhering to the accompaniment of an ill-tuned or wrongly calibrated instrument.

VOLUME – In this age of advanced amplification techniques and equipment, many vocalists have forgotten the

dynamics of their own vocal instrument in the absence of microphones.

Every note / swar, to be in its exact place / sthaan, needs certain volume, certain force/pressure, certain softness and delicacy. So, control over the volume of voice is also vital. By exercising "volume control", one will refrain from tiring the voice out early by singing too loudly / forcefully / harshly. You can also do justice to the required purity of each swar.

The participant can attempt the following exercises to test volume and improve audibility:

1) Taking any one swar:

a) During the course of one breath, sing it as loudly as you can (maintain the same loudness throughout)
b) Now, sing the same with medium volume. (Less than"a")
c) Next, sing it as softly as you can.

2) Taking any one swar:

a) In one breath - start the note in a loud voice and as you go ahead, make it softer and softer, before your breath ends.
b) In one breath - start the note in a soft voice and as you go ahead, make it louder and louder, before your breath ends.
c) In one breath - start loud, soft in between, and again loud during the end of the breath. (This is called the "*damaru - aakaar*")
d) In one breath - start soft, loud in between, and again soft during the end of the breath. (This is called the "*mridang - aakaar*")

BREATHE CONTROL - Using a humble stopwatch, a participant can time the 'Sustain' on a particular Swara / note. Undergoing exercises like swimming, yogasanas, pranayama and vocal techniques, re-time the 'Sustain' after a few weeks. Also, attempting to sing a pre-determined lengthy phrase in a single breath can help improve breath control.

RELATION TO PITCH - Using the 'EarMaster' application, one can take an initial test for Relation to Pitch. Post prescribed exercises to improve one's listening, retake the test at a faster speed:

1) Sit in a very quiet place, close eyes, and just listen to any small sound audible.
2) Sit in a very crowded and noisy place, close eyes, and listen to the various sounds audible.

During these 2 exercises, pay attention to:-

a) What is creating that sound? (Object /person)
b) What direction the sound is coming from?
c) At what distance from you is the sound being generated?

MUSICAL EMBELLISHMENTS (ornamentations) - Using the 'Gamaka – Voice trainer' app on smartphones / PCs to create a real-time visual tracking of swaras and their movements as one sings.

Inferences drawn

The prescribed exercises, practiced on a regular basis, can bring about a positive change in the voice with respect to the said parameters; and, this change can not only be 'FELT', but measured and tracked in order to provide a strong quantitative base for research in Indian Vocal Music.

दरभंगा में ध्रुपद गायन शैली के विकासात्मक सोपान : एक विश्लेषण

प्रेरणा कुमारी
शोध छात्रा, संगीत विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय

लावण्य कीर्ति सिंह ''काव्या''
प्रोफेसर, संगीत विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय

सारांश

दरभंगा घराने का क्रमबद्ध इतिहास पिछले ढ़ाई सौ वर्षों का है। इस गायन शैली में पंडित छितिपाल मल्लिक, पंडित राजित राम शर्मा मल्लिक एवं पंडित रामचतुर मल्लिक, पंडित विदुर मल्लीक आदि यशस्वी गायक माने जाते हैं। दरभंगा ध्रुपद गायन की यश-गाथा को इन गायकों ने अपने आधार पुरुष राधकृष्ण और करताराम के पद्चिह्नों पर चलकर पूरा किया।

बीज-शब्द

दरभंगा, ध्रुपद, राज दरबार, दरबार, गौर बानी (गोवरहार बानी)

दरभंगा घराने के आदि पुरूषों में राधाकृष्ण-करताराम हैं। ये चार भाई थे- रामनेवाज, सीताराम, राधाकृष्ण तथा करताराम। रामनेवाज तथा सीताराम के सांगीतिक ज्ञान की कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। राधाकृष्ण तथा करताराम ने ध्रुपद गायन की शिक्षा नेमत खाँ (सदारंग) के द्वितीय पुत्र भूपत खाँ (महारंग) से ली थी। इन दोनों की गायन-प्रतिभा से प्रभावित होकर अवध के नबाब सिराजुद्दौला ने अपने दरबार में प्रधान गायक के पद पर दोनों को नियुक्त कर लिया। दरभंगा के राजा माधव सिंह की जमींदारी अवध के नबाब के राज्यान्तर्गत आती थी। इस कारण वे नबाब के यहाँ आया जाया करते थे। माधव सिंह ने नबाब के दरबार में राधाकृष्ण तथा करताराम दोनों भाईयों का ध्रुपद गायन सुना और बेहद प्रभावित हुए। फिर गायन से प्रभावित होकर नबाब से अनुरोध कर दोनों गायकों को अपने दरबार में ले आये।

संगीत साधक एवं साधना का प्रमुख केन्द्र दरभंगा रहा है। भारत में संगीत के क्षेत्र में अपनी कीर्ति- पताका लहराने में यहाँ (दरभंगा) के संगीत साधकों की विशिष्ट भूमिका रही है। ऐसी मान्यता है कि मिथिला नरेश महाराज माधव सिंह के समय में अमता घराना के महान कलाकार राधाकृष्ण एवं करताराम सन् 1775 में अवध के नबाब सिराजुद्दौला के दरबार से लाये गये थे। माधव सिंह की नबाब सिराजुद्दौला के साथ प्रगाढ़ मित्रता थी। दोनों ही एक-दूसरे के यहाँ आया-जाया करते थे। इसी क्रम में माधव सिंह ने सिराजुद्दौला के दरबार में राधाकृष्ण और करताराम का गायन सुना।1 इस गायन से माधव सिंह अत्यंत ही प्रभावित हुए और नबाब से इन दोनों संगीत कलाकारों को मांग लिया और उन्हें दरभंगा ले आये। दरभंगा के राज दरबार में इन दोनों कलाकारों ने संगीत का ऐसा रंग जमाया कि सुनकर महाराजा अतीव प्रसन्न हुए और गायन से प्रभावित होकर दोनों भाईयों को अमता गाँव की पाँच सौ बीघा जमीन का स्वामी बना दिया।2

राधाकृष्ण और करताराम मूलतः पश्चिमी प्रान्त के गौड़ देशीय ब्राह्मण थे। आज भी इनकी संतानें

अपने को गौड़ देशीय ब्राह्मण मानती हैं। साथ ही, अपनी गायन शैली को गौड़ बानी ध्रुपद शैली कहते हैं। राधाकृष्ण और करताराम ने ध्रुपद गायन शैली की शिक्षा नेमत खाँ (सदारंग) के द्वितीय पुत्र भूपत खाँ से ग्रहण की थी।3

'पद्मश्री' रामचतुर मल्लिक के पिता राजित राम शर्मा मल्लिक ने अपने रचित ग्रंथ 'भक्त विनोद' में अपने पूर्वजों का विवरण काव्यात्मक ढंग से इस प्रकार दिया है-

''ब्राह्मण गौड़ कुलीन घर, सती भई द्वै वाम।
मातु सती के पुत्र भये, जाके वरणत नाम।।
प्रयमहि राम नेवाण भो, दूसर सीताराम।
तीसर राधाकृष्ण हैं, चौथे करताराम।।
साहित्य और संगीत में, गुणी भये सुप्रधान।
श्री माधव मिथिलेश जू, दियो भूमि सुन गान।।
सब भायेन से अधिक भो, तीसर चौथ विद्वान।
शाहनवाज राजभवन, पायो श्रेष्ठ सनमान।।
करताराम के पुत्र भो, नाम कन्हैया लाल।
तासु तनय गुणवान में, धारयो नाम नेहाल।।
तिनके पुत्रन में बड़ो, राजा राम है नाम।
वाके भ्रात कनिष्ट में, अधम है राजित राम।।
जिला दरभंगा बसथि नृप, प्रगन्ना हावी ठाम।
जनक देश कमला निकट, विदित है अमता ग्राम।।4

इस प्रकार उपर्युक्त पंक्तियों में माता सती के चार पुत्रों की चर्चा है जिनके नाम क्रमशः रामनेवाज, सीताराम, राधाकृष्ण तथा करताराम है। दो भाईयों के संबंध में कोई विशेष जानकारी नहीं है। संभवतः दोनों अपने ही देश में रह गये। राधाकृष्ण एवं करताराम से ही ध्रुपद गायन-शैली की नींव पड़ी। आधार पुरुष के रूप में दरभंगा की ध्रुपद गायन-शैली में इन दोनों भाईयों को ही परिगणित किया जा सकता है।

इन दोनों भाईयों के लब्ध प्रतिष्ठ संगीतज्ञों के वंशज इस प्रकार हैं-5

राधाकृष्ण के वंशज क्रमशः खुशी मल्लिक, दलन मल्लिक, भक्तन मल्लिक, दमरी मल्लिक, इन्द्र मल्लिक, गोकुल मल्लिक, शुकदेव मल्लिक, सुबोध मल्लिक, सोनेलाल मल्लिक, जागेश्वर मल्लिक, विदुर मल्लिक, चन्द्रनारायण मल्लिक, रामदीन मल्लिक, पुरोषत्तम मल्लिक, रामकुमार मल्लिक, आनंद कुमार मल्लिक, प्रेम कुमार मल्लिक आदि।

करताराम के वंशज क्रमशः कनक मल्लिक, फकीर चन्द मल्लिक, कन्हैया लाल मल्लिक, मणियाद मल्लिक, श्यामलाल मल्लिक, मोहन मल्लिक, दुलार मल्लिक, कन्हैया मल्लिक, नेहाल मल्लिक, राजाराम मल्लिक, राजितराम मल्लिक, भगवत मल्लिक, जगरनाथ मल्लिक, वेनी मल्लिक, कमल नारायण मल्लिक, साहेब नारायण मल्लिक, जय मल्लिक, चन्द्र कुमार मल्लिक, मेही मल्लिक, भरत मल्लिक, अभय नारायण मल्लिक, नंदलाल मल्लिक, नवल कुमार मल्लिक, निर्वल कुमार मल्लिक, उदय कुमार मल्लिक आदि।

करताराम के वंश में मणियाद मल्लिक की पुत्री गोनरदाई से छितिपाल मल्लिक जैसे महान कलाकार का जन्म हुआ। अमता घराना के भीष्मपितामह यदि इन्हें कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। सर्वप्रथम महाराज कुमार बाबू गुणेश्वर सिंह (किशोर बाबू) शुभंकर ड्योढ़ी दरबार में गायक के रूप में प्रतिष्ठापित हुए जिनका समय 1860 ई0 था। महाराज स्वयं संस्कृत भाषा एवं संगीत में निष्णात थे। कुछ वर्षों के पश्चात् आप महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह के दरबार में राज गायक के रूप में नियुक्त हुए।

'पद्मश्री' रामचतुर मल्लिक के पिता राजित राम मल्लिक छितिपाल मल्लिक के शिष्य थे। ध्रुपद गायन शैली के महान कलाकार छितिपाल मल्लिक ही माने जाते थे। राजितराम मल्लिक अपने गुरू के साथ दरबार में जाया करते थे जिस कारण इन्हें भी दरबार में कलाकारों की देख-रेख करने के लिए नौकरी मिल गयी। किसी भी कलाकार को महराजा तक जाने के लिए इनसे स्वीकृति लेनी पड़ती थी। छितिपाल मल्लिक से ध्रुपद गायन की शिक्षा ग्रहण करते हुए राजित राम ने उन्हें आचार्य गुरू एवं मंत्र गुरू बना लिया। गुरू की मृत्यु होने पर अपना उद्गार इस प्रकार व्यक्त किया था जो इनके द्वारा रचित 'भक्त विनोद' में है-6

आज तो संगीत विद्या गोवरहार वाणी
सुध संगीत के सुमेरू हाय घसिगो।

ध्रुपद, धम्मार, छंद, गीत प्रबंधन के
त्रिवट, तेलाना के खजाना सब लुटिगो।
राग, तान, ताल दिढ़ गाय के सुनाय सब ही
रिझाय सकल जहान मन मोहिगो।
गुणी छितिपाल मल्लिक लोक छितछाड़ि के,
स्वर ईश्वर मिला यतन तम्बूरा तार तुरिगो।

महाराजाधिराज लक्ष्मीश्वर सिंह एवं महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह के आश्रित एक अद्वितीय सितार वादक कलाकार थे जिनका नाम रामेश्वर पाठक था। ये नूरपुर महना जिला-मुंगेर, जो आजकल बेगूसराय के अंतर्गत है, वहीं के रहने वाले थे। ये अमता निवासी सीताराम मल्लिक के प्रपौत्र, रामकुमार के दौहित्र (नाती) थे। कहा जाता है कि राजा बहादुर विशेश्वर सिंह को पं0 रामेश्वर पाठक के सितार पर राग विहाग सुनने के बाद नींद हुआ करती थी।7

राज दरभंगा के दरबार में जिस समय पं0 रामेश्वर पाठक कलाकार थे उस समय आजिमबक्स खाँ, मौलाबक्स खाँ, अब्दुलगनी खाँ, सफी खाँ, भोला भट्ट, बाबू खाँ, अहमद खाँ, छितिपाल मल्लिक, राजितराम मल्लिक तथा मांगन खबास थे। समय-समय पर जिन कालाकारों को आमंत्रित किया जाता था उनमें रामचन्द्र झा, रघु झा, राघव झा मुख्य थे।8

दरभंगा घराना के प्रख्यात गायक पंडित रामचतुर मल्लिक ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनायी थी। आपका जन्म पाँच अक्टूबर, उन्नीस सौ दो (1902) को हुआ था। आपके पिता राजित राम मल्लिक आपके प्रथम गुरू थे। दूसरे गुरू के रूप में आपके गुरू दादा छितिपाल मल्लिक थे, जिनसे उन्होंने ध्रुपद, धमार की तालीम ही नहीं बल्कि पुरानी बन्दिशें भी ली। तीसरे गुरू पं. रामेश्वर पाठक थे जिन्होंने ख्याल अंग की बारीकियों से आपको अवगत कराया।

'पद्मश्री' रामचतुर मल्लिक के गायन की शोहरत बढ़ती गयी। आपने देश-विदेश सभी जगहों में धूम मचा दी। राजा बहादुर विशेश्वर सिंह के दरबार के गायक एवं मित्रवत रहकर जीवन-यापन की। आपको अतिथि निवास उपलब्ध करायी गयी थी, जहाँ आप जीवन पर्यंत रहे।

दरभंगा घराना के पंडित विदुर मल्लिक एवं पंडित अभय नारायण मल्लिक ने भी ध्रुपद गायन के क्षेत्र में विशिष्ट पहचान बनायी। विदुर मल्लिक के पुत्र इलाहाबाद विश्वविद्यालय में संगीत विभाग के विभागाध्यक्ष के पद को सुशोभित कर रहे है। ये दोनों भाई रामकुमार मल्लिक एवं प्रेमकुमार मल्लिक (इलाहाबाद विश्वविद्यालय) ध्रुपद गायन में निष्णात हैं। इन दोनों भाईयों के पुत्र समित मल्लिक, प्रशान्त मल्लिक एवं निशांत मल्लिक, संगीत कुमार मल्लिक, साहित्य मल्लिक, राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाये हुए हैं।

पखावज वादक के रूप में पंडित रामाशीष पाठक ने उत्कृष्ट ख्याति अर्जित की थी। आज रमेश कुमार मल्लिक, कौशिक मल्लिक आदि अपनी विशिष्ट पहचान पखावज वादन के क्षेत्र में बनाये हुए हैं।

आज भी ध्रुपद गायन शैली को दरभंगा घराने के कलाकार पीढ़ी-दर-पीढ़ी से संयोकर इसे संरक्षित किये हुए हैं। साथ ही, अपनी गायकी का परचम अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लहरा रहे हैं।

संदर्भः-

1. Jha, Chandeshwar, Mithila Tradition & Change, Mithila Ke Dhrupad Gharana Amta (Darbhanga), P, 251, Editor Prof. (Dr.) Sureshwar Jha, Tarakant Jha felicitation Committee, Darbhanga, Bihar, 2008
2. झा, चण्डेश्वर, ध्रुपद शिरोमणि रामचतुर मल्लिक, संगीत शोध संस्थान ध्रुपद केन्द्र, दरभंगा (बिहार), 1997, पृ0- 16
3. सिंह, श्री गजेन्द्र नारायण, (सचिव, संगीतकला अकादमी बिहार, पटना), साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 21.11.1976, पृ. सं. 32,
4. झा, चण्डेश्वर, ''मिथिलाक लोकगीतक संगीत शास्त्रीय अध्ययन'' अप्रकाशित शोध-प्रबंधः 1978, पृ0- 238
5. Jha, Chandeshwar, Mithila Tradition & Change, p. 252
6. झा, चण्डेश्वर मिथिला लोकगीतक संगीत शास्त्रीय अध्ययन, (अप्रकाशित शोध प्रबंध), पृ.- 241
7. Jha, Chandeshwar, Mithila Tradition & Change, p. 258
8. वही, च. 253

ठुमरी शैली का उद्भव एवं विकास

दीपक सिंह
शोधार्थी
संगीत एवं ललित कला संकाय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मेघना कुमार
सहायक आचार्य
गायन विभाग,
संगीत एवं मंच कला संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

शोध सारः-

ठुमरी गायन शैली भाव प्रधान शैली है। इस शैली ने ना केवल गायन बल्कि वादन तथा नृत्य में भी अपनी उपस्थिति की अनुभूति करायी है। रागदारी संगीत के कलाकार वो चाहे गायक हों अथवा वादक अपनी प्रस्तुति में ठुमरी को शामिल करते ही हैं। यहाँ तक की नृत्यकार भी ठुमरी को सहजता से अपनाते हैं तथा अपनी प्रस्तुति में शामिल करते हैं। इस शोधपत्र में ठुमरी की विकास यात्रा के विषय में चर्चा की जाएगी।

इस शोध कार्य को करने में पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से तथ्य सामग्री प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र किसी भी पत्रिका अथवा पुस्तक में पूर्ण अथवा आंशिक रूप से न तो प्रकाशित किया गया है और ना ही कहीं प्रकाशन के लिए भेजा गया है।

सूचक शब्द

मनमोहक, श्रृंगारिक, कलाकार, रचना, प्रोत्साहित

विषय प्रवेश :-

भारतीय संगीत में गायन की अनेक विधाएं प्रचलित एवं लोकप्रिय हैं। ये विभिन्न गायन विधाएं अत्यंत सरस तथा मनमोहक हैं। ये सभी शैलियाँ सर्वथा एक दुसरे से भिन्न हैं। सब का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। इन सभी गायन विधाओं चाहे वो ख्याल हो, ध्रुपद हो अथवा सुगम या लोक संगीत की कोई विधा हो, इन सभी की प्रस्तुतियों का वातावरण अलग अलग होता है। इन सभी शैलियों में उपशास्त्रीय संगीत की एक शैली है ठुमरी, यह इतनी मनमोहक है कि रागदारी संगीत के कलाकार भी इस ओर बरबस ही आकर्षित हो जाते हैं तथा ठुमरी को अपने प्रस्तुति का हिस्सा बनाते हैं।

उत्तर भारतीय संगीत को चार वर्गों में वर्गीकृत किया गया है। (1) शास्त्रीय संगीत, (2) उपशास्त्रीय संगीत, (3) सुगम संगीत, (4) लोक संगीत। इन चारों ही वर्गों में आने वाली विधाएँ अत्यंत लालित्यपूर्ण तथा अनुपम हैं। इस शोध पत्र में उपशास्त्रीय संगीत के अंतर्गत आने वाली अत्यंत लोक प्रिय विधा ठुमरी की चर्चा की जाएगी। नायिका के अंतर्मन में उपस्थित होने वाले अलग अलग भावों का स्वर विलास के मध्याम से चित्राण का नाम ही ठुमरी है। भारतीय संगीत में ठुमरी को बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। संगीत के आवश्यक अंग 'भाव', ठुमरी गायन शैली की विशेषता है। 'ठुमरी' शब्द का शाब्दिक अर्थ श्रृंगारिक चाल से

है। 'ठुमरी का विषय नायिका के अंतर की असंख्य भाव-लहरियों का चित्रण है।'[1] 'प्रसिद्ध ठुमरी गायक स्व. गिरिजा शंकर जी का मत है कि ठुमकते चलना, रिझा के चलना इन दो शब्दों के मिलन से ठुमरी शब्द व्यक्त होता है।'[2] ठुमरी गायन की विशेषताएं इस प्रकार हैं - 'इस श्रृंगारिक विधा में स्वरों का भावानुकूल, वैचित्र्यमय प्रयोग होता है।, स्वर और शब्द दोनों का परस्पर पूरक प्रयोग होता है। यह लय में श्रेष्ठ तथा स्त्रियोचित गायकी मानी जाती है।, इसके राग नियमों में कठिनबद्धता नहीं होती अर्थात् आविर्भाव- तिरोभाव का खुला प्रयोग किया जाता है। भाव एवं माधुर्य प्रकट करने हेतु ध्वनी का उतार-चढ़ाव भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है।, विशेष कर ठुमरी गायन हेतु भैरवी, तिलक कामोद, काफी, देश, खमाज, पहाड़ी, पीलू आदि रागों का प्रयोग होता है।, इसमें दीपचंदी तथा अद्धा ताल का बहुलता से प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।, स्वर सौन्दर्य हेतु ठुमरी गायन में कण, मीड़, मुर्की, खटका आदि अलंकरणों का प्रयोग किया जाता है।'[3]

ठुमरी गायन शैली को न केवल गायक कलाकारों ने बल्कि वादक कलाकारों तथा नृत्यकारों ने भी सम्मान के साथ अपनाया है। सुप्रसिद्ध सितारवादक पंडित रविशंकर, उ. विलायत खां, उ. अली अकबार खां, उ. अब्दुल हलिम जाफर, पंडित निखिल बनर्जी, उ. रईस खां, उ. अमजद अली खां, डा. एन. राजम आदि ने ठुमरी की धुन अपने वाद्य पर सभाओं में प्रस्तुत किया। इसी प्रकार ठुमरी को नृत्यकारों ने भी अपनी प्रस्तुती का अंग बनाया। ठुमरी तथा कथक का विकास लगभग एक साथ हुआ। इन दोनों विधाओं की प्रगति तथा इसे लोकप्रिय बनाने में पंडित बिंदादीन महराज की प्रमुख भूमिका थी। यही परम्परा उनके बाद पंडित अच्छन महराज, पंडित लच्छु महराज, पंडित शम्भू महराज तथा पंडित बिरजू महराज के साथ चली आ रही है।

ठुमरी गायन की मुख्यतः दो शैलियाँ हैं पुरब अंग तथा पंजाब अंग। इसके अतिरिक्त बोलबाँट की ठुमरी, बोल बनाव की ठुमरी भी प्रचार में है। वर्तमान समय में लगभग सभी संगीत सम्मेलनों में कलाकार अपने गायन, वादन अथवा नृत्य की प्रस्तुती में ठुमरी को शामिल करते ही हैं।

ठुमरी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक मत हैं। इस शैली के उद्भव के स्थान एवं समय तथा उद्भवकर्ता के नाम को ले कर विद्वान एक मत नहीं हैं। अलग-अलग ग्रंथों में विद्वानों ने अलग-अलग मत प्रस्तुत किये हैं। इस सम्बन्ध में कुछ विद्वत् कथन इस प्रकार हैं - 'ख्याल गायन में राग की विशुद्धता की रक्षा कर गायन किया जाता है। उसी दौरान कभी-कभी ख्याल गायक कवित्व शक्ति और सौन्दर्य बोध के प्ररोचना से ख्याल के विस्तार में विविध प्रकार के संतुलित स्वर संयोग एवं अलंकार व्यवहार करना आरम्भ करते हैं। अनुमान किया जाता है कि इस प्रकार राग और रीति भ्रष्ट ख्याल से ही ठुमरी पद्धति की श्रृष्टि हुई।'[4] 'भरत मत की राग रागिनी से 'श्री' राग की प्रमुख रागिनी को ठुमरी कहा गया है।'[5] 'लोकगीतों से ठुमरी का उद्भव हुआ।'[6] 'संगीत सार नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि ठुमरी की उत्पत्ति 'शोरी मियां' से हुई है। यह नहीं कहा जा सकता कि यह बात किस सीमा तक विश्वसनीय है तथापि यह बात निश्चित है कि हिन्दुस्तान में ठुमरी नामक एक प्रकार का गाना प्रचलित है तथा यह भिन्न-भिन्न रागों में गाया जाता है।'[7] 'फकीरुल्लाह (17 वीं.) लिखित ग्रन्थ 'रागदर्पण' (मान कौतुहाल का फारसी अनुवाद) में ठुमरी सम्बन्धी वर्णन सबसे पुराना माना जाता है। इसमें बखा और ठुमरी को एक ही बताते हुए एक लोक प्रचलित धुन बताया गया है। वर्तमान काल में बखा नाम का एक राग है। बखा, राग काफी से मिलता-जुलता राग है। बखा राग की विषय वस्तु में होली के समय गाये जाने वाले गीत होते हैं। इस बात से हम यह अनुमान कर सकते हैं कि 17वीं. शताब्दी में गाई जाने वाली ठुमरी धुन का स्वरूप बखा राग या काफी राग में गाई जाने वाली होली की धुन से काफी मिलता जुलता रहा होगा।'[8] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 18 वीं शताब्दी (कुछ विद्वान् ठुमरी की श्रृष्टि का समय 19वीं शताब्दी को मानते हैं।) में अपने विधिवत् प्रचार से पूर्व ही ठुमरी

का उदय चुका था, किन्तु 19वीं शताब्दी में इसका विकास हुआ। 19वीं शताब्दी में राजा-महाराजाओं, नवाबों तथा जमीदारों ने ठुमरी के प्रति विशेष रूचि दिखाई। अनेक राजाओं तथा नवाबों ने ना केवल ठुमरी में रूचि दिखाई तथा प्रोत्साहित किया, बल्कि अपनी रचनाओं में ठुमरी को स्थान भी दिया। जोड़पुर के महाराजा मानसिंह (सन् 1803 से सन् 1943) ने 'रसराज' उपनाम से कुछ ठुमरियों की रचना की।

'राग कलिंगडो ठुमरी, आडो तिताल

अस्ताईः- अलबेले चंपा चीर में।
बिजली-सी चमके पियरी जीरो।।
पियरी घटा की भीर में।'9

इसी प्रकार किशनगढ़ के महाराजा जवान सिंह की ठुमरियां 'ब्रजराज' उपनाम से मिलती हैं। लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह के समय में ठुमरी खूब फली-फुली। स्वयं नवाब वाजिद अली शाह ने 'अख्तर पीया' के नाम से ठुमरियों की रचना की।

उन्नीसवीं सदी में लखनऊ में लोगों का झुकाव ठुमरी की ओर होने का एक कारण वहां के नवाबों का स्वभाव आमोद प्रमोद प्रिय होना भी हो सकता है। नवाब वाजिद अली शाह की कोई भी सभा ठुमरी तथा कथक नृत्य के बिना असम्भाव थी। उस समय ठुमरी का ऐसा परिवेश बना की न केवल संगीतज्ञ बल्कि नवाब और उनकी बेगमें तथा दरबारी सामंतों ने भी ठुमरी में विशेष रूचि ली तथा ठुमरी सीखना, गाना तथा ठुमरियों की रचना करना प्रारम्भ किया।

इसी काल में ठुमरी गायन शैली में भैया गणपतराव सिंधिया का उदय हुआ। भैया गणपतराव जी ग्वालियर के महाराजा जियाजीराव सिंधिया के द्वितीय सुपुत्र थे। ठुमरी गायन तथा हार्मोनियम वादन में भैया गणपतराव जी की दक्षता थी। भैया गणपतराव जी ने 'सुघर पीया' नाम से अनेक ठुमरियों की रचना की। भैया गणपतराव जी की प्रसिद्धि पुरे भारत में हुई किन्तु बनारस, कोलकाता, गया, पटना, लखनऊ आदि क्षेत्रों में उनका आना-जाना ज्यादा रहा था। भैया गणपतराव जी के अनेक शिष्यों ने प्रसिद्धि पाई है, जिनमें कुछ प्रमुख नाम हैं- मौजुद्दीन खां, गिरिजाशंकर चक्रवर्ती, गौहार जान, जद्दन बाई, मलिका जान, जोहरा जान, इत्यादि। ठाकुर जयदेव सिंह के अनुसार भैया गणपतराव उनसे कहा करते थे "ठुमरी के जिन भावों को एक नृत्यकार अपने चेहरे के हावभाव तथा हाथ की मुद्राओं से अदा करता है, उन्हें हम गले से गा कर लोगों के सामने प्रस्तुत करते हैं।"[10]

बनारस के पुराने लोगों का ऐसा मत है कि उस समय ठुमरी ज्यादातर मध्यलय में ही गाई जाती थी। इसी समय पंडित जगदीश मिश्र जी ने ठुमरी को विलंबित में गा कर एक नवीनता प्रदान की। यह नवीन शैली लोगों को बहुत पसंद आई। पंडित जगदीश मिश्र जी से सीखने के पश्चात् मौजुद्दीन खां का विलंबित ठुमरी के प्रचार में अहम योगदान रहा है। भैरवी की प्रसिद्ध ठुमरी 'बाजूबंद खुल खुल जाए' मौजुद्दीन खां जी की ही गाई हुई है। बनारस में भी ठुमरी अत्यंत लोकप्रिय हुई। यहाँ की ठुमरी में एक अलग तरह की शैली दिखती है। अतः इस शैली की ठुमरी को बनारसी की ठुमरी के नाम से प्रसिद्धि मिली। इस क्षेत्र में ठुमरी की रचना तथा गायन में यहाँ की भाषाओं तथा बोलियों का प्रभाव पड़ा परिणाम स्वरूप पूरब अंग की ठुमरी में दो धाराएं प्रवाहमान हुई, प्रथम 'लखनवी' तथा द्वितीय 'बनारसी'। धीरे-धीरे लखनवी ठुमरी की अपेक्षा बनारसी ठुमरी की प्रसिद्धि अधिक हुई। वर्तमान समय में पूरब अंग की ठुमरी का अभिप्राय सामान्यतः बनारसी ठुमरी हो गया है। बनारस सुप्रसिद्ध तीर्थ स्थान के साथ-साथ भारत की सांस्कृतिक राजधानी के रूप में भी प्रतिष्ठित है। लम्बे समय से यह संगीत के तथा संस्कृति के लिए तीर्थ रहा है। पंडित जगदीश मिश्र, पंडित बड़े रामदास जी, राम जी, श्री महादेव मिश्र जी, इलाहाबाद के पंडित भोलानाथ भट्ट जी तथा गायिकाओं में विद्याधरी देवी, हुस्ना बाई, राजेश्वरी देवी, टामीदेवी, चंद्रा बाई, भागीरथी, इलाहाबाद की जानकी देवी, छप्पन धुरी आदि अनेक सितारे बनारस से जुड़े थे। बनारस की ठुमरी गायिकाओं में बड़ी मोतीबाई, श्रीमती रसूलन

बाई, श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी आदि का नाम अत्यंत प्रतिष्ठित है।

बोलबाँट की ठुमरी के लेखन तथा गायन में लखनऊ के वजीर मिर्जाबाला 'कदर पिया', बेगम आलमआरा 'आलम', महाराज बिंदादीन 'बिंदा', बरेली के तवक्कुल हुसैन 'सनद पीया', मथुरा के काले खान 'सरस पिया', ग्वालियार के नजर अली 'नजर पिया' तथा दिल्ली के श्री लाल गोस्वामी 'कुँवर श्याम' आदि की भूमिका प्रसंशनीय रही। दिल्ली के श्री लाल गोस्वामी 'कुँवर श्याम' जी ने भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन अपनी ठुमरी में किया है। एक प्रसिद्ध ठुमरी 'बाट चलत नई चुनरी रंग डारी' इन्हीं की तैयार की हुई है। स्वर्गीय राजा भैया पूंछवाले ने 'ठुमरी तरंगिनी' के नाम ठुमरी की एक ग्रन्थ की रचना की।

ठुमरी की दूसरी धारा जिसे पंजाब अंग की ठुमरी कहते हैं। इसके प्रचार में उ. बड़े गुलाम अली खां तथा उनके छोटे भाई उ. बरकत अली खां ने अग्रणीय भूमिका अदा की है। सन् 1940 की आस पास उ. बड़े गुलाम अली खां तथा उनके छोटे भाई उ. बरकत अली खां ने संगीत जगत में ठुमरी को एक अलग ढंग से प्रस्तुत किया। ठुमरी गायन की इस शैली में भाव पूर्ण छोटी-छोटी तानों की लड़ियों का मनमोहाक गुथाव होता है। पूरब अंग की ठुमरी पर पंजाब की लोक शैलियों जैसे महिया, हीर आदि की छाप पड़ी तो इस नूतन शैली का प्रादुर्भाव हुआ। उ. बड़े गुलाम अली खां तथा उनके छोटे भाई उ. बरकत अली खां ने पूरब अंग की ठुमरी के बोल बनाव तथा भाव को कायम रखते हुए विशिष्ट कोमल तथा शुद्ध स्वरों के लगाव तथा छोटी-छोटी मुरकियों से सजा कर इस नवीन शैली को प्रस्तुत किया। पंजाब अंग की ठुमरी का आकर्षण बोल-बनाव तथा स्वरों को अलग-अलग तरीके से प्रयोग में लाने से है। इस शैली में सुरों के लगाव में एक विशेष प्रकार की तड़प है, जो श्रोताओं को बेसुध कर देती है। इस शैली के गायकों में प्रमुख नाम हैं पाकिस्तानी गायक जोड़ी उ. सलामत अली खां तथा उ. नजाकात अली खां, पटियाला के उ. अब्दुल रहमान खां, श्रीमती निर्मला देवी, श्रीमती लक्ष्मी शंकर जी आदि। बेगाम अख्तर को पूरब तथा पंजाब अंग की गायकी का मिश्रण माना जाता है। आधुनिक काल में ठुमरी के सुप्रसिद्ध गायिकाओं में श्रीमती शोभा गुर्टू तथा पूरब अंग की ठुमरी में श्रीमती गिरिजा देवी जी को अत्यंत आदरणीय स्थान प्राप्त है।

ठुमरी के काव्य में श्रृंगार रस की सुंदर अभिव्यंजना होती है। 'विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से 'रति' स्थाई भाव ही श्रृंगार रस में परिणित होती है।'11 श्रृंगार रस के दो भेद हैं - 1. संयोग श्रृंगार, 2. वियोग श्रृंगार

नायक और नायिका का मिलन तथा प्रणय आदि संयोग श्रृंगार है तथा नायक का वियोग, उससे मिलने के लिए मन की अकुलाहट वियोग श्रृंगार है। ठुमरी के काव्य में संयोग तथा वियोग दोनों का वर्णन मिलता है। श्री कृष्ण और राधा तथा गोपियों के प्रेम, सम्बन्ध, में मिलन का वर्णन मिलता है तो वहीं भगवान श्रीकृष्ण की याद में गोपियों की पीड़ा का भी वर्णन मिलता है। कुछ ठुमरियों की विषय वस्तु भक्तिमार्गी संतों के ईश्वर के प्रति भक्ति का दर्शन कराती हुई मिलती हैं। 'कुछ ठुमरियों की विषय वस्तु ऐसी होती है जिसके दो अर्थ निकलते हैं, जैसे 'अख्तर पीया' की एक प्रसिद्ध ठुमरी है -

बाबुल मोरा नैहर छुटोहि जाय।
चार कहार मिल डोलिया उठावें
अपना बेगाना छूटोहि जाए

दोहा- *आँगन तो परबत भयो देहरी भई बिदेस।*
जा बाबुल घर आपने में चली पीया के देस।

इसका एक अर्थ है कि कन्या अपने पिता का घर छोड़ कर पति के घर जा रही है। चार कहार डोली उठा कर उसे पति के घर ले जा रहे हैं। वहीं दुसरा अर्थ निकलता है कि मनुष्य के मरणोपरांत उसकी आत्मा यह संसार छोड़ कर जाती है। चार व्यक्तियों के कंधे पर उसका पार्थिव शरीर श्मशान घाट की यात्रा पर रवाना होता है। इसमें आत्मा

परमात्मा के मिलन की अभिव्यक्ति की गई है।12

ठुमरी गायन में जब उपज करते हैं तब उसके काव्य के साथ हाय, हायराम, अरे, अरी, हाँरे आदि शब्द जोड़ते हैं, जिससे भाव पक्ष और मजबूत होता है। ठुमरी में राग के नियमों के पालन का बहुत महत्व नहीं रहता, किन्तु अलग-अलग स्वर पुंजों के साथ उसके भाव को निखारने की कोशिश होती है। ठुमरी गायन शैली चपलता पूर्ण है। अतः यह गंभीर रागों में नहीं गाई जा सकती। ठुमरी के लिए चंचल प्रकृति के रागों का चुनाव किया जाता है जैसे - भैरवी, खमाज, काफी, देस, पीलू, तिलंग, सिंदुरा और झिंझोटी इत्यादि।

ठुमरी ने चित्रपट संगीत को भी प्रभावित किया है। अनेक प्राचीन तथा नवीन ठुमरियां चित्रपट में समाहित हो रही हैं। 'बाबुल मोरा नैहर छुटो ही जाय' लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह के द्वारा रचित राग भैरवी में निबद्ध यह ठुमरी चित्रपट में अनेक बार उपयोग में लायी गई है। स्व. अब्दुल करीम खां की प्रसिद्ध ठुमरी 'पीया बिना नहीं आवत चैन' को फिल्म देवदास में कुंदनलाल सहगल ने गाया है। इसी प्रकार और भी अनेक उदाहरण उपस्थित हैं।

अतः हम कह सकते हैं की ठुमरी ने अपने लालित्य पूर्ण शैली से सभी को प्रभावित किया है चाहे वह रागदारी संगीत के कलाकार हों, वाद्य अथवा नृत्य कलाकार हों या चित्रपट संगीत।

निष्कर्ष :-

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं की ठुमरी गायन की लोकप्रियता ने उसे नित नवीनता की ओर अग्रसारित किया है। यह गायन शैली न केवल गायन अपितु वाद्य तथा नृत्य में भी अपनाई गई। इस शैली का भाव प्रधान होना इसे नृत्य के अत्यंत करीब ले जाती है। वर्तमान समय में ठुमरी की लोकप्रियता इतनी है कि ख्याल गायक अपने गायन में ठुमरी को शामिल करते हैं। ख्याल गायन में रागों के नियमों का सख्ती से पालन किया जाता है तथा ठुमरी में भावानुकूल राग के नियम में शिथिलता की जाती है तथापि रागदारी संगीत के कलाकार इस शैली को अपना रहे हैं।

पाद टिप्पड़ी :-

1. बृहस्पति आचार्य , संगीत चिंता मणि, संगीत कार्यालय हाथरस, 1976 पृ.सं. 103
2. पोहनकर अंजली, सफर ठुमरी गायकी का, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली 2009 पृ.सं. 2
3. सहगल डॉ. सुधा एवं डॉ. मुक्ता, बेगम अख्तर व उपशास्त्रीय संगीत, राधा पब्लिकेशन्स नईदिल्ली, 2007 पृ.सं.-4
4. चौधरी विमलकांत राय, भारतीय संगीत कोश, वाणी प्रकाश पब्लिशर्स, 2010 पृ.सं.- 64
5. प्रवीन डॉ. योगेश, आपका लखनऊ, भारत बुक सेंटर, 2013 पृ.सं. 99
6. शुक्ला शत्रुघ्न, ठुमरी, उत्पत्ति,विकाश एवं शैली, हिंदी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय, नई दिल्ली 1991 पृ.सं. 62
7. भातखंडे पंडित विष्णु नारायण, भातखंडे संगीत शास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति) भाग-1, संगीत कार्यालय हाथरस, 1975 पृ.सं.-74
8. पोहनकर अंजली, सफर ठुमरी गायकी का, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली 2009 पृ. सं. 3
9. शुक्ला शत्रुघ्न, ठुमरी, उत्पत्ति,विकाश एवं शैली, हिंदी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय, नई दिल्ली 1991 पृ.सं. 208
10. पोहनकर अंजली, सफर ठुमरी गायकी का, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली 2009 पृ. सं. 11
11. दीक्षित डॉ. प्रदीप कुमार, स'रस' संगीत, किशोर विद्या निकेतन, वाराणसी, 2016 पृ. सं.- 57
12. पोहनकर अंजली, सफर ठुमरी गायकी का, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली 2009 पृ. सं. 34

Compositions of Ustad Amir Hussain Khan

Nikhil Bhagat

Assistant Professor (Tabla),
Department of Music & Dramatics
Shivaju University, Kolhapur

Abstract

*Tabla being a most popular percussion instrument of the time is very rich in its repertoire. All the six **Gharanas** in Tabla have a rich tradition of enriched compositions by extremely talented composers of respective **Gharanas**. The tradition of good performers, teachers and composers is the peculiarity of Farukhabad **Gharana**. Many great composers like founder member Haji Vilayat Ali, Miya Shalari, Chudiyavale Imam Bakhsh, Munir Khan Sahab are distinct composers of this **Gharana. Khalifa** Ustad Amir Hussain Khan is considered one of the greatest composers of this Gharana. His variety of compositions not only enriched the stock of Farukhabad but also gave Farukhabad a new peculiarity. Compositions of Amir Hussain Khan Sahab is widely popular among all the **Gharanas** of Tabla and many Tabla players irrespective of their **Gharana** try to play compositions of Khan Sahab with high respect to the Ustad. This paper aims to discuss his various compositions in extendable and non- extendable forms.*

Key words

Tabla, Composition, Music, Nikas & Farukhabad

Introduction

The most popular percussion instrument in the world 'Tabla' needs no introduction. Its capacity to accompany form of Music and solo playing style made this instrument a complete instrument in itself. Tabla maestros like Ustad Ahmed Jan Thirakwa, Pandit Gudai Maharaj, Pandit Kishan Maharaj, Allarakha *Sahab* and of course Ustad zakir Hussain took this instrument to a greatier hieght. There are many unsung heroes who have contributed a lot for this instrument which includes many soloists, accompanists and composers of different *Gharanas* in Tabla. Delhi, Lucknow, Ajrada, Farukhabad, Banaras and Punjab Gharans respectively have a great tradition of fine Tabla players, Gurus, Composers etc.

The Farukhabad *Gharana* of Tabla is well-known for its peculiarity that most of the member Tabla players of this *Gharana* are excellent artists and also composers of very high merit. The founder of this *Gharana* Ustad Haji Vilayat Ali was a great player, Teacher and compos-

er of that era. Some great composers of this *Gharana* include Ustad Salari Khan, Chudiyavale Imam Baksh, Ustad Munir Khan and Ustad Amir Hussain Khan.

Objective of research

1. To study the various forms of compositions composed by Ustad Amir Hussain Khan Sahab.
2. To study the *Laya-Taal* aspect and the poetic aspect in the compositions
3. To acknowledge his contribution as a composer in Farukhabad *Gharana*.

Hypothesis

Ustad Amir Hussain Khan Sahab's contribution in Farukhabad Tabla is highly exceptional. His compositions significantly contributed in traditional Tabla playing of Farukhabad and glorified the school.

Research methodology

As the proposed research work deals with the compositions of Ustad Amir Hussain Khan, the relevant to this topic was collected from the books, journal and personal collection such as audio recordings and some online links from the internet. The research work of Pt. Arvind Mulgaonkar and Dr. Aban Mistry was the major source from where data was collected.

Farukhabad Gharana

Delhi, Lucknow, Ajrada, Farukhabad, Banaras and Punjab are the six Gharanas of Tabla. Out of which Delhi and Ajrada follow *Band Baaz* and remaining other four gharanas follow *Khula Baaz*. Farukhabad is one of the most popular Gharanas in Tabla tradition which has characteristics of both *Band Baaz* and *Khula Baaz* hence it is unique in *Nikas* techniques. Ustad Ahmadjan Thirakwa Khan Sahab considered this Gharana as an ideal Gharana of Tabla. One peculiar characteristic of this Gharana is the Tabla players of this Gharana were excellent Tabla performers, Composers and Teachers. Some of the great stalwarts of this school include founder of Farukhabad Gharana Ustad Haji Vilayat Ali, Ustad Miyan Shalari, Ustad Chudiyawale Imam Bakhsh, Ustad Munir Khan, Ustad Ahmadjan Thirakwa and *Khalifa* Ustad Amir Hussain Khan Sahab.

Ustad Amir Hussain Khan

Amir Hussain khan was desciple of Ustad Munir Khan. Munir Khan who was the '*Khalifa*' of Farukhabad *Gharana* and was the maternal uncle of Amir Hussain Khan. Ustad munir khan was so impressed by Amir Hussain khan's talent in Tabla playing and composing that he declared Amir Hussain Khan as the '*Khalifa*' of Farukhabad *Gharana* of Tabla after him. Besides being a great performer and Guru (Teacher) he was an outstanding composer. The maestro from Ajrada and Amir Hussain khan *Sahab*'s *Guru Bhai* Usatad Habibuddin khan uttered that ''मेरठ ने हिंदोस्तान को बहुत आलाह दर्जे के तबलिये दिये लेकिन अमीर हुसैन जैसा बाजायक, बनायक, बतायक और आदमी अभी तक पैदा नहीं हुआ।'' (Mulgaonkar, Tabla, 1999) Many Tabla players irrespective of their *Gharana* play compositions of Khan *Sahab* in their Tabla solo recitals with his name and gains applause and appreciation from the audiences and learned listeners. The credit of popularizing traditional Tabla solo especially in Maharashtra goes to Ustad Amir Hussain Khan Sahab despite being the *Khalifa* of Farukhabad he never restricted himself of teaching *Khandani*

Tabla to his disciples. A great Performer (*Bajaak*), Great composer (*Banayak*) and a great Teacher (*Batayak*) due to these threefold facets Ustad Amir Hussain Khan Sahab has a distinct existence in the world of Tabla.

Compositions of Ustad Amir Hussain Khan

As mentioned earlier Amir Hussain khan *Sahab* was given the honor of being the next *Khalifa* of Farukhabad *Gharana* by his maternal Uncle Ustad Munir khan. Amir Hussain Khan *Sahab* despite being a nephew of Munir Khan was given this honor of the title *Khalifa* which is only given to the son of Ustad. Munir khan was an exceptional Tabla player, Teacher and composer, his thirst for knowledge of Tabla made him to take *Taalim* form 24 different Gurus in Tabla and made his Tabla prosperous. Amir Hussain Khan not only learnt Tabla of all the *Gharanas* from Munir Khan *Sahab* but his rigorous *Riyaz* and contemplation made Khan *Sahab* an artist and composer of high stature. Khan *Sahab* was extremely talented composer while composing any *Bandish* he used to keep its *Nikas* technique simple and effective; he always looked after its proper *Nikas* should beatify its sonority. He has composed simple and advanced level compositions as per the requirement of the student. (Mulgaonkar, Athavanincha Doha, 2006)

The first composition which Amir Hussain Khan *Sahab* composed when Munir Khan *Sahab* asked to compose is as follows:

Dignanaan Dhintirkitak Takitdhikit-Dhit-tagadigana |

×

Dha-dhin-ta-Kitdha-dhin-ta Ghin-tar-an Dha-kittak |

2

Takit-takit tak-tak-tin-gin tak-tin-kin tage-tit-katan |

O

Dhir-dhir-kit-tak-tak Dhir-Dhir-kit-tak-Dhir-Dhir-kit-tak

3

Dhir-Dhir-kit-tak-Dhintak Tage-tir-ki-tak-tage-tit-katan |

This composition is a *Mishra Jati Gat* in Teentaal which is unique in its own. As this was his very first sort of Bandish which was composed on demand of Ustad Munir Khan *Sahab* reflects the profound knowledge and capacity of Ustad Amir Hussain Khan as a composer. There are hundreds compositions of Kada, Rela, *Gats*, *Gat*-tukda and Chakradars composed by him.

One of the main characteristics of Farukhabad *Gharana* which has given this *Gharana* a peculiar identity is the various forms of *Gats* composed by many composers of this *Gharana*. Here is one of the creative *Gats* of Amir Hussain Khan known as "*Chand Gat*".

कविता (Poem):

खलित कमल खलि जात कमल
खलि गये कमल कुछ खलितना खलि गये
झड़त पत्त झड़ जात पत्त
झड़ गये पत्त कुछ झड़तना झड़ गये
उड़त भंवर उड़ जात भंवर
उड़ गये भंवर कुछ उड़तना उड़ गये

Based on the above poem (*Kavita*) Khan *Sahab* composed a *Chand Gat* as follows:

Tir-kit-tak-taa-Na-dhit dhit-kata-na-dhage |

×

Tita-kda-dha-na-dhag dignanan-dhage **|**
2
Dhirdhirkdadha-nadhage dhirdhir-kit-tak tirtir-kittak **|**
O
dhirdhir-kittak tirtir-kittak dhirdhir-kit-tak tirtir-kittak **|**
3

Khan *Sahab* always played this *Chand Gat* in his recital firstly by reciting the above mentioned Hindi poem aesthetically. This *Gat* is often played by Pandit Nayan Ghosh & Pandit Vibhav Nageshkar in an artistic style. Another form of *Gat* composed by Khan *Sahab* is '*Sab akal tehai Gat*'

Sab akal Tehai Gat: (Received from Shri Amod Dandge, a senior disciple of Pt. Arvind Mulgaonkar)

s dhagena-kat ghina-kat-ghin-tina
s dha-kittak-din ta-kittak-dhirdhirdhir-kat
s ta-tirkittak-tirkit ta-tirkitak-tage-titka-tan
s dhatir-kitak-tirkit tatirkittak-tage-tit-kdaan
s dhatirkittak-tirkit dha-ghen-tadha
s dhatirkittak-tirkit dha-ghen-tadha
s dhatirkittak-tirkit dha-ghen-tadha

This *Gat* is a chatustra Jati *Gat* and starts with an offbeat at regular interval. *Sab Akal* means everything is offbeat and this *Gat* is ending with a *tehai* which makes this as a rare composition.

'*Chaudhari Gat*' in which a word or a phrase is repeated four times is a form of *Gat*, similarly *Dudhari, Tidhari Gats* are also the forms of *Gat*. An example of *Chaudhari Gat* composed by Khan *Sahab* is one of the difficult compositions to play with pure *Nikas* technique.

Chaudhaari Gat : (Teentaal)

takit-dhikit takit-dhikit takit-dhikit takit-dhikit **|**
×
dhin-dhin-dhin dhin-dhin-dhin
dhin-dhin-dhin dhin-dhin-dhin **|**
2
nagan-digan nagan-digan
nagan-digan nagan-digan **|**
O
tak-dhin-tirkittak tak-dhin-tirkittak
tak-dhin-tirkittak tak-dhin-tirkittak **|**
3

Normally *Gats* are played at double speed but this *Gat* is played in single and double speed. Also *khali-bhari* of this *Gat* is played. Khan *Sahab* composed number of compositions of *Mishra Jati Gat, Genduchaal Gat*, *Ateet Gat* etc. also there are compositions of *Gat-tukda* and *Chakkradar* which are covered under the category of fixed compositions or non-extendable compositions. Unlike other composers of Farukhabad, Khan *Sahab* composed many extendable compositions of Kayda, Rela of different *Baaz* and *Gharana*. As Farukhabad is well-known for its richness in its *Gats, Relas* and *Chalan-Raun*, we rarely find compositions of *Kaydas* in this *Gharana* but there are number of such Kayda compositions by Ustad Amir Hussain Khan *Sahab* enriched the stock of this *Gharana*. Here are some examples of Kayda composed by Khan *Sahab*.

***Kayda*: (Teentaal / Ektaal)**

dha-tir-kit tak-tir-kit dha-ti-ga di-ga-na **|**
×
dh-ti-gi na-dha-ti dha-ti-ga ti-ki-na **|**
2
ta-tir-kit tak-tir-kit ta-ti-ka ti-ki-na **|**
O
dh-ti-gi na-dha-ti dha-ti-ga di-ga-na **|**
3

This kayda by Khan *Sahab* is a perfect example of Farukhabad style of Tabla

as its *Nikas* justifies the balance between *Kinar* and *Sur,* thus this composition becomes a typical *Farukhabadi Kayda.* Being a *Tistra jati Kayda,* it can be also played in Ektaal by converting it to *Chatustra Jati.*

Kayda: (*Teentaal / Adachautaal / Rupak*)

dhagena dhit-dhit dhagena dhage-tina |
×
dhagena dhit-dhit dhagena tina-kina |
2
takena tita-tita takena take-tina |
O
dhagena dhit-dhit dhagena dhina-gina |
3

The composition of this *Kayda* is in *Mishra Jati*, which can be played in three different *Taal.* This *Kayda* is also known as '*Chachar Ang Kayda*' though it's a *Mishra Jati* Kayda it is easy to play in Teentaal based on *Mishra Jati Chand*. It is difficult to play single speed of this kayda and usually this type of *Kaydas* are played in double speed without playing its single speed. Several compositions of such *Kaydas* is done by Khan *Sahab* which gives Farukhabad a special charecteristic. Similarly many compositions of *Mishra Jati Relas* are also composed by Khan *Sahab*. Especially compositions of *Kaydas* based on Delhi and Ajrada style are unique in in *Nikas*, Language etc. aspects. Apart from Teentaal Khan *Sahab* also composed many compositions in various *Taals* which include compositions in 13, 11, 9.5 and 9 *Matra Taals*.

Conclusion

The main contribution of *Khalifa* Ustad Amir Hussain Khan *Sahab* is his inimitable compositions to the treasure of Farukhabad *Gharana* and enriched the repertoire. He also taught these compositions to his disciples and effectively presented those in his performances. Khan *Sahab* never compromised on the *Nikas* of the compositions, he was strict and rigid about the *Nikas* of the compositions. He always followed the same *Nikas* technique which was followed by Ustad Munir Khan *Sahab*. He was highly influenced by some stalwart Tabla players of that time, especially Natthu Khan *Sahab* of Delhi *Gharana*. His compositions of two finger '*Dhir-Dhir*'of *Kaydas* and *Relas* are popular. Numerous compositions in extendable and non-extendable form like *Kayda, Rela, Gat-Tukda, Gat, farmaishai*, *Kamali Chakkradhar* and *Nauhakka* etc. is highly appreciated by generations of Tabla players. The qualities such as rational thinking and adaptability made Khan *Sahab* a prodigious composer and great human being.

Bibliography:

Bandish. (n.d.). Retrieved December 09, 2020, from http://www.bandish.org/tribute.htm

Dandge, A. (2011). *Complete Tabla.* Kolhapur: Bhairav Publication.

Kippen, J. (2005). *Tabla of Lucknow.* New Delhi: Manohar Publishers.

Mainkar, S. (2000). *Tabla Vadan Kala Aur Shastra.* Mumbai: Gandharva Mahavidyalaya Prakashan.

Mishra, V. (2005). *Tabla Puran.* New Delhi: Kanishka Publishers.

Mistry, A. (2000). *Tabla aur Pakhavaj ke Gharane Aur Paramparaye.* Mumbai: Swar Sadhana Samiti.

Mulgaonkar, A. (2006). *Athavanincha Doha.* Mumbai: Popular Prakashan.

Mulgaonkar, A. (1975). *Tabla.* Mumbai: Popular Prakashan.

You tube. (2020, December 10). Retrieved from https://www.youtube.com/watch?v=eEpGOEYqaUk

ग्वालियर घराने के स्तम्भ एवं महान संगीतज्ञ स्व. हस्सू खाँ एवं हद्दू खाँ का सांगीतिक योगदान

अर्चना कुमारी

शोध छात्र, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सारांशिका :-

ग्वालियर घराने की पौराणिक भूमि पर सदैव ही नादध्वनि गूंजती रही है। घरानों में ग्वालियर घराना ख़्याल गायन के लिए सर्वश्रेष्ठ माना गया। इस घराने के अद्वितीय संगीताचार्यों ने अपनी अनोखी प्रतिभा से संगीत को जीवित एवं सुरक्षित रखा तथा समृद्ध बनाया। ग्वालियर घराने के अद्वितीय संगीताचार्यों में से स्व. हस्सू खाँ एवं हद्दू खाँ एक स्तम्भ के रूप में प्रतिष्ठित है। जो कि बहुत ही सुप्रसिद्ध गायक एवं ख़्याल गायकी के प्रणेता माने गए। स्व. हस्सू खाँ एवं स्व. हद्दू खाँ से ही ग्वालियर घराने में ख़्याल गायकी का आरम्भ हुआ। इन्होंने ग्वालियर घराने की मजबूत नींव डाली और संगीत में ख़्याल गायन शैली का प्रचार-प्रसार किया। इनके प्रतिष्ठित संगीत और शानदार गायकी को हम वर्तमान ख़्याल गायन के संगीत का महाकाव्य कह सकते हैं। इन्होंने संगीत में ऐसे योगदान दिये जो अमूल्य एवं अविस्मरणीय है। जिसकी परिचर्चा मैं इस शोध पत्र के माध्यम से करूँगी।

शब्द सूचक :-

ग्वालियर, घराना, गायकी, स्व. हस्सू खाँ, स्व. हद्दू खाँ

भूमिका :-

ग्वालियर घराने का प्रारम्भ नत्थन पीर बख्श से ही माना जाता है, परन्तु ख़्याल गायकी की नींव इस घराने में सर्वप्रथम स्व. हस्सू खाँ एवं हद्दू खाँ ने ही रखी तथा भारतीय संगीत को लोकप्रिय बनाकर उसे समृद्ध करने में बहुत ही बहुमूल्य योगदान दिया। स्व. हस्सू खाँ एवं हद्दू खाँ ने ग्वालियर घराने का नाम विशेष रूप से ऊँचा किया। इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता नत्थन खाँ और बाद में चाचा पीरबक्श से ली। तत्कालीन ग्वालियर नरेश 'शिवाजी राव सिंधिया' ने हस्सू खाँ एवं हद्दू खाँ को संगीत की शिक्षा बड़े मुहम्मद खाँ से भी दिलवायी।

ग्वालियर घराने में स्व. हस्सू खाँ एवं हद्दू खाँ का व्यक्तित्व सबसे अधिक प्रभावशाली माना जाता है।

भारतीय संगीत में अद्वितीय योगदान देने वाले ग्वालियर के संगीताचार्यों में से प्रमुख एवं महान संगीतज्ञ स्व. हस्सू खाँ एवं स्स. हद्दू खाँ है, जिनके सांगीतिक कार्यों का विवरण निम्नानुसार है-

महान संगीतज्ञ स्व. हस्सू खाँ का योगदान - ग्वालियर को ख्याल का परिष्कार स्थली, संगीत साधना का केन्द्र एवं शिक्षार्थियों का तीर्थस्थान बनाने में अलौकिक संगीत साधक हस्सू खाँ का प्रमुख हाथ रहा है।

आपकी आवाज बुलन्द गोल एवं अत्यन्त मधुर थी। आपके द्वारा प्रवर्तित नवीन ख़्याल शैली में नत्थन पीरबख्श एवं बड़े मुहम्मद खाँ इन दोनों की गायकी का समावेश होने से आपके गायन में शुद्धता, स्वर-माधुर्य और गाम्भीर्य के अलावा पेंचीदा फिरत की तानें भी आ गई थीं। बन्दिश की कलात्मक बढ़त, स्थायी अन्तरे का एक साथ गायन, मधुर तथा खुली आवाज़ से आलाप, राग की शुद्धता के साथ तीनों सप्तकों में सहज विचरण, प्रवाहयुक्त शक्तिशाली वैविध्यपूर्ण तानें, लय पर असाधारण अधिकार, मींड, गमक और मुर्की का कलात्मक प्रयोग, पारम्परिक स्थायित्व और प्रामाणिकता, रंजकता, हृदयस्पर्शिता, समृद्ध कल्पनाशीलता यह सब हस्सू खाँ के गायन की विशेषताएँ थीं। आपके गायन में एक और विशिष्टता थी और वह थी मुँह बन्द करके तान लेना। आपके गायन की उपर्युक्त विशेषताओं ने ही ग्वालियर घराने की गायकी में चार चाँद लगा दिए थे। यही कारण था कि हस्सू खाँ कि ख्याति देश के चारों कोनों में फैल गई थी और गायकों में उनका विशेष आदर और सम्मान था।

आपने न केवल ग्वालियर घराने की विशिष्ट ख्याल शैली का ही निर्माण किया वरन् अपने गायन की उपर्युक्त विशेषताओं से भारतीय संगीत का प्रचार एवं प्रसार कर उसे समृद्ध भी बनाया है। अतः यह स्पष्ट है कि भारतीय संगीत को लोकप्रिय बनाने में उसका प्रचार एवं प्रसार कर उसे समृद्ध करने में उस्ताद हस्सू खाँ ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है जो अविस्मरणीय है। वैसे ही उन्होंने ऐसे कुछ प्रमुख संगीताचार्यों की परम्परा स्थापित की जिनके शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा ग्वालियर की इस ख्याल शैली का पूरे भारतवर्ष में प्रचार-प्रसार हुआ है। उनका यह कार्य भारतीय संगीत के इतिहास में सदा के लिए अमर रहेगा।

महान संगीतज्ञ स्व. हद्दू खाँ का योगदान - गान सम्राट हद्दू खाँ हमारी संगीत परम्परा के एक ऐसे मनीषी थे, जिन्होंने न केवल एक कलाकार के रूप में श्रेष्ठतम ख्याति अर्जित की और संगीत तथा ग्वालियर घराने की परम्परा की समृद्धि में योगदान दिया, बल्कि संगीत शिक्षण के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य करके उसे नये आयाम तक पहुँचाया।

उस्ताद हद्दू खाँ की गायकी में एक तरह का पुरुषत्व अथवा मर्दानापन था। उसमें एक तरह का संयम था व मर्यादा थी। स्वरों पर ठहराव, मींड सुत और गमक का कलायुक्त प्रयोग, राग की शुद्धता, रचना के शब्दों का लालित्य और उनका कलात्मक उच्चारण वैविध्यपूर्ण साढ़े तीन सप्तक की अत्यन्त शक्तिशाली तानें, असाधारण लयकारी यह सब उनके गायकी की प्रमुख विशेषताएँ थीं। आपकी मधुर किन्तु वजनदार तानों के बारे में एक घटना का उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा। दौलतराव सिंधिया की मृत्यु के पश्चात् महाराज जयाजीराव का राज्यकाल आया। किन्हीं कारणवश हद्दू खाँ एवं जयाजीराव महाराज का आपस में कुछ मतभेद हो जाने के कारण हद्दू खाँ थोड़े समय के लिए ग्वालियर छोड़कर लखनऊ चले गए थे। वहाँ भी आप नियमित रूप से रियाज करते रहे थे। एक बार उन्होंने ऐसी जोरदार तान निकाली कि निकटस्थ पायगाह में बँधा हुआ घोड़ा अस्तबल छोड़कर भाग गया। इसी घटना से उनके तानों की प्रचण्डता के बारे में सोचा जा सकता है। यही कारण था कि हद्दू खाँ की ख्याति सारे देश में फैल चुकी थी एवं ख्याल गायकी के अग्रणीय संगीतज्ञों में आपकी गणना होकर गायकों में उनका विशेष सम्मान था।

विभिन्न संगीतज्ञों ने उनके गायन की प्रशंसा में निम्न उद्गार प्रकट किए हैं यथा-

लखनऊ के वाजिद अली शाह के दरबार के प्रसिद्ध संगीत मर्मज्ञ हाकीम मुहम्मद करम इमाम ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ ''मआदनुल मुसिकी'' में लिखा है कि ''हद्दू खाँ उत्तम गायक हैं इनको मैंने लखनऊ में सुना है, बहुत ही समझदार तथा सुरीले दिखाई देते हैं।'' उस्ताद विलायत हुसैन खाँ ने इनकी प्रशंसा में लिखा है; कि ''इनका नाम सारे

हिन्दुस्तान में मशहूर था और इनकी टक्कर के गवैये पिछले सौ-दो-सौ वर्षों में बहुत थोड़े ही हुए हैं।'' हद्दू खाँ की एक और विशेषता यह थी कि आप सभी अपने मान-सम्मान और धन-दौलत में नहीं डूबे और संगीत विद्या की सेवा तथा मुक्त हस्त से विद्या दान करना ही सदा अपना धर्म समझते रहे।

आपने न केवल ग्वालियर की ख्याल शैली के निर्माण में ही अपना अमूल्य योगदान दिया है अपितु गायकी की उपर्युक्त वर्णित विशेषताओं के द्वारा भारतीय संगीत का प्रचार-प्रसार कर उसे समृद्ध भी किया है। इस प्रकार एक नवीन शैली को जन्म देने में, भारतीय संगीत को लोकप्रिय बनाने में, असंख्य शिष्यों को प्रमाणिकता एवं कठिन परिश्रम से तैयार कर उनके द्वारा देश के कोने-कोने में भारतीय संगीत का प्रचार एवं प्रसार कराने में आपने जो अलौकिक योगदान दिया है उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. भारतीय संगीत का इतिहास : डॉ. अशोक कुमार यमन, भाग-1, के.के. पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
2. संगीत रत्नावली : अशोक कुमार यमन, प्रथम संस्करण 2015, अभिषेक पब्लिकेशन्स, चण्डीगढ़, नई दिल्ली।

Musical Style of Gharānā of Hindustani Classical Vocal Music: A Study

Sumedha Singh
Research scholar
Dept. of Vocal Music
Faculty of Performing Arts
Banaras Hindu university

Abhishek Smith
Research scholar
Dept. of Vocal Music
Faculty of Perfroming Arts
Banras Hindu University

Abstract

In Hindustani classical music, there are distinctive Gharānās each differing from the other in marked diversity in the exposition of Rāgas, in using Alaṁkāras, etc. Each of these diverse Gharānās impresses the listeners withdiffusion of aesthetic pleasures, each enjoyable distinctly. When a worthwhile innovation has a long-lasting quality it becomes a distinguishing attribute of all subsequent generations of pupils in that lineage, resulting in the formation of a Gharānā. Gharānā also means 'style' in a loose sense, and in Hindustani classical music, there are various styles in the presentation of music that have evolved.In different Gharānās, a single rāga can be presented in a variety of styles, and the same composition can be rendered differently with equal appeal. In the present research paper, the researcher will focus on the features and the variation of the singing style of variousGharānās of Hindustani Classical Vocal Music

Keywords:

Music, Gharāna, Hindustani Classical Vocal music, Rāgas.

INTRODUCTION:

The term "Gharānā" came from the Hindi word "Ghar" (House). In North Indian classical or Hindustani classical music, Vocal Gharānās differ from one another in terms of musical substance and cultural setting and rendering. A Gharānā is a musical family or lineage with its own set of stylistic features. They are precise in their ways, including the style of singing ālāpas, the usage of tānas, tālas & bolas, the choice of rāga-s and tāla-s, the manner of extending rāgas, the phrases of bandīśes, as well as others. Each Gharānā has created melodic independence of voice production through training techniques followed

with the aid of certain philosophies of history and culture. While, in most cases, even in a particular Gharānās, significant changes in singing styles are noticed between generations of performers. These variations are the outcome of that singer's distinct creativity, which led to the development of the singing style of that particular Gharānā.

Gharānās associated with Khyāla

The term Khyāla comes from a Persian word that means thought, idea, concept, or imagination. The Khyāla differs from the Dhrupad not only in its thematic content but also because the style of singing and presentation of both these genres are perceptibly unique. Besides, being a more free and flexible form, compared to the serious and tightly structured Dhrupad, the nature of the Khyāla is also with the aid of the singing techniques adopted for this form, such as the manner of producing swaras and the ornaments that are used to decorate the melodic movements. The usage of tānas in the Khyāla gāyakī is one of the most important features that distinguish the former from the Dhrupad. In addition, there is more use of ornamentation in the Khyāla form like Sargam, murkī, khatkā, Karṇa, mīńd, gamak, etc.

The distinguishing features of each style of Khyāla singing advanced into different Gharānās of music. The primary area wherein the differences arise relates to the way the notes are sung, the role and significance of the bandīś from the aesthetic perspective of the Gharānā, the presentation of the rāga and the type of tānas used.

1) Gwalior Gharānā—Historically, the Gwalior Gharānā is known to be amongst the earliest in Khyāla vocalism. Nathan Peer Baksh is known as the founder of this Gharānā.

A distinguishing characteristic of the Gharānā is its simplicity, and one means to this is the choice of well-known rāgas. Even as the Khyāla singer does include Rāga Vistar and Alńkār to enhance the beauty however doesn't include Āvirbhāv-Tirobhāva. The exponents of Gwalior Gharānā always present the rāga in a very pure and artistic way. They gradually increase according to the rules of swaras while explaining any rāga. The voice is expected to be full-throated and is known to sing in a high-pitched voice. Other than this, great importance is given to straight, clear, and palledaar tans and boltānas in laya and taan. For this purpose, gamak in the voice is very important, for that the training is introduced right at the beginning with exclusive kinds of swar exercises and dhrupad-dhamar. The Gharānā normally prefers to begin rāgas at a medium pace rather than a slow tempo. One can hear many forms of tānas here. However, the Sapāṭ tāna is important to the Gwalior style. Mīńd and Gamak are the principle melodic expressions of Gwalior vocalism whereas Behlāwā is considered to be an important section in the scheme of the improvisation.

2) **Kirana Gharānā—**The name of this school of music derives from Kirana or Kairana, a town and tehsil of Shamli District in Uttar Pradesh. It is the birthplace of Abdul Karim Khan who was one of the most important musicians of this Gharānā and Hindustani music in widespread in the twentieth century.

This style of singing is influenced by Tantrakārī-ang with emphasis on the resonance of individual notes and maintaining note continuity through ornaments which include mīńd and gamak. The influence of the Sarangi is reflected in the style of the voice production in this Gharānā. In the Kirana Gāyakī, the individual swaras of the rāga are considered not just random points in the scale but independent realms of music capable of horizontal expansion. Highly emotional pukārs in the higher octaves form a part of the musical experience. Another unique feature of this Gharānā is the extraordinarily complex and ornate use of the Sargam tāna. The Gharānā demands a slow tempo as the musical elaboration has to fulfill the needs of the overall emotive approach. The distinguishing features of this Gharānā are its focus on the notes and its melodiousness; the importance of the ālāpa, and the gradual development of the Khyāla, taking one note at a time for presentation, thus, gradually revealing the rāga form. In this style, the voice emerges from a deliberately constricted throat and has a nasal twang that resembles a soft silken thread, and possesses a sharp point.

3) **Agra Gharānā—**It has been seen that the Agra Gharānā was originally a dhrupad Gharānā and Nauhar Bānī was its chief mode. Khyāla was introduced in the style of Agra Gharānā by Ghagghe Khudabaksh, which he learned from Nathan Peerbaksh of Gwalior. Furthermore, after Ghagghe Khudabakhsh, khyāl gāyakī was the chief form practiced, yet dhrupad-dhamar were also learned and sung.

The typical use of forceful and vigorous voice, unknown and unusual rāgas, and a Nom- Thom ālāpa at starting is a special feature of Agra Gharānā. The Gharānā uses both ākāra and bola-ālāpa. Also, the development of proper laya by the exponents is an attractive characteristic of this Gharānā. Agra gāyakī has effectively adopted vigor, force, masculinity, etc. from dhamar, which become apparent in tāna, gamaka, and the pitch of voice. Overall loudness of voice and the voluminous delineation of svara became integral components of Agra's style. Differently paced and designed motion of svaras creates diverse patterns, which help in imparting richness in rāga's presentation. Tāna-matching laya, tāna stretching over more than one āvartana of tālas, jabde-ki-tāna, gamaka, sapāt tāna, and firat, are often used. Sapāt tāna of very fast laya is almost absent. The Gharānā also differentiates between tāna for sthāyī and tāna for Antarā. In rendering firat according to tālas and laya, people like Nathan Khan, have made the Agra Gharānā unprecedented.

4) **Jaipur-Atrauli Gharānā—**This is one of the major Gharānā in existence, that is widely recognized for its liking for rare rāgas. This Gharānā is associated with Alladiya Khan, the great singer of the late 19th and early 20th centuries.

The most distinctive feature of the Jaipur Gharānā can be best described as its complex and melodic form which arises out of the complicated and undulating phrases that comprise the piece. The baddhat is very clear and is done in a short sequence. Those sequences are maintained by linking successive notes through a particular way of delivery without blurring their characteristics while continuously varying the swara

pattern to avoid repetition. The tempo followed by this Gharānā is extremely gradual. However, the variation of the swara pattern gives the inherent rhythm. This Gharānā tends to use the traditional bandīśes and shuns the creation of recent compositions. It also believes that the emotional content of the rāga can be expressed in a much more sublime manner, via concentrating on note combinations, rather than the phrases of the text. The gāyakī of this Gharānā impresses through a breathtaking display of designs executed with imagination and polish over huge tonal spaces often encompassing at least, two and a half octaves. The fast passages are usually Vakra in their form, being full of twists and turns.

5) **Patiala Gharānā—**Mian Kaalu of Delhi Gharānā trained his son Ustad Ali Bux Jamail and his friend Ustad Fateh Ali (the well-known Ali-a-Fattu). They received training from Haddu-Hassu of Gwalior too. This helped them to develop a unique gāyakī of their own. Together, Ali Bux and Fateh Ali made a wonderful combination and presided at the Patiala Darbar.

The singing style of Patiala Gharānā has been popular for its flavor, aesthetic and delicate style. The special feature of this Gharānā is its rendering of tānas which are primarily rhythmic, vakra, and firat tānas. The tānas sung by the artists are very imaginative & creative and are not bound by the rhythmic cycle. Because of this aspect, there is a great scope for creativity in swar, tālas, bol-banāv, Sargam, and bhav. This style is very melodious and sweet. While singing Khyāla the khatka and murki are utilized in a very artistic and unique manner. The presentation of the Khyāla is embellished with bol-banāv, bol-tāna, Sargam, and mīńd. The purity of the rāga is strictly maintained throughout the khyāl performance. However, from time to time this Gharānā has been criticized for neglecting basic rāga characteristics such as the primary development octave and for overusing ornaments and graces (thumrī style) without considering the nature and the mood of the rāga. In this Gharānā, the tānas are of clear ākār and are sung in a very open and powerful voice.

CONCLUSION :

The concluding observation of the musical style of those five major Gharānās (Gwalior Gharānā, Kirana Gharānā, Agra Gharānā, Jaipur-Atrauli Gharānā, and Patiala Gharānā) has shown their overall approach, preferences, subtle variations in the rāga treatment, and the varied presentation through the diverse aspects. However, we should understand that despite adhering to the basic tenets of their gharānā, each vocalist is identified with a distinct individual gāyakī. Every Gharānā prescribes certain ways in which the voice may be projected though every individual vocalist of the gharānā develops a voice production following his/her inherent quality of voice. And since the voice is the primary medium of display of a gāyakī, variations in this feature result in the diversity within the Gharānā.

The analysis has been based on specific parameters such as swar-lagāv, introductory ālāpa, treatment of bandīś, improvisation process, laya- tālas concept,

styles of tānas, and rāga repertoire. The analysis of the same rāga by different Gharānā has brought forth variation in not only treatment but also the overall mood of the presentation. This further contributes to the diversity amongst musicians of the mentioned Gharānās on account of the predominant mood that they portray through their gāyakī. Through this study, I have gained a perspective into the diverse ways in which each feature of a Gharānā gāyakī can be approached and according to me the creativity of practitioners of a Gharānā in succeeding generations can add fresh dimensions to an already established musical style or gāyakī resulting in progressive refinement and enrichment of the Gharānā.

REFERENCE

Chaube, Sushil Kumar (2005). *Humara Adhunik Sangeet*. Lucknow: Uttar Pradesh Hindi Sansthan.

Rouchaudhari, Bimalakanta (2007). *The Dictionary of Hindustani Classical Music.* Delhi: Motilal Banarsidass Publishers Private Limited.

Parampara - Teaching in style of Patiala Gharana (parampara-sg.org)

Jaipur Gharana – Nad Sadhna

http://hdl.handle.net/10603/250317

Style of Agra Gharana (indianetzone.com)

Kirana Gharana (meetkalakar.com)

Gwalior Style of singing (Indian Classical): Gwalior Gharana : Indian classical Music

1604.02250.pdf (arxiv.org)

11_chapter3.pdf (unipune.ac.in)

09_chapter 5.pdf - Shodhganga [PDF] - Free Online Publishing (authorzilla.com)

आतोद्य

उत्तर प्रदेश में तबला वादन की संस्थागत शिक्षा का विकासः एक अवलोकन (वर्ष 1906 से 2020 तक)

डॉ. अमित कुमार वर्मा

असिस्टेंट प्रोफेसर (तबला), संगीत भवन,
विश्व भारती विश्वविद्यालय, शांतिनिकेतन, प. बंगाल

सारांश

बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में जब संगीत की संस्थागत शिक्षा का आरम्भ हुआ तब यह मूलतः गायन विषय पर केंद्रित थी. संगीत की संस्थागत शिक्षा में तबला विषय को स्वतंत्रा विषय के रूप में मान्यता नही मिली थी, यद्यपि गायन के अनुषांगिक विषय के रूप में तबला संगति निरंतर चलती रही। कालांतर में तबला वादन कला को भी एक स्वतंत्रा विषय के रूप में मान्यता प्राप्त हुई और इसमें भी स्नातक, परास्नातक एवं शोध स्तर पर अध्ययन और अद्ध्यापन का कार्य आरम्भ हुआ। उत्तर प्रदेश में तबला वादन की शिक्षा का व्यापक प्रसार देखने को मिलता है, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से इसका कोई अवलोकन नही हुआ है। वर्तमान में इसकी शिक्षा में कितने शिक्षक . शिक्षिकाएं कहाँ. कहाँ कार्यरत हैघ् कितने विश्वविद्यालय व महाविद्यालयों में इसकी शिक्षा दी जा रही हैघ् इस प्रकार का कोई अध्ययन प्राप्त नही होता। प्रस्तुत शोध पत्रा में उत्तर प्रदेश में तबला वादन की संस्थागत शिक्षा के 105 वर्षों के इतिहासव उसके विकास तथा उसमे योगदान देने वाले शिक्षक व शिक्षिकाओं को प्रथम बार रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। प्रविधि (Methodology) प्रस्तुत शोध पत्रा को तैयार करने में सर्वेक्षण विधि (Survey Method) का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक आंकड़े (primary data) मौखिक स्रोतों से तथा द्वितीयक आंकड़े (secondary data) पुस्तकों, अप्रकाशित शोध प्रबंधों, वेबसाइट आदि से एकत्रा किये गए है।

अध्ययन की सीमाएं (Limitation of Study) उत्तर प्रदेश में तबला विषय की शिक्षा के इतिहास तथा वर्तमान में उससे सम्बंधित शिक्षकोंध् शिक्षिकाओं की जानकारी का कभी अध्ययन की दृष्टि से डॉक्यूमेंटेशन नहीं हुआ। जिस कारण सभी शिक्षकों की जानकारी प्राप्त कर पाना एक चुनौतीपूर्ण कार्य रहा है। फिर भी अधिकाँश शिक्षक/शिक्षिकाओं की जानकारी को प्रमाणित करने का पूर्ण प्रयास किया गया है। इसके बावजूद भी अगर किसी शिक्षक/शिक्षिका से सम्बंधित जानकारी छूट जाती है अथवा उसमे संशोधन की आवश्यकता पड़ती है तो उसे आगामी प्रकाशन में संशोधित किया जा सकता है।

मुख्य शब्द :

संगीत, तबला, संस्थागत शिक्षा, उत्तर प्रदेश, शिक्षक व शिक्षिका

ब्रिटिश काल में सरकार द्वारा चलाई जा रही दमनकारी नीतियों के कारण रियासतों का धीरे धीरे विलय होने लगा था। जिस कारण राजाश्रय में संरक्षण प्राप्त कलाकार बेघर होने लगे थे। अपने

जीवकोपार्जन व संगीत को सुक्षित रखने के लिए कलाकारों को वैश्याओं के कोठों पर शरण लेनी पड़ी। जिससे संगीत का सामाजिक स्तरकाफी गिर गया और सभ्रांत समाज इसे हेय दृष्टि से देखने लगा था। संगीत कलाकारों को समाज में सम्मानजनक स्थान नही प्राप्त था और उसमें भी तबला वादकों की स्थिति काफी खराब थी। लेकिन जब से तबले की संस्थागत शिक्षा का सूत्रापात हुआ है तब से तबला वादकों की स्थिति में कुछ सुधार आया है। तबले की संस्थागत शिक्षा के शुरू होने से सबसे बड़ा फायदा तबले के कलाकारों को हुआ है, इससे उन्हें समाज में सम्मानजनक स्थान मिला है। क्योंकि इससे पहले तबला वादकों को दोयम दर्जे का कलाकार माना जाता था। उसे गायक, तंत्रा वादक तथा नर्तक की तुलना में कम सम्मान व कम सुविधाएं मिलती थी जबकि एक तबला वादक की साधना का स्तर भी गायक, तंत्राकार और नर्तक की साधना के स्तर के ही बराबर होता है। पहले तबले के क्षेत्रा में पढ़े.लिखे, शिक्षित लोगों का अभाव था। जिस कारण वो अपने उत्थान व सम्मान तथा अपने विषय को सम्मानजनक स्तर तक ले जाने में असक्षम थे। लेकिन तबले की संस्थागत शिक्षा आरम्भ होने से इस क्षेत्रा में भी शिक्षित कलाकारों व विद्वानों की संख्या बढ़ी है, जिन्होंने तबला वाद्य व तबला कलाकारों के स्तर को उठाया तथा उन्हें समाज में सम्मानजनक स्थान दिलवाया है। इसके अतिरिक्त जनता में भी तबला विषय के प्रति जागरूकता आई है। लोग अपने बच्चों को प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च स्तर पर तबले की शिक्षा दिला रहे हैं। स्वतंत्राता प्राप्ति के पश्चात् संगीत के सभी विषयों का विकास हुआ है लेकिन तबला विषय का सबसे ज्यादा विकास हुआ है। लोगों में इसके प्रति रूचि और जागरूकता बढ़ी है। इसकी गूढ़ता और वैज्ञानिकता को समझकर इसे उच्च कक्षाओं में पढ़ाया जा रहा है। इस विषय को परिष्कृत और परिमार्जित करने के लिये इसमें शोध कार्य हो रहे हैं।

उत्तर प्रदेश में तबला विषय की संस्थागत शिक्षा के इतिहास पर दृष्टि डाले तो ज्ञात होता है कियहांतबला वादन की संस्थागत शिक्षा की शुरुआत भी बीसवीं सदी के प्रथम दशक से हो गयी थी। विष्णु नारायण भातखण्डे एवं पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर के अनुरोध पर गोपाल मंदिर के तत्कालीन षठपीठाधीश्वर गोस्वामी श्री जीवनलाल जी महाराज के सानिध्य में वर्ष 1906 में वाराणसी में श्री काशी संगीत समाजष् की स्थापना हुई। संगीत समाज ने इसी वर्ष एक संगीत विद्यालय भी प्रारम्भ किया। जिसके प्रधानाचार्य पं. दरगाही मिश्र थे। यह विद्यालय कृष्ण बाग (रघुनन्दन प्रसाद दुल्हिनजी कोठी) में संचालित होता था। इसमें उस दौर के महान संगीतज्ञ जैसे . पं. बड़े रामदास मिश्र, पं. भोलानाथ पाठक, गणपत राव फड़के आदि जन सामान्य के बच्चों को निःशुल्क संगीत की शिक्षा देते थे। संगीत की संस्थागत शिक्षा के अंतर्गत सर्वप्रथम तबला वादन की शिक्षा श्री काशी संगीत समाज में पं. वीरू मिश्र द्वारा दिए जाने का उल्लेख प्राप्त होता है।[1] कालांतर में पं. विष्णु नारायण भातखण्डे जी ने राय राजेश्वर बली, राजा नवाब अली, राय उमानाथ बली आदि की सहायता से वर्ष 1926 में लखनऊ में मैरिस कालेज ऑफ हिन्दुस्तानी म्यूजिक की स्थापना की। बंबई सरकार के अवकाश प्राप्त डिप्टी इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल्स श्री माधवराव केशवराव जोशी की संस्था के प्रथम प्रधानाचार्य के रूप में नियुक्ति हुई तथा उप प्रधानचार्य के पद पर भातखण्डे जी के पटशिष्य श्री कृष्ण नारायण रातंजनकर जी की नियुक्ती हुई। श्री गोविन्द नारायण नातू प्राध्यापक पद पर रखे गए। छोटे मुन्ने खां ध्रुपद के लिए, उस्ताद सखावत हुसैन सरोद की शिक्षा के लिए तथा लखनऊ घराने के उस्ताद आबिद हुसैन तबला वादन की शिक्षा के लिए रखे गए।[2] उत्तरोत्तर विकास के क्रम में उत्तर प्रदेश के विभिन्न नगरों. इलाहाबाद, बनारस, कानपुर, आगरा आदि में संगीत संस्थाएं स्थापित होती गयी और संगीत की संस्थागत शिक्षा के विकास के साथ ही तबला वादन की कला को एक स्वतंत्रा विषय के रूप में मान्यता मिलती गयी

तबला वादन की संस्थागत शिक्षा के विकास में उत्तर प्रदेश का विशेष योगदान रहा है। वर्तमान में उत्तर प्रदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों व उनसे सम्बद्ध महाविद्यालयों में तबला विषय की शिक्षा दी जा रही है। किन्तु वर्तमान की उत्तर प्रदेश में तबला वादन की संस्थागत शिक्षण व्यवस्था की क्या दशा और दिशा है? यहां बालक और बालिकाओं में तबला विषय की शिक्षा का क्या अनुपात है, उसकी शिक्षा में नियुक्त शिक्षक और शिक्षिकाओं का क्या अनुपात हैघ् वर्तमान में कितने शिक्षक और शिक्षिकाएं तबला वादन शिक्षा में संलग्न हैघ् इन सब सवालों के जवाब में हमारे पास कोई आंकड़े नही है और न ही इस दिशा में पर्याप्त अध्ययन हुआ है। प्रस्तुत शोध पत्रा में उत्तर प्रदेश में तबला वादन की संस्थागत शिक्षा के इतिहास को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। साथ ही वर्तमान में इस विषय की शिक्षा से जुड़े शिक्षक और शिक्षिकाओं का संख्यात्मक विवरण भी आकड़े जुटाएं गए है, जोकि इस प्रकार है

मैरिस कालेज ऑफ हिन्दुस्तानी म्यूजिक, लखनऊ

वर्ष 1926 में स्थापित इस संस्था का नाम मैरिस कालेज ऑफ हिन्दुस्तानी म्यूजि कथा। वर्ष 1960 में भातखण्डे जी की जन्म शताब्दी के अवसर पर उनकी पुण्य स्मृति को स्थायित्व प्रदान करने की दृष्टि से इस महाविद्यालय का नाम 'मैरिस कालेज ऑफ हिन्दुस्तानी म्यूजिक' से बदल कर 'भातखण्डे हिन्दुस्तानी संगीत महाविद्यालय' कर दिया गया तथा 24 अक्टूबर 2000 को इस महाविद्यालय को डीम्ड विश्वविद्यालय का दर्जा प्राप्त हुआ।

इस संस्था की स्थापना के बाद लखनऊ घराने के उस्ताद आबिद हुसैन को तबला वादन की शिक्षा के लिए नियुक्त किया गया। उस्ताद आबिद हुसैनवर्ष 1928 से मृत्यु पर्यन्त 1936 तक मैरिस कालेज में कार्यरत रहे।[3] उनके पश्चात पं. सखाराम पखावज और तबला दोनों विषयों की शिक्षा देते रहे। वर्ष 1958 उस्ताद अहमदजान थिरकवा की प्राध्यापक पद पर नियुक्ति हुई, जोकि वर्ष 1966 तक संस्था में तबला वादन की शिक्षा देते रहे। उसके बाद बनारस घराने के मूर्धन्य कलाकार पं. रंगनाथ मिश्र वर्ष 1966 से 1990 तक तबले के प्राध्यापक पद पर कार्यरत रहे।[4] श्री राम कुमार शर्मा तबला प्रवक्ता पद पर कार्यरत थे। पं. बद्री महाराज व पं. कण्ठे महाराज के शिष्य पं. शीतल प्रसाद मिश्रय (4.11. 1967. 30.6.2009) जी ने तबला विषय की शिक्षा देकर कई सुयोग्य शिष्य तैयार किये। श्री सुधीर कुमार वर्मा उस्ताद अहमदजान थिरकवा के प्रमुख शिष्य थे। आपने वर्ष 1973 में भातखण्डे हिन्दुस्तानी संगीत महाविद्यालय में कनिष्ठ प्रवक्ता तबला के रूप में अध्यापन कार्य आरम्भ किया और वर्ष 1992 में लोक सेवा आयोग उ.प्र. चयनित होकर प्रोफेसर (तबला) के पद पर नियुक्त हुए। वर्ष 1997 में इसी महाविद्यालय में प्रधानाचार्य के पद का कार्यभार ग्रहण किया तथा वर्ष 2000 में सेवानिवृत्त हुए।[5] श्री अहमद मियाँ, जोकि उस्ताद अहमद अली व उस्ताद अहमदजान थिरकवा के शिष्य थे, ने भी संस्थान में तबला वादन की शिक्षा दी। एक सड़क दुर्घटना में आपकी अनिश्चितकालीन मृत्यु हो गयी थी। इसके अतिरिक्त पं रविनाथ मिश्रा तथा श्री संतराम ने भी तबला शिक्षण कार्य किया। प्रो. मुकुंद भाले वर्ष 2005 से 2007 तक भातखण्डे शिक्षण संस्थान में तबला प्रोफेसर के पदपर कार्यरत रहे। वर्तमान में डॉ. मनोज कुमार मिश्र एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत है। जोकि वर्ष 2005 से संस्थान में तबला विषय की शिक्षा व शोध कार्य करा रहे है।

प्रयाग संगीत समिति, इलाहबाद

डॉ. रंजीत सिंह ने इलाहबाद के कुछ संगीत प्रेमियों की सहायता से मुट्ठीगंज में कृष्णा कुञ्ज नामक स्थान पर मुंशी कन्हैयालाल की कोठी में वर्ष 1926 में 'प्रयाग संगीत समाज' नामक संस्था की स्थापना की, कालांतर में जिसका नाम बदल कर 'प्रयाग संगीत समिति' हो गया। प्रयाग स ंगीत समिति में तबला विषय की शिक्षा में उस्ताद यूसुफ खां का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिन्होंने तबला विषय की शिक्षा के प्रचार प्रसार में अमूल्य योगदान दिया। इसके बाद इनके शिष्य श्री लाल जी श्रीवास्तव ने तबला शिक्षक और फिर डायरेक्टर के रूप में अपनी सेवाएं दी। इसके अतिरिक्त स्व. श्री कृष्ण कुमार कालकोट,[6] राम सिंह, अरुण कुमार जयसवाल,

छगनलाल, लक्ष्मी नारायण सिन्हा आदि शिक्षकों ने तबला विषय की शिक्षा प्रदान की।[7]

महापालिका गांधी संगीत महाविद्यालय, कानपुरः

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की पवन स्मृति में 16 अगस्त 1948 को करचीखाने के म्युनिसिपल स्कूल में गांधी संगीत महाविद्यालय की स्थापना हुई। इस विद्यालय की स्थापना में पं. लालमणि मिश्र तथा आचार्य शंकर श्रीपाद बोडस का महत्वपूर्ण योगदान था।[8]

गांधी संगीत महाविद्यालय में तबला शिक्षक के रूप में पं. श्रीधर शर्मा का नाम मिलता है। जिनका स्वर्गवास 80 के दशक में हुआ था। आपने अजराड़ा घराने के उस्ताद अब्दुल करीम खां से तबला वादन की शिक्षा ग्रहण की थी।[9] इस विद्यालय में तबला विषय तथा उसमे संलग्न शिक्षकों की जानकारी, साक्ष्यों के आभाव के कारण प्राप्त नही होती, किन्तु वर्ष 2007 में वहां तबला सहायक अध्यापक के पद पर गयादीन प्रसाद जी नियुक्त थे। वहां अखिल भारतीय गन्धर्व महाविद्यालय मंडल द्वारा संचालित पाठ्यक्रम के अंतर्गत संगीत विषय की शिक्षा दी जाती है।[10]

काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

पं. मदन मोहन मालवीय जी द्वारा वर्ष 1916 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की गयी। कालांतर में काशी नरेश डॉ. विभूति नारायण सिंह, पं. गोविन्द मालवीय तथा संगीत मार्तण्ड पं. ओंकार नाथ ठाकुर जी सामूहिक प्रयासों के फलस्वरूप 19 अगस्त 1950 को 'श्री कला संगीत भारती' नाम से इस संस्था का शुभारम्भ हुआ।[11]

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत विभाग में तबला वादन की शिक्षा पं. पांचू महाराज द्वारा दी जानी आरम्भ हुई। महाराज जी संगीत विभाग की स्थापना के बाद से ही वहां जुड़ गए थे और वहीं से वर्ष 1986 में सेवानिवृत्त हुए। पं. पांचू महाराज का वास्तविक नाम नागेश्वर प्रसाद मिश्र था। वे सारंगी वादक पं. मुंशी राम मिश्रा के पुत्रा और पं. भैरों प्रसाद के शिष्य और पं. अनोखेलाल मिश्र के गुरु भाई थे।

इनका जन्म वर्ष 1928 तथा मृत्यु 29 मार्च 1989 को हुई।[12] वर्ष 1940 में बनारस में जन्मे पं. छोटेलाल मिश्र ने तबला वादन की शिक्षा पं. अनोखे लाल मिश्र से ग्रहण की। आपने वर्ष 1989 से 2002 तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत विभाग में तबला वादन की शिक्षा दी। तबला विषय में परास्नातक व पी.एच.डी. स्तर तक शिक्षा आरम्भ कराने में आपका विशेष योगदान रहा। पं. छोटेलाल मिश्र की मृत्यु वर्ष 2013 में हुई। प्रो. प्रवीण उद्धव ने वर्ष 2006 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत विभाग में तबला विषय में सहायक प्राध्यापक के पद पर शिक्षण कार्य आरम्भ किया। वर्तमान में आप तबला प्रोफेसर तथा वाद्य विभाग में विभागाध्यक्ष के पद पर कार्यरत है। साथ ही डॉ. चन्दन विश्वकर्मा वर्तमान में तबला सहायक प्राध्यापक के पद पर कार्यरत है।

महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी से सम्बद्ध महाविद्यालयः

1. कमला आर्य कन्या पी.जी. कालेज, मिर्जापुर, श्री गोविन्द मिश्रा (सेवानिवृत्त, 2018)।
2. कन्हैयालाल बसंतलाल डिग्री कॉलेज, मिर्जापुर, श्री गिरिजा शंकर (अंशकालिक)।

दयालबाग शिक्षण संस्थान, आगरा

दयालबाग शिक्षण संस्थान, आगरा में वर्ष 1993 में तबला विषय में स्नातक और वर्ष 1994 में परास्नातक की शिक्षा आरम्भ हुई।[13] पं.सत्य नारायण वशिष्ठ दयालबाग शिक्षण संस्थान में तबला प्राध्यापक के पद पर कार्यरत थे। आपका जन्म 1 जनवरी 1929 को हुआ। आपने तबला और पखावज दोनों की शिक्षा ग्रहण की। आपने 'तबले पर दिल्ली और पूरब', 'अप्रचलित कायदे और गतें' आदि पुस्तकों का लेखन किया। आपका स्वर्गवास 2 मई 1993 में हुआ। तबला विद्वान् डॉ। भट्ट दयालबाग शिक्षण संस्थान के संगीत विभाग में तबला रीडर के पद पर कार्यरत थे। इनका असामयिक निधन 29 जनवरी 2009 को हुआ था। तबला विषय में देश की प्रथम महिला प्रोफेसर डॉ. नीलू शर्मा देश की ख्याति प्राप्त महिला तबला वादिका है।

अनेक सम्मानों से सम्मानित डॉ. नीलू वर्तमान में दयालबाग शिक्षण संस्थान के संगीत विभाग में कार्यरत है।

संगीत सुमन, नाद साधक आदि सम्मानों से सम्मानित डॉ। रश्मि श्रीवास्तव वर्तमान में दयालबाग शिक्षण संस्थान के संगीत विभाग में तबला विषय में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत है। डॉ. शिवेंद्र संगीत विभाग में असिस्टेंट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत है। 'तबला विशारद' पुस्तक के लेखक डॉ। शिवेंद्र ICCR के नामित कलाकार है।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ताल परिचय, ताल प्रभाकर प्रश्नोत्तरी, लय– ताल विचार मंथन आदि पुस्तकों के लेखक आचार्य गिरीश चंद्र श्रीवास्तव तबला विषय के क्षेत्रा में एक परिचित नाम है। कुमायूं विश्वविद्यालय, नैनीताल के संगीत विभाग में 1979 तक सेवाएं देने के पश्चात आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में तबला विषय की शिक्षा दी तथा वर्ष 1993 में रीडर पद से अवकाश प्राप्त किया। 1955 में जन्मे शैलेन्द्र कुमार मिश्र ने तबला वादन की शिक्षा अपने पिता श्री विद्याधर मिश्र से प्राप्त की थी। आप आकाशवाणी के चयनित कलाकार थे। आपने देश के अनेक शीर्स्थ कलाकारों के साथ संगत की। एक लम्बी बीमारी के बाद आपका निधन वर्ष 2011 को हो गया।[14] वर्तमान में डॉ. रेनू जौहरी तबला विषय में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत है।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज से सम्बद्ध महाविद्यालयः

1. इलाहाबाद डिग्री कालेज, इलाहाबाद, डॉ. मुक्ति व्यास (सेवानिवृत), श्री शंभू जायसवाल (सेवानिवृत) तथा डॉ. इंदु शर्मा (एसोसिएट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत)।
2. आर्यकन्या महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद. श्रीमती ललित मालवीय (सेवा. निवृत्त)।
3. एस.एस. खन्ना कन्या महाविद्यालय, इलाहा. बाद, डॉ. पार्थ डे (असिस्टेंट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत)
4. चौधरी महादेव प्रसाद पी.जी. कालेज श्रीमती शोभा श्रीवास्तव (असामयिक मृत्यु), डॉ. कविता श्रीवास्तव[15] (अंशकालिक अतिथि प्रवक्ता), डॉ. निधि श्रीवास्तव (अतिथि प्रवक्ता, वर्तमान में कार्यरत)
5. जगत तारन गर्ल्स डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद डॉ. नंदिनी मुखर्जी (एसोसिएट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत), संगीता सहगल (एसोसिएट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत)।

इलाहाबाद राज्य विश्वविद्यालय, इलाहाबादः

1. महिला सेवासदन डिग्री कालेज, डॉ. इच्छा नायर (एसोसिएट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत)।

छत्रापति साहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुरः

छत्रापति साहू जी महाराज विश्वविद्यालय में वर्ष 2005 से स्ववित्तपोषित योजना के अंतर्गत स्नातकोत्तर स्तर पर संगीत की कक्षाएं आरम्भ हुई, यद्यपि इससे सम्बद्ध महाविद्यालयों में संगीत (तबला) की शिक्षा काफी पहले से चल रही है। डॉ. गणेश प्रसाद गुप्ता के अनुसार छत्रापति साहू जी महाराज विश्वविद्यालयसे सम्बद्ध महाविद्यालयों में तबला विषय की शिक्षा वर्ष 1960 से आरम्भ हो चुकी थी।

छत्रापति साहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुरसे सम्बद्ध महाविद्यालयः

1. दयानन्द महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कानपुर, डॉ.गणेश प्रसाद गुप्ता (एसोसिएट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत), श्रीमती अलका सिंह (असिस्टेंट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत)।

2. एस.एन. सेन महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कानपुर . श्री हरीश झा (एसोसिएट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत)।
3. जुहारी देवी महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कानपुर,मोतीलाल राठौर (सेवानिवृत्त), डॉ. खुशबू (असिस्टेंट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत)।
4. महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कानपुर, दीपाली श्रीवास्तव (एसोसिएट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत)।
5. भगवानदीन आर्यकन्या डिग्री कॉलेज, लखीमपुर खीरी,शिवांगी सक्सेना (असिस्टेंट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत)
6. डॉ. भीमराव अम्बेडकर गवर्नमेंट गर्ल्स पी. जी. कालेज, फतेहपुर,डॉ. गुलशन सक्सेना
(एसोसिएट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत)
7. ज्वाला देवी महिला पी.जी. कालेज, कानपुर श्रीमती नीलम शर्मा (सेवानिवृत्त)[16]

चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय मेरठ से सम्बद्ध महाविद्यालयः

1. कनोहरलाल महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ डॉ. पूनम मित्तल (सेवानिवृत्त.2013), डॉ वेणु वनिता (असिस्टेंट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत)
2. इस्माइल महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ, डॉ. सुधा राय (सेवानिवृत्त), डॉ. रीना गुप्ता (असिस्टेंट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत)
3. रघुनाथ महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ श्री मालवीय जी (सेवानिवृत्त), श्रीमती सुभाषिनी विश्नोई (सेवानिवृत्त), डॉ. अलका शर्मा (सेवानिवृत्त), डॉ. सुमनलता शर्मा (एसोसिएट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत), अनीता कश्यप (एसोसिएट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत)।

महात्मा ज्योतिबाफुले रोहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली से सम्बद्ध महाविद्यालयः

1. साहू राम स्वरूप महिला महाविद्यालय, बरेली. डॉ. शशि भारद्वाज (कार्यकाल : 1974–2013, सेवानिवृत्त), डॉ. सीमा जौहरी[17] (अंशकालिक तबला प्रवक्ता), दीपशिखा सिंह (असिस्टेंट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत)।
स्ववित्तपोषित स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम, डॉ. अंजू मिश्रा, असिस्टेंट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत), डॉ. आकांक्षा कृष्ण (असिस्टेंट प्रोफेसर, अंशकालिक)

2. बरेली कालेज, बरेली, डॉ. अरविन्द चतुर्वेदी, प्रवक्ता, असामयिक मृत्यु, 2004।

3. आर्यकन्या डिग्री कालेज, बरेली, श्रीमती आशा सक्सेना (सेवानिवृत्त)। स्ववित्तपोषित स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम, डॉ. रचना सक्सेना तथा डॉ. मीना सक्सेना (वर्तमान में कार्यरत)

4. नेहरू मेमोरियल शिव नारायण दास कालेज, बदायूं, डॉ. सुभाष जौहरी (सेवानिवृत्त)

5. साहू जैन महाविद्यालय, नजीबाबाद, डॉ. गीता शर्मा (सेवानिवृत्त), डॉ. दीपक त्रिपाठी (असिस्टेंट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत)।

6. श्री नवल किशोर भारतीय नगरपालिका महिला महाविद्यालय, चंदौसी, डॉ. सोनिया बिंद्रा (एसोसिएट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत)।

7. गोकुलदास हिन्दू महिला महाविद्यालय, मुरादाबाद, चित्रा सक्सेना (सेवानिवृत्त), श्रीमती सरोज बंसल (सेवानिवृत्त), डॉ. सुदेश कुमारी (एसोसिएट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत). डॉ. प्रवीण सैनी (एसोसिएट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत)।

8. गोविन्द बल्लभ पंत डिग्री कॉलेज, बदायूं, डॉ. सीमा जौहरी[18](अंशकालिक तबला प्रवक्ता)।

9. स्वामी शुकदेवानंद कॉलेज, शाहजहांपुर, डॉ. कविता भटनागर (असिस्टेंट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत)

10. श्री मुरली मनोहर टाउन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बलिया, डॉ. अलोक सक्सेना (एसोसिएट प्रोफेसर, कार्यकाल 1999.2018)।

डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा से सम्बद्ध महाविद्यालयः

भगवती देवी जैन कन्या महाविद्यालय, आगरा डॉ. केशव तलेगांवकरयसेवानिवृत्त), डॉ. मीरा अग्रवाल (एसोसिएट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत) महाविद्यालय में बी.ए. में तबला विषय की शिक्षा वर्ष 1978 से तथा एम. ए. में वर्ष 1983 से दी जा रही है।

1. बैकुंठी देवी महिला महाविद्यालय, आगरा,श्री रमेश पारिख (सेवानिवृत्त), डॉ. अलका सिंह (असिस्टेंट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत)।
2. आगरा महाविद्यालय, आगरा, पं. लल्लू सिंह (सेवानिवृत्त), डॉ. चित्राा गुप्ता (सेवानिवृत्त)।
3. टीकाराम महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अलीगढ़, श्रीमती कमलेश शर्मा (सेवानिवृत्त), श्रीमती सुभाषिनी विश्नोई (सेवानिवृत्त), कु. गुलशन सक्सेना (असामयिक मृत्यु), डॉ. शोभा कुदेशिया (सेवानिवृत्त), डॉ. ब्रजरानी शर्मा (एसोसिएट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत)।
4. नगरपालिका महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कासगंज, डॉ. मंगला तलेगांवकर (मठकर) (सेवानिवृत्त)।
5. आर.सी.ए. गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, मथुरा, श्रीमती इंदिरा अग्रवाल (सेवानिवृत्त)।
6. किशोरी रमन गर्ल्स कॉलेज, मथुरा, श्रीमती उषा श्रीवास्तव (सेवानिवृत्त), डॉ. मोनिका दीक्षित (असिस्टेंट प्रोफेसर, वर्तमान में कार्यरत)।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

- कल्चरल एजुकेशन सेंटर . एस. आर. चिश्ती (तबला इंस्ट्रक्टर)।

वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध महाविद्यालयः

- तिलकधारी पी. जी. कालेज, जौनपुर, डॉ. मुखराम सिंह (एसोसिएट प्रोफेसर, 2002 में सेवानिवृत्त), डॉ. नरेंद्र पाठक (असिस्टेंट प्रोफेसर, 2017 से कार्यरत) कालेज में स्नातक स्तर तक तबला विषय की शिक्षा हो रही है।

निष्कर्षः

1. वर्तमान में कुल विश्वविद्यालय, जिनमें तबला विषय की शिक्षा दी जा रही है 4
2. वर्तमान में विश्वविद्याल (स्तर पर कार्यरत शिक्षकों की संख्या) 7
3. वर्तमान में महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षक व शिक्षिकाओं की कुल संख्या (स्थाई) 26
4. वर्तमान में महाविद्यालयों में कार्यरत कुल असिस्टेंट प्रोफेसरों की संख्या (स्थाई) 11
5. वर्तमान में महाविद्यालयों में कार्यरत कुल एसोसिएट प्रोफेसरों की संख्या (स्थाई) 15
6. महाविद्यालयों की कुल संख्या, जिनमें तबला शिक्षण व्यवस्था है अथवा रही है 32

इसके अतिरिक्त बहुत सारे महाविद्यालयों में तबला विषय के पद खाली पड़े है। कई जगह पर अस्थाई शिक्षकों के माध्यम से शिक्षा दी जा रही है। कुछ स्थानों पर स्ववित्तपोषित स्नातकोत्तर स्तर पर तबला विषय की शिक्षा दी जा रही है। इन सभी विसंगतियों पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। **कृतज्ञता ज्ञापन** इस शोध पत्र को तैयार करने में जिन संगीत विद्वानों से सहायता प्राप्त हुई है, मैं उनके प्रति हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। उनके नाम है। डॉ. शशि भरद्वाज, बरेली, डॉ. इंदु शर्मा, इलाहबादय डॉ. वेणु वनिता, मेरठय प्रो. नीलू शर्मा, आगरा तथा डॉ. खुशबू, कानपुर। इसके अतिरिक्त प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से जिन संगीत विद्वानों से इस कार्य में सहायता मिली है, उन सब के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

Endnotes-

1. धरोहर स्मारिका, काशी संगीत समाज, वाराणसी पृ. सं. 41
2. हीरक जयन्ती स्मारिका, भातखण्डे हिंदुस्तानी संगीत महाविद्यालय, लखनऊ, प्र.3
3. शुक्ल, श्रीकांत. तबले का लखनऊ घराना और उस्ताद आफ़ाक़ हुसैन खां, प्र.43
4. मिश्र, विजय शंकर. तबला पुराण. प्र. 268
5. सिंह, लावण्य कीर्ति. भारतीय संगीतज्ञ, पृ. 173-174
6. गुप्ता, निशी. ताल शास्त्र का सैद्धांतिक विवेचन (लेखिका परिचय)
7. वर्मा, अमित कुमार. शोध प्रबंध (अप्रकाशित). पृ. 55
8. वही. पृ. 51
9. तालकोश, पृ. 319-320
10. वर्मा, अमित कुमार. शोध प्रबंध (अप्रकाशित). पृ. 55
11. 'संवाद' स्मारिका - संगीत एवं मंच कला संकाय, कशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2000
12. पं. विजय शंकर मिश्र द्वारा प्राप्त जानकारी के आधार पर
13. वर्मा, अमित कुमार. शोध प्रबंध (अप्रकाशित). पृ. 74
14. श्रीवास्तव, गिरीश चंद्र. ताल कोश. द्वितीय संस्करण पृ. 318
15. श्रीवास्तव, कविता. संगीत में ताल की ऐतिहासिकता, महत्व एवं आवश्यकता. (लेखिका परिचय)
16. श्रीवास्तव, गिरीश चंद्र. ताल कोश. प्रथम संस्करण पृ. 136
17. जौहरी, सीमा. ताल: एक ऐतिहासिक यात्रा (लेखिका परिचय)
18. वही

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

- अवस्थी, सुरेंद्र शंकर, स्वर्णजयन्ती स्मारिका, स्मारिका, लखनऊ : सांस्कृतिक कार्य विभाग, उत्तर प्रदेश, 1986।
- कमल, राधेश्याम, श्रीकाशी संगीत समाजः एक सदी का सफरनामा, स्मारिका, वाराणसीः श्री काशी संगीत समाज, 2006।
- गर्ग, लक्ष्मीनारायण, संगीतज्ञ जन्म मृत्यु कोश, हाथरस, उत्तर प्रदेश : संगीत कार्यालय, 2008।
- गुप्ता, निशी, ताल शास्त्रा का सैद्धांतिक विवेचन, नई दिल्लीः कनिष्क पब्लिशर्स, 2010
- जौहरी, सीमा, तालः एक ऐतिहासिक यात्रा, नई दिल्लीः कनिष्क पब्लिशर्स, 2019
- मिश्र, विजयशंकर, तबला पुराण, नई दिल्लीः कनिष्क पब्लिशर्स, 2005।वर्मा, अमित कुमार, प्रो. सुधीर कुमार वर्मा, 'भारतीय संगीतज्ञः गायक, वादक एवं नर्तकों के शब्द चित्रा, सम्पादक : लावण्य कीर्ती सिंह 'काव्या', 173–174. नई दिल्लीः कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2011।
- वर्मा, अमित कुमार, स्वतन्त्राता के पश्चात् उत्तर प्रदेश में तबला वादन की संस्थागत शिक्षण प्रणाली का समीक्षात्मक अध्ययन (अप्रकाशित शोध प्रबंध), भातखण्डे संगीत संस्थान विश्वविद्यालय, लखनऊ, 2008
- शुक्ल, श्रीकांत, तबले का लखनऊ घराना और उस्ताद आफाक हुसैन खां, नई दिल्लीः कनिष्क पब्लिशिंग हाउस, 2018
- श्रीवास्तव, कविता, संगीत में ताल की ऐतिहासिकता, महत्व एवं आवश्यकता 2019।
- श्रीवास्तव, गिरीशचंद्र, तालकोश, इलाहाबाद :रूबी प्रकाशन, 1996।
- 'संवाद स्मारिका', स्वर्ण जयंती पर प्रकाशित, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2000।

An Overview of Tāla in Musical Forms of Karnāṭaka Music – with Special Reference to Varṇam

Anuthama Murali
Research Scholar
i/c Department of Indian Music
Music University of Madras, Chennai

Dr Rajshri Ramakrishna
Associate Professor and Head
Department of Indian
University of Madras, Chennai

Abstract

Musical forms are a part of all genres of music. The musical compositions belonging to the same form share an identical melodic idea and, in some cases, identical aspects like its structure. The aspects like rāga (melodic entity), theme and composer can be common to more than one form, hence cannot be considered as parameters to identify a form. The tāla (temporal framework) is one such element common to most musical forms, for e.g., the Kṛti and Khyāl forms are set to tāla, while the ālāp/ālāpana is not. This paper attempts to study tāla in musical forms of Karnāṭaka music, with special reference to Varṇam. Varṇam, as a musical form in Karnāṭaka music, is traced to the late 17th century. The tāla-s employed in the different classifications of varṇam, composed by different composers, in various time periods are the focus of this study. Early south Indian music publications are the source of biographical details, music theory and notations for the varṇam-s studied in this paper.

Keywords:

Tāla, Varnam, Varna, musical forms in Karnataka music, Carnatic music

Every musical composition is composed with features like structure, theme, tempo, text, syllables, tāla (temporal framework), rāga (melodic entity) etc. Few features like the structure and the melodic idea of a composition are found to be identical in more than one composition. For example, when the syllables nā, dir-dir, tom dir-dir, di ra na, taḷāṅgu are heard in a composition, the listener concludes it to be a Tarāna (of Hindustāni music) and Tillāna (in Karnāṭaka music), regardless of its rāga, tāla and composer. Here, it is the text (sāhitya) of the composition which distinguishes it as a *musical form* Tarāna/Tillāna. Musical forms are also an instrument to identify the genre of music they belong to, for e.g., Khyāl in Hindustāni classical music, Kṛti in Karnāṭaka music, Jatisvara in

Bharatnāṭyam, Ṭappa in semi classical Hindustāni music, Kāvadi cindu in south Indian folk music, Lāvaṇi in popular music and many more. The musical forms mentioned above are pre-composed and set to a temporal framework called tāla in Indian music. There are musical forms which are not pre composed, like the ālāpa, sargam or bōl ālāp in the Hindustāni music and ālāpana, tānam, niraval in the Karnāṭaka music. Some of these forms are rendered with tāla, for e.g., Niraval, Kalpana svara (in Karnatik music) and Bōl ālāp, Tān (in Hindusthāni music); some without tāla like ālāpana. However, there does not seem to be any modern musical form which is pre-composed and not set to tāla. The distinction in musical forms is commonly referred to as Nibaddha and Anibaddha (where forms are classified into those with or without tāla); Kalpita and Manōdharma (where forms are classified into pre-composed and not pre-composed).

Tāla and tempo (laya) are closely associated aspects in music. Tempo, in Hindustāni music, is generally regulated by slowing down the beats of the tabla (thēka) in Vilamba laya and increasing the speed of the thēka for the madhyalaya. This change of tempo is generally relative and not in geometric progression, except in few forms like Dhrupad. However, in present day music, the tempo of a composition in Karnāṭaka music is generally represented and understood in terms of 'Kaḷai/Kalā', which is discussed later in this paper.

This paper is a study of tāla in musical forms of Karnāṭaka music, with special reference to Varṇam. An attempt is made to study the tāla and tempo of musical forms in Karnāṭaka music. An overview of tāla-s in Karnāṭaka music forms the prelude to the study of tāla-s in varṇam-s.

Karnāṭaka music comprises of musical forms like Gīta, Svarajati, Varṇam, Kṛti, Pallavi etc. Forms in Karnāṭaka music commonly have the sections Pallavi, Anupallavi and Caraṇa, in order, which contain text (sāhitya). In some compositions, svara/solfa/sargam passages are composed at the end of the Anupallavi and Caraṇa sections e.g., Varṇam. In the present-day practice, musical forms are rendered in one of the 7 main tāla-s (sapta tāla-s) and few tāla-s other than them called the cāpu tāla-s, namely the Khaṇḍa Cāpu (5 counts) and the Miśra Cāpu (7 counts), Tiśra cāpu (6 counts). The cāpu tāla-s are commonly used in kṛti-s and folk genre. Laghu '|', Druta 'O' and Anudruta '□' are the aṇga (time unit) of tāla seen in the 35 tāla-s of Karnāṭaka music. The sapta tāla-s Dhruva, Maṭhya, Rūpaka, Jhampa, Tripuṭa, Aṭa and Ēka are subjected to 5 jāti varieties each. The five jāti-s - tiśra, caturaśra, khaṇḍa, miśra and saṅkīrṇa allocate 3,4,5,7 and 9 akṣara-s (beats/units) to each laghu in the tāla. Thus, each tāla gives rise to 5 jāti varieties. Thus 35 derivative tāla varieties are developed from 7 tāla-s. Each of these tāla-s have names. However, only few of these names are popular for e.g., Ādi tāla which is the name given to caturaśra jāti Tripuṭa tāla. Khaṇḍa jāti Aṭa tāla has been alternatively referred as Nidala tāla in the Saṅgīta-pradāyini, 1916 and caturaśra Rūpaka is referred as Patti in the Saṅgīta-sudhāmbudhi, 1917. Table 1 in Appendix 1 lists the scheme of 35 tāla-s in Karnāṭaka music. A few derivative tāla-s are used in Karnāṭaka musical forms, for e.g., the Navagraha group kṛti-s of Muddusvāmi

Dīkṣita. The element of Kalā (also called kaḷai in south Indian music) which is applicable to tāla-s in the 35 tāla system of Karnāṭaka music is discussed now.

Kalā

According to Ramanathan "Kalā is described as the basic unit of tāla structure and is thus the most fundamental notion connected with tāla just as svara is the most fundamental element of melodic structure." (Ramanathan, 1997). In Karnāṭaka music kalā is perceived both as a standard time unit and as a Kriya (action). Kalā in the sense of time unit, is a time division, which prevails throughout the tāla. In Ādi tāla I kalā, each of the 8 akṣara-s have the same time units/duration. In Ādi tāla II kalā, this time unit in the akṣara-s is doubled and in Ādi tāla IV kalā, it is four times the time duration of Ādi I kalā; thus, variations are in a geometrical progression. In sense of kriya, each akṣara of Ādi tāla I kalā, is denoted with its action (beat/wave/count of fingers) only once, while in II kalā it is twice, 4 times in IV kalā and so on in geometrical progression. The element of kaḷai in Karnāṭaka musical forms is seen in the later part of this study.

A brief note on the varṇam as a musical form and composers of varṇam-s is given below before studying tāla-s in varṇam-s.

Varṇam

The musical form Varṇam is generally identified as the first piece of presentation in a Karnāṭaka concert repertoire and also as the main piece of presentation in the dance repertoire. References trace the form of varṇam to late 17 century; varṇam-s in publications are found from the earliest available publication, Saṅgīta-sarvārtha-sāra-saṅgrahamu (1859) by K. V. Śrīnivāsa Ayyaṅgār. An overview of varṇam-s from these publications shows that varṇam-s have been classified into cauka, tāna and pada varṇam-s. This classification is made on the basis of aspects like structure, theme, melody, phrases, kālapramāna (tempo), rāga and tāla. Around 40 publications are referred for this study, out of which Saṅgīta-sampradāya-pradarśini is a source of 40 varṇam-s, representing cauka-tāna and pada, composed by different composers, covering different time periods and composed in different tāla-s.

Saṅgīta-sampradāya-pradarśini is a Telegu work in two parts, authored by Subbarāma Dīkśita in the year 1904. This text is a source of south Indian music theory and practice. Topics like biographies, ancient and modern music concepts, gamaka, mēla system, mēlakarta system, gīta prabandha-s, rāga alapti, rāga lakṣaṇa-s and notations for musical forms like Lakśya Gīta, Sañcāri, Svarajati, Varṇam, Kīrtana and Padam of various composers of different lineages are given in the Saṅgīta-sampradāya-pradarśini. A brief description of the cauka and tāna varṇam-s is given in the Saṅgīta-sampradāya-pradarśini, under the saṅgīta lakṣaṇa saṅgrahamu (p 50). Pada varṇam is not described in the Saṅgīta-sampradāya-pradarśini.

The structure of the varṇam has the following sections – Pallavi, Anupallavi, Muktāyi svaram, Caraṇa and Ciṭṭa svara-s. The Pallavi, Anupallavi and Caraṇa are sections with sāhitya (lyrics). Muktāyi svara and Ciṭṭa svara-s sections

are primarily svara sections which may or may not have sāhitya. Some varṇam-s have Jati (syllables like ta, ka, jha, nu).

Cauka varṇam - A cauka varṇam is said to be like the musical form Padam (Padam is predominantly a dance form characterized with śṛṅgāra rasa in viḷamba kāla, having sections Pallavi, Anupallavi and Caraṇa). The sections Pallavi, Anupallavi and Muktāyi svara are rendered and concluded with the Pallavi as the refrain line. This is followed by the Caraṇa which consists of four lines, each called 'khaṇḍika'. The first khaṇḍika of the caraṇa is rendered, followed with Ciṭṭa svara passages (solfa/sargam), each of which has the first line of the Caraṇa as refrain. After the last Ciṭṭa svara, the remaining three khaṇḍika-s of the caraṇa are rendered, and concluded with the Pallavi. The tempo of the Cauka varṇam is vilambakāla (slow tempo), and primarily in Śṛngāra rasa; sometimes in bhakti rasa.

Tāna varṇam - Tāna varṇam-s are set in madhyamakāla (middle tempo). The structure of the tāna varṇam is same as that of cauka varṇam. The difference is in the sāhitya, which incorporates extensive use of vowel extensions which are shown in the illustration 8, in the section 2- 'Tāla and tempo in musical forms. The classification of cauka, pada and tāna varṇam has reduced to a twofold classification of tāna and pada varṇam-s in modern times. It could be due to the fact that it evolved from the Padam form, that the cauka varṇam has come to be called as pada varṇam with passage of time. A study of the various aspects of cauka and pada varṇam also show similarities in the cauka and pada varṇam. A short note on composers of varṇam-s follows.

Composers of Varṇam

Early composers of varṇam-s are Gōvindasāmayya, Kūvaṇasāmayya, Ādiappaiah, Soṇti Veṇkaṭasubbayya, Rāmasvāmi Dīkṣita, Vīnā Kuppayyar, Muddusvāmi Dīkṣita, Śyāmā Śāstri. Later composers were Subbarāya Śāstri, Tañjāvūr Quartette (Ponnayya, Cinnayya, Sivānandam and Vaḍivēlu are together referred to as Tañjāvūr Quartette/Tanjore Quartette/Tañjai Nālvar in Karnāṭaka music. They belong to the Muddusvāmi Dīkśita lineage), Svāti Tirunāl, Tiruvōṟṟyūr Tyāgayya, Paṭṭaṇam Subramaṇya Ayyar, Rāmnāḍ Śrīnivāsa Ayyaṅgār and others. Modern composers of varṇam-s include Pāpanāsam Sivan, Muttayya Bhāgavatar, N. S Ramachandran, T.M. Tyāgarājan, T.R. Subramanyam, Lālguḍi G. Jayarāman, M. Balamuralikrishna and others.

1. Tāla in Varṇam

An overview of early publications gives a comprehensive list of tāla-s which are employed in this form. Varṇam-s are seen to be composed in the following tāla-s: Ādi, Aṭa, caturaśra jāti Maṭhya, Tiśra jāti Dhruva, Caturaśra jāti aṭa, Jhampa, miśra Jhampa, khaṇḍa jāti Tripuṭa, mīśra jāti Rūpaka, miśra jāti Tripuṭa, Rūpaka, tīśra jāti Aṭa, tiśra jāti Ēka, tiśra jāti Dhruva, caturaśra jāti Tripuṭa, tiśra jāti Tripuṭa, Miśra Cāpu, miśra Ādi.

An attempt is made to study tāla in varṇam-s with respect to classification and with respect to composers and their time periods. The time periods have been demarcated as period of Musical Trinity (Musical Trinity refers to the name collectively given to the three composers of Karnāṭaka music – Tyāgarāja,

Muddusvāmi Dīkṣita, Śyāmā Śāstri), pre-trinity composers (composers who lived prior to the Musical Trinity are referred to as pre-trinity composers in this study), and post-trinity composers (composers who lived after the period of Musical Trinity are referred to as post-trinity composers in this study).

Tāla in Cauka - Pada - Tāna Varṇam

1.1 Tāla-s employed in Cauka/Pada varṇam

There are more than 60 cauka/pada varṇam-s found in early publications. More than 45 of these are set to Ādi tāla, 2 in Aṭa tāla, 12 in Rūpaka tāla and 2 in tiśra jāti Ēka tāla.

1.1.1 Cauka/Pada varṇam-s set to Ādi tāla

There are two varṇam-s composed in Manōhari and Śrīrañjani rāga by Rāmasvami Dīkśita. Another varṇam in Kannaḍa rāga (composed by anonymous prācīna[1] composer) is seen in the SSP. Thus, three varṇam-s of pre-trinity composers are seen. Muddusvāmi Dīkṣita of the Musical Trinity has composed a cauka varṇam in Ādi tāla – Rūpamu jūci. The post trinity composers of pada varṇam-s are the Tañjavūr Quartette, Pancāpakēśa Bhāgavata, Mīnākṣi Sundaram Piḷḷai, Svāti Tirunāḷ, Subbarāma Dīkśita, Vīṇa Kupayya, Bālusvāmi Dīkṣita, Mysore Sadāśiva Rao whose varṇam-s constitute for more than 35 of the Ādi tāla cauka/pada varṇam-s. It is to be noted that two varṇam-s of the pre trinity composer Gōvindasāmayya in Kēdāragauḷa and Mōhana which have been mentioned as cauka in Saṅgīta-sarvārtha-sāra-saṅgrahamu (1859) of Vīna Rāmānuja have been mentioned as tāna varṇam-s in later publications.

1.1.2. Cauka/Pada varṇam-s set to Aṭa tāla

A cauka varṇam by Rāmasvāmi Dīkṣita in rāga Hindōḷa and another varṇam by anonymous ancient composer (pūrvika-s) in Nīlāmbari rāga are seen.

1.1.3. Cauka/Pada varṇam-s set to Rūpaka tāla

There are in all 12 cauka/pada varṇam-s set to Rūpaka tāla out of which 10 are composed by the Tañjāvur Quartette and 2 by Rāmasvāmi Dīkṣita. It is noted that Rūpaka tāla varṇam-s are presented in the O I_4 format in the Saṅgīta-sampradāya-pradarśini (1904) of Subbarāma Dīkṣta, Saṅgīta-sudhāmbudhi (1917) of K. V Śrīnivāsa Ayyaṅgār, TPP (1940) by K.Ponnaiah Pillai and Veṅkatēśvara-tāna-varṇangaḷ (1917) of C S Kriśnāsvāmi Ayyar.

1.1.4. Cauka/Pada varṇam-s set to Tiśra jāti Eka tāla

There are two varṇam-s composed by Subbarāma Dīkṣita in Suraṭṭi and Kamās rāga in Tiśra jāti Eka tāla.

The above observations are graphically represented below-

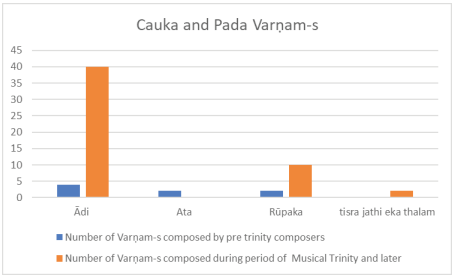

1.2. Tāla-s employed in Tāna varṇam-s

The following tāla-s are employed in tāna varṇam-s – Ādi, Aṭa, caturaśra jāti Maṭya, caturaśra jāti Aṭa, Jhampa, khaṇḍa jati Tripuṭa, Miśra Cāpu, miśra jāti Triputa, miśra jāti Rūpaka, miśra saṅkīrṇa jāti Ēka, Rūpaka, tiśra Aṭa, tiśra jāti Dhruva, tiśra jāti Tripuṭa tāla.

1.2.1. Tāna varṇam-s set to Ādi tāla

About 100 tana varṇam-s set to Ādi tāla are seen out of which about 90 varṇam-s are by post trinity composers and 6 varṇam-s composed by pre trinity composers are set to Ādi tāla. There are several tāna varṇam-s for which composers could not be found.

1.2.2. Tāna varṇam-s set to Aṭa tāla

There are about 80 varṇam-s seen across the publications out of which 9 tāna are composed by pre trinity composers and 58 by post trinity. Composers for around 12 varṇam-s in aṭa tāla are not mentioned. One tāna varṇam set to Aṭa tāla is seen composed by Śyāma Śāstri.

1.2.3. Tāna varṇam-s set to (miśra jāti) Jhampa tāla

Out of 5 varṇam-s seen, 4 are by post trinity composers and composer to one varṇam is not known.

1.2.4. Tāna varṇam-s set to khaṇḍa jāti Tripuṭa tāla

There are only two varṇam-s found in the early publications in this tāla. Composer for one Nāyaki rāga varṇam is disputed. Both varṇam-s are by post trinity composers.

1.2.5. Tāna varṇam-s set to Miśra Cāpu tāla

'Sārasākṣi' varṇam in Nāṭkurañji rāga composed by the Tañjāvūr Quartette is the only varṇam set to Miśra Cāpu which does not belong to the system of 35 tāla-s.

1.2.6. Tāna varṇam-s set to Rūpaka tāla

There are four varṇam-s, two of which are composed by Tañjāvūr Quartette, one by CS Krishnasvāmi Ayyar and one of anonymous composer.

1.2.7. The varṇam 'Karuṇa' in Athāṇa rāga, set to tiśra Aṭa and 'Intacalamu' in Suratti rāga set to Caturaśra Aṭa are varṇam-s composed by the Tañjāvūr Quartette.

1.2.8. Beside the tāla-s mentioned from 1.2.1 to 1.2.7, one varṇam each in miśra jāti Triputa, Miśra jati rupaka, miśra saṇkīrna jāti Ēka, tiśra jāti Dhruva, tiśra jāti Tripuṭa, catuśra jati Maṭhya and are seen. The book 'Saṅgīta-svara-prasthāra-sāgaramu' (1914) by Nādamuni Paṇḍitar mentions 'sapta tāla varṇamulu', in which varṇam-s set in the above tāla-s are found. Of these Tiṣra jāti Dhruva, Miṣra jati Rūpaka, tiṣra jāti Tripuṭa are composed by the author himself and one varṇam in rāga Śrī, 'Sāmi nī Pada Sarōja' is found. It is noted that other than khaṇḍa Aṭa tāla, the author of the book seems to suggest alternate tāla-s for pre-composed varṇam-s. For instance, the varṇam 'Viribhōni' in the rāga Kēdāragauḷa in the publication Saṅgīta-svara-prasthāra-sāgaramu is mentioned to be set in Caturaśra Maṭhya tāla. Contrarily it is seen that, the Saṅgīta-prathama-sikṣa-prakaraṇamu (1913) of C S Krishnasvami Ayyar and Ādi-saṅgīta-sarvārtha-

cintāmaṇi (date not known) of P B Śrīnivās mention this varṇam in Jhampa tāla. Since both tāla-s consist of 10 beats, it seems to be an attempt by the author of 'Saṅgīta-svara-prasthāra-sāgaramu' to test the possibility of rendering the same varṇam in a different tāla. Another instance from the same book, the author mentions that the varṇam 'Intamōdi' in Sāraṅga raga (compostion of Tiruvōṛṛyūr Tyāgayyar in Ādi tāla) can be alternatively rendered in khaṇḍa jāti Jhampa tāla, caturaśra jāti ēka tāla, tiśra jāti maṭhya tāla and caturaśra jāti Tripuṭa tāla. Notation for this varṇam has been given in the Miśra Saṅkīrṇa jāti ēka tāla in SSPS, which is not found within the realm of the 35 tāla-s. Miśra and saṅkīrṇa are two different jati-s of laghu. If they are put together, they make 16 akṣara kāla-s which equals the number of akṣara kāla-s in ādi tāla. This might be the reason of bringing the miśra and saṅkīrna aspect together in one tāla (in absence of 8 and 16 to represent a jāti). Alternatively, the author could have used the caturaśra jāti eka tāla (four times) to represent ādi tāla.

The above observations are summarized in the graph below

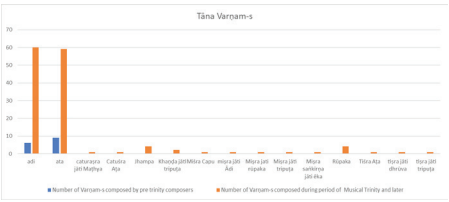

2. Tāla and tempo in other musical forms

Tāla and tempo of a composition depends on several aspects like its theme, lyrical content, composer, rāga etc. Besides these aspects, Kalā, as discussed earlier, might also vary in different compositions. Tempo in Karnāṭaka music compositions is explained in the Saṅgīta-sampradāya-pradarśini under the Saṅgīta-lakṣaṇa-saṅgraha (p.50). Madhyamakāla (middle tempo) and druta kāla (fast tempo) are explained as that which have 4 svara-s and 8 svara-s respectively in a beat, which is referred to as Akṣarakāla. It is seen that the tempo varies among different forms, and also may vary within the same form with respect to aspects like composers, rāga phrases etc. This section includes illustrations of relationship of tāla and tempo in different musical forms. It is to be noted that musical forms can be set to tāla-s other than mentioned in the illustrations.

2.1 An illustration of Gīta, in rāga Malahari set to Rūpaka tāla is given below

O			|4				O			|4					
1	2		3	4	5	6	‖	1	2		3	4	5	6	‖
m	p	|	d	ṡ	ṡ	ṙ	‖	ṙ	ṡ	|	d	p	m	p	‖
śrī	.	|	ga	ṇa	nā	tha	‖	sin	du	|	ra	.	var	ṇa	‖
r	m	|	p	d	m	p	‖	d	p	|	m	g	r	s	‖
ka	ru	|	ṇa	sā	ga	ra	‖	ka	ri	|	va	da	na	.	‖

In gita-s like the above, the svara-s per āvarta (cycle of 1 tāla) are equal to the akṣara-s (beats) per tāla, which is 6 in the above illustration. In other words, there is one svara per akṣara.

2.2. The next illustration is a Kṛti in Ādi I kalā, 'Bhavanuta' in Mōhana rāga composed by Tyāgarāja.

|4																	
1	2	3	4		5	6	7	8		9	10	11	12		13	14	15	16	
g	,	g	,		r	,	r	,		s	r	g	,		r	,	s	,	|
bha		va			nu		ta			nā					hṛ		da		|
O										O									
17	18	19	20		21	22	23	24		25	26	27	28		29	30	31	32	
s	,	r	g		r	s	ḍ	,	|	s	,	,	,		r	,	r	,	‖
ya		mu				na	ra		|	mim					pu		mu		‖

This composition in normally rendered in a madhyamakāla in a speed of 70-80 bpm on the metronome. In the above illustration svara-s 1,5,9,13,17,21,25 and 29 mark the 8 akṣara-s of Ādi tāla. Some musicians prefer notating the same composition with 2 svara-s per beat, in case of which, druta phrases are indicated (denoted with the help of a line above the svara-s). A sample of this is given below

It is to be noted that all compositions can be notated in a format of 4 svara-s or 2 svara-s in a kriya. The subsequent compositions will be notated in the format of 2 svara-s per kriya. Thus, I kalā and II kalā compositions in the illustrations will have 2 svara-s and 4 svara-s respectively in an akṣara. The tempo on the metronome helps us to understand the tempo of composition as rendered in practice.

2.3 The next illustration is a Kṛti, composed by Muddusvāmi Dīkṣita in the rāga Māyāmāḷavagauḷa set to Ādi tāla I kaḷai.

This composition is rendered in a madhyamakāla (70-80 bpm on metronome). This composition cannot be rendered in a druta kāla due to the dense sāhitya in portions of the Pallavi and the madhyamakāla sāhitya section at the end of the Anupallavi. Krṭi-s without Madyamakālasāhitya sections can be rendered in a faster tempo.

2.4. An illustration of a kṛti set to Ādi tāla II kaḷai 'Nagumōmu' composed by Tyāgarāja is given below.

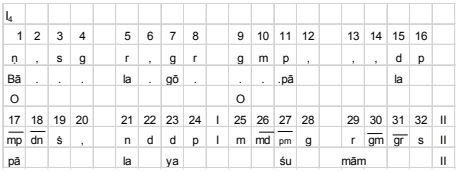

The above illustration also shows 2 svara-s per kriya i.e., 4 svara-s per akṣara. Thus, svara-s 1,5,9,13,17,21,25 and 29 mark the 8 akṣara-s of Ādi tāla, while the svara-s 3,7,11,15,19,23,27 and 31 mark the second kriya inside the respective akṣara. This composition is rendered in madhyamakāla ranging from a metronome speed of 40 or sometimes higher. Although, this composition is set to Ādi tāla II kalā, the tempo of this kṛti is madyamakāla. The reason for this could be the melody which has less of resting notes and abundant janta sañcāra-s.

Alternatively, some musicians prefer notating this kṛti-s with 4 svara-s per kriya to avoid the frequent use of speed markers. The speed markers in this method of notating, appear only for briga (type of gamaka).

2.5. The next illustration is a Kṛti 'Bālagōpāla' composed by Muddusvāmi Dīkṣita in rāga Bhairavi set to Ādi tāla II kaḷai. This Kṛti is rendered in Viḷambakāla (40 bpm on the metronome).

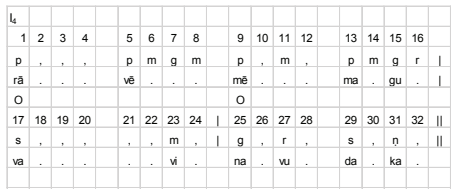

It is seen from illustration 2.4 and 2.5 that two kṛti-s set to the same tāla format can be in different tempos. Aspects like, svara distribution, resting notes, sāhitya distribution, rāga phrases and the

form have to be taken into account for determining the tempo or kālapramāṇa of a Kṛti.

2.6 Next, the svara distribution in a svarajati set to Ādi tāla in Ānandabhairavi rāga is given below. This svarajati is rendered at 65-70 bpm on the metronome.

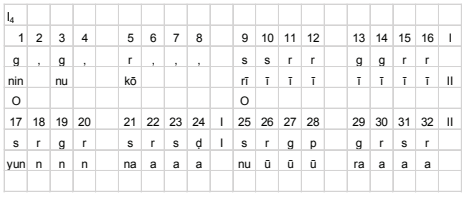

2.7. An illustration of a tāna varṇam in Mōhana rāga is given below –

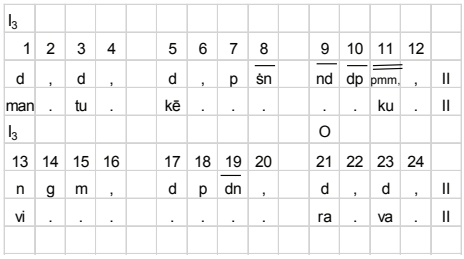

The svara distribution in the above varṇam is similar to that of svarajati as shown in illustration 2.6. The melody of a tāna varṇam is syllabic, with stress on each svara and its corresponding vowel extension as shown in the illustration. This varṇam is sung in madhyamakala in a speed range of 55-60 bpm.

2.8. An illustration of the Anupallavi of Pada varṇam in Kamās rāga is given below. This varṇam is sung in a speed of 40 bpm.

The kṛti and pada varṇam have a combination of viḷamba, madhyama and druta kāla phrases in their melody. Often, this melody is described as fluid. The melody of tāna varṇam is syllabic as mentioned earlier. Hence, it can be said that the tempo of the Pada varṇam and vilambakāla Kṛti are similar.

The illustrations given in this study are not exhaustive. Compositions in cāpu tāla-s need to be studied in a similar manner. It can be however understood from the illustrations in the study that, the tempo of compositions is determined not only by tāla and kalā, but other elements like melody, rāga phrases, sāhitya etc.

Conclusions

1. Every musical composition is set to a distinctive kālapramāṇa.
2. Aspects determining the tempo of a composition are different for different compositions.
3. Every musical form is naturally composed in few tāla-s, appropriate to the form.
4. Kalā cannot be taken as a parameter to judge the tempo of the composition.
5. Tāna varṇam and svarajati have similar tempo; Pada varṇam and viḷamba kāla Kṛti have a similar tempo.
6. Cauka and Pada varṇam-s are set in either of the following tāla-s: Ādi, Khaṇḍa Aṭa, Caturaśra Rūpaka and Tiśra jāti Ēka tāla
7. Cauka/Pada varṇam-s set to Rūpaka tāla are seen to be composed by pre-trinity composers; those set in tiśra jāti Ēka tāla by post-trinity composers.
8. Rūpaka tāla and tiśra jāti Ēka tāla

might have been the choice of tāla for a short cycle; Ādi tāla being the choice of tāla with a longer cycle for composing Cauka/Pada varṇam-s.

9. Aṭa tāla is no longer used for cauka/pada varṇam-s. It was sparingly used by pre-trinity composers in Cauka/Pada.
10. The number of Cauka/Pada varṇam-s has increased after the period of Musical Trinity. The compositions of Tañjāvūr Quartette and their disciples have contributed to this.
11. Ādi tāla and Aṭa tāla seem to be the natural choice for composing tāna varṇam-s. Use of tāla-s other than Ādi and Aṭa might have been an effort by composers to broaden the range of tāla-s for composing varṇam-s. Varṇam-s set to the sapta tāla-s in the Saṅgīta-svara-prasthāra-sāgaramu of Nādamuni Paṇditar seem to be an experimentation (either for novelty or musical exercise) by the author, of singing one varṇam in multiple tāla-s.
12. More number of tāna varṇam-s came to be composed in the period of post trinity. The lineage of Tyāgarāja seem to be the major contributors of tāna varṇam-s.

This study has explained the element of tāla and tempo in various musical forms of Karnāṭaka music, with special reference to varṇam. Tāla in cauka-pada-tāna varṇam composed by different composers in time periods is also studied in detail.

References

Source texts

1. Dīkṣitar, Subbarāma (1904). Saṅgīta Sampradāya Pradarśini Part I and II, Vidyā Vilāsini Press, Ettayapuram Samasthānam, Eṭṭayapuram.
2. Nādamuni Paṅḍitar, M. (1917). *Saṇgīta-svara-prasthāra-sāgaramu*. Dowden Company Press.
3. Śrīnivāsa Ayyaṅgār KV (1917). Saṅgīta-sudhāmbudhi, (Telugu) M Adi & Co., Madras

Books

1. Kittappa.K.P, and SivanandamK.P, ed.(1964). Tañjai Peruvuḍaiyāṉ Pēricai, Ponnayya Kaliagam, Madras.
2. Krishnan. R.V (2003). *Vīnai Varadayya avargalin Isai Uruppiḍigaḷ*. Music Information Bureau.
3. Ponnayya, Chinnayya, Sivanandam, & Vadivelu. (1961). *Tanjai Nalvar Nattiya Icaik Karuvulam (Ponnayya Manimalai)* (K. P. Kittappa & Sivanandam K P (eds.)). Ponnaiāh Kalaiagam. http://www.musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/1692
4. Ramakrishnan, Lalitha. (1991). *The Varnam*. Harman Publishing House.
5. Ramanathan N. (1997). *Essays on Tāla and Laya* (K. Venkataram (ed.)). Percussive Arts Centre (Regd)., p13.
6. Ramanathan N. (n.d.). *Tana Varnam: Less Studied Aspects*. http://www.musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/2373
7. Rao, Govinda T K. (2006). *Varṇasāgaram*. Gānamandir Publication
8. Seetha, S. (2001). *Tanjore as a seat of Music*. University of Madras
9. Sundaram B M. (2009). *Tāna Varṇa Taraṅgiṇi: Vols. I–IV* (First). Rajalakshmi Trust.

Articles and Reports

1. Latha R. (2008). *Musical compositions in Ṣaṅgīta-sarvārtha-sāra-saṅgrahamu of Vina Ramanuja and in the works of Taccuru*

Brothers – Roman script version with critical comments. Report submitted to Department of Culture, Government of India, http://www.musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/2251

2. Ramanathan N, Form in Music, http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/2326
3. Ramanathan N, Pre-1940 Music Publications, http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/2355
4. Ramanathan N, Tāna-varṇam: Less Studied Aspects, http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/2373

Appendix 1

Table 1

Tāla	Jāti	Derivative	Structure	Tāla Name
Dhrūva	Tiśra	Tiśra Jāti Dhrūva Tāla	$I_3OI_3I_3$	Mani
	Caturaśra	Caturaśra Jāti Dhrūva Tāla	$I_4OI_4I_4$	Śrīkara
	Khan. ḍ	Khan. ḍ Jāti Dhrūva Tāla	$I_5OI_5I_5$	Pramāṇa
	Misra	Misra Jāti Dhrūva Tāla	$I_7OI_7I_7$	Pūrṇa
	Sankīrna	Sankīrna Jāti Dhrūva Tāla	$I_9OI_9I_9$	Bhuvana
Maṭhya	Tiśra	Tiśra Jāti Maṭhya Tāla	I_3OI_3	Sāra
	Caturaśra	Caturaśra Jāti Maṭhya Tāla	I_4OI_4	Sama
	Khan. ḍ	Khan. ḍ Jāti Maṭhya Tāla	I_5OI_5	Udaya
	Misra	Misra Jāti Maṭhya Tāla	I_7OI_7	Udīrṇa
	Sankīrna	Sankīrna Jāti Maṭhya Tāla	I_9OI_9	Rāva
Rūpaka	Tiśra	Tiśra Jāti Rūpaka Tāla	OI_3	Cakra
	Caturaśra	Caturaśra Jāti Rūpaka Tāla	OI_4	Patti
	Khan. ḍ	Khan. ḍ Jāti Rūpaka Tāla	OI_5	Rāja
	Misra	Misra Jāti Rūpaka Tāla	OI_7	Kula
	Sankīrna	Sankīrna Jāti Rūpaka Tāla	OI_9	Bindu
Jhampa	Tiśra	Tiśra Jāti Jhampa Tāla	I_3UO	Kadamba
	Caturaśra	Caturaśra Jāti Jhampa Tāla	I_4UO	madhura
	Khan. ḍ	Khan. ḍ Jāti Jhampa Tāla	I_5UO	Caṇa
	Misra	Misra Jāti Jhampa Tāla	I_7UO	Sura
	Sankīrna	Sankīrna Jāti Jhampa Tāla	I_9UO	Kara
Tripuṭa	Tiśra	Tiśra Jāti Tripuṭa Tāla	I_3OO	Śaṅkha
	Caturaśra	Caturaśra Jāti Tripuṭa Tāla	I_4OO	Ādi
	Khan. ḍ	Khan. ḍ Jāti Tripuṭa Tāla	I_5OO	Duśkara
	Misra	Misra Jāti Tripuṭa Tāla	I_7OO	Līla
	Sankīrna	Sankīrna Jāti Tripuṭa Tāla	I_9OO	Bhoga
Aṭa	Tiśra	Tiśra Jāti Aṭa Tāla	I_3I_3OO	Gupta
	Caturaśra	Caturaśra Jāti Aṭa Tāla	I_4I_4OO	Lekha
	Khan. ḍ	Khan. ḍ Jāti Aṭa Tāla	I_5I_5OO	Nidala
	Misra	Misra Jāti Aṭa Tāla	I_7I_7OO	Loka
	Sankīrna	Sankīrna Jāti Aṭa Tāla	I_9I_9OO	Dhīra
Ēka	Tiśra	Tiśra Jāti Ēka Tāla	I_3	Suda
	Caturaśra	Caturaśra Jāti Ēka Tāla	I_4	Māna
	Khan. ḍ	Khan. ḍ Jāti Ēka Tāla	I_5	Rāta
	Misra	Misra Jāti Ēka Tāla	I_7	Rāga
	Sankīrna	Sankīrna Jāti Ēka Tāla	I_9	Vasu

उस्ताद आफ़ाक हुसैन खाँ साहब की बन्दिशों का तकनीकी पक्ष

कल्याणी गुप्ता
शोध छात्र
दयालबाग ऐजूकेशनल इन्स्ट्रीटयूट, आगरा

डॉ. शिवेन्द्र प्रताप त्रिपाठी
दयालबाग ऐजूकेशनल इन्स्ट्रीटयूट, आगरा

सार

गायन, वादन व नृत्य के समूह को ही संगीत की संज्ञा प्रदान की गई है। संगीत मानव की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। पृथ्वी के हर एक हलचल में, मानव की प्रत्येक गतिविधि में कहीं-न-कहीं संगीत विद्यमान है। संगीत की प्रत्येक विधा को सुन्दर, कर्णमधुर व प्रभावशाली बनाने हेतु उसके साथ अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग प्राचीन काल से ही किया जाता है। अवनद्ध वाद्यों में सर्वाधिक प्रचलित अवनद्ध वाद्य 'तबला' है। तबला वाद्य स्वतन्त्र व संगत दोनों के उपयुर्क्त अवनद्ध वाद्य है। तबला वाद्य का विकास व प्रचार घरानों के माध्यम से ही हुआ है और परिणामस्वरूप तबले के 6 घराने हुए।

तबले का लखनऊ घराना देश के पूर्वी भाग में होने के कारण इसे पूर्वी बाज भी कहा जाता है। लखनऊ में प्राचीन समय से ही नृत्य की परम्परा अत्यन्त समृद्ध थी। लखनऊ में नृत्य के साथ-ही-साथ गायन, वादन का भी प्रचार-प्रसार था। लखनऊ घराने में ध्वनि खुली, गूंजयुक्त एवं अन्य सभी बाजों की अपेक्षा जोरदार भी थी। इसमें चांटी के साथ-साथ लय का प्रयोग भी अधिकता से किया जाता है। लखनऊ घराने के संस्थापक उस्ताद मोदू खाँ व उस्ताद बख्शू खाँ हुए। लखनऊ घराने के उस्ताद बख्शू खाँ की शिष्य व वंश परम्परा में उस्ताद आफ़ाक हुसैन खाँ साहब का नाम आता है। खाँ साहब को लखनऊ घराने का खलीफा भी कहा जाता है। खाँ साहब एक अद्वितीय तबला वादक थे। उस्ताद आफ़ाक हुसैन खाँ साहब का तबला वादन एक नवीनता, आर्कषण व सृजनशीलता लिए हुए था। खाँ साहब लखनऊ घराने का शुद्ध तबला बजाते थे। खाँ साहब ने अपनी सूझ-बूझ, सृजनशीलता, मौलिक क्षमता इत्यादि के द्वारा तबला वादन के क्षेत्र में अभूतपूर्व कार्य किये।

मुख्य शब्द

आफ़ाक हुसैन खाँ, लखनऊ घराना, बन्दिशें, तकनीकी, पक्ष

संगीत कला को सभी ललित कलाओं में सर्वश्रेष्ठ कला माना गया है। संगीत मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। संगीत मनुष्य के भावों व उद्गारों को प्रकट करने का एक माध्यम है। संगीत का अर्थ सम्गीत अर्थात् सम्यक् प्रकार से गाया गया गीत है। 'गायन, वादन व नृत्य के समूह को संगीत कहते है'।

किसी भी रचना से तात्पर्य बंदिश से है। भारतीय संगीत में कियी भी वाद्य पर बजाने हेतु बंदिशों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भारतीय संगीत में किसी भी सांगीतिक रचना को बंदिश कहा जा सकता है। बंदिश का सामान्य तात्पर्य है सुन्दर, श्रेष्ठ व व्यवस्थित ढंग से राग, स्वर, ताल, लय, एवं शब्दों में बंधी हुई गेय रचना। साधारण अर्थों में

स्वर तथा लय ताल में बांधे गये गीत अथवा गत को 'बंदिश' की संज्ञा दी गई है। तबले की सम्पूर्ण बंदिशों को हम दो भागों में विभाजित कर सकते है।

1) विस्तारशील बंदिशें, 2) अविस्तारशील बंदिशें

जिन रचनाओं का प्र्याप्त विस्तार होना सम्भव हो, उन्हें 'विस्तारशील बन्दिश' कहा गया है। विस्तारशील रचनाओं में पेशकार, कायदा एवं रेला इत्यादि बंदिशें आती है तथा जिन रचनाओं का प्र्याप्त विस्तार होना सम्भव न हो, उन्हें 'अविस्तारशील बन्दिश' कहा जाता है। अविस्तारशील रचनाओं में मुखड़ा, टुकड़ा, परन, गत इत्यादि रचनाएं आती है।

लखनऊ घराने में अनेकों बन्दिशें बजाई जाती है। जो कि इस प्रकार से हैं- पेशकार, कायदा, चाला, रौ, रेला, गत, चक्रदार, टुकड़े, लग्गी, लड़ी इत्यादि। लखनऊ घराने के पेशकार में नजाकत अधिकतर तेटेघेघे, नकधिन इत्यादि बोलों के वादन से ही दर्शायी जाती है। लखनऊ घराने में पेशकार को विभिन्न लयकारी दुगुन, चौगुन, आड़ इत्यादि की लयकारी में भी बजाया जाता है।

प्राचीन काल से ही गुरु-शिष्य परम्परा का महत्व संगीत की तीनों विधाओं में प्रचारित रहा है तथा संगीत घरानों के माध्यम से विकसित व परिष्कृत हुआ है और तबले के 6 घराने हुए। जो कि इस प्रकार से है-

1) दिल्ली घराना, 2) अजराड़ा घराना,
3) लखनऊ घराना, 4) फर्रुखाबाद घराना,
5) बनारस घराना, 6) पंजाब घराना।

दिल्ली घराना तबले का सर्वप्रथम घराना है। दिल्ली घरानो का विकास उस्ताद सिद्वार खाँ ढाढ़ी के द्वारा हुआ है। दिल्ली घरानों के निर्माण के पश्चात् ही तबले के अन्य सभी घरानों का विकास हुआ है। तबले के पाचों घराने एक दूसरे से अर्न्तसम्बन्धित है, किन्तु पंजाब घराने का विकास एक स्वतन्त्र घराने के रुप में हुआ है।

लखनऊ घराना सभी घरानों में तीसरे स्थान पर आता है। देश के पूर्वी भाग में होने के कारण इसे पूर्वी बाज भी कहा जाता है। पूरब बाज का प्रथम घराना है 'लखनऊ घराना'। लखनऊ घराने में ध्वनि खुली, गूँजयुक्त एवं पश्चिम बाज की अपेक्षाकृत जोरदार होती है। इसमें चाँटी के साथ लौ का प्रयोग भी अधिकता से किया जाता है। लखनऊ घराने में नबाबों का प्रमुख स्थान प्राचीन काल से ही रहा है। प्राचीन काल में लखनऊ 'नबाबों का गढ़' कहा जाता था। नबाबी शान-ओ-शौकत के कारण ही लखनऊ में प्रारम्भ से संगीत इत्यादि का प्रचलन अत्यधिक रहा है। लखनऊ में सर्वप्रथम नृत्य का प्रचलन अधिकता से था। जिसकी अनुकूल संगति हेतु तबला वाद्य का प्रचार प्रसार हुआ। दिल्ली घराने तबला वाद्य में नृत्य की संगति हेतु आवश्यकतानुसार परिवर्तनकर, उसमें मुलायम व नजाकत लिये हुये ऐसे बोलों का प्रयोग किया गया, जो कि नृत्य की संगति के उपर्युक्त थे और जिसके परिणामस्वरुप तबले के लखनऊ घराने का निर्माण हुआ।

उस्ताद आफ़ाक हुसैन खाँ साहब का नाम लखनऊ घराने के प्रतिष्ठित तबला वादकों में लिया जाता है। उस्ताद आफ़ाक हुसैन खाँ साहब को लखनऊ घराने का खलीफा कहा जाता है। उस्ताद आफ़ाक हुसैन खाँ साहब बड़े विद्वान, परिश्रमी तथा प्रतिभा सम्पन्न कलाकार थे। वे स्वतन्त्र वादन के साथ-साथ तबला संगत में भी अद्वितीय कलाकार थे। वे लखनऊ घराने का विशुद्ध तबला बजाते थे। लखनऊ घराने की सभी विशेषताएं उनके तबला वादन में स्पष्ट रुप से परिलक्षित होती है।

उस्ताद आफ़ाक हुसैन खाँ साहब जितने अच्छे कलाकार थे, उतना ही अच्छा उनका व्यक्त्वि भी था। यह भी कहा जाता है कि कला या कलाकार कितना भी श्रेष्ठ क्यों न हो व्यक्ति के व्यक्तित्व का उस पर कुछ न कुछ प्रभाव उस पर अवश्य रहता ही है और यही कारण है कि खाँ साहब के व्यक्तित्व की छाप उनके तबला वादन पर स्पष्ट रुप से परिलक्षित होती है।

भारतीय संगीत के क्षेत्र में सृजनशीलता का महत्वपूर्ण स्थान है। कलाकार अलग-अलग माध्यमों से अपनी कला की अभिव्यक्ति करता है, जो कि उसकी सृजनशीलता को दर्शाता है। संगीत में कोई भी रचना या बंदिश लयबद्ध रुप में प्रस्तुत होती

है। यह लयबद्धता हमें स्वरों के नादों से बनी हुई रचना कृति में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

किसी भी कलाकार में सृजनशीलता, लचीलापन, नवीनता के प्रति आकर्षण और प्रयोगशीलता आदि सभी गुण होने चाहिए। कलाकार की कला का मूल्यांकन उसकी रचनात्मकता एवं सृजनशीलता में ही निहित है।

उस्ताद आफ़ाक हुसैन खाँ साहब बड़े ही रचनात्मक प्रवृति के व्यक्ति थे तथा उसके अतिरिक्त हमेशा कुछ-न-कुछ नया सृजन करते रहते थे। खाँ साहब को बन्दिशों में प्रयोग किये जाने वाले बोलों की ध्वनि व उनकी गति का भी प्र्याप्त ज्ञान था। जब वह शिष्यों को सिखाते थे, तो कोई भी कठिन बोल-बंदिश होने पर खाँ साहब स्वंय कुछ नई रचना कर सिखाते थे, जिससे कि उस बोल के रियाज से वह उस कठिन बंदिश को आसानी से बजा सके।

स्वतन्त्र वादन के साथ ही साथ संगत में भी खाँ साहब निपुण थे। गायन, वादन व नृत्य के साथ संगत में भराव व उसके अनुकूल बंदिश की रचना करते थे। कहा जाता है कि संगत हो या स्वतन्त्र वादन खाँ साहब दोनों के ही तबला वादन में अद्वितीय कलाकार थे। खाँ साहब अंगुश्ताना अधिक बजाते थे। अंगुश्ताना खाँ साहब की प्रिय बन्दिशों में से एक है। अंगुश्ताना से तात्पर्य ऐसे बोलों से होता है जिसके वादन में स्याही, लौ व चाँटी के बोलों की प्रधानता हो तथा अंगुलियों के अग्र भाग से जिस बन्दिश का वादन हो, उसे अंगुश्ताना कहा जाता है। उनके द्वारा निर्मित एक अंगुश्ताने का उदाहरण निम्न प्रकार से है–

धिनताता धिनधाऽ धिनताता धिनधाऽ तिरकिटतक तिरकिटतक तिरकिट

खाँ साहब रंग-रेला भी बजाते थे। खाँ साहब रेले के वादन में 'धिरधिर' का प्रयोग अधिकतर किया करते थे। उनके द्वारा प्रयुक्त रेले का उदाहरण निम्न प्रकार से है-

1) धाऽतिरकिटतक धिरधिरकिटतक धाऽतिरकिटतक तुंनाकिटतक

2) धाऽतिरकिटतक धिंऽतिरकिटतक धाऽतिरकिटतक धिंऽतिरकिटतक

खाँ साहब कहते है कि तबले की रचना करने के लिए लय का ज्ञान आवश्यक है। खाँ साहब के वादन की मुख्य विशेषता उनकी बन्दिशों में दायें-बायें का सन्तुलन है। खाँ साहब के पेशकार वादन में दायें-बायें का संयोजन देखते ही बनता हैं व बायें पर मींड व घसीट का काम वह बहुत सुन्दर ढंग से किया करते थे। रेले को वह अतिद्रुत लय में अत्यधिक स्पष्टता के साथ बजाते थे, यह कहना एक अतिश्योक्ति न होगी कि वह एक चर्तुमुखी तबला वादक थे। खाँ साहब ने अनेकों बंदिशों कायदे, रेले, रौ, गतें इत्यादि बंदिशों का सृजन किया है। जो कि इस प्रकार से है-

पेशकार- तीनताल

धाऽऽधा गेनधिंना धाक्रधाती धाधाधिंना ऽधाधिंना ऽधाधाती धाक्रधाती धाधातिंना

× 0

ताऽऽता केनतिंना धाक्रधाती धाधाधिंना ऽधाधिंना ऽधाधिंना धाक्रधाती धाधाधिंना

2 3

कायदा - तीनताल

धातेटेते टेधातेटे धातीधागे धिंनागीना धातेटेते टेधातेटे धातीधागे तिंनाकीना

× 0

तातेटेते टेतातेटे तातीताके तिंनाकीना धातेटेते टेधातेटे धातीधागे धिंनागीना

2 3

कायदा - तीनताल

तिरकिटतकतिर	किटतकधिंना	गीनाधाती	धाक्डधिंना
×			
गीनाधाक्ड	धिंनागीना	धातीधागे	तिंनाकीना
0			
तिरकिटतक	तिरकिटतकतिंना	कीनाताती	ताक्डतिंना
2			
गीनाधाक्ड	धिंनागीना	धातीधागे	धिंनाकीना
3			

कायदा- तीनताल

धेड़नग तेटेतेटे धेड़नग दिनतक तेटेधेड़ नगतेटे धेड़नग दिनतक

× 0

केड़नक तेटेतेटे केड़नक तिनतक तेटेधेड़ नगतेटे धेड़नग दिनतक

2 3

कायदा- तीनताल

धातेटेधा तेटेधाधा तेटेधागे धिंनागीना तेटेतेटे धातेटेधा तेटेधागे तिंनाकीना

× 0

तातेटेता तेटेताता तेटेताके तिंनाकीना तेटेतेटे धातेटेधा तेटेधागे धिंनागीना

2 3

गत-कायदा- तीनताल

दिनदिनतकदिन दिनतकदिनदिन तकदिननानातेटे तकदिननानातेटे

×

दिनदिनतकदिन दिनतकदिनदिन तकदिननानातेटे तकतिननानातेटे

0

तकतिननतिनतक तिननतिनतकतिन नानातेटेतकतिन नानातेटेदिनदिन

2

तकदिनदिनतक दिनदिनतकदिन नानातेटेतकदिन नानातेटेतकदिन

3

त्रिपल्ली गत- तीनताल

धाकतकिटतक तगतिरकिटतक धागेतेटेतकिट धाऽक्रधेतधेत

×

धाधाधाकिट तकनानाना किटतकदिनदिन दिनतकतक

0

ताताकिटतक धाधाकिटतक नानाकिटतक दिनदिनकिटतक

2

ताताकिटतक धाकिटतकना किटतकदिनकिट तकताकिटतक

3

गत- तीनताल

धाऽधेधें नकधिन तकधिन तकधिन तकधिन तूंनाकता तकतक तिनकिन

× 0

तकतत् कतधाऽ धाऽऽघे नकधिन कतकधे तकधिन धागेनधा गेनातिन

2 3

ताऽकेके नकतिन कततिन तकतिन कततिन तूंनाकता तकतक तिनतिन

× 0

ताकतत् कतधाऽ धाऽऽघे नकधिन कतकधेतकधिं धागेनधागेनतिन धाऽऽघेनकधिन कतकधेनकधिन

2

चक्रदार टुकड़ा- तीनताल

तकधिंऽता किटधिंऽ नानाकिटतक धेतूता धाधिन धातेटे धातेटे धाधिन धाधिनधातेटे धातेटेधाधिन धाधिनधातेटे धातेटेधाधिन धाऽऽधातेटेधा ऽतेऽटे धाऽकता धाऽकताधाकता धाऽऽऽ धाऽऽऽधातेटेधा ऽतेऽटे धाऽकता धाऽकताधाकता धाऽऽऽ धाऽऽऽधातेटेधा ऽतेऽटे धाऽकता धाऽकताधाकता धाऽऽऽ-× 3

प्रस्तुत रचनाएं (कायदा, पेशकार, रेला, गत, चक्रदार टुकड़ा) खाँ साहब अपने वादन में बजाते थे। खाँ साहब द्वारा बजाई गई बन्दिशों (कायदा, पेशकार, रेला, गत, चक्रदार टुकड़ा इत्यादि) का वादन उन्होंने बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है। उनकी बन्दिशों में बोलों का संयोजन इस प्रकार था, जिसमें कि लौ, चांटी व स्याही के बोलों की प्रधानता थी। कायदे के पल्टों में खाँ साहब की सृजनात्मकता स्पष्ट परिलक्षित होती है। इसके अतिरिक्त पेशकार के वादन में दायें-बायें का संयोजन देखते ही बनता है। रेले का वादन भी अत्यधिक स्पष्ट लय में स्पष्टता के साथ वह किया करते थे। वह कहते थे कि जब तक रेला हाथ में अच्छी तरह से नहीं आयेगा तब तक गत कैसे आयेगी और जिसका खूब रियाज भी वह किया करते थे। खाँ साहब एक मितव्ययी, आत्मकेन्द्रित व्यक्ति भी थे। वह संगत व स्वतन्त्र वादन में उत्कृष्ट कलाकार थे। उनके वादन में पाटाक्षर शुद्ध व स्पष्ट थे। उनके द्वारा रचित बन्दिशों में बोलों का संयोजन बहुत अच्छा था। बायें पर मींड व घसीट का काम बहुत अद्भुत ढंग से किया करते थे। उनकी बन्दिशों में बोलों का संयोजन बहुत ही सुन्दर था। अतः यह कहा जा सकता है कि वह एक सर्वश्रेष्ठ व चतुमुर्खी तबला वादक थे।

खाँ साहब रेले को रौ के रुप में बजाते थे। खाँ साहब ने बन्दिशों के तकनीकी पक्ष पर भी जोर दिया है और इस विषय में उनकी व्याख्या

भी तार्किक थी। खाँ साहब अपने रियाज व अच्छी तैयारी के लिए कायदे के बाद रेले का खूब रियाज भी किया करते थे। खाँ साहब के तबला वादन में लखनऊ घराने की सभी विशेषताएं निहित थी। खाँ साहब का तबला स्पष्ट, सुमधुर, सुरीला व लयबद्ध हुआ करता था।

खाँ साहब ने बन्दिशों के तकनीकी पक्ष पर भी जोर दिया है, कि किस बोल का निकास किस प्रकार किया जाए, कि कैसे कम मेहनत में भी बंदिश की गति व ध्वनि को कायम रखा जाय व किस जगह बजाने पर ध्वनि में स्पष्टता आयेगी। इसके अतिरिक्त कैसे शिष्यों को प्रभावशाली तरीकों से सिखाया जाय कि तबला वादन को अधिक प्रभावशाली बनाया जाय।

उस्ताद आफ़ाक हुसैन खाँ साहब लखनऊ घराने के एक प्रतिनिधि तबला वादक थे। उनका तबला लखनऊ घराने का शुद्ध तबला कहा जाता है। खाँ साहब का स्वतन्त्र व संगत दोनों ही तबला वादन इतना सुरीला था कि उनका तबला 'सुर का साज' भी कहा जाता है। उन्होंने अपनी सूझ-बूझ, मौलिक चिन्तन, सृजनात्मक क्षमता इत्यादि के द्वारा तबला वादन के क्षेत्र में उन्होंने अभूतपूर्व कार्य किए। खाँ साहब संगत व स्वतनत्र वादन में निपुण कलाकार थे। तबला वादन के क्षेत्र में उस्ताद आफ़ाक हुसैन खाँ साहब का योगदान अतुलनीय है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

- माईणकर, श्री सुधीर, 2000, तबला वादन कला और शास्त्र, अ. भा. गांधर्व महाविद्यालय मंडल मिरज।
- श्रीवास्तव, आचार्य गिरीश चन्द्र, 1996, ताल कोश, रुबी प्रकाशन, इलाहाबाद।
- मिश्र, पं. विजय शंकर, 2005, तबला पुराण, कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
- kippen, James, 1988, Tabla of Lucknow, Combridge University Press, New York.
- Chishti, Dr. S. R., 2016, Compositions of the great Table Maestres, Kanishka Publishers Distributers, New Delhi, ISSN- 978-81-8457-695-5.

लखनऊ घराने की तबला वादन परम्परा में उस्ताद जहाँगीर खाँ साहब का योगदान

ज्योति चौधरी

शोध छात्र,
राजा मानसिंह तोमर संगीत एवं कला विश्वविद्यालय,
ग्वालियर, मध्यप्रदेश

प्रो.(डॉ.). सुनील पावगी

राजा मानसिंह तोमर संगीत एवं कला
विश्वविद्यालय, ग्वालियर, मध्यप्रदेश

सारांश

तबले के घरानों की बात की जाए तो लखनऊ घरानें का भी अपना एक गौरवशाली इतिहास रहा है। इस घराने में संगीत जगत के अनेक ऐसे मूर्धन्य उच्च कोटि के कलाकारों के साथ-साथ संगीत को समृद्ध करने वाले ऐसे रत्न दिए; जिनके प्रकाश से संगीत जगत आज भी दैदीप्यमान है। लखनऊ घराने की कुछ परम्परायें भी चली, जिनमें विशेष रूप से मध्य प्रदेश में उस्ताद जहाँगीर खाँ साहब द्वारा इन्दौर में चली आ रही परम्परा है। उस्ताद जहाँगीर खाँ साहब ने इन्दौर में तबले के प्रचार-प्रसार के साथ सैकड़ों शिष्यों को तबलें की शिक्षा-दीक्षा के साथ-साथ मध्यप्रदेश में तबला वादन परम्परा का विस्तार किया एवं अपने चिन्तन से तमाम स्वरचित बंदिशों की एक अमूल्य धरोहर संगीत जगत को समर्पित की। जिसके लिए संगीत जगत सदैव उनका ऋणी रहेगा।

कुंजी शब्द

लखनऊ घराना, उस्ताद जहाँगीर खाँ साहब, तबला वादन, परम्परा, इन्दौर 'शिष्य परम्परा'

प्रस्तावना-

प्राचीन काल से संगीत के संरक्षण एवं संर्वधन का श्रेय घरानों को प्राप्त है। आज जो संगीत जगत में प्रतिनिधि कलाकार हैं प्रायः किसी न किसी घरानें से सम्बन्ध रखते है।

घराना अर्थात् रीति, पद्वति, स्टाइल अथवा एक निश्चित परम्परा। घराना कलाकारों का एक ऐसा परिवार है जिसकी प्रत्येक इकाई में उसके नियमों तथा उसके आद्यकर्त्ता की छाप लगी रहती है। घराने के मुख्य ध्येय रीति-रिवाज, उसके समय की राजकीय एवं सामाजिक परिस्थिति तथा उसके मूल प्रवर्तक की अपनी वृत्ति संस्कार और संस्कृति पर आधारित होते है। घराने के मूल में गुरु-शिष्य परम्परा का महत्वपूर्ण स्थान है। हम तबले के घराने की बात करें तो प्रायः छः घरानें है और सबकी अपनी एक अलग विशेषता है। तबले के घरानों में प्रायः दिल्ली, अजराड़ा, लखनऊ, फरुर्खाबाद, बनारस और पंजाब है। यह छः अलग-अलग होते हुए भी एक पुष्पगुच्छ की तरह संगीत जगत को सुशोभित कर रहे हैं। तबले का सबसे पहला घराना दिल्ली को माना जाता है और चार घरानें इसकी शाखा के रुप में हैं तथा पंजाब स्वतन्त्र घराना माना जाता है। सन् 1750 के आस-पास दिल्ली घरानें के उस्ताद सिद्वार खाँ के पौत्र उस्ताद मोदू खाँ और बख्शू खाँ ने लखनऊ

आकर वहाँ की तत्कालीन सांगीतिक परिस्थितियों का निरीक्षण किया और तदनुसार परिवर्तन करना आवश्यक समझा। उन दिनों लखनऊ में कत्थक नृत्य का प्रचलन बढ़ रहा था। जिसके अनुरुप इन्होनें तबले में परिवर्तन करके यहाँ के नृत्य के साथ उसका तालमेल बनाया इस कड़ी में लखनऊ घरानें के तमाम विद्वान तबला वादक हुए जिन्होनें देश-विदेश तक बहुत नाम कमाया चाहे वह वंश परम्परा में हो अथवा शिष्य परम्परा मे; इस श्रृखंला में उस्ताद जहाँगीर खाँ साहब का नाम आता है।

लखनऊ घराने की तबला वादन परम्परा एंव वादन विशेषताएँ

लखनऊ घराने की उत्पत्ति और प्रगति के पीछे लखनऊ के नवाबों और कला प्रेमियों का विशेष सहयोग रहा है। ''नवाब आसिफुद्दौला के शासन काल में उस्ताद मोदू खाँ साहब लखनऊ आए और उनके कुछ वर्ष पश्चात् उनके अनुज उस्ताद बख्शू खाँ भी वहाँ आ गए।''[1] दोनों ने मिलकर लखनऊ में संगीत का उच्च स्तरीय वातावरण बनाया और यहीं से लखनऊ घरानें की परम्परा का जन्म हुआ। प्रस्तुत विवरण सारणी संख्या-1 से स्पष्ट है–

विवरण सारणी संख्या-1

लखनऊ घराना परम्परा

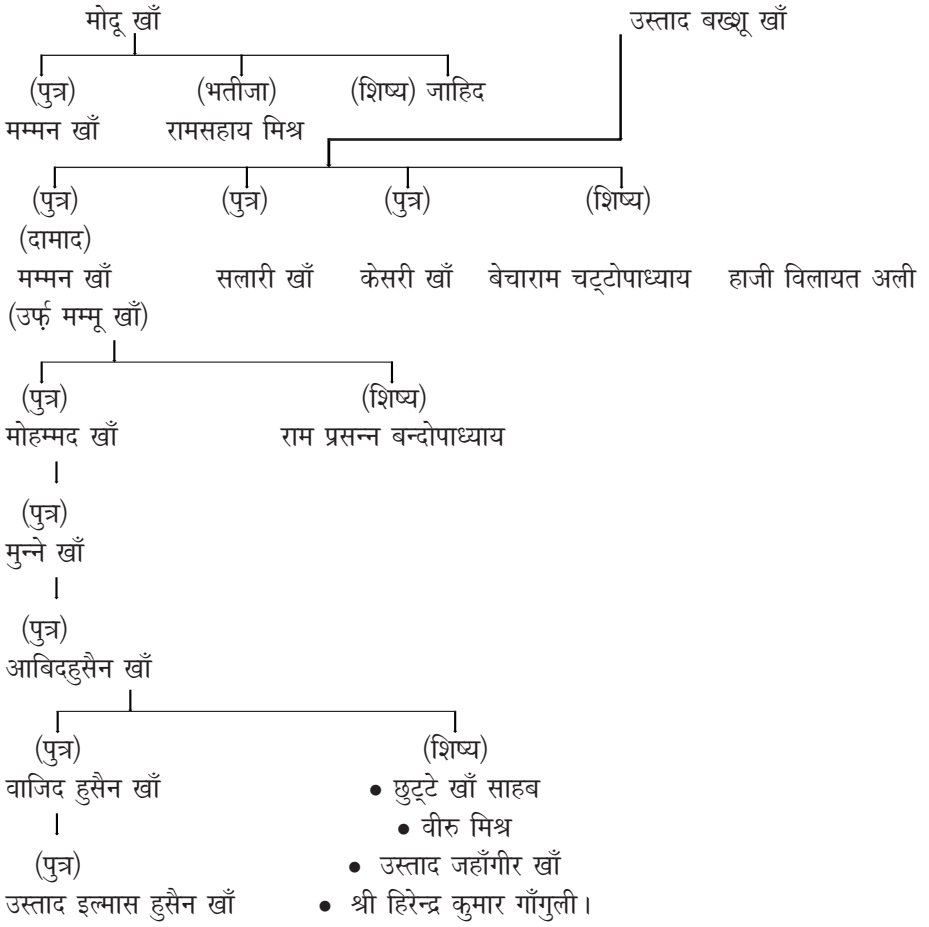

वादन विशेषताएं-

1- लखनऊ के सांगीतिक वातावरण पर नृत्य और पखावज का विशेष प्रभाव रहा है जिसके कारण यहाँ की वादन शैली में खुला व जोरदार वादन का प्रयोग प्रमुखता से किया जाता है।

2- लखनऊ घरानें के तबला वादन में लव और स्याही का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है। जिससे इसके वादन में मधुरता आती है।

3- लखनऊ घराने में पाँचों अँगुलियों का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है।

4- लखनऊ घरानें के कलाकारों में बाँयें पर अँगूठे द्वारा मींड़, घसीट उत्पन्न करने की प्रथा प्रचलित है।

5- लखनऊ घरानें के कायदें अन्य घरानों की अपेक्षा बड़े होते है।

6- स्वतन्त्र वादन के समय कलाकार द्वारा वादन प्रस्तुत करने से पूर्व बंदिशों की पढ़न्त करना लखनऊ घरानें की प्रमुख विशेषता है।

7- लखनऊ ठुमरी गायन शैली का प्रमुख केन्द्र रहा है। प्रायः ठुमरी के साथ संगत करने में लग्गी - लड़ियों का प्रयोग प्रमुखता से किया जाता है यही कारण है कि लखनऊ घरानें की वादन शैली में लग्गी - लड़ियों का प्रयोग विशेष तौर से किया जाता है।

8- इस घराने में तगत्र, दींग, नग-नग, किट-तक धेता धड़ान, घिड़ान, घेनतड़ाऽन, धेतधेत, घेड़नग, घेतान, धेधित्रान, क्ड़ा, धेट धेट, क्ड़ध, तेट आदि बोल समूह का प्रयोग अधिक देखा जाता है। धेट धेट, धागे तेट, क्ड़ध तटे धागे तेट शब्द का प्रयोग तो लखनऊ घरानें का एक प्रतीक सा बन गया।[2]

लखनऊ के तबला घराने की वंश परम्परा में ही खलीफा आबिद हुसैन खाँ का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। आप लखनऊ के प्रसिद्ध नृत्यकार ठाकुर प्रसाद जी के घराने के कलाकारों के साथ वर्षों तक संगत करके 'नचकरन' में आप निपुण हो गये थे। साथ ही साथ आप एक योग्य गुरु भी थे। आप ने सन् 1928 से 1936 तक मेरिसम्यूजिक कॉलजे वर्तमान में भातखण्डे संगीत संस्थान सम विश्वविद्यालय लखनऊ में शिक्षण कार्य भी किया। आपके शिष्यों की वृहद्व श्रृंखला में एक नाम उस्ताद जहाँगीर खाँ साहब का आता है। जिन्होनें आपकी वादन शैली और विशेषताओं को आत्मसात करके तबला जगत में एक अलग ख्याति अर्जित की।

लखनऊ घरानें की परम्परागत गत-

लखनवी गत - तोल त्रिताल2

धाऽघेघे नक धिन तक धिन तक धिन
×
तक धिन तूना कता तक तक तिन तिन
2
तकत, त कत धाऽ धाऽऽघे नक धिन
×
कतक घे तक धिन धागेन धा गेना तिन
3
ताऽकेके नक तिन तकतिन तकतिन
×
तकतिन तूना कता तकतक तिनतिन
2
तकतत कतधाऽ - धाऽऽघे नक धिन
×
कतकघे तक धिन धाऽऽघेनकधिन कतकघेनकधिन
धा
×

उस्ताद जहाँगीर खाँ साहब का योगदान-

उस्ताद जहाँगीर खाँ साहब का जन्म विश्व की सांस्कृतिक राजधानी वाराणसी (उत्तर प्रदेश) में सन् 1869 ई. के लगभग माना जाता है। ''आपके पिता जनाब अहमद खाँ एक अच्छे कलाकार थे। बालक जहाँगीर को संगीतिक वातावरण परिवार में मिला,

आपने तबले की शिक्षा का प्रारम्भ अपने पिता से किया। गुणग्राही जहाँगीर खाँ ने जिन-जिन उस्तादों से शिक्षा ली, उनमें पटना के मुबारक अली खाँ, बरेली के छन्नू खाँ, दिल्ली केफिरोजशाह और लखनऊ के खलीफा आबिद हुसैन खाँ मुख्य है।''4 इस प्रकार उस्ताद जहाँगीर साहब ने विभिन्न घरानों की वादन शैलियों की विशेषताओं को सीखा, परंतु उन्होनें लखनऊ घरानें की वादन शैलियों को बारीकियों से आत्मसात किया। इस प्रकार आपने सभी घरानों की वादन शैलियों को कठिन साधना एंव लगन से सि्द्ध कर लिया और तबले में आप ने एक अलग ख्याति अर्जित की उस्ताद जहाँगीर खाँ साहब के व्यक्तित्व की यह प्रमुख विशेषता थी कि -अगर कोई कलाकार किसी की निंदा करता था तो वे उठकर चले जाते थे। किसी का गाना बजाना उन्हें नहीं जचता और कोई पूछ बैठता था तो कहते, ''दुनिया में कोई खराब नहीं है। सभी अपनी जगह ठीक है। उस्ताद जहाँगीर खाँ साहब ने अपने समय के उच्च कोटि के कलाकारों के साथ संगत की और देश-विदेश में एक अलग सम्मान अर्जित किया।

आप संगीत सम्राट उस्ताद रजब अली खाँ के साथ कई वर्षों तक सफलतापूर्वक संगत करते रहे। आप का तबला बहुत ही सुमधुर व स्पष्ट था। आपके तबला वादन से प्रभावित होकर इन्दौर के महाराज तुकोजीराव होलकर ने सन् 1911 ई. के लगभग आपको अपने राज दरबार में अन्य प्रतिष्ठित कलाकारों के साथ आपको भी नियुक्त कर लिया। जिसके उपरान्त आप इन्दौर के ही हो कर रह गए और अपना कर्म क्षेत्र इन्दौर को ही चुना। आपने लखनऊ घराने के तबला वादन परम्परा को इन्दौर में विकसित किया और सैकड़ों शिष्यों को तबले की शिक्षा देकर तबला जगत को और अधिक समृद्ध किया। आपने सैकड़ों शिष्य तैयार कर इन्दौर में अपनी एक अलग कीर्ति स्थापित की। अतिश्योक्ति नहीं होगी कि आज जो मध्यप्रदेश में तबला बज रहा है या जो परम्परा चल रही है वह आप की तपस्या एवं संगीत साधना का प्रतिफल है।''उस्ताद जहाँगीर खाँ साहब 1959 ई. में राष्ट्रपति से सम्मानित किए गए। संगीत नाटक अकादमी दिल्ली ने उन्हे फेलोशिप प्रदान की और इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागगढ़ ने 'डाक्टर ऑफ म्यूज़िक' की मानद उपाधि देकर इस कला पुजारी को सम्मानित किया। इसके अतिरिक्त सन् 1955 ई. में 'अभिनव कला समाज' इन्दौर में 'तबला नवाज' की उपाधि दी और 'संगीत समाज' मुम्बई ने भी आपको सम्मानित किया।''[5]

उस्ताद जहाँगीर खाँ साहब शिक्षा देने में बहुत उदार थे। उतने अच्छे एक गुरु भी थे।

''आपके शिष्यों में कुछ नाम इस प्रकार है- सर्वश्री नारायण राव इन्दूरकर, स्व. चतुरलाल, महादेवराव इन्दूरकर, धूल जी खाँ साहब, नियाजू खाँ, महबूब खाँ(पुणे), अब्दुल हफीज़(उदयपुर) गजानन ताड़े, रवि दातें, दीपक गरुण, दिनकर मजूमदार जो उनकी कला का प्रचार - प्रसार कर रहे हैं।''6 इन सभी के शिष्य - शिष्याएं जहाँगीर खाँ साहब की तबला परम्परा को अखण्ड बनाए रखने हेतु संकल्पित हैं। जहाँगीर खाँ साहब की संगीत जगत की इस अमूल सेवा के लिए संगीत जगत हमेशा ऋणी रहेगा और आप की कीर्ति का सदा गुणगान करता रहेगा। आपने अपने जीवन की अन्तिम साँस 11 मई सन् 1976 को इन्दौर में ली।

<u>उपसंहार-</u>

उस्ताद जहाँगीर खाँ साहब ने लखनऊ घराने की तबला वादन शैली को सम्पूर्ण देश में प्रचारित-प्रसारित करने में उल्लेखनीय योगदान दिया। इन्दौर के होलकर राजदरबार में दरबारी कलाकार के रूप में स्थापित होकर आपने इन्दौर को अपनी कर्मभूमि बनाया, जिस कारण इन्दौर सहित संपूर्ण मध्यप्रदेश में उस्ताद जहाँगीर खाँ साहब की वादन शैली अत्यंत लोकप्रिय हुई। साथ ही आप संगीत जगत में उस्ताद जहाँगीर खाँ ''इन्दौर वाले'' के

नाम से प्रसिद्ध हुए। आपके द्वारा रचित बंदिशों से तबला जगत समृद्ध है। आप तबला एकल वादन के साथ ही उत्कृष्ट तबला साथ-संगति के लिये भी जाने जाते थे। आपके अनेक शिष्य आपकी तबला वादन परम्परा को जारी रखे हुए हैं। अत्यंत सहज एवं सरल व्यक्तित्व के धनी उस्ताद जहाँगीर खाँ साहब संगीत जगत में युगों-युगों तक अमर रहेंगे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1- 'पखावज और तबला के घराने एवं परम्परायें', मिस्त्री, डॉ. आबान ई., प्रकाशक पं. केकी.एस. जिजिना स्वर साधना समिति, मुम्बई, संस्करण 2000, पृष्ठ संख्या 145-146।

2- 'पखावज और तबला के घराने एवं परम्परायें', मिस्त्री, डॉ. आबान ई., प्रकाशक पं. केकी.एस. जिजिना स्वर साधना समिति, मुम्बई, संस्करण 2000, पृष्ठ संख्या 150

3- 'पखावज और तबला के घराने एवं परम्परायें' , मिस्त्री, डॉ. आबान ई., प्रकाशक पं. केकी.एस. जिजिना स्वर साधना समिति, मुम्बई, संस्करण 2000, पृष्ठ संख्या 153

4- 'ताल परिचय' (भाग-3), श्रीवास्तव आचार्य गिरीश चन्द्र, रूबी प्रकाशन इलाहाबाद, 211016, संस्करण 2006, पृष्ठ संख्या 175।

5- 'ताल कोश' (वृहद् ताल शब्दकोश) श्रीवास्तव आचार्य गिरीश चन्द्र, रूबी प्रकाशन इलाहाबाद 211016, संस्करण-द्वितीय 2017, पृष्ठ संख्या 102।

6- पं. दिनकर मुजूमदार से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी।

तरबदार सितार की उत्पत्ति एवं विकास का अध्ययन

विधुश्री पाण्डेय

(शोध छात्र)

इंदिरा गांधी अंतरराष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

भूमिका

मनुष्य की प्रकृति हमेशा से बहुत कुछ जानने, नया सीखने की रही है और अपनी इसी प्रकृति के कारण उसने हमेशा अपने प्रयत्नों से कुछ नया ढूंढा, नया इजाद किया है। आदिकाल के मनुष्यों ने आग की खोज कर सभ्यता के इतिहास में अपना पहला कदम रखा था। समय के साथ-साथ मनुष्य की आवश्यकताएं बढ़ती गई और उन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उसने आविष्कार किए जिनके कारण उसने उन सभी चीजों को खोज निकाला जिनकी उसे चाहत और जरूरत थी। धीरे-धीरे शिक्षा और संस्कार से परिमार्जित होकर उसने अपनी सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित किया।

संकेत शब्द :

सितार, अवनद्धवाद्य, डॉ. लालमणि मिश्र

वाद्य शब्द का अर्थ

'वाद्य' शब्द की व्युत्पत्ति 'वद्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है स्पष्ट बोलना। विस्तृत अर्थ में किसी भी संगीतात्मक ध्वनि उत्पादक वस्तु को 'वाद्य' की संज्ञा दी जा सकती है। इसके अंतर्गत प्रकृति प्रदत्त मानव-कर्ण को भी 'वाद्य' के अंतर्गत शामिल किया जा सकता है। संकुचित अर्थ में, वाद्य का तात्पर्य मानव-निर्मित वाद्य से होता है जो संगीतोपयोगी स्वरों का सृजन करने में सक्षम हो।[1]

'डा. लालमणि मिश्र' ने संगीतात्मक ध्वनि तथा गीत को प्रकट करने वाले उपकरण को 'वाद्य' कहा है।[2]

'वाद्य' के शाब्दिक अर्थ को जाने तोहर वह यंत्र जो बजाने योग्य होतथा जिसके द्वारा स्वरों का आस्वादन किया जा सके वह 'वाद्य' कहा जा सकता है।

वाद्यों की उत्पत्ति

वाद्यों की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न विद्व ानों ने अपने मत प्रस्तुत करते हुए उनकी उत्पत्ति का संबंध अलग-अलग देवी-देवताओं से जोड़ते हुए कहा कि आदि देव शिव द्वारा अवनद्ध वाद्य डमरु की उत्पत्ति हुई, देवी सरस्वती द्वारा वीणा, देव विष्ण ु द्वारा शंख तथा कृष्ण जी द्वारा मधुर बांसुरी की उत्पत्ति के अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं।

वाद्यों के पृथ्वी पर प्रादुर्भाव के संबंध में एक अन्य स्रोत के अनुसार पूर्व काल में पृथ्वी पर 10 प्रकार के कल्पवृक्ष थे, इसमें से एक का नाम त्यांग था इसी कल्पवृक्ष ने मानव को चार प्रकार के वाद्य प्रदान किए।[4]

संस्कृत साहित्य की परंपरा में रचित आचार्य शुभंकर ने वाद्यों की उत्पत्ति का संबंध देवता, गंधर्व, राक्षस तथा किन्नरों, आदि से जोड़ा है। उनके

मतानुसार भिन्न-भिन्न वाद्यों का संबंध भिन्न-भिन्न वर्ग के लोगों से था।

ततं वाद्यंतु देवानां गंधर्वाणां च शोषिरम्।
आनद्धं राक्षसानातुं किन्नराणां धनं विदुरू।
निजावतोर गोविन्दरू सर्वमेवानयत क्षितौ।

अर्थात् तत् वाद्य देवताओं से, सुषिर गंधर्वों से, अवनद्ध राक्षसों से तथा घन किन्नरों से संबंधित थे। जब श्री कृष्ण ने अवतार लिया, तो वे इन चारों प्रकार के वाद्यों को पृथ्वी पर ले आए।[5]

इस तरह हमें वाद्यों की उत्पत्ति के विषय में बहुत से महत्वपूर्ण ग्रंथों द्वारा बहुत सी महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती हैपरन्तु तब भी इतिहासकार अभी तकइस प्रश्न का उपयुक्त उत्तर नहीं दे पाए हैं कि कौनसा वाद्य पहले बना तथा कौनसा वाद्य बाद में। वाद्यों की उत्पत्ति किसतरह हुई तथा कौनसे वर्ग के वाद्य का निर्माण पहले हुआ, इस बात का तो कोई ठोस सबूत उपलब्ध नहीं है, तब भी मानव समाज के सृजन की मूलभूत प्रवृत्तियों के अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सबसे पहले सांगीतिक वाद्यों में घन वर्ग के वाद्यों की ही खोज हुई होगी। घन वाद्यों की ध्वनि स्वर और संगीत उपयोगी ना होते हुए भी लय और ताल देने के काम आती है। लकड़ी और हड्डियों के टुकड़े, झांझ, मंजीरा, करताल आदि सभी घन वर्ग के वाद्यों में आते हैं।

इस वर्ग के वाद्यों के बाद सुषिर वाद्यों का जन्म हुआ, क्योंकि शुरुआत में सुषिर वाद्य प्रकृति प्रदत्त वंश, नरसल, श्रृंग या जानवरों की हड्डी आदि से बने थे। मुंह से सीटी की आवाज उत्पन्न करने की क्रिया ही सुषिर वाद्यों की जननी है। जब तक मुंह से बोलना प्रचलन में नहीं आया था तब मानव विभिन्न संकेतों तथा अस्पष्ट स्वरों द्वारा अपने विचारों का आदान प्रदान करता था, तब मुंह से बजाई सिटी की आवाज भी इन्ही अस्पष्ट स्वरों में निहित थी। श्वेद-ब्यास प्रणित में 'हरिवंश पुराण' में भगवान श्री कृष्ण के द्वारा पत्तों का बाजा बजाए जाने का उदाहरण मिलता है। वेदों में भी नाड़ी, तणव, शंख, आदि सुषिर वाद्यों का उल्लेख मिलता है।'[7]

सुषिर वाद्यों के बाद ही अवनद्ध वाद्यों का आविष्कार हुआ क्योंकि वंशी, श्रृंग, आदि सुषिर वाद्यों को वादन योग्य बनाने में केवल एक ही उपकरण की जरूरत होती थी जबकि अवनद्ध वाद्यों को वादन योग्य बनाने में चमड़ा,काष्ठ, आदि कई उपकरणों की जरूरत होती थी। जिसमें कुछ मानव निर्मित उपकरण भी शामिल थे। आदिमानव बहुत से जानवरों को मारकर उनके माँस को खाया करते थे तथा ठंड आदि प्रकोपों से बचने के लिए उसके चमड़े को अपने शरीर पर भी पहन लिया करते थे। इस प्रकार उस चमड़े को पहनने लायक बनाने के लिए उसे तान कर किसी कड़ी चीज से पीटते रहे होंगे जिससे गंभीर नाद उत्पन्न हुए होंगे इससे प्रेरणा प्राप्त कर उसने अपनी कल्पना अनुसार अवनद्ध वाद्यों का आविष्कार किया।

'अवनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति के बाद तंत्री वाद्यों की उत्पत्ति हुई। आदि मानव जब धनुष बाण से जानवरों का शिकार करता था, तब बाण को धनुष पर चढ़ा कर छोड़ते समय उससे एक टंकार की ध्वनि उत्पन्न होती थी। बार-बार इन ध्वनियों का श्रवण करने पर उसने उसके आधार पर एक वाद्य का निर्माण किया जिसने तंत्री वाद्य के रूप में जन्म लिया। प्रारंभिक काल में उसने इन वाद्यों में धातु निर्मित तंत्रियों के स्थान पर जानवरों के तंतुओं का उपयोग किया।' 8धीरे-धीरे उसने तंत्री वाद्य के स्वरूप एवं बनावट आदि मैं परिवर्तन किया। वैदिक साहित्य में वीणा, बाण, कर्करी आदि कई प्रकार के तंत्री वादियों का वर्णन प्राप्त होता है, जिसका कालांतर में और भी विकास करके आधुनिक रूद्र वीणा, तंजौरी वीणा, सितार आदि वाद्यों का आविष्कार किया गया। गज से बजाए जाने वाले तंत्री वादियों का निर्माण प्राचीन काल से ही हो चुका था। ष् रावण ने श्रावणहत्था' नामक तंत्री वाद्य का आविष्कार किया था, जिसे गज से बजाया जाता था। इसी का परिमार्जित रूप आधुनिक वॉयलिन है।ष् 9

इसलिए अंत में हमने यही कहेंगे कि जब से इंसान ने अपनी समझदारी से काम लेना शुरू किया

तभी से उसने वाद्यों का निर्माण भी किया। कौन से वाद्य की उत्पत्ति पहले हुई इसके बारे में कोई तथ्य प्रमाणित नहीं है पर इतना जरूर है कि वाद्य हमारे सामने अपने प्राचीन रूप को बदलकर नए रूप में विद्यमान् हैं।

वाद्य वर्गीकरण–

भारतीय संगीत के वाद्य हमारे जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन सभी वाद्यों को हमारे विद्वानों ने 4 वर्गों में विभाजित किया है। यह 4 वर्ग कुछ इस प्रकार हैं–

1. तत वाद्य
2. सुषिर वाद्य
3. घन वाद्य
4. अवनद्ध वाद्य

इन सभी वर्ग के वाद्यों में से इस लेख में हम विशेषकर तत् वाद्यों के वर्ग के वाद्य सितार के बारे में चर्चा करेंगे। सितार के आविष्कार तथा उत्पत्ति के संबंध में अभी तक कोई निश्चित मत प्राप्त नहीं हुआ है। बहुत से लोगों के बहुत प्रकार के मत है परंतु उसमें से जो दो बहु प्रचलित मत है उसमें पहले मत के अनुसार अमीर खुसरो ने इस वाद्य का आविष्कार किया था तथा दूसरे मत के अनुसार तानसेन के वंशज खुसरो खाँ ने इस वाद्य की रचना की थी। जहाँ इस वाद्य के प्रचार प्रसार की बात आती है वहां जो सबसे मुख्य नाम हमें सुनने को मिलते हैं वह हैं तानसेन के वंशज अमृत सेन, रहीम सेन आदि।

तरबदार सितार की उत्पत्ति

तरबदार सितार, सितार का वह रूप है जिसमें सितार के मुख्य 7 तारों के साथ-साथ तरब के भी तार लगाए जाते हैं। यह तार सितार के पर्दों के नीचे से होकर जाते हैं। तरबदार सितार के प्रचलन से पहले तरबहीन सितार प्रचलित था। आधुनिक समय में तरबदार सितार ने पूरी तरह से तरबहीन सितार का स्थान ले लिया है और तरबहीन सितार अप्रचलित सा हो गया है। तरबदार सितार की उत्पत्ति के विषय में बताने से पहले मैं 'तरब' शब्द के अर्थ को परिभाषित करना चाहती हूँ।

'तरब' एक फारसी शब्द है जिसका अभिप्राय है 'उत्तेजना' या 'आनंद'। मध्यकालीन युग से इसका उपयोग संगीत अनुभूति के लिए किया जाता रहा है।10

तरबदार सितार की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न विद्वानों के अपने अलग-अलग मत हैं जिसमें से कुछ इस प्रकार हैं -

डॉ. शरमिष्ठा सेन के अनुसार -

'सेनिया घराने के निहाल सेन ने सितार में तरब के तार का चलन आरंभ किया'।[11]

उस्ताद विमलेन्दु मुखर्जी के अनुसार -

सितार में तरबों की सृष्टि 'साजे कश्मीर' (कश्मीर लोक वाद्य) के आधार पर की गई है।

तरबदार सितार का विकास

'परिवर्तन' प्रकृति का नियम है। प्रकृति में विद्यमान सभी वस्तुओं में समय के साथ साथ परिवर्तन होता है। बदलाव के कारण ही नई-नई वस्तुओं का आविष्कार होता है। इसी तरह क्रमशः आवश्यकता के अनुसार सितार का भी विकास होता गया, क्योंकि यह एक अनन्त नियम है कि किसी भी वस्तु के रूप में बदलाव या विकास युग की जरूरत के अनुरूप होता है। सितार का विकास भी कुछ इसी तरह हुआ। सादे सितार से लेकर तरबदार सितार तक की लंबी विकास यात्रा में कई संगीत साधकों एवं संगीत मर्मज्ञों का योगदान रहा है। हजारों सालों की विकास यात्रा के बाद आज तरबदार सितार का यह रूप हमारे सामने हैं।

तरबदार सितार के विकास पर मुख्य रूप से निम्नलिखित दृष्टिकोणों द्वारा प्रकाश डाला जा सकता है–

- बनावट
- परदों की व्यवस्था
- मींड लेने का क्षेत्र

● सितार के बालों को निकालने की विधि

बनावट

समय की आवश्यकता के अनुसार प्रत्येक वस्तु में परिवर्तन होता है, यह एक शाश्वत सत्य है। बनावट की दृष्टि से सितार के स्वरूप में डेढ़ सौ वर्षों के अंदर बहुत परिवर्तन हुआ है। सितार से संबंधित कुछ पुरानी पुस्तकों से सितार के तत्कालीन रूप का ज्ञान होता है। इस विषय पर अधिकांश 95-110 वर्ष तक की पुरानी पुस्तकें प्राप्त हुई है जिसमें सितार की बनावट का विस्तृत वर्णन है। 'यंत्र क्षेत्र दीपिका', 'कानून-,-सितार' एवं 'श्राग-प्रकाशिका' जैसी किताबों में सितार का वर्णन प्राप्त होता है।

पहले के समय में तरबहीन सितार बिल्कुल सादे और बिना किसी सजावट के बनते थे। परंतु कुछ समय पश्चात कलाकारों का ध्यान इस के स्वरूप को सुंदर बनाने की ओर गया तथा तरबदार सितार में सजावट का कार्य अधिक होना शुरू हो गया। इसमें तुम्बे के ऊपर कई प्रकार की नक्काशी की जाने लगी।

'बीसवीं शताब्दी के गत वर्षो में सितार का पूरी तरह विकास हो चुका है। बीसवीं शताब्दी के इन वर्षों के प्रारंभ में सितार में तरब की व्यवस्था होने लगी थी, साथ ही तुम्बों का दो रूपों में प्रयोग बढ़ा। जिस सितार में गोल तुम्बी लगती तथा जिसमें चपटी तुम्बी लगती, दोनों को यद्यपि सितार ही कहा जाता था, किंतु चपटी तुम्बी का आकार कछु, की पीठ से मिलता-जुलता होने के कारण कुछ लोग इसे कच्छापी वीणा भी कहने लगे। सितार के कच्छपी रूप का प्रचार सन 1950 तक रहा। उसके बाद क्रमशः गोल तुम्बी के सितार ही बनने लगे।"[12]

तरबदार सितार में तुम्बे को लगाने के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। 'श्री रमाबल्लभ मिश्र का मानना है कि तरबदार सितार के बाएं छोर पर अर्थात खूंटियों की ओर तुम्बा लगाने का आरंभ सेनिया घराने के उस्ताद रहीम सेन ने किया था।13

'जबकि श्री भगवत शरण शर्मा का मत है कि इस तुम्बे को उस्ताद इनायत खां ने लगाया।' 14 'डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग इस तुम्बे को लगाने का श्रेय दो भाइयों अमृत सेन और निहाल सेन को देते हैं।' 15 तरबदार सितार में लगाए गए तुम्बों का आकार बड़े तुम्बों की अपेक्षा बहुत छोटा होता था। इन तुम्बों का प्रयोग करने से तरबदार सितार की ध्वनि की गूंज में अंतर पड़ता था।

पर्दों की व्यवस्था

शुरुआती अवस्था में सितार के पर्दे चपटे होते थे। इसे गोलाकार रूप हीरेन बाबू ने दिया जिससे इसे बजाने में आसानी हुई क्योंकि यह हाथ की स्वभाविक गोलाई के आकार में ठीक बैठता है। साथ ही इससे लम्बी मींड सुविधाजनक रूप में बनाई जा सकती है।

शुरुआत में पर्दे पीतल या लोहे के बनते थे। इन पर्दों को तांत से बाँधा जाता था। आजकल नायलॉन या मछली पकड़ने के धागे से पर्दों को बांधा जाता है। इनका अर्धचंद्राकार आकार होता है। इसकी ऊंचाई क्रम से मंद्र सप्तक से तार सप्तक की ओर कम होती जाती है। पर्दों को मध्यकाल में 'सारिका' कहा जाता था, फिर इन्हें 'सुंदरी' कहा जाने लगा।16

इसका एक नाम 'कट' भी है। 17 आचार्य बृहस्पति के अनुसार 'ईरानी संगीत में मुख्य 12 स्वर थे, तत् वाद्यों पर इन्हें अभिव्यक्त करने वाली 12 सारिकाएँ मुसलमानी भाषा में पर्दा करलाती थी। सितार की सारिकाओं का पर्दा कहा जाना मुस्लिम परंपरा है।18 अभीज्ञान चिंतामणि में इन्हें 'उपनाह' या 'हारावली' कहा है। इस प्रकार सारिका, सुंदरी, फट, पर्दा, उपनार और हारावली एक ही नाम के भिन्न अवयव हैं। इस प्रकार हमें तरबदार सितार के पर्दों तथा उनकी व्यवस्था के विषय में बहुत सी बातें पता चली।

मींड लेने का क्षेत्र

तरबदार सितार की पुरानी वादन शैली में बाएं हाथ की बजाए दाएं हाथ का अधिक महत्व होता था। इसके सिवा जो अचल ठाठ का सितार बजाया

करते थे उसमें सभी स्वरों के पर्दे होते थे इसलिए ऐसे सितार में मींड लेना असंभव था। सितार में तरब के तार लगने के कारण स्वरों की आंस बढ़ी जिससे मींड के क्षेत्र को बढ़ावा मिला। मींड लेने की प्रणाली का विकास होने के बाद 3-4 पर्दों तक की मींड ली जाती थी, जबकि आज के समय में मींड लेने के क्षेत्र में 5-6 पर्दों तक पहुंचा जा चुका है। आज के समय में तरबदार सितार में कठिन से कठिन मुरकियाँ तथा खटकों का प्रयोग संभव है। इन सभी बारीकियों को तरबदार सितार में बहुत ही अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया जाता है।

सितार के बोलों को निकालने की विधि

सितार के मुख्य दो बोलो दा-रा के आविष्कार का श्रेय अमीर खुसरो को जाता है। मुख्य रूप से यह बोल 'दे-रू' थे। 'दे' का अर्थ आह्वान (आने का आमंत्रण) और श्रू' का अर्थ पूर्ति (आकांक्षा की पूर्ति) था। यह मान्यता मुख्यतः उन लोगों की है जो अमीर खुसरो को सितार का आविष्कारक मानते हैं। दाएरा बोलों के मिलने से 'दिर' बोल की उत्पत्ति होती है। इन 3 बोलों की सितार वादन में प्रधानता है और इन्हीं के आधार पर सितार में गतों की रचना की जाती है।

इस प्रकार हमें तरबदार सितार की बनावट, पर्दों की व्यवस्था, मींड लेने का क्षेत्र तथा सितार के बोलों को निकालने की विधि द्वारा तरबदार सितार की उत्पत्ति तथा विकास के बारे में बहुत कुछ जानने को मिलता है तथा सितार के तरबदार सितार बनने तक की यात्रा का तय किया गया पूरा सफर जानने को मिलता है।

निष्कर्ष

इस शोध लेख के माध्यम से मनुष्य के प्रयोगशील तथा सदैव कुछ नया खोजने की इच्छा के बारे में बताया गया है तथा यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार वाद्यों की उत्पत्ति, विकास तथा वर्गीकरण किया गया। मुख्यतः इस लेख में तत् वर्ग के वाद्य सितार का उल्लेख है के किस प्रकार यह वाद्य बनाए प्रचलित हुआ तथा कैसे इसकी लोकप्रियता बढ़ी और फिर अपनी आवश्यकता तथा प्रयास से सितार वाद्य ने तरबदार सितार बनने तक की यात्रा तय की। तरबदार सितार की क्या खासियत है और इस सितार के विकास में जिन मुख्य दृष्टिकोणों पर प्रकाश डाला है जैसे बनावट, परदों की व्यवस्था, मींड लेने का क्षेत्र और सितार के बालों को निकालने की विधि इन सभी पर विशेष ध्यान दिया गया है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. राधेश्याम जायसवॉल . 'भारतीय सुषिर वाद्यों का इतिहास' पृ.40
2. डॉ. लालमणि मिश्र . 'भारतीय संगीत वाद्य' प्राक्कथन
3. डॉ. कैलाश चंद्रदेव बृहस्पति द्वारा अनुवादित 'नाट्यशास्त्र', 28वां अध्याय पृ. 2
4. डॉ. कैलाश पंकज श्रीवास्तव - 'संगीत-वाद्यों की उत्पत्ति तथा विकास', संगीत मासिक पत्रिका जनवरी-फरवरी 1975 पृ. 7
5. शुभंकर - कृत 'संगीत दामोदर'
6. बी.सी- देव- म्यूजिक इंस्ट्रूमेंट, पृ. 3
7. बंदना ठाकुर - तरबदार सितार की उत्पत्ति, विकास एवं महत्व, पृ. 6
8. बंदना ठाकुर - तरबदार सितार की उत्पत्ति, विकास एवं महत्व, पृ. 7
9. बंदना ठाकुर - तरबदार सितार की उत्पत्ति, विकास एवं महत्व, पृ. 8
10. एलयन माइनड, सितार एण्ड सरोद इन दि एटीन्थ एण्ड नाइंटिन्थ सैन्चुरी, पृ. 49
11. सुनीता धर, 'सेनिया घराना एण्ड इट्स कंट्रीब्यूशन इन इण्डियन क्लॉसिकल म्यूजिक' पृ. 166
12. डॉ. लालमणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, पृ. 59
13. डॉ. रमावल्लभ मिश्र, सितार के आविष्कार का इतिहास और विकास के चरण, पृ. 20
14. श्री भगवत शरण शर्मा, हिंदुस्तानी संगीतशास्त्र, भाग 3, पृ. 145
15. डॉ. ल.ना. ग., संगीत निबंधावली, पृ. 550
16. सादिक अली खान, शरमा, इशरत, पृ. 183
17. डॉ. प्रकाश महाडिक, भारतीय संगीत के तन्त्री वाद्य, पृ. 95
18. आचार्य बृहस्पति, भरत का संगीत सिद्धांत, पृ. 27

'वायलिन की उत्पत्ति एवं विकास'

प्रशान्त मिश्र

पूर्व छात्र, संगीत एवं मंच कला संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सार

वर्तमान समय में वायलिन विश्व के सर्वाधिक लोकप्रिय एवं प्रचलित वाद्यों में से एक है। भारत में उत्तर भारतीय एवं दक्षिण भारतीय दोनों पद्धतियों में वायलिन वाद्य के अनेक महान् कलाकारों ने अपनी उच्च कोटि के कला प्रदर्शन से इस वाद्य को भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रतिष्ठापित किया। शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत के साथ-साथ फिल्म संगीत में भी इस वाद्य का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। गज से बजने वाले वाद्यों में 'वायलिन' गायकी के सबसे करीब का वाद्य माना जाता है। आज स्वतंत्र वादन शैली के साथ-साथ संगत करने में भी इस वाद्य का जोड़ नहीं है।

वायलिन की उत्पत्ति के बारे में पाश्चात्य में विभिन्न मत हैं और भारतीय विद्वानों के मतानुसार भारत में भी गज से बजने वाले कई प्राचीन वाद्य थें, जिनमें से उन्हीं वाद्यों को परिवर्तित एवं संशोधित कर वायलिन का क्रमिक विकास किया गया है। इस वाद्य में विविध ध्वनियों को निष्पादन की योग्यता है तथा अन्य वाद्यों की अपेक्षा इसमें तीन से ज्यादा सप्तक में वादन विधि कुशलता से किया जा सकता है, जो इस वाद्य की निजी विशेषता है। वायलिन पर गायकी एवं तंत्रकारी दोनों शैली से वादन किया जाता है और दोनों शैलियों की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं।

सूचक शब्द

वायलिन, उत्पत्ति, पद्धति, वादक, गायकी

भारतीय संगीत जगत् में उत्तर भारतीय पद्धति एवं कर्नाटक पद्धति दोनों में अत्यन्त लोकप्रिय वाद्य वायलिन मूलतः विशुद्ध विदेशी वाद्य है। अपने वर्तमान रूप एवं ढांचे में वायलिन निश्चय ही पश्चिम की देन है। वायलिन शब्द स्त्रीलिंग अथवा पुल्लिंग है, इस सम्बन्ध में अलग-अलग मत पाए जाते हैं। जर्मन भाषा में इस शब्द को स्त्रीलिंग माना गया है, जबकि इटालियन और फ्रेंच भाषा में पुल्लिंग। इसके लिए भारतीय नाम 'बेला' है। कुछ विद्वानों के अनुसार वॉयलिन वाद्य को 'बेहला' तथा 'बाहुलिन' आदि नामों से भी जाना जाता है, परन्तु 'बेला' नाम से यह वाद्य अधिक प्रचलित है। दक्षिण भारतीय में वायलिन का नाम कोई अन्य न रखते हुए उसी रूप में स्वीकार किया गया है। वर्तमान में इस वाद्य की लोकप्रियता भारत में बढ़ गयी है तथा देश के विभिन्न स्थानों एवं मंचों पर इसका वादन होता है।[1]

इस वाद्य की शारीरिक बनावट में बैली, रिब्ज़, बेंक, नेक, फिंगर बोर्ड, पेग्स, स्क्रोल, नट, घुरच, साउण्ड-होल, साउण्ड-पोस्ट, टेलपीस, बटन, ऐडजेस्टर, चिनरेस्टर, तार आदि प्रमुख अवयवों का उल्लेख आवश्यक एवं प्रासंगिक है। घोड़े की पूँछ के बाल से बने गज से वॉयलिन वाद्य का वादन किया जाता है। इस गज के प्रमुख अवयव स्टिक, हेयर, स्क्रू, नट, हेड आदि हैं। गज के बालों की चिकनाई दूर करने के लिए उसके बालों पर बिरोजा (रजन) लगाया जाता है। आधुनिक युग में नायलॉन के रेशों

का भी गज में घोड़ों की पूँछ की बालों के जगह प्रयोग प्रचलित होता जा रहा है। वॉयलिन में लगने वाले चार तार विदेशों में ताँत द्वारा निर्मित होते हैं, किन्तु भारत में मुख्यतः लोहे के तार प्रयुक्त होते हैं, जिनमें तीन तार सिल्वर अथवा अल्युमुनियम के और चौथा तार लोहे का होता है।[2]

वायलिन का आविष्कार :-

वायलिन एक विदेशी वाद्य है। यह गज से बजने वाले वाद्यों में प्रमुख रूप से प्रचलित हैं। इस वाद्य की उत्पत्ति और अविष्कार के बारे में विभिन्न मत पाए जाते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार इस वाद्य का आविष्कार यूरोप में 16वीं शताब्दी के मध्य माना जाता है और तभी से यह अत्यधिक प्रचलित होता गया। एक मतानुसार वायलिन को भारतीय वाद्य माना जाता है और यह 'बेला' नाम से प्रचलित हुआ।

इस मत के विद्वानों के अनुसार लंकापति रावण ने गज से बजने वाले वाद्य यंत्र का आविष्कार किया, जो एक तार का था और उसका नाम 'रावण स्त्रम्' रखा गया। इसके पश्चात् यह वाद्य 11वीं शताब्दी के अंत में भारत आया और उसके बाद परशिया तथा कुछ अन्य देशों में होते हुए यूरोप पहुँचा। वहाँ इसमें कुछ परिवर्तन किए गए और इस प्रकार वर्तमान वायलिन के रूप में इसका पूर्ण विकास हुआ।

एक पाश्चात्य विद्वान के मतानुसार 400 वर्ष पूर्व यूरोप में 'वॉयल' (टपवस) नामक एक वाद्ययंत्र का आविष्कार हुआ, जिसका प्रचार 16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक रहा। बाद में इसी 'वॉयल' यंत्र के आधार पर वायलिन बनाया गया। एक और मतानुसार 1563 ई. में वेनिस नगर के एक ग्रामीण लीनारोनी ने 'टेनर वायलिन' का आविष्कार किया था। उसी के आधार पर इटली के दो कलाकारों ने इसमें कुछ और विशेषताएँ सम्मिलित करके इसे नवीन रूप दिया। कोई-कोई इसे जर्मनी का आविष्कार भी बताते हैं। इस प्रकार वॉयलिन के अविष्कार के सम्बन्ध में अनेक धारणाएँ पाई जाती हैं।[3]

विशिष्ट आकार का छोटा सा, गज से बजने वाला चार तारों से युक्त पाश्चात्य वाद्य वायलिन वर्तमान समय में विश्व के सर्वाधिक लोकप्रिय एवं प्रचलित वाद्यों में से एक है। वायलिन के विषय में कुछ विद्वानों के अनुसार भारत में सर्वप्रथम इस वाद्य का प्रयोग बालुस्वामी दीक्षितर ने कराया। दक्षिण भारत में इस वाद्य का प्रचलन अधिक रहा है। कर्नाटकी संगीत में संगत के लिए मुख्य वाद्य वायलिन है। विदेशों में इस वाद्य पर पाश्चात्य संगीत का वादन होता है। इसका प्रयोग स्वतंत्र वादन, संगत करने तथा वाद्यवृन्द में किया जाता है।[4]

वायलिन मिलाना :-

वायलिन एक अत्यधिक परिशुद्ध वाद्य है, जो कण्ठ-संगीत के निकटतम प्रत्युत्पादन की क्षमता रखता है। अतः भारतीय संगीत में संगति के लिए वायलिन को अन्य वाद्यों की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाता है। प्राचीन संगीतशास्त्रों में एक उत्तम वादक के जो लक्षण कहे गए हैं उनके अनुसार तीन सप्तकों (स्थानों) में स्वरों के वादन की क्षमता अधिक मानी गई है।

परन्तु वर्तमान में ढाई सप्तक से अधिक की पहुँच साधारणतः बजाना कठिन होता है, तथापि एक कुशल वायलिन वादक होने के लिए संगीत के अर्थ में तीन सप्तक तथा स्वतंत्र वादन के लिए तीन से चार सप्तक के अन्तराल में वादन होना आवश्यक एवं विशेष माना जाता है। अतः वायलिन मिलाने की विधि में यह प्राथमिक आवश्यकता अपेक्षित है। वायलिन को विदेशी वादक चारों तारों को क्रमशः G . D. A. E. - प़, रे, ध, गं स्वर में मिलाते हैं। भारत में वायलिन मिलाने के कई प्रकार प्रचलित हैं, जो अपने-अपने ढंग से अच्छे हैं। मुख्य रूप से चारों तारों के आधार पर इस वाद्य को मिलाने के तीन मत प्रचलित हैं-

1. कुछ वादक तारों को क्रमशः म़, सा, प, रें स्वर में मिलाते हैं।
2. कुछ वादक तारों को प़, सा, प, सां स्वरों में मिलाते हैं।
3. कुछ वादक तारों को सा़, प़, सा, प स्वरों में मिलाते हैं।

वर्तमान में सा़, प़, सा, प के क्रम के चारों तारों को मिलाने का प्रकार अधिक प्रचार में है तथा

ज्यादातर वायलिन वादक इसी प्रकार से अपना वाद्य मिला कर वादन करते हैं। वायलिन मिलाने का यह प्रकार वायलिन वादकों में बहुमान्य है और अनिवार्य आवश्यकताओं की यथोचित पूर्ति करता है तथा हर अन्य प्रकार से उपयुक्त पाया गया है। इस विधि में वायलिन मिलाने का विशेष लाभ यह है कि यह चारों तारों पर अंगुली-चालन का बराबर अवकाश प्रदान करती है एवं इसमें तार सप्तक तक की वादन क्रिया सहज रूप से पाई जाती है। गायकी अंग की शैली से वायलिन वादक करने वाले कलाकार मुख्यतः इसी प्रकार से वायलिन मिलाने के विधि को अधिक महत्व देते हैं।[5]

भारत में वायलिन का विकास :-

हमारे देश में एक ओर जहाँ कई प्राचीन तंत्री वाद्यों का प्रयोग धीरे-धीरे कम हुआ है, वहीं दूसरी ओर वायलिन वाद्य उत्तर भारतीय शास्त्रीय सुंगीत तथा दक्षिण भारतीय (कर्नाटक संगीत) संगीत पद्ध ति में अत्यधिक रूप में इस वाद्य पर विभिन्न रागों की प्रस्तुति होती है, जिसमें आलाप, विलम्बित, मध्य तथा द्रुत लय की बंदिशें तथा झाला आदि का वादन किया जाता है। इस वाद्य पर शास्त्रीय तथा उपशास्त्रीय संगीत (ठुमरी, दादरा, भजन आदि) का सुमधुर वादन प्रस्तुत किया जाता है। भारतीय संगीत में वायलिन वाद्य पर गायकी एवं तंत्रकारी अंग की वादन शैली प्रसिद्ध है। गायकी अंग की वादन शैली पूर्णतया गायन विधा से प्रभावित है जिसमें बड़ा ख़्याल एवं छोटा ख़्याल आदि की बंदिशें विलम्बित एकताल, तीनताल, झूमरा तथा मध्य एवं द्रुत लय की बंदिशें विभिन्न तालों में प्रस्तुत किया जाता है। इस वादन शैली में वादक गायकी के स्वरों को ध्यान में रखते हुए बंदिश के शब्द एवं बोलों के अनुरूप वादन करते हैं। इस वाद्य पर बड़ा ख्याल तथा छोटा ख्याल के साथ-साथ टप्पा, तराना, ठुमरी, दादरा, भजन, चैती, कजरी, होली आदि की कर्णप्रिय प्रस्तुति की जाती है। गायकी अंग से वादन करने वाले एक अच्छे वायलिन वादक के प्रस्तुति से कभी-कभी ऐसा आभास होता है कि हम कोई तंत्र वाद्य नहीं, किसी का गायन सुन रहे हों। वायलिन पर गायकी अंग की वादन शैली का श्रेय मुख्य रूप से डॉ. एन. राजम जी को जाता है।

इस वाद्य पर तंत्रकारी अंग की प्रस्तुति भी बहुत ही सुन्दर लगती है। जिस प्रकार सितार एवं सरोद वाद्य पर मिज़राब एवं जवा के प्रयोग से 'दिरदिर' आदि बोलों के वादन करते हैं, उसी प्रकार वायलिन में गज के कुशल प्रयोग से उसकी अपनी एक वादन शैली बजायी जाती है। यह वाद्य वर्तमान समय में संगत करने के लिए भी गायकों के सर्वाधिक प्रिय वाद्यों की श्रेणी में माना जाता है। संगत करने से यह वाद्य कर्नाटक संगीत पद्धति में अधिक प्रचलित है। गायकी के साथ-साथ इसे नृत्य, नृत्यनाटिका, बैले एवं नाट्य आदि में प्रयोग किया जाता है। वृन्द वादन में भी वायलिन वाद्य का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया जाता है।

फिल्म संगीत में भी वायलिन वाद्य का प्रयोग बहुत किया गया है। प्राचीन फिल्मी गीतों में कई प्रसिद्ध फिल्म-निर्देशकों ने समूह वायलिन वादन का प्रयोग किया है। आज इसकी लोकप्रियता क्रमशः बढ़ती जा रही है और अनेक विद्यालयों में विद्यार्थी वायलिन की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इस वाद्य को प्रतिष्ठित एवं शीर्ष वाद्यों के श्रेणी में खड़ा करने का श्रेय प्रमुख रूप से पं. वी.जी. जोग, प्रो. टी.एन. कृष्णन, पं. डी.के. दातार, डॉ. एन. राजम, श्रीमती शिशिर कनाधर चौधरी, डॉ. एल. सुब्रमण्यिम आदि को जाता है।

सन्दर्भ :-

1. 'भारतीय संगीत के तंत्री वाद्य'-महाडिक, प्रकाश (1994), प्रथम संस्करण, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी प्रकाशन, भोपाल, पृ.सं. 136
2. 'काशी की संगीत परम्परा', मिश्र, कामेश्वरनाथ (1997), प्रथम संस्करण, भारत बुक सेन्टर प्रकाशन, लखनऊ, पृ.सं. 240-241
3. 'संगीत विशारद'-वसंत (2010), सत्ताईसवां संस्करण, संगीत कार्यालय प्रकाशन, हाथरस, पृ.सं. 373
4. 'नेट संगीत'-टाक, तेज सिंह (2010), द्वितीय संस्करण, लुमिनस् बुक्स प्रकाशन, वाराणसी, पृ.सं. 191
5. 'बेला बोधक'-राजम्, डॉ. एन. (1969), प्रथम संस्करण, हिन्द प्रिन्टिंग वर्क्स प्रकाशन, वाराणसी, पृ.सं. xvii-xix

An Overview of the Dēśī Tāla Simhalīlā

Bhavana Prabhakaran
Research Scholar
Department of Indian Music
University of Madras
Chepauk, Chennai

Dr. R.Hemalatha
Assistant Professor
Department of Indian Music
University of Madras
Chepauk, Chennai

Abstract

'Tāla' is the temporal aspect of South Indian music that uses numerous hand gestures that repeat cyclically to help sustain the rhythm of a melody. Spanning from the 2nd century to the 20th century, musical treatises/grantha-s written in the past provide insight into a huge variety of tāla-s, some of them having simple structures with few aṅga-s and others having complex structures with many aṅga-s. The number of tāla-s covered by each of the grantha-s is more than a hundred in general, but the exact number of tāla-s differ across grantha-s.

Keywords

Desi Tala, Simhalila, Tala treatises, Tala Structure, Raga Tala Malika

Introduction

Tāla has been an integral part of any form of music, especially of South Indian music, where the tālas seem to have evolved to a great extent. South Indian musical forms are of two broad categories based on tāla - those that are free from the confines of tāla, and those set to definite tāla-s. Forms like vṛtta, ālāpanā and tāna are not confined to tāla while forms like gīta-s, svarajati-s, varṇa-s, kṛti-s, pada-s, jāvali-s, tillānā-s and pallavī-s are set to a variety of tāla-s.

The tāla-s most commonly performed and imparted today are Ādi, Rūpaka, Miśracāpu, Khaṇḍacāpu and Ēka. The Ādi, Rūpaka and Ēka tāla-s are a subset of the broader set of thirty five tāla-s called as 'Sūlādi tāla-s', and only a few compositions are set to the other thirty two. The Sūlādi tāla-s are actually seven tāla structures each set to five different jāti-s, and had evolved in the fifteenth century. These tāla-s in general are composed of three aṅga-s namely Anudruta, Druta and Laghu that may repeat within a tāla cycle, and the maximum number of aṅga-s per cycle in this category of tāla-s is four.

The treatises/grantha-s written on South Indian music provide information about more than a hundred tāla-s that were in practice before the fifteenth century. Those tāla-s in general are seen to consist of six aṅga-s i.e. Anudruta, Druta,

Laghu, Guru, Pluta and Kākapāda. Some of those tāla-s are seen to consist of only one aṅga out of the six, while others are seen to have two, three or more aṅga-s. The aṅga-s occur just once in some tāla-s, whereas in some others, one or more of them occur multiple times within a tāla cycle, resulting in a large number of tāla structures ranging from just one aṅga to more than 30 aṅga-s in a variety of permutations.

In the ancient and medieval period, tāla-s were categorised into Mārga tāla-s and Dēśī tāla-s. The information about five mārga tāla-s is obtained from the thirty first chapter of the grantha Nāṭyaśāstra written in the second century. In the centuries that followed, many more grantha-s were written, providing information about the five mārga tāla-s and more than a hundred dēśī tāla-s.

Some of the grantha-s contain a significant number of verses dedicated to the description of tāla-s nested within a larger chapter. The 12th century treatise Mānasōllāsa of King Somēśvara is an example of such grantha-s. Some other treatises have separate chapters devoted to the listing and description of tāla-s, along with the symbolic notation for each tāla. Saṅgītaratnākara of Śārṅgadēva and Rāgatāḷacintāmaṇi of Pōlūri Gōvinda Kavi are examples of such grantha-s.

Entire grantha-s dedicated to tāla have also been written, in which the basic aspects of time measure, the aṅga structures of the mārga tāla-s and dēśī tāla-s, the symbolic notations, the various hand gestures for reckoning the aṅga-s, the rules of laya, the types of yati-s and gati-s of the tāla-s and the numerous possible ways of expounding the tāla-s are explained in detail. Tāladīpikā and Caccapuṭa Veṇbā are examples of such treatises.

The number of dēśī tāla-s listed is different across grantha-s, but in general, it is more than a hundred in every grantha. Among the tāla-s commonly listed in all the grantha-s, the lakṣaṇa-s of some have undergone changes over the centuries, while those of others have remained unchanged. The tāla Simhalīlā is one of the dēśī tāla-s that has been either described or mentioned in many of the treatises well upto the 20th century. This paper is a study of the lakṣaṇa of the Simhalīlā tāla as seen in available source texts of grantha-s written from the 2nd century to the 20th century in chronological order.

Scope

The scope of this study covers the above mentioned tāla as described in the treatises namely Nāṭyaśāśtra of Bharatamuni (2ndC), Bharatārṇava of Nandikēśvara (Period unknown), Bṛhaddēśī of Mataṅgamuni (9thC), Pañcamarabu of Arivanār (9thC), Aumāpatam of Umāpati (10thC), Saṅgītaratnākara of Śārṅgadēva (13thC), Saṅgītōpaniśat Sārōddhāra of Vacanācārya Sudhākalaśa (14thC), Tāladīpīkā of Sāluva Gōpa Tippēndra Bhūmipāla (15thC), Caturdaṇḍīprakāśikā of Vēṅkaṭamakhī (17thC), Saṅgītadarpaṇa of Catura Dāmōdara (17thC), Rāgatālacintāmaṇi of Pōlūri Gōvinda Kavi (17thC), Caccapuṭa Veṇbā of Varaguṇa Rāman (17thC), Tāḷasamuddiram (Author and period unknown) and Saṅgītasampradāyapradarśinī of Subbarāma Dīkṣitar (20thC). Of these, Pañcamarabu, Caccapuṭa Veṇbā and Tāḷasamuddiram are written in Tamiz

language, Rāgatālacintāmaṇi in Telugu and the others in Samskṛta.

All the technical terms used in this paper, like Aṅga, Mātrā, Lakṣaṇa etc. are in Samskṛta language, unless mentioned otherwise. For ease of understanding, the symbolic notation seen in the grantha-s for the tāla is presented here using the first letters of the aṅga-s that constitute the tāla. For example, the letter L denotes Laghu and D denotes Druta.

Nāṭyaśāstra

In the grantha Nāṭyaśāstra, Mārga tāla-s are seen to be listed, and Dēśī tāla-s are not. The Simhalīlā tāla belongs to the category of Dēśī tāla-s, and hence is not seen in Nāṭyaśāstra.

Bharatārṇava

In Bharatārṇava which is a treatise written on dance, tāla-s are discussed in the seventh chapter, following those that cover one-handed, two-handed and nṛtta hasta-s, movements of the head, kinds of dṛṣṭi-s, various movements of the feet and numerous dance poses. The Simhalīlā tāla is listed as the ninth one, and described in verse 440 with the words 'simhalīlē vidhātavyam laghvādyantam drutatrayam' (Śāstrī, 2016, p.211). The meaning of the above verse is 'In Simhalīlā, three druta-s are to be arranged with a laghu at the beginning and another laghu at the end'. The corresponding symbolic notation is given as LDDDL having 3½ mātrā-s, the number of akṣara-s totalling 4+2+2+2+4 = 14.

Bṛhaddēśī

In the grantha Bṛhaddēśī, although the tāla chapter is unavailable, references to a number of tāla-s are found in the chapters on gīti-s and prabandha-s. Of the forty four prabandha-s listed in the prabandhādhyāya, the twentieth prabandha is called as Simhalīlā and is mentioned as being sung with the Simhalīlā tāla, the lakṣaṇa of which is not given. The prabandha and its corresponding tāla are mentioned in verse no. 414 as 'chandasā simhalīlēti svarāntē nata samyutaḥ; gīyatē yastu virutaiḥ sa bhavēt simhalīlakaḥ' (Śāstrī, 1928, p.145).

Pañcamarabu

In the Tamiz̲ treatise Pañcamarabu that elaborates various aspects of music, instruments and dance, tāla-s are listed in the fifth chapter called Tāḷa Marabu̲. The Simhalīlā tāla called here as 'Siṅgalīlai' is listed in the ninth position, and described in verse form as 'siṅga līlaikōl irubak kattum taṅgiya naḍuviṭṭ rarusuz̲i tamiz̲ē' (Kavuṇḍar, 1975, p.117). The meaning of the above mentioned verse is 'Simhalīlā constitutes two vertical sticks standing on either side of three circles.' In this verse, the vertical sticks denote the laghu-s and the circles denote the druta-s. The number 'three' is indicated by the word 'tamiz̲', following the 'bhūtasaṅkhyā' scheme, as there are three aspects of the tamiz̲ language namely Iyal-tamiz̲, Isai-tamiz̲ and Nāḍaga-tamiz̲. The symbolic notation given for the tāla is LDDDL, equalling 3½ mātrā-s and adding up to 4+2+2+2+4 = 14 akṣara-s.

Aumāpatam

In the treatise Aumāpatam, tāla-s are described in the 24th chapter, with the constituent aṅga-s of each tāla indicated

only through the first letter of its name. The Simhalīlā tāla is described in the verse 'simhalīlāyām lalagala' (Sastri, 1957. p.46), using the first letters of the constituent aṅga-s. Thus the lakṣaṇa of the tāla is derived as Laghu-Laghu-Guru-Laghu, symbolically LLGL, the number of akṣara-s adding up to 4+4+8+4 = 20.

Saṅgītaratnākara

In the grantha Saṅgītaratnākara, the fifth chapter is dedicated entirely to Tāla. The basic elements of tāla namely the concept of Kalā and Mātrā, the various Mārga-s, types of Kriya-s and the rules of Laya are explained. The lakṣaṇa-s of five Mārga tāla-s and 120 Dēśī tāla-s are seen, among which the Simhalīlā tāla is listed as the tenth dēśī tāla, and is described in a portion of the verse 264 as 'laghvantē datrayam simhalīlaḥ' (Sastri, 1951, p.142). The meaning of the above portion is 'Simhalīlā has three druta-s at the end of a laghu'. Thus the symbolic notation for the tāla should ideally be LDDD, the total number of akṣara-s adding up to 4+2+2+2 = 10. But in the reference source text, it is seen to be DDDL, which does not conform to the meaning of the verse, although the total number of akṣara-s is the same for both notations.

Saṅgītōpaniśat Sārōddhāra

In Saṅgītōpaniśat Sārōddhāra, the Simhalīlā tāla is listed as the seventeenth dēśī tāla, under the category of tāla-s with three mātrā-s. The tāla is described in verse no. 55 as 'laghurbindutrayam laśca tālē syāt simhalīlakē' (Shah, 1961, p.31). The symbolic notation for the tāla is given as LDDDL, the number of akṣara-s totalling 4+2+2+2+4 = 14.

Tāladīpikā

In the treatise Tāladīpikā, for which the source has been the R770 manuscript of GOML, Madras, the Simhalīlā tāla is described in page 28 as 'simhalīlayōrantarālē bindavastrayaḥ'. The derivation of the lakṣaṇa of the tāla from the above description is as follows.

The procedure of 'pada-vibhāga' which means separation of the words of the above verse yields 'simhalīlayōḥ antarālē bindavaḥ trayaḥ'. The literal meaning of this is 'Three dots in between two Simhalīlā-s', which is not a meaningful description, as there is only one tāla by the name 'Simhalīlā'. The symbolic notation given in the manuscript is not clear either. This suggests a probable scribal error in the manuscript, the correction to which is derived by referring to the lakṣaṇa-s given in other texts. In the preceding discussion, the lakṣaṇa of the tāla as given in three grantha-s namely Bharatārṇava, Pañcamarabu and Saṅgītōpaniśat Sārōddhāra is LDDDL. The only exception is Saṅgītaratnākara in which the lakṣaṇa is given as DDDL. The same lakṣaṇa LDDDL is seen in the texts discussed subsequently also. In order to concur with the majority, the pada-vibhāga in Tāladīpikā could be changed as 'simhalīlē layōḥ antarālē bindavaḥ trayaḥ' which means 'In Simhalīlā, there are three dots in between two la's, that is, three druta-s in between two laghu-s'. The corrected verse could thus be written as 'simhalīlē layōrantarālē bindavastrayaḥ', yielding the notation LDDDL and a total of 4+2+2+2+4 = 14 akṣara-s.

Saṅgītadarpaṇa

In the treatise Saṅgītadarpaṇa, the sixth chapter which is dedicated to tāla-s

begins from verse no. 621 onwards. After verse no. 798 the lakṣāṇa-s of individual dēśī tāla-s are given, along with their symbolic notations. The Simhalīlā tāla is listed in the tenth position and described by the words 'laghvantē datrayam simhalīlē' (Sastri, 1952, p.134), which are the same as those in Saṅgītaratnākara. However, unlike in Saṅgītaratnākara, the symbolic notation seen here is LDDD, which conforms with the description, and adds up to 4+2+2+2 = 10 akṣara-s.

Caturdaṇḍīprakāśikā

In Caturdaṇḍīprakāśikā, similar to Bṛhaddēśī, a large number of tāla-s have been mentioned and described in the chapters on gīti-s and prabandha-s. In the verses 55 and 56 of the Prabandha chapter, the prabandha named Simhalīlā is mentioned to be one of the seven prabandha-s belonging to the Mēdinī jāti, as shown below.

Verse 55: 'prabandhānuddiśāmyatra prabandhasukhabuddhayē; śrīraṅgaḥ śrīvilāsaśca pañcabhaṅgirataḥ param' (Sastri, Rao, Venkataraman, 1934, p.79).

Verse 56: p'añcānanōmātilakau karaṇam simhalīlakaḥ; mēdinījāṭimantōmī prabandhāḥ sapta kīrtitāḥ' (Sastri, Rao, Venkataraman, 1934, p.79).

This prabandha is then described as pertaining to the Simhalīlā tāla in the verses 107, 108 and 109 as shown below.

Verse 107: athōddēśakramaprāptaḥ simhalīlō nirūpyatē; svaraiḥ pāṭaiśca birudaistēnakaiśca kramēṇa ca (Sastri, Rao, Venkataraman, 1934, p.84).

Verse 108: viracyatē simhalīlanāmnā tālēna sa smṛtaḥ; prabandhaḥ simhalīlākhyaḥ simhalīlē drutāstrayaḥ (Sastri, Rao, Venkataraman, 1934, p.84).

Verse 109: ādyantalaghūpētāstvatra ca svarapāṭakaiḥ; udgrāham kalpayēddhātum virudaistēnakairdhruvam (Sastri, Rao, Venkataraman, 1934, p.84).

In the above verses, the words 'simhalīlē drutāstrayaḥ ādyantalaghūpētāstvatra ca' clearly convey that this tāla comprises of three druta-s with two laghu-s, one at the beginning and one at the end. Thus the lakṣaṇa of the tāla is derived as LDDDL totalling 14 akṣara-s.

Rāgatāḷacintāmaṇi

The Telugu grantha Rāgatāḷacintāmaṇi covers the various aspects of South Indian music and dance in detail. After the discussion on the origin of Nāda and Nāṭyavēda, the concepts of Śruti, Svara, Rāga-s, Characteristics of vāggēyakāra-s and Types of gāyaka-s, the basic concepts of dance are discussed in the fifth chapter called 'Pañcamāśvāsa'. Here the kinds of dancers, qualities of instrument players and types of instruments are explained, followed by an elaborate discussion on Tāla. The author seems to be a devotee of Bhagavān Śrī Rāma, as the diety has been addressed during the description of every tāla. The Simhalīlā tāla is listed as the third among fifty six tāla-s that are categorised as 'Kṣatriya tāla-s', that is, tāla-s that begin with laghu. The tāla is described in verse no. 178 using the words 'saraḷa dvaya madhyambuna baragaga bindu trayambu bhāsilu mūḍu nnra mātra simhalīlā varatāḷamu nandu, rāmavasudhādhīśā !' (Veni, 2008, p.203) The meaning of the above verse is given as 'O great King Rāma! Simhalīlā is of three and a half mātrā-s and it consists of one laghu, three druta-s and one laghu.'

(Veni, 2008, p.321), which is seen in the same reference source text in the section I.3.2.5 titled 'Fifth Aśvāsa'. The lakṣaṇa of the tāla is thus derived from the above description as LDDDL, totalling 4+2+2+2+4 = 14 akṣara-s.

Caccapuṭa Veṇbā

The Tamiz̲ treatise Caccapuṭa Veṇbā contains detailed information about 113 tāla-s, where each tāla is described through a four-lined verse that adhers to the 'Veṇbā' mēter of Tamiz̲ poetry. The Simhalīlā tāla is mentioned as 'Siṅgalīlai' and is listed in the ninth position. The tāla is described using the words 'siṅgalī laikkuṭ tigaz̲um saram ondṛu tuṅgaviz̲i mūndroṛukōl tōndrumē - aṇgadanil ārāyil ōrmūn draraimāttiraiyāgum ōrāitā ḷamonba dē' (Dēsikar, 1951, p.6). The meaning of this verse is 'The Siṅgalīlai tāla consists of a vertical arrow, followed by three eyes and then a vertical pole, totalling 3½ mātrā-s and is the ninth tāla'. Here the arrow and the pole represent a laghu each, and the three eyes denote three druta-s. The symbolic notation for this tāla is given as LDDDL covering 3½ mātrā-s, which matches the description and sums up to 4+2+2+2+4 = 14 akṣara-s.

In the footnote to the above mentioned verse, a reference to the lakṣaṇa of the Simhalīlā tāla as given in the treatise Ādibharatam is seen. The tāla is said to be described in Ādibharatam with the words 'Simhalīlā vidhātavyam laghvādyantam drutatrayam' (Dēsikar, 1951, p.6). Even though it seems that the verse might ideally begin with the word 'Simhalīlē' instead of 'Simhalīlā' to conform to the grammar rule of the Samskṛta language, the lakṣaṇa is seen to be the same as that given in Bharatārṇava, and is 'Three druta-s with a laghu each at the beginning and at the end'. Thus the symbolic notation is derived as LDDDL, comprising totally 14 akṣara-s, which is the same as in Caccapuṭa Veṇbā.

Tāḷa Samuddiram

In another Tamiz̲ treatise called Tāḷa Samuddiram also, the Simhalīlā tāla is listed in the ninth position and called as Siṅgalīlai. The tāla is described in two different verses, one following the other, both verses conveying the same lakṣaṇa as given below. The first description is 'siṅga līlai seẓuṅgaṇai suz̲itamiz̲ naṅgaṇaiyēgam nayanattu navamē', meaning 'The Siṅgalīlai tāla comprises of an upright arrow, then three circles followed by an arrow, and is the ninth one' (Sastri, 1955, p.42). The second description verse is 'siṅgalīlai sevvai muccuzi aṅgai nērā mūṇḍraraiyē māttirai' (Sastri, 1955, p.42), meaning 'The Siṅgalīlai tāla consists of a straight one, three circles and an upright palm, and covers 3½ mātrā-s'. In both the descriptions, the words 'arrows', 'upright palm' and 'straight one' denote laghu and 'circle' denote druta-s, as the laghu is symbolically represented by a vertical line and a druta by a circle. The lakṣaṇa given after the verse is LDDDL, which matches both the above descriptions and amount to 4+2+2+2+4=14 akṣara-s.

Saṅgītasampradāyapradarśinī

The grantha titled Saṅgītasampradāyapradarśinī gives the notation for a Rāga-Tāla-Mālikā composition attributed to Rāmasvāmi Dīkṣitar (18thC). This composition beginning with the sāhitya 'Nāṭakādi

vidyala' has sixty one sections, each of which is composed in a different rāga and tāla. The twenty fifth section is composed in Hambīru rāga and Simhalīlā tāla, as indicated by the rāgamudrā and tālamudrā in the sāhitya 'hambīrula meccadu dhairyambuna ativanaḍumu simhalīlayanatagu' (Rao, 2008, p.1331). The svara notation for this portion of the sāhitya is demarcated into five parts, the first one comprising eight svara-s, the second, third and fourth parts having four svara-s each and the fifth part having eight svara-s effectively. It is inferred from this notation that the Simhalīlā tāla is comprised of five aṇga-s, that is, one laghu, followed by three druta-s and ending with a laghu. The symbolic notation of the tāla as seen in this work would hence be LDDDL, which is the same as that given in most of the texts seen above.

Conclusion

From the above study, it is observed that the Simhalīlā tāla has the lakṣaṇa of LDDDL in all the grantha-s referred above, other than Aumāpatam, Saṅgītaratnākara and Saṅgītadarpaṇa. The lakṣaṇa-s given in all the granthas consist only of the aṅga-s Laghu and Druta, while that given in Aumāpatam alone consists of the aṅga-s Laghu and Guru. The reason behind this difference is not known, but it can be inferred that the tāla has been in practice from the period of Bṛhaddēśī and Bharatārṇava until that of Rāgatālamālikā, with its lakṣaṇa maintained through the centuries.

References

Source Texts:

1. Ghosh, M. (1956). *The Nāṭyaśāstra* (Vol II). Calcutta: The Asiatic Society
2. Śāstrī, K. S. (Ed.) (1928). *Bṛhaddēśī*. Government of Her Highness The Maharani Regent of Travancore
3. Kavuṇḍar, V. R. D. (Ed.) (1975). *Aṛivanār Iyattriya Pañca Marabu*. Kovai: Sakti Aṛanilayam.
4. Sastri, K. V. (Ed.) (1957). *Aumāpatam*. Madras: GOML.
5. Sastri, S. S. (Ed.) (1951). *Saṃgītaratnākara* (Vol III). Madras: The Adyar Library
6. Shah, U. P. (Ed.) (1961). *Saṅgītopaniṣat-Sāroddhāra*. Baroda: Oriental Institute
7. Sastri, K. V. (Ed.) (1952). *Sangita Darpanam of Catura Damōdara*. Tanjore: Saraswathi Mahal.
8. Sastri, S. S., Rao, T. V. S., Venkataraman, T. L. (Eds.) (1934). *The Caturdandi Prakasika* (Part I) Madras: The Music Academy
9. Dēsikar, C. D. (Ed.) (1951). *Caccaputa Veṇbā*. Darumapuram: Tirukkayilāya Parambarai Darumapura Ādīnam.

Books:

1. Śāstrī, K. V. (Ed.) (2016). *Bharatarnava*. Thanjavur: TMSSMLRC
2. Veni, N. K. (Ed.) (2008). *Rāgatāḷacintāmaṇi of Pōlūri Govinda Kavi*. Hyderabad: Dhanush Infotech.
3. Rao, P. V. (Ed.) (2008). *Saṅgīta Sampradāya Pradarśini, (1904), English Translation* (Appendix A) Madras: The Music Academy
4. Sastri, K.V. (Ed.) (1955). *Tāḷa Samuddiram.* Tanjore: Saraswathi Mahal.

Unpublished Web Sources:

MS No. R770, *Tāladīpikā of Tippabhūpāla.* Chennai: GOML. Retrieved from http://www.musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/1156

शास्त्र

A Comparative study of the Rāga-s in the Rāgalakṣaṇamu of Śāhaji and Rāgalakṣaṇam of Muddu Vēṅkaṭamakhī

Dr. R. Hemalatha

Assistant Professor
Department of Indian Music, University of Madras

Abstract

The present day rāga system in the South Indian Music has two traditions namely that followed by Tyāgarāja and his disciples and Muttusvāmi Dīkṣitar and his descendants. The descendants of the Dīkṣitar tradition have followed the system of rāga-s mentioned in the Rāgalakṣaṇam of Muddu Vēṅkaṭamakhī, while Tyāgarāja has followed the system mentioned in the Saṅgrahacūḍāmaṇi of Gōvinda. The RL-MV has followed the Rāgalakṣaṇamu of Śāhaji has to a larger extent and it is also seen that the RL-S has followed Caturdaṅḍīprakāśikā of Vēṅkaṭamakhī (1620) to a larger extent. However, the RL-S has included all the rāga-s mentioned in CDP and apart from that it also mentions rāga-s for the first time. These rāga-s are also seen in the RL-MV and this paper tries to compare the rāga-s mentioned in the treatises RL-S and RL- MV and to see if there is a continuous tradition seen in the South Indian system from the early 17th century. Thus, this paper is an historical study of the ṛāga-s from the early 17th century to the early 20th century, where the tradition followed in the RL-MV has been followed by Subbarāma Dīkṣitar in his Saṅgītasampradāyapradarśini published in the year 1904.

Keywords

Rāga-s, Dīkṣitar Tradition, Tyāgarāja tradition, Ghana, Naya, Dēśi.

Introduction:

The present day rāga system in the South Indian Music is the mēḷa-janya system of classification and the origin of this system can be traced back to the 16th century. The Svaramēḷakalānidhi of Rāmāmātya is the first treatise to mention this system of classification and around 50 rāga-s are mentioned under 20 mēḷa-s. The Saṅgītasudhā of Gōvinda Dīkṣita (1614 AD) is the next treatise to mention this system and 50 rāga-s are described in this. The Caturdaṇḍīprakāṣikā of Vēṅkaṭamakhī (1620 AD), gives the

system of 72 mēḷa classification, but mentions only 19 mēḷa names and 55 janya rāga-s under them. This work is considered to be the source for the present day system of classification in the South Indian Music and the 72 mēḷa-s are in vogue in current practice, even though CDP does not give the names for the 72 mēḷa-s. Incidentally, all these texts were written in Thanjāvūr, which was the cultural hub in the Mārāṭha rule. The Marāṭha King Śāhaji (1684-1712), wrote a treatise in Telugu namely 'Rāgalakṣaṇamu' which mentions 20 mēḷa-s and 115 rāga-s. This is an important phase in the evolution of rāga-s, as in a span of 60 years the number of rāga-s has doubled. The increase in the number of rāga-s has to be attributed to the socio-cultural exchanges, which happened during the rule of Marāṭha-s.

The introduction of Harikatha by the Marāṭha-s would have brought these rāga-s into the South Indian system and it is evident from the fact that the Rāgalakṣaṇamu of Śāhaji mentions for the first time the term 'dēśi rāga' meaning those rāga-s that came from North. It is also seen that this treatise while explaining the rāga, gives examples from musical compositions like gīta, prabandha, udgrāha, ālāpa, āyittam which were in vogue then. After the Rāgalakṣaṇamu, the Saṅgītasārāmṛta of Tulaja (1735), was written and it is seen that rāga chapter has been reproduced from the RL-S. The later part of the 18th century and the first part of the 19th century are important phase in the South Indian Music, as in this period the 72 mēḷa-s were named and two different schools are seen while naming the 72 mēḷa-s. The Rāgalakṣaṇam of Muddu Vēṅkaṭamakhī, which has been appended to the CDP of Vēṅkaṭamakhī in the publication of The Music Academy, gives the names for the 72 mēḷa-s and it mentions a mēḷa as a Rāgāṅgarāga. The other set of 72 mēḷa-s is seen in the Saṅgrahacūḍāmaṇi of Gōvinda, where a mēḷa is called as a mēḷakarta. It is seen that only 6 mēḷa names are similar in both the systems and the SC gives many new mēḷa names which were not mentioned in the treatises, whereas the RL-MV retained 20 rāga-s which were already in vogue. The mēḷa names mentioned in SC have been handled by Tyāgarāga and his disciples and the rāgāṅgarāga system mentioned in the RL-MV has been handled by Muttusvāmi Dīkṣitar and his descendants.

It is interesting to note that many rāga-s mentioned in RL-S are seen in the RL-MV with a similar lakṣaṇa, whereas the SC gives a different lakṣaṇa for them. For example, the rāga Sarasvatimanōhari mentioned in RL-S and RL-MV, is a janya of Śaṅkarābharaṇa mēḷa and the SC gives this rāga under the Harikāmbhōji mēḷa. While Tyāgarāja has handled the Sarasvatimanōhari mentioned in SC, Muttusvāmi Dīkṣitar has handled the Sarasvatimanōhari mentioned RL-S and RL-MV. Thus it is seen that there has been a continuous tradition of rāga-s from the 17th century to the later part of the 18th century in the tradition followed by Muttusvāmi Dīkṣitar. This paper is a comparative study of the rāga-s mentioned in RL-S and which have been included in the RL-MV, in order to see if the tradition of rāga-s in the RL-S has continued till the period of RL-MV and if it can be said that the tradition of M]uttusvāmi Dīkṣitar can be considered as an older one.

The rāga-s mentioned in the RL-S and RL-MV can be classified into three categories namely,

- The rāga-s which are seen in all the three treatises namely the Caturdaṇḍīprakāśikā, Rāgalakṣaṇamu of Śāhaji and Rāgalakṣaṇam of Muddu Vēṅkaṭamakhī.
- The rāga-s mentioned in RL-S and RL-MV in common.
- The rāga-s mentioned in RL-MV alone.

Now the three categories of rāga-s are taken up for study:

1. The first category of rāga-s namely the rāga-s which are seen in all the three treatises are taken up for study first.

As mentioned above, the CDP mentions only 54 rāga-s and it is seen that the RL- S includes all the 54 rāga-s mentioned in the CDP and whereas the RL-MV includes 53 rāga-s. The rāga Jayantasēna mentioned in the CDP is not seen in the RL-MV whereas it is included in RL-S. It is interesting to note that this rāga has been handled by Tyāgarāja and the kṛti 'Vinatāsuta' is set in this rāga. This rāga has not been handled in the Muttusvāmi Dīkṣitar tradition.

2. The second category of rāga-s is now taken up for study:

In this category, 45 rāga-s can be classified. The rāga-s mentioned in RL- S and RL-MV in common are as follows:

Mādhavamanōhari, Saindhavi, Kāpi, Husēni, Śrīrañjani, Dēvamanōhari, Maṇirańgu, Udayaravicandrikā, Māḷavagauḷa, Ārdradēśi, Ṭakka, Mańgaḷakaiśika, Māruva, Gauḍipantu, Pūrvi, Pūrṇapañcama, Śuddhasāvēri, Mēgharañjani, Dīpakam, Sarasvatimanōhari, Kurañji, Pūrṇacandrikā, Bilāhuri, Kēdāra, Balahamsa, Chāyātarańgiṇi, Īśamanōhari, Erukalakāmbhōji, Nāṭakurañji, Kanaḍa (Kannaḍa), Naṭanārāyaṇi, Mōhana, Dēvakriyā, Ānandabhairavi, Nāgagāndhāri, Dhanāsi (Dhanyāsi), Vēgavāhini, Bhinnapañcamam, Lalitapañcamam, Chāyānāṭa, Sārańga, Tōḍi, Punnāgavarāḷi, Nāgavarāḷi and Kalyāṇi.

This category of rāga-s can be further classified into two sub-categories namely

- The rāga-s that have a similar lakṣaṇa
- The rāga-s that have a different lakṣaṇa

2.1 The first sub category of rāga-s is taken up for study. 42 rāga-s can be classified under this category and they are:

Mādhavamanōhari, Saindhavi, Kāpi, Husēni, Śrīrañjani, Dēvamanōhari, Maṇirańgu, Māḷavagauḷa, Ārdradēśi, Ṭakka, Mańgaḷakaiśika, Māruva, Gauḍipantu, Pūrvi, Pūrṇapañcama, Mēgharañjani, Dīpaka, Sarasvatimanōhari, Kurañji, Pūrṇacandrikā, Bilāhuri, Kēdāra, Balahamsa, Chāyātarańgiṇi, Īśamanōhari, Erukalakāmbhōji, Nāṭakurañji, Kanaḍa, Naṭanārāyaṇi, Dēvakriyā, Ānandabhairavi, Nāgagāndhāri, Dhanāsi, Vēgavāhini, Bhinnapañcamam, Lailitapañcamam, Chāyānāṭa, Sārańga, Tōḍi, Punnāgavarāḷi, Nāgavarāḷi and Kalyāṇi.

The RL-S mentions the classification of rāga-s into Ghana, Naya and Dēśi rāga-s for the first time, however the criteria for this classification is not mentioned in it. The RL-MV also mentions this classification but even in this the reason

for the classification is not given. The explanation for the Ghana, naya and the dēśi ṛāga-s is only seen in the Saṅgīta-sampradāya-pradarśini of Subbarāma Dīkṣitar published in the year 1904. This book mentions that

the Ghana rāga-s are those which are suitable for Tāna,

the Naya rāga-s are pleasing to the ears and

the Dēśi rāga-s are those rāga-s that came from North.

The RL-S mentions 16 dēśi rāga-s that are supposed to have been come from the North and is seen that in the above mentioned list of rāga-s that are common in these treatises, 13 rāga-s belong to the dēśi category. The other three dēśi rāga-s are Sāvēri, Bibhāsu and Gōḍumallāru and out of which the rāga Sāvēri is mentioned in the CDP itself and the reason for classifying this under the dēśi category is not known. The rāga Gōḍumallāru is not mentioned in the RL-MV. Regarding the rāga Bibhāsu, it is seen that the RL-MV mentions the rāga Bibhāsu in the list of dēśi rāga-s, however while the lakṣaṇa for this rāga is not given. The RL-MV mentions a rāga 'Rāmakali' as a janya of the Māḷavagauḷa mēḷa and also as a dēśi rāga. The SSP of Subbarāma Dīkṣitar while explaining the rāga lakṣaṇa of the rāga Rāmakali, states that this rāga is also called as 'Bibhāsu'. Thus it can be understood that the rāga Bibhāsu mentioned in the RL-S has been mentioned as Rāmakali in the RL-MV. However, it is not known why RL-MV gives both these rāga-s under the list of dēśi rāga-s and explains only the rāga Rāmakali.

In the remaining 27 rāga-s mentioned above the rāga-s Vēgavāhini and Chāyānāṭa are not classified under any category in both the treatises. The other 25 rāga-s are either classified as Ghana or naya in the RL-S and RL-MV. The rāga Dhanāsi mentioned in the RL-S as a janya of the Bhairavi mēḷa is mentioned as Dhanyāsi under the 20th mēḷa Nārīrītigauḷa in the RL-MV. This rāga omits the svara-s ṛṣabha and dhaivata in the ārōha and the avarōha is sampūrṇa. Both these texts give this description and in the SSP, Subbarāma Dīkṣitar mentions that this rāga is traditionally sung with śuddha ṛṣabha and it is not known why this rāga has been mentioned as a janya of the 20th mēḷa by Vēṅkaṭamakhī. This clearly suggests that the rāga Dhanāsi mentioned in the RL-S is the Dhanyāsi of the present day and probably this rāga would have undergone change after the period of Muddu Vēṅkaṭamakhī or it can be said that Muddu Vēṅkaṭamakhī has followed the tradition of RL-S in explaining the rāga.

In the above mentioned rāga-s it is seen that the compositions of Muttusvāmi Dīkṣitar are available in the rāga-s Mādhavamanōhari, Kāpi, Husēni, Śrīrañjani, Dēvamanōhari, Maṇiraṅgu, Māḷavagauḷa, Ārdradēśi, Ṭakka, Maṅgaḷakaiśika, Māruva, Gauḍipantu, Pūrvi, Mēgharañjani, Sarasvatimanōhari, Kurañji, Pūrṇacandrikā, Bilāhuri, Kēdāra, Balahamsa, Chāyātaraṅgiṇi, Īśamanōhari, Erukalakāmbhōji, Nāṭakurañji, Kanaḍa, Naṭanārāyaṇi, Dēvakriyā, Ānandabhairavi, Nāgagāndhāri, Dhanāsi, Vēgavāhini, Chāyānāṭa, Sāraṅga, Tōḍi, Punnāgavarāḷi, Nāgavarāḷi and Kalyāṇi.

Thus it can be said that the RL-MV has followed the RL-S to a large exten and which in turn has been followed in the Muttusvāmi Dīkṣitar tradition.

2.2 Now the second sub category of the rāga-s is taken up for study. The rāga-s that are seen in common in the treatises RL-S and RL-MV, but have a different lakṣaṇa. Three rāga-s namely Śuddhasāvēri, Udayaravicandrikā and Mōhana can be classified under this category.

The rāga Śuddhasāvēri is mentioned as a janya of the Māḷavagauḷa in the RL-S, whereas RL-MV gives this rāga as a janya of the first mēḷa Kanakāmbari. This rāga is an auḍava rāga omitting gāndhāra and niṣāda in the ārōha and avarōha and even though the mēḷa differs, the lakṣaṇa of the rāga does not differ. The reason for classifying it under the Kanakāmbari mēḷa can be attributed to the system of classifying the janya-s under an early mēḷa if the svara-s taken by the rāga and the mēḷa are same. For instance, this rāga Śuddhasāvēri omits Gāndhāra and Niṣāḍa in the ārōha-avarōha and in the absence of these two svara-s, this rāga can be classified under the 1st, 2nd, 3rd, 7th, 8th, 9th, 13th, 14th and 15th mēḷa-s which have the svara-s ṛṣabha, madhyama and dhaivata in common. However, in the older practice of classification, a rāga was classified under a mēḷa which had similar characteristics and this would have followed by the RL-S in classifying it under the Māḷavagauḷa mēḷa, whereas the RL-MV has followed the modern tradition of classifying it under the first mēḷa.

The rāga Udayaravicandrikā is mentioned as a janya of the Nāṭa mēḷa in the RL-S, whereas the RL-MV mentions it under the 9th mēḷa Dhunibhinnaṣaḍja. Both these treatises mention this rāga as a auḍava rāga, but the svara-s omitted are different in the two treatises. In the RL-S, this rāga omits gāndhāra and dhaivata whereas in the RL-MV, this rāga omits ṛṣabha and dhaivata. However, the svarasthāna-s do not differ as the Nāṭa mēḷa takes ṣaṭśruti ṛṣabha and the 9th mēḷa in the RL-MV has sādhāraṇa gāndhāra. The ṣaṭśruti ṛṣabha and the sādhāraṇa gāndhāra share the same svara position and hence there is no difference in the svarasthāna-s taken by this rāga and only the svara names differ. This is illustrated in the table below:

The first row indicates the 12 svarasthāna-s and the second row indicates the svarasthāna-s given in the RL-S and the third row indicates the svarasthāna-s in the RL-MV.

sa	ri1	ri2/ga1	ri3/ga2	ga3	ma1	ma2	pa	dha1	dha2/ni1	dha3/ni2	ni3	ṡa
sa			ri3		ma1		pa				ni3	ṡa
sa			ga2		ma1		pa				ni3	ṡa

In the table illustrated above, it is seen that the svarasthāna-s given for the rāga Udayaravicandrikā is same in these two treatises. The reason for the classification under different mēḷa-s and the change in the svara-s can be attributed to the modern practice, where a rāga can have a vivādi svara if the adjacent note to that vivādi svara is included in either the ārōha or avarōha. In the RL-S, it is seen that the rāga Udayaravicandriṙā omits the antara gāndhāra which is the

immediate note to the ṣaṭśruti ṛṣabha and in the modern practice, this system is not seen. Thus the RL-MV would have given the ṣaṭśruti ṛṣabha as sādhāraṇa gāndhāra and classified it under the 9th mēḷa Dhunibhinnaṣaḍja.

Regarding the rāga Mōhana, the RL-S classifies it as a ṣāḍava rāga under the Kāmbhōji mēḷa and this rāga omits the note niṣāda. The RL-MV mentions this rāga as a auḍava under the Śāntakalyāṇi mēḷa and it omits madhyama and niṣāda in the ārōha-avarōha. Thus it can be said that the lakṣaṇa of the rāga has changed from ṣāḍava to auḍava and in the current practice this rāga is a auḍava rāga. In the modern system, this rāga is classified under the mēḷa-s Harikāmbhōji, Dhīraśaṅkarābharaṇam and Kalyāṇi since this rāga omits madhyama and niṣāda and the above mentioned mēḷa-s have the other svara-s in common. However, it is not known why RL-MV classifies this rāga under the 65th mēḷa instead of the 28th mēḷa as mentioned in the RL-S, which mentions it under the Kāmbhōji mēḷa. In this case it is seen that the rāga Mōhana has gamaka-s similar to the rāga Kalyāṇi, where the gāndhāra is taken from the prati madhyama, whereas in Mohana, the gāndhāra is taken from pañcama. Thus unlike the rāga Śuddhasāvēri, which has been classified under the first available mēḷa in the RL-MV, this rāga is classified under a mēḷa which has similar characteristics as the rāga. Thus it is not known why RL-MV has followed two different ways in mentioning the janya rāga-s.

3. Now the third category of rāga-s is taken up for study. The rāga-s that are seen only in the RL-MV come under this category and it is seen that out of the 72 rāgāṅgarāga-s mentioned in te RL-MV, 52 are new rāga-s. The RL-MV has included 20 rāga-s which were in vogue at that period in the list of 72 rāgāṅgarāga-s. In these 20 rāga-s, 12 mēḷa-s namely Sāmavarāḷi, Hejjujji, Vasantabhairavi, Śrīrāga, Śaṅkarābharaṇam, Dēśākṣi, Nāṭa, Varāḷi, Pantuvarāḷi, (Śuddha) Rāmakriyā, Simharava and Kalyāṇi mentioned in CDP have been included.

Apart from the mēḷa-s mentioned above, the rāga-s Rītigauḷa, Kēdāragauḷa and Vēḷavaḷi mentioned in the treatises CDP and RL-S, as janya rāga-s have been included in the 72 rāgāṅgarāga system. The remaining 52 rāga-s are seen for the first time in the RL-MV and apart from that 24 janya rāga-s are seen for the first time in RL-MV. The rāga-s are:

Asāvēri, Mōhananāṭa, Māḷavapañcamam, Mārgadēśi, Pharaju, Gauri, Vasanta, Bhairava, Mārgahindōḷa, Navaratnavilāsam, Gōpikāvasanta, Māñji, Mukhāri (janya of 20th mēḷa), Bṛndāvani, Rudrapriyā, Darubāru, Śahana, Nāyaki, Suraṭi, Jujāvanti, Aṭhāṇa, Khamās, Nīlāmbari and Yamunākalyāṇi are seen for the first time in RL-MV. It is also seen that RL-MV gives a list of Ghana, naya and dēśi rāga-s, but the lakṣaṇa for many of the dēśi rāga-s are not given. For instance, the rāga-s Bibhāsu, Balāwal, Hamvīru, Pūrvyākalyāṇ, Kakubhā, Māñji and Dēvagāndhāri (under 29th mēḷa) are mentioned in the list of the dēśi rāga-s, but their lakṣaṇa-s are not given under the janya rāga-s. However, the SSP gives the lakṣaṇa for the rāga-s Hamvīru, Māñji

and Dēvagāndhāri and also gives the compositions of Muttusvāmi Dīkṣitar in these rāga-s. However, SSP gives the lakṣaṇa for the rāga Khamās, but there are no compositions of Muttusvāmi Dīkṣitar available in SSP. The rāga Pūrvyākalyāṇ is mentioned as two separate rāga-s and it is not known whether the rāga-s Pūrvya and Kalyāṇ are different rāga-s or the rāga Purvyākalyāṇ has to be taken as a single rāga, as the lakṣaṇa is not available. However, Subbarāma Dīkṣitar while explaining the lakṣaṇa of the rāgāṅgarāga Gamakakriyā, states that this rāga is also known as Pūrvikalyāṇi and incidentally this rāga is mentioned as a dēśiya rāga. This suggests that the dēśiya rāga listed as Pūrvyākalyāṇ is a single rāga name and probably the rāga Gamakakriyā and Pūrvyākalyāṇ are same.

The observations regarding the rāga-s in the RL-S and RL-MV can be summarized as follows:

The RL-S has followed CDP to a larger extent in retaining all the 54 rāga-s mentioned in it and the RL-MV has included 53 rāga-s seen in the CDP and RL-S while omitting the rāga Jayantasēna. Thus it can be said that there has been a continuous tradition from the early 17th century to the middle of the 18th century.

The RL-MV has included 45 rāga-s out of the 61 rāga-s that are seen for the first time in the RL-S. It is also seen that except for three rāga-s, the lakṣaṇa of the rāga-s are similar. The classification of rāga-s into Ghana, naya, dēśi in the RL-S is again seen in the RL-MV and in both the treatises the reason for this classification is not given. Thus it can be said that RL-MV has followed the RL-S to a larger extent and predominantly included the rāga-s that have been mentioned in the RL-S for the first time.

Regarding the rāga-s that are seen for the first time in the RL-MV, it can be said that Muddu Vēṅkaṭamakhī would have followed the Vēṅkaṭamakhī tradition and tried to name the 72 mēḷa-s, which were not named by Vēṅkaṭamakhī in his CDP. However, he has tried to include 20 rāga-s that were in vogue at that time and introduced the 52 rāgāṅgarāga-s on the basis of the formulation given by Vēṅkaṭamakhī. Moreover, he has followed the tradition of keeping a rāga distinct from a mēḷa as seen in the CDP and RL-S, which is not seen in the Saṅgrahacūḍāmaṇi of Gōvinda and the system followed in the modern period. Regarding the other janya rāga-s that are seen for the first time in RL-MV, it can be said that newer rāga-s would have come into the system because of the difference in the period and RL-MV would have included these rāga-s in his treatise.

Thus it can be said that there is a continuous tradition in the Muttusvāmi Dīkṣitar tradition where the system of defining the rāga-s in the CDP and the RL-S have been followed in the RL-MV which in turn has been followed by Muttusvāmi Dīkṣitar.

Bibliography

Dīkṣitar, Subbarāma	Saṅgītasampradāyapradarśini, Vidyā Vilāsini Press, Eṭṭayapuram Samasthānam, Eṭṭaiyapuram.1905. http://ibiblio.org/guruguha/ssp_cakram1-4.pdf
Hema Ramanathan	Rāgalakṣaṇasaṅgraha: Collection of Rāga Descriptions from Treatises on Music of the Mēla Period with translation and notes, pub. N.Ramanathan, Chennai, 2004
Sathyanarayana, R	Rāgalakṣaṇam of Muddu Vēṅkaṭmakhī, Critically Edited with Critical notes, translation, Commentary and Indexes, Indira Gandhi National Centre for the Arts and Motilal Banarasidass Publishers Pvt Ltd.
Caturdaṇḍī-prakāśikā of Vēṅkaṭamakhī	Part I-Sanskrit text, ed. by Pandit S.Subrahmanya Sastri, T.V.Subba Rao and T.L. Venkatarama Iyer, pub. by The Music Academy, Madras, 1934.
Rāgalakṣaṇam of Muddu Vēṅkaṭmakhī	printed as an Appendix to the Caturdaṇḍī-prakāśikā of Vēṅkaṭamakhī, ed. by Pandit S.Subrahmanya Sastri, T.V.Subba Rao and T.L. Venkatarama Iyer, pub. by The Music Academy, Madras, 1934.
Rāgalakṣaṇamu of Śaha Mahārāja	Editor-Dr.S.Seetha, Bṛhaddhvani, Chennai.1990.

पं. भातखंडे की ग्रंथसंपदा - संशोधन एक अध्ययन

प्रो. विशाल विजय कोरडे

सहायक प्राध्यापक

श्री शिवाजी कला, वाणिज्य व विज्ञान, महाविद्यालय अकोला, महाराष्ट्र

सारांश

पं. भातखण्डे ने देखा कि प्राचीन काल से ही रागदारी संगीत में बंदिशों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। ये बंदीशे राग-स्वरूप के अलावा अपने समय को सामाजिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्था का चित्रण भी प्रस्तुत करती है। पहले तकनीकी साधन पर्याप्त उन्न नही थे, जिसके फलस्वरूप कलाकारों की ध्वनि-फीति रिकार्डींग सर्वसाधारण लोगों को उपलब्ध नहीं हो पाती थी। कलाकार के मरणोपरांत उनकी रचनाऐं भी लुप्त हो जाती थी। अतः परम्परागत बंदीशों की महत्ता को जानते हुए पं. भातखण्डे ने उनके संकलन हेतु गायक-वादकों से प्रार्थना की, उनका शिष्यत्व भी ग्रहण किया। इस हेतू कई बार उन्हे अपमान भी सहने पडे। इस प्रकार अनेक कठिनाईयों से गुजरते हुए उन्होने बंन्दिशों का संकलन किया तथा उनकी स्वरलिपि बनाकर संगीतानुरागियों के समक्ष प्रस्तुत की। संकलित बन्दिशों के आधारपर अनेक स्वरमालिका तथा लक्षणगीतों की रचना जो अविस्मरणीय है। पं भातखण्डे ने पर्याप्त साधनों के अभाव में देशव्यापी पर्यटन किया। रागों के इतिहास तथा उनके शास्त्रीय नियम स्थापित किये तथा संगीत कल को अध्ययन-अध्यापन का विषय बनाया। वर्तमान काल में संगीत शिक्षण संस्थाओं मे शिक्षण देने के लिए पं भातखण्डे की क्रमिक पुस्तक मालिका का प्रयोग किया जाता है। पं भातखण्डे द्वारा संगीत के शास्त्र और कला के सभी पक्षी को अपनी ग्रंथो में लिपिबद्ध किया जो आज संगीत सिखनेवाले छात्रों को दिग्दर्शक है। इसिलिए शोधार्थीद्वारा इस विषय का अध्ययन संशोधन के लिए किया गया।

शोध बिंदु

पं भातखण्डे, क्रमिक पुस्तक मालीका, संगीत उद्धारक, संगीत शास्त्रकार, चतूर पंडित

भूमिका :

पं भातखण्डे द्वारा लिखित ग्रन्थ एवं लेख -

पं. भातखण्डे पेशे से वकील थे, परंतु वे इस बात से भलीभाती परिचित थे कि संगीत कर्ण विद्या है। अतः गुरू के तालीम के बिना इसे समुचित रूप से गाया नही जा सकता और न ही समझाया जा सकता है। इसलिये उन्होने संगीत के शास्त्र ग्रंथो का अध्ययन किया एवं संगीत के क्रियात्मक पक्ष की भी शिक्षा ली। उनका मानना था कि किसी भी कला की संपूर्ण जानकारी के लिए उसके दोनो पक्षो का ज्ञान एवं अभ्यास आवश्यक है। 1909-1937 तक पं. भातखण्डे जी का प्रकाशन हुआ। इस शोध निबंध में पं. भातखण्डे द्वारा लिखित और प्रकाशित ग्रंथों का महत्व और विषयवस्तु शोधार्थी ने प्रस्तुत किया है।

शोध का महत्व :-

पं. विष्णु नारायण भातखण्डे द्वारा संगीत जगत लगभग 6500 पृष्टों की अनमोल संगीत संपदा प्रकाशित करके उसका निचोड आज उपलब्ध है। जिसके सहाय्यता से संगीत विद्यार्थी, शिक्षक, रचनाकार और कलाकार प्रेरणा पा रहे है। इसलिए इस विषय को जनसामान्य तक पोहचाना आवश्यक है।

शोध का उद्देश्य :-

1) भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रचार-प्रसार के लिए महत्वपूर्ण।
2) पं. विष्णु नारायण भातखण्डे द्वारा संशोधित कार्य नवीनतासे संगीत क्षेत्र में रखना।
3) संगीत छात्रों के लिए उपयुक्त।

शोधपुर्व अनुसंधान साहित्य :-

1) 'थोर संगीतकार' लेखक बि. आर. देवधर, प्रकाशक अखिल भारतीय गांधर्व मंडल, 1973
2) संगीत विषारद, लेखक लक्ष्मी नारायण गर्ग, प्रकाशक - संगीत कार्यालय, हाथरस, 2010

उपर दिये हुये किताबों में पं. भातखण्डे के जीवन परिचयको रेखांकित किया गया है। लेकीन शोधार्थीद्वारा पं. भातखण्डे के ग्रंथ संपदा को संशोधन का विषय रखकर संशोधन किया गया है।

अनुसंधान पद्धती :-

प्रस्तुत विषय वस्तुको समझने के लिए शोधार्थी द्वारा वर्णनात्मक एवम् विश्लेषणात्मक पद्धति का उपयोग किया गया है।

चर्चा :-

पं. भातखण्डे द्वारा लिखित और प्रकाशित ग्रंथ और उनकी विषयवस्तु के जरिये हम चर्चा करेंगे।

1) श्री मल्लक्ष्य संगीतम (संस्कृत) - सन 1909 में पं. भातखण्डे ने तत्कालीन समयमें प्रचलित संगीत पद्धति को जन-साधारण के समक्ष स्पष्ट रूपसे चतुर कूटनाम से श्री मल्लक्ष्य संगीतम् (संस्कृत) ग्रंथ की रचना की। इसमे स्वर एवं राग ये दो अध्याय है। पं. भातखण डेकी धारणा थी, ''कि किसी भी ग्रंथ के संगीत को समझने के लिए उस ग्रंथ के स्वाध्याय एवं रागाध्याय ये ही दो प्रमुख अध्याय है।'' ग्रंथ के प्रथम पृष्ठमे चुतुराख्येन भरतपूर्व खंड. निवासिना शब्दों से अपना उपनाम भातखण डे संकेत किया है।
2) अष्टोत्तर शतताल लक्षणम 'संस्कुत'[1] - सन 1911 मे संस्कृत भाषा में 'अष्टोत्तरशतताल लक्षणम' शिर्षक से ताल शास्त्र पर स्वरचित एक अन्य ग्रंथ का प्रकाशन किया। यह ग्रंथ 17 पृष्ठों मे प्राप्त होता है। इसमें 108 तालों का उल्लेख मिलता है। ताल की आवश्यकता जानकारी उसके नाम, ताल चिन्हे उनमें प्रमुख मात्राए एवं तालिया से मालुम हो जाता है। इन्हे समझने के लिए पं. भातखण्डे ने उनके चिन्ह भी दिये है।
3) अभिनवरागमंजरी (संस्कृत) - सन 1921 मे भातखण्डेजी ने विष्णु शर्मा के नाम से उत्तर हिन्दुस्थानी रागों का वर्णन करने वाले इस ग्रंथ का प्रकाशन किया। अभिनवरागमंजरी 328 श्लोकों[2] मे है। इसमें प्रसिद्ध रागों के श्लोक दिये गये है। श्लोक की प्रथम पंक्तिये राग मे प्रयुक्त होनेवाले स्वर तथा द्वितीय पंक्तियों राग के नियम व समय दिए गए है।
4) हिन्दुस्थानी संगीत पद्धती भाग-1: श्री लमलक्ष्य संगीतम मे प्रतिपादीत सिद्धांत जन-साधारण तक पहुचने के उद्देश्य से भातखण्डे जी ने विष्णु शर्मा के नाम से मातृभाषा मराठी में हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति भाग-1 का प्रकाशन किया।
5) हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति भाग-2 : हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति भाग-2 का प्रकाशन सन 1914 मे हुआ। इसमे पूर्व समाज के प्रचिलित श्रृति एवं स्वर प्रकरण की चर्चा की गयी है। इसमे शास्त्रीय पक्ष में स्वर तथा रागों की विस्तृत चर्चा की गयी है। इसमें मुख्य रूपसे श्रृतियों एवं स्वरोमे संबंधित सिद्धांतो की विसंगतीया दर्शायी गयी है। तत्पश्चात क्रियात्मक पक्ष में भैरव थाट के अंतर्गत

आनेवाले लगभग 20 रागों का विस्तर से उल्लेख किया गया है।

6) हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति भाग-3 : हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति भाग-3 सन 1914 में प्रकाशित हुआ। इसमे राग मारवा एवं पूर्वी थाटात आनेवाले 25 रागों का सविस्तर उल्लेख किया गया है।

7) हिन्दुस्थानी संगित पद्धति भाग-4 : हिन्दुस्थानी संगित पद्धति के चतुर्थ भाग सन 1929 से 1931 तक भातखण्डे जी ने लेखन किया। सन 1932 मे लगभग 1150 पृष्ठों ने हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति का चतुर्थ एवं अंतिम भाग पूणे के आर्यभुषण मुद्रणालय से छपकर प्रकाशित किया गया। इस भाग मे काफी, आसावरी भैरवी तथा तोडी थाट के अंतर्गत आनेवाले रागों का विस्तारसे वर्णन किया गया।

भातखण्डेजी ने प्रत्येक रागों का इतिहास, उसका क्रमिक विस्तार अपने देश कालके भेद, होनेवाले परिवर्तन, उसकी पारम्पारीक पृष्ठभूमि, उसका प्रचलित स्वरूप, संस्कृत भाषा में अनेक लक्षण तथा उसके राग के चलन आदि दिए है। उन्होने चारो भागों की भाषा शैली सरल एवं गुरू-शिष्य संवाद के रूपमें लिखी है।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति (मराठी) भाग 1-4 का हिन्दी रूपांतरण भातखण्डे संगीत शास्त्र के नाम से किया गया। ये चारोही भाग संगीत कार्यालय हाथरस द्वारा प्रकाशित किए गये तथा ईनके सम्पादक लक्ष्मी नारायण गर्ग थे।

लक्षण गीत भाग संग्रह1-3 : पं. भातखण्डे ने स्वरचित लक्ष्मणगीत पुस्तिका का सन 1911 मे प्रकाशन किया। इन लक्षण गीतों की बंदिशों मे से अधिकांश बंदिशे पारंपारिक बन्दिशो पर आधारित थी। जिनमे क्रमशः कल्याण थाट, बिलावल थाट, और खमाज थाट के राग थे। इन लक्ष्ण-गीतों के अलावा इसमे आरोह-अवरोह के नियम, वादी-सुंवादी, गायन-समय तथा राग मे प्रयुक्त स्वर संगतियॉ आदि की परिभाषाए भी थी।

स्वरमालिका संग्रहः पं. भातखण्डे द्वारा स्वरमालिका संग्रह का सन 1909 मे प्रकाशन किया गया। इसमे रागों का दस थाटों मे वर्गीकृत करते हुए उनके प्रत्यक्ष उदाहरण उनका स्वरूप, चलन स्पष्ट करने वाली तालबद्ध सरगमों का संग्रह था। पं. भातखण्डे की यह पहली कृति थी। यह गुजराती भाषा मे लिखी गयी थी। तथा इसमे 50-60 रागों में तालबद्ध सरगम दिए गये थे।

गीतमालिका संग्रह : गीत मालिका के नामसे एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन सन 1916-23 मे प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था। इसमे लगभग साढे पॉचसो चीज स्वरपिली सहित थी। इसके प्रत्येक अंक में 25 चीजे दी जाती थी। जिनमे ध्रुपद, ख्याल, सादरा, होरिया, तराने तथा भजन होते थे। ये मासिक पत्रिका कुल 23 भागोमें प्रकाशित हुई।

हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-1 : हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका प्रथम भाग-1 सन 1919 मे प्रकाशित हुआ। पं. भातखण्डे जी ने इस भाग में विद्यार्थीयों की दृष्टि से 10 आश्रय रागों का स्वर पहचान, उनका परिचय एवं 10 रोगों मे एक सरगमगीत एवं दो मध्यलय की बंदिशे दी गयी है।

हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-2 : हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका का द्वितीय भाग का प्रकाशन सन 1921 मे हुआ। द्वितीय भागमे पुनः भाग-1 में वर्णित रागोंका थोडा विस्तार करके सरगम गीत, लक्षण गीत, ख्यात एवं ध्रुपद जैसी पुरानी बंदिशों का संकलन किया गया है। इस भाग में राग यमन-45, राग अल्ह्या बिलावल-28, राग बिलावल-5, राग खमाज-31, राग भैरव-42, राग पूर्वी-35, राग मारवा-27, राग काफी-25, राग आसावरी-24, राग भैरवी-27, तथा राग तोडी-39 की कुल 328/319 बंदिशों का संग्रह प्राप्त होता है।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-3 : हिन्दुस्तानी संगीत पद्धती क्रमिक पुस्तक मालिका का तृतीय भाग सन 1922 मे प्रकाशित हुआ। तृतीय भाग में 15 रागों में 512/513 बंदिशों का संग्रह किया गया है। राग भुपाली-36, राग हमीर-32, राग केदार-43, राग कलिंगडा-18, राग

श्री 29, राग सोहनी 31, राग वृन्दावनी सारंग-40, राग भीमपलासी-37, राग पीलू-26, राग जौनपूरी-40, तथा राग मालकंस-35 ईस प्रकार इसमे कुल 512 बंदिशों का संग्रह प्राप्त होता है।

हिंदुस्थानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तका मालिका भाग-4[3]: हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका का चतुर्थ भाग सन 1923 मे प्रकाशित हुआ। क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-4 मे कुल 20 राग मे 534 बंदिशे संकलित की गयी है। इसमे शुद्धकल्याण 24, कामोद-20, छायानट -22, गौड सारंग-27, हिंदोल-26, शंकरा-29, देशकार-23, जयजयवंती-21, रामकली-21, पुरिया धनश्री-24, वसंत-29, परज-27, पूरिया-29, ललित-31, गौडमल्हार-25, मिया मल्हार-26, बहार-36, दरबारी कान्हडा-31, अडाणा-27, तथा मुलतानी में 36, इस प्रकार 534 बंदिशों का संकलन किया गया है।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धती क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-5 : हिंदुस्थानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-5 मे 68 अप्रचलित रागों की 255 बंदिशे/70 अप्रचलित रागों की 252 बंदिशे संकलित की गयी है।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धती क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-6 : हिंदुस्थानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-6 मे 68 अप्रचलीत रागों की 239/237 बंदिशे संकलित की गयी है।

इस तरह पं. भातखण्डे ने क्रमिक पुस्तक मालिका के भाग-1, 2, 3 मे प्रारंभिक रागों एवं बंदिशों का भाग-4 में प्रचलित रागों एवं बंदिशों का भाग-'5, 6 में अप्रचलित रागों एवं बंदिशों का संकलन किया है। क्रमिक पुस्तक मालिका के भाग 1 से 4 मे थाट-राग वर्गीकरण पद्धति से बंदिशे दी गयी है तथा भाग 5 एवं 6 मे रागांग पद्धति के अनुसार बंदिशे दी गयी है।

Comperative study of some of the Leading Music systems of the 15th, 16th, 17th and 18th Centuries[4].

इस पुस्तिका का प्रकाशन सन 1930/1940[5] में हुआ। भातखण्डेजी ने इस पुस्तिका मे 15वीं-18वीं शताब्दियों के संस्कृत ग्रंथो का सार संक्षेप में दिया है। इसका अनुवाद सन 1958 में भगवन शरण शर्मा ने 15वीं, 16वीं, 17वीं और 18वीं शताब्दियों की प्रमुख संगीत परंपराओं का तुलनात्मक अध्ययन पुस्तिका के नाम से किया।

निष्कर्ष :-

शोधार्थी द्वारा पं. भातखण्डे की ग्रंथ संपदा का वर्णनात्मक और विश्लेशणात्मक अध्ययन करके प्रमुख निष्कर्ष पाठकों के समक्ष रखे जा रहे है।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका भाग 1 से 6 इस ग्रंथ का उपयोग भारत के सभी विश्वविद्यालयों मे संदर्भ ग्रंथ के रूप में प्रयोग किया जाता है।

पं. भातखण्डे द्वारा संपूर्ण भारत में 15 वर्ष यात्रा करके संगीतशास्त्र एवम कलाको अपने ग्रंथ में लिपिबद्ध किया है।

क्रमिक पुस्तक मालिका के सहाय्यतासे आज हम मध्ययुगीन रचनाकारों की बंदिशे सिख सकते है। उनका अध्ययन कर सकते है।

भारतीय शास्त्रीय संगीतकी धरोहर पं. भातखण्डे द्वारा उनके ग्रंथो के माध्यमसे हमे विरासत में मिली है।

संदर्भग्रंथ सूची :-

1. भातखण्डे, विष्णु नारायण (1911), 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति', क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-1, संपादक लक्ष्मीनारायण गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस
2. टाक, तेजसिंह (प्रथम संस्करण 2001, द्वितीय संस्करण 2002), संगीत जिज्ञासा एवं समाधान, राधा पब्लीकेशन, नई दिल्ली
3. भातखण्डे, विष्णु नारायण (1987), 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति', क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-4, संगीत कार्यालय, हाथरस, उत्तर प्रदेश

4- Bhatkhande Vishnu Narayan, A Comparative Study – Music Study of the 15th, 16th, 17th and 18th Centuries.

5. शर्मा भगवत शरण, 15वीं, 16वीं, 17वीं और 18 वी शताब्दियों की प्रमुख संगीत परंपराओं का तुलनात्मक अध्ययन

27 Nakshatra Charana Ragamalika – An unpublished work of Sri Gali Penchala Narasimha Rao – A Study

Mrs. E. Sreelakshmi
Research Scholar,
Dept of Performing Arts, S.V.University, Tirupati

Dr. J. Sankar Ganesh
Dept of Performing Arts,
S.V.University, Tirupati

Abstract

Carnatic Music is an ocean. It was said to be obtained from Veda-s as well as gods and existing since ancient times. Carnatic Music is also called as Sama Veda or Sama ganam synonymously since its roots are mentioned in Sama veda. Many composers have contributed their scholarly works such as Varnam-s, Kriti-s, Kirtana-s & other musical works and passed the art to the next generations. The evidences of such musical works are available in mode of document form (Palm leaves or paper manuscripts) from 12th Century starting from 'Jayadeva'. Later on Kshetraiah, Narayana Theertha, Annamaiah, Purandara Dasu and Sri Ramadasu etc have composed many types of musical works till 17th Century. Trinity period starts with 18th Century and was treated as Golden era for Carnatic Music, wherein Tyagaraja Swami, Muthuswami Dikshitar and Syama Sastry were emerged as trend setters in the history of Carnatic Music.

The propagation of the Music had been taken place in a fast pace in the Post Trinity period by their disciples. After Trinity period several composers were emerged and have done notable works. But many of them were remained unknown or lesser known to the Music world due to lack of initiation in propagating their compositions by disciples and descendants and also due to other financial reasons.

One of such composers who lived in 20th Century was Sri Gali Penchala Narasimha Rao also known as Gali Penchalaiah, a versatile Carnatic classical composer. He has done many new experiments & new innovations in Carnatic music which remained unknown over few decades. He had documented all his works with notation in a professional way which are in an easy form of understanding and are suitable & flexible for immediate usage for learning and singing.

***Aim** - This paper is intended to highlight the composing style of Sri Gali Penchala Narasimha Rao and to elevate his knowledge on raga-s by taking one of his notable works that is 27 Nakshatra charana ragamalika, depicting the story of Ramayanam composed using 29 raga-s, which is to be published yet for the world of Carnatic music.*

Key Words

Gali Penchala Narasimha Rao, 27 Nakshatra Charana Ragamalika, Ramayanam, Balahamsa, Neeḷa,

Introduction

Ragamalika – The word Ragamalika does mean that the 'garland of raga-s' or 'bunch of raga-s'. Any composition having tuned with more than 2 raga-s will be treated as Ragamalika. Ragamalika-s are very special compositions in Carnatic music. Many composers have done various ragamalika-s. Few of them are Swathi Tirunal, Maha Vaidyanadha Iyer, Patnam Subramanya Iyer etc.

Few examples of Ragamalika-s

1. If a ragamalika is having 7 raga-s is called a Dina raga malika (7 days in a week)- Ex – Bhavayami raghuramam by Swathi Tirunal set to Rupaka talam
2. A ragamalika having 9 raga-s is called 'Nava raga malika'. – Ex – Valachi vachhi - Navaraga malika Varnam composed by Patnam Subramanya Iyer set to Adi Talam
3. A ragamalika having 14 raga-s is called Chaturdasa raga malika. Ex - Muthuswami Dikshitar's "Sri Viswanatham bhajeham" set to Adi talam
4. Having with 27 Raga-s are called "Nakshatra Ragamalika" etc. – Ex - 27 Nakshatra charana Raga Malika – by Sri Gali Penchala Narasimha Rao
5. Ramaswami Dikshitar had composed 108 raga tala malika called Ashtotthara sata raga tala malika having 108 raga-s set to 108 talas.

Biography of Sri Gali Penchala Narasimha Rao (1903-1964)

Sri Gali Penchala Narasimha Rao was a pioneer of 20th Century Music directors of South Indian Cinema Field. He was born to Sri Gali Kotayya and Sri Gali Buchchamma on 8-Oct-1903 in a village called Thopugunta Agraharam, near Ongole in Prakasam Dt in erstwhile Madras Presidency which is now in the state of Andhra Pradesh. He started learning classical music along with harmonium, at very young age from his Guru-s Sri Kotilingam (Bejawada Kotilingam) and his brother Sri hanumaddas (Chinna Hanumanthu) of present Vijayawada. All of his compositions are in Telugu language and a few of them are in Sanskrit language too. He has used the Mudra "Narahari" with a view of keeping the name of their kuladaivam (family God) "Lord Lakshmi Nrisimha", to appear in all of his compositions. He used to compose music for Dramas in the beginning of his career and upon his excellence was offered with music direction for movie "Sita Kalyanam" in 1934 by Vel pictures. He has performed as music director for around 12 movies. Later he took retirement from music direction and completely devoted to classical music, He has touched almost all kinds of compositions such as varnam-s, krithi-s, light music songs, patriotic songs, Thillana, geetham, Ragamalika-s, thathvam-s, Padam-s and javali-s etc.

27- Nakshatra Charana Ragamalika

Among many scholarly works of Sri Gali Penchala Narasimha Rao, 27 Nakshatra Ragamalika was done by taking the concept of Ramayana. The lyrics are in Telugu language. It depicts the story of Ramayana beginning from the birth of Lord Rama, his wedding with Seetha, leaving the kingdom and going to exile, Seetha's abduction by Ravana, meeting

Hanuman in search of Seetha and rescuing her with the help of army of Vaanara (monkey men) and Vibheeshana by defeating Ravana in the war, returning to Ayodhya and finally ending up with the coronation ceremony of Rama.

This Ragamalika was structured as Pallavi, Anupallavi, 27 Charanams and a Phalasruthi (concluding part by stating the benefits to those who sing this)

Details of the Raga-s & Tala handled

1. This Ragamalika is set to Adi tala *8 Aksharas – 32 matras – 1 Laghuvu and 2 Dhruthams
2. Pallavi & Anupallavi are in Hari Kambhoji raga having 4 sangathis (variations) each.
3. Raga-s of 27 charanams in sequence are – 1. Kambhoji, 2. Yadhukula Kambhoji, 3. Kaapi Narayani, 4. Narayani, 5. Naga Swaravali, 6. Nata kuranji, 7. Saama, 8. Bilahari, 9. Navarasa Kannada 10. Desakshi, 11. Raga Panjaramu, 12. Sahana, 13. Kunthala Varaali, 14. Saraswathi Manohari, 15. Balahamsa, 16. Suposhini, 17. Deva Manohari, 18. Raga Vinodini, 19. Valaji, 20. Khamas, 21. Suddha Saveri, 22. Kedara Gowla, 23. NeeLa, 24. Naadika, 25. Raga Prathapa, 26. Ravi Chandrika, 27. Madhyamavathi.
4. Concluding Phala sruthi is in raga Surati and contains the Vaggeyakara Mudra " Narahari"
5. 29 raga-s were used in this composition totally.
6. Rhetorical beauties – Charanam-s are having Dwitheeyakshara Praasa (second syllable of every line belongs to same consonant) and Adi Prasa at few places.
7. Among the 29 raga-s, few raga-s are rare of its kind such as Raga Panjaramu, Naadika, Raga Prathapa, NeeLa, Suposhini & Balahamsa etc.

Analysis of 27 NAKSHATRA CHARANA RAGAMALIKA

Raga : 28th Melakartha Hari Kambhoji

Arohana - S R2 G3 M1 P D2 Ṡ
Avarohana - Ṡ N2 D2 P M1 G3 R2 S

Pallavi : Rāma kathā su - dhārasa pānam
Vēmaraka grō - lavē ō manasā sri || Rāma ||

Anupallavi: Kāma kōti nī - lamēgha syāmudu
Prēma mīra ā - sritha jana varadudow sri || Rāma||

Charanam 1

Raga – Kambhoji
28th melakartha Hari Kambhoji

Arohana – S R2 G3 M1 P D2 Ṡ
Avarohana -Ṡ N2 D2 P M1 G3 R2 S

Sankhu chakra gada – pīthāmbarudau - Sri mahā vishNuvē - yavatharinche sri || Rāma ||

Dwitheeyakshra prāsa – 'ma' (For Pallavi, Anupallavi & Charanam 1)

Charanam 2

Raga – Yadukula Kambhoji
28th melakartha Hari Kambhoji

Arohana – S R2 M1 P D2 Ṡ
Avarohana -Ṡ N2 D2 P M1 G3 R2 S

Thāpasulu rāva - Nāsuruni bādha - laku thāLa lēka- chakrini saraNana
Bhūpathiyow dasa – radhāthmajundai - Bhuvini velasi dī - nula rakshinchina sri || Rāma||
Dwitheeyakshra prāsa – 'pa'

m g p d	Ṡ p d	ṡ Ṙ ġ	Ṡ Ṡ	ṙ ṁ ġ ṙ	ṡ ṡ p d	ṙ ṡ ṡ n	n d p m
Bhoo . pathi	yau.dasa	radhathma	jundai	bhuvini ve	lasi dī .	nula ra ,	Kshinchina

Raga Analysis – 'mgpdS□', 'pds□r□ġ S□S□','r□m□ġr□s□s□' prayoga-s were used by the composer to give raga chaya (shade) and also the usage of upper octave notes brought the feel of incarnation of Lord Rama as well**. 'srM' 'gmP' 'mdpD' 'ns□nd'** are ranjaka pryoga-s

Charanam 3:

Raga – Kāpi Nārāyani — Araohana – S R2 M1 P D2 N2 Ṡ
28th melakartha Hari Kambhoji — Avarohana -Ṡ N2 D2 P M1 G3 R2 S
Sri hari hrudayē - swari mahālakshmi - Sīta pēra kōsala – dēsambun
Sri janaka rā - jāthmajayai kadu - Siri sampadalathō - cheluvamarenu gadā || Rāma ||
Adi prāsa – 'Sri'

n D p	d n Ṡ	Ṡ ṡ ṡ	ṙ ġ ṡ ṡ	ṙ ṁ ġ ṙ	ġ ṙ ṙ ṙ	ṡ ṡ n d	p m g r
sri . ja	naka ra	jathmaja	yai.kadu	si ri sam .	padala tho	cheluvama	renugada

Raga analysis– Usage of Kaapi Narayani raga to indicate the incarnation of Goddess Mahalakshmi as Sita is a good idea by the composer and upper octave notes bring the feel of birth of goddess.

Charanam 4:

Raga – Narayani Arohana – S R2 M1 P D2 Ṡ
28th melakartha Hari Kambhoji — Avarohana -Ṡ N2 D2 P M1 R2 S
Parama sivāmsaye – ānjanēyudaye - Suralellaru vā - naruly velasiri
Vara sēshude la-kshmaNundayenu hari- Sankhu chakramule -bharatha sathrughnulau|| Rāma ||
Dwitheeyakshra prāsa – 'ra'

r m m m	P p p	p d ṡ ṡ	n n d d	p d Ṡ	ṙ ṙ ṡ ṙ	ṁ ṙ ṗ ṁ	ṁ ṙ ṙ ṙ
paramasi	vamsaye	anjane	. yudaye	surale	llaru . va	narulai .	velasiri

Raga Analysis – Birth of Anjaneya (Hanuman), vanara-s, Lakshmana, Bharatha and Sathrughna was composed in Narayani Raga. Swara sanchara is ranging from thara sthayi shadjamam to panchamam could be noted here.

Charanam 5:

Raga - Naga swaraavali — Arohana – S G3 M1 P D2 Ṡ
28th melakartha Hari Kambhoji — Avarohana -Ṡ D2 P M1 G3 S
Dina dina pravardha -mānulai perige - Dīna janula brō - chedu birudamuthō
Anayamu divyā - stra prayōgamula - Akhila sāstramulu - nērputhō badasiri sri || Rāma||
Dwitheeyakshra prāsa – 'na'

m g s g	m p P	M d p	d ṡ ṡ ṡ	d ṡ ġ ṁ	ġ ṡ ṡ ṡ	ġ ṡ d p	m g s g
anayamu	di.vya		. gamula	akhila sa	.sthramulu	ne.rputho	badasiri

Raga Analysis – 'sgmp', 'mgs' are raga chaya phrases. Swara sanchara is ranging up to thara sthayi madhyamam.

Charanam 6:

Raga - Nata Kuranji — Arohana – S R2 G3 M1 D2 N2 P D2 N2 Ṡ
28th melakartha Hari Kambhoji — Avarohana - Ṡ N2 D2 M1 G3 S
Thātaki mārī - cha subahuvulathō - ThāLalēka kau - sikudu veragonda Vētuna vārini - drunchi makhambunu - Vēlupulu mechcha – konasāginchina sri || Rāma ||
Dwitheeyakshra prāsa – 'ta'

Charanam 7:

Raga - Saama — Arohana – S R2 M1 P D2 Ṡ
28th melakartha Hari Kambhoji — Avarohana -Ṡ D2 P M1 G3 R2 S
Kānanamuna katti - na silākruthiyau - Gowthama muni sathi - sāpamunu bāpi
Vēnavēla rā - julu mechchaga siva- Dhanuvu drunchi sī - thanu pendLādina sri || Rāma ||
Dwitheeyakshra prāsa – 'na'

Charanam 8:

Raga - Bilahari — Arohana – S R2 G3 P D2 Ṡ
29th melakartha Dheera Sankarabharanam — Avarohana -Ṡ N3 D2 P M1 G3 R2 S
Mārga madhyamuna - bhārgavuni garva - maNachi sākētha - puri jēredu thari
Sārnga kōdanda - rāmuni pai suma - Varshamu guripin - chiri pura vanithalu sri || Rāma ||
Dwitheeyakshra prāsa – 'ga'

Charanam 9:

Raga – Navarasa Kannada — Arohana – S G3 M1 P Ṡ
28th melakartha Hari Kambhoji — Avarohana -Ṡ N2 D2 M1 G3 R2 S
Pithru vākya pari – pālanamunakai- Dhāthri thanaya anu - junithō vedalenu
Pāthrudaina guhu - naku darsanamida- Paravasudai rā - muni koniyādina sri || Rāma ||
Dwitheeyakshra prāsa – 'thru'

Charanam 10:

Raga - Desakshi — Arohana – S R2 G3 P D2 Ṡ

28th melakartha Hari Kambhoji — Avarohana -Ṡ N2 D2 P M1 G3 R2 S

Kaika mandharala - kutralan delasi - Kanali bharathundu – saparivāramuthō

Chana nāthani kau- galinchi rāmudu - Sarva marasi pā - dukala nosangina sri || Rāma ||

About Raga – Though Desakshi and Bilahari looks similar, but Nishadham differs in each of them as they belong to different janya-s

Charanam 11:

Raga - Raga panjaramu — Arohana - S R2 M1 P D2 N2 D2 Ṡ

28th Melakartha Hari Kambhoji — Avarohana - Ṡ N2 D2 M1 R2 S

Panchavatini sū - rpaNakha bhanga pada - ParNasāla mun - du kurangamunu gane

Vanchanathō rā - muni gompōvaga - Ponchi rāvaNudu - sīthanu goni chane sri || Rāma ||

Dwitheeyakshra prāsa – 'cha'

r m p d panchava	d d n d ti ni su .	ṡ ṡ ṡ ṡ rpanakhabha	n d d m ngapada	r m r r Pa . rna sa	s s s ṇ . la mun	ḍ ṃ ṗ ḍ du uranga	ṇ ḍ ṇ s munu gane

r m p d panchava	n d ṡ ṙ ti ni su .	ṁ ṙ ṁ ṙ rpanakhabha	ṙ ṡ ṡ ṡ ngapada	n d d d Pa . rna sa	ṡ ṡ ṡ ṡ . la mun	ṙ ṡ n d du kuranga	d m r s munu gane

Raga Analysis – This is a rare raga. 'Panjaramu' means 'cage', wherein the abduction of Sita by Ravana has been indicated symbolically. **'rmpdnd', 'pdnd'** are raga chaya phrases

Charanam 12 :

Raga- Sahana — Arohana - S R2 G3 M1 P M1 D2 N2 Ṡ

28th Melakartha Hari Kambhoji — Avarohana - Ṡ N2 D2 P M1 G3 M1 R2 G3 R2 S

Sathi viyōgamuna – rāmudanujunithō - Athi dīnundagu - jatāyuvunu gani

Athiva jāda dela - si mōkshamunosagi - Antha rushya mū - kamunaku vedalina sri || Rāma ||

Dwitheeyakshra prāsa – 'thi'

Raga analysis – 'GmRgrs', 'pmDnS□' are the raga chaya prayoga-s

Charanam 13 :

Raga- Kunthala Varali — Arohana - S M1 P D2 N2 D2 Ṡ

28th Melakartha Hari Kambhoji — Avarohana - Ṡ N2 D2 P M1 S

Sabari pūrva pu - Nyamēmanandumu - Chēri kolachi madhu- ra phalambula nida

Abhaya mosage akhi - la lōka varadudu - Ārtha thrāNa parā – yaNundaina sri || Rāma||

Dwitheeyakshra prāsa – 'ba'

Charanam 14 :

Raga- Saraswathi Manohari — Arohana - S R2 G3 M1 D2 Ṡ
28th Melakartha Hari Kambhoji — Avarohana - Ṡ D2 N2 P M1 G3 R2 S

Ānjanēya su - grīvādulu thana - Kāpthulairi sī - thānvēshanakai
Ā vālini hatha - monarchi rājyamu - Ādaramuna su - grīvuna kosagina sri || Rāma ||
Adi prāsa – 'Ā'

Charanam 15 :

Raga- Balahamsa — Arohana - S R2 M1 P D2 Ṡ
28th Melakartha Hari Kambhoji — Avarohana - Ṡ N2 D2 P M1 R2 M1 G3 S

Ānavālugā – muddhutungaramu - Ānjanēyunaku - sri rāmudosaga
Vēnavēla yōjana - mula vāridhi - Vēga dāti lan - kāpuri jērina sri || Rāma ||
Dwitheeyakshra prāsa – 'Na'
Raga Analysis –The phrase **'pmrsrgs'** gives the raga touch. This raga was found in Sangraha Chudamani.

Charanam 16 :

Raga- Suposhini — Arohana - S R2 M1 P N2 D2 Ṡ
28th Melakartha Hari Kambhoji — Avarohana - Ṡ N2 D2 P M1 R2 M1 S

Akshaya kumāra - lankhiNula dunimi - Asōka vanamuna - sīthammanu gani
Sachcharithundidi - na yungarambidi - Sarva marasi sirō - bhūshaNamu gone sri || Rāma ||
About Raga – Gandhara varjya ragam. One of the eka kriti raga by Tyagaraja.

Charanam 17 :

Raga- Deva Manohari — Arohana - S R2 M1 P D2 N2 Ṡ
22nd Melakartha Kharahara Priya — Avarohana - Ṡ N2 D2 N2 P M1 R2 S

Sri rāmuni ban - tānjanēyundu - Ā rāvaNunaku - nīthi garupagā
Kōri vālamuna - kagni nantimpa- Dhīrāthmudu lan - kāpuri gālchenu sri || Rāma ||
Dwitheeyakshra prāsa – 'ra'
About Raga – Gandhara Varjya Ragam.

Charanam 18 :

Raga- Raga Vinodini — Arohana - S R2 G3 M1 D2 Ṡ
28th Melakartha Hari Kambhoji — Avarohana - Ṡ D2 M1 G3 R2 S

Sirōbhūshanamu - gaikoni rāmudu - Sīghrambuga vā - nara balagamulathō
Nirōdhamuna vā – ridhi ni bandhinchi - Sarāsariga lan – kāpuri jērina sri || Rāma ||
Dwitheeyakshra prāsa – 'ro'
About Raga – **'dmds□' 'gmds□' 'ds□ddm'** are ranjaka prayoga-s

Charanam 19 :

Raga-Valaji — Arohana - S G3 P D2 N2 Ṡ
28th Melakartha Hari Kambhoji — Avarohana - Ṡ N2 D2 P G3 S

Kōti lingamula - pūja sēyu (nava) dhara- Mētiyaina sura - rāja samānudu
Sāti lēni vai - bhavō pēthudai- Dhītagu vāde sī – thāpaharaNudaye sri || Rāma ||
Dwitheeyakshra prāsa – 'ti

Charanam 20 :

Raga- Kamas — Arohana – S M1 G3 M1 P D2 N2 Ṡ
28th Melakartha Hari Kambhoji — Avarohana - Ṡ N2 D2 P M1 G3 R2 S
RāvaNa sahōda - rudu vibhīshaNudu - Rāmachandrunaku – saraNāgathudaye
RāvaNa balagamu - kumbhakarNa mēgha - Nādha yōdhula - nathani keriginchenu sri || Rāma ||
Dwitheeyakshra prāsa – 'va'

Charanam 21 :

Raga- Suddha Saveri — Arohana – S R2 M1 P D2 Ṡ
28th Melakartha Hari Kambhoji — Avarohana - Ṡ D2 P M1 R2 S
Rāyabāra mam - penu sri rāmudu - RāvaNa yōdhula - kadi ruchimpadaye
Rayamuna yudhdhamu - jēyagā dalachi - RaNabhērini mrō - ginchiranthatanu sri || Rāma ||
Dwitheeyakshra prāsa – 'ya'

Charanam 22:

Raga- Kedara Gaula — Arohana – S R2 M1 P N2 Ṡ
28th Melakartha Hari Kambhoji — Avarohana - Ṡ N2 D2 P M1 G3 R2 S
Rāmachandrudakhila -suguNa sāndrudu - Prēmathō sri jā - nakinathani kosagi
Vēmaraka pāda - mula pai badamani - Vēdukoniri bhā - ryā puthrādulu sri || Rāma ||
Dwitheeyakshra prāsa – 'ma'

Charanam 23 :

Raga- NeeLa — Arohana – S G3 M1 D2 N2 Ṡ
28th Melakartha Hari Kambhoji — Avarohana - Ṡ N2 D2 M1 G3 S
Kāla mruthyu vā - sanna mai natula - Karagi pōye rā - vaNa balagambulu
Kīlā bhēlam - buna dasa kantudu - Kāla rudruniga - raNamunaku vedale sri || Rāma ||
Dwitheeyakshra prāsa – 'la'

Charanam 24:

Raga - Naadika — Arohana S R2 M1 D2 N2 Ṡ
28th Melakartha Hari Kambhoji — Avarohana Ṡ N2 D2 M1 R2 S
Ādithyuni man - thrambu patiyinchi - Yantha rāma la - kshmaNulu sarāgnula
Bhēdhinchiri dasa - kantuni thalalanu - dharithri sura - maunulu pogadaga sri || Rāma ||
Dwitheeyakshra prāsa – 'dhi'

S R A di	s ṇ Ṇ thyuni man	S r s thrambu pa	r Ss ti yinchi	s r r r antha ra	m m r m . ma la .	m d d m kshmanulu sa	d d n s ra . gnula

d n n ṙ bhedhin	ṙ ṙ ṡ ṙ chiri dasa	ṁ ṙ ṙ ṡ kan. Tuni	ṡ n n d thalalanu	n ṙ ṡ n ee . dhari	d d m d . thrisura	n ṡ n d mau . nulu	m r r s pogadaga

About raga – This is a rare raga. An Audava-audava ragam

Charanam 25 :

Raga- Raga Prathapa — Arohana S R2 G3 P D2 N2 Ṡ

28th Melakartha Hari Kambhoji — Avarohana Ṡ N2 D2 P G3 R2 S

Annāhāramu - varjinchina yā - Yannuminna sri - rāmu keduru jani

YennāLLaku mī - pāda sēvanaga- Yēlukondu mun - dagni parīkshane sri || Rāma ||

Dwitheeyakshra prāsa – 'nna'

p d d p A.nna .	d n d d ha .ramu	p g d p va , rjim	g r S china ya	Ṇ ḍ s yannumi	, s s r , nna sri .	g p d p ra . mu ke	d n d d duru jani

ṡ n d n Ye.nna.	ṡ ṡ d n llaku mi .	ṡ ṙ ġ ṡ pa . da se	ṙ ṗ ġ ġ . va yana	ġ ṗ ġ ṙ ye.lukon	ṡ n d n . dumun	ṙ ṡ n d da.gnipa	p g r s ri .kshane

About Raga – This is a rare raga**.** Madhyama varjya ragam. Shadava-Shadava ragam.

Charanam 26:

Raga – Ravi chandrika — Arohana – S R2 G3 M1 D2 N2 D2 Ṡ

28th melakartha Hari Kambhoji — Avarohana -Ṡ N2 D2 M1 G3 R2 S

Pāthivrathya ma - hāthyambunu gani - Bhīthi jende yā - agni hōthrude

Sītammanu rā – muna kandivvaga sam - Prīthini suralu su - ma vrushti salupaga

Sītā lakshmaNa - ānjanēya sahi- Thambuga pushpa vi - māna rūdulai

Yēthenchiri sā - kētha purikapudu- Vēlupulu mechha - pattamu gattina sri || Rāma ||

Dwitheeyakshra prāsa – 'tha'

About Raga – Panchama varjya raga

Charanam 27:

Raga - Madhyamavathi — Arohana – S R2 M1 P N2 Ṡ

22nd Melakartha Kharahara Priya — Avarohana -Ṡ N2 P M1 R2 S

Bharatha sathrughnu - lirvankala sura- Tīla visara kolu - vu kūtamanduna

Hari pādambula - karamula battaga- Ānjanēyu bhā - gyame bhāgyamaniri

Vara bhūsura mau - nulellaru pogadiri - Guruvu vasishtudu – āsīrvadimpa

Dhara vānarulu vi - bhīshanudu suralu - Dharma samsthāpa – nāchāryudaniri sri || Rāma ||

Dwitheeyakshra prāsa – 'ra'

About Raga - Madhyamavathi raga is used specially for auspicious endings in music

PHALA SRUTHI

Raga - Surati — Arohana – S R2 G3 P N2 Ṡ

28th melakartha Hari Kambhoji — Avarohana -Ṡ N2 D2 P M1 G3 P M1 R2 S

RāmāyaNa katha - pādinanu vinina- Rauravādi nara - kamulu nasinchunu

Bhūminaiswarya - sampadalu galugu- Purushothamude - narahari nuthudana sri || Rāma ||

Dwitheeyakshra prāsa – 'ma'

About Raga – Surati Raga is especially used for a divine ending.

Conclusion

1. Usually Ragamalika-s use to have chittaswaram at the end of each and every charanam (stanza) of that respective raga. Also, at the end of the composition, all these chittaswaram-s are sung in a viloma krama (Reverse order) to conveniently reach the pallavi. This ragamalika is not having any chittaswaram at the end of each stanza and also Viloma krama chittaswaram is absent. We can observe the similar absence of chittaswaram in 72 Mela ragamalika of Maha vaidyanadha Iyer too due to length of the composition.
2. Among the 29 raga-s, 26 raga-s are janya-s of Hari Kambhoji, 2 raga-s are janya-s of Kharahara Priya and 1 raga is janya of Dheera sankarabharanam.
3. Due to size constraint and limitation of words, only few charana-s were notated and information about raga-s were briefed.
4. In this paper the lyrics of 27 Nakshatra charana ragamalika, names of raga-s, notation, Arohana & Avarohana were given as mentioned in the hand written paper manuscripts of the composer which is unpublished yet.
5. It is observed that the composer had followed the raga-s and its Arohana & avarohana from "Sangitha Swara Prasthara Sagaram" (Telugu) by Nadamuni Pandithar in 1906.

References

1. G M Shobhanath (Dec 2017)- Sangeetha Kalanidhi – Book - 1 (Varnams) by Gali Penchala Narasimha Rao –First edition, printed in COMPUPRINT, Gopala Puram, Chennai 600 086. Pp – v-xii.
2. Sangeetha Kalanidhi – Book - 2 (Kruthis) by Gali Penchala Narasimha Rao – Compiled & Published by G M Shobhanath, in 2017, printed in COMPUPRINT, Gopala Puram, Chennai 600 086, Pp – v-xii.
3. Dr. M.N.Dandapani, D.Pattammal (1984) – Raga Pravaham (Index to Carnatic Raga-s)- Fourth edition reprint –Mar 2012, Printed in The City Printing Works, 271, Royapettah High Road, Chennai -14. Pp -143-157.
4. Prof. S.R.Janakiraman (2002)- Raga-s at a glance, Published by 'Srishti's Carnatica Pvt Ltd, 10/4, Krishna Enclave, 16th Cross Street, Indira Nagar, Chennai – 600020, PP 1- 136.
5. Prof. N.S.Ramachandran (Feb 1938) – The Ragas of Karnatic Music, Second Edition (Oct 2003), - Printed by Sekar Offset Printers, 168, Big Street, Chennai – 600006, Pp 190-193
6. P. Sambamurthy – Dictionary of South Indian Music, Vol – III, Pp 56-66.
7. https://www.rasikas.org/forums/viewtopic.php?t=9153
8. Direct interview with Sri G M Shobhanath, Son of Late Sri Gali Penchala Narasimha Rao, Besant Nagar, Chennai, Tamilnadu – 600090, on 23-Sep-2021.

संगीतशास्त्रज्ञ पं. सोमनाथ प्रणीत राग विबोध : एक परिचयात्मक अध्ययन

आवेश कुमार
शोध छात्र
मंचकला विभाग
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

प्रो. के. शशि कुमार
संकाय प्रमुख
संगीत एवं मंच कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सारांश

भारतीय संगीत शास्त्रीय ग्रन्थों की कड़ी में मध्यकालीन सांगीतिक ग्रन्थों में आन्ध्र प्रदेश निवासीकार पं0 सोमनाथ प्रणीत 'राग विबोध' ग्रन्थ अपनी सम्पूर्णता रागतत्व पर समाहित किये हुए है। इस ग्रन्थ की रचना सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में हुई है। इस ग्रन्थ की मूल विशेषता यह है कि पं0 सोमनाथ जी ने स्वयं ही अपने ग्रन्थ की टीका भी लिपिबद्ध किया है। ग्रन्थकार ने सविवेक स्वयं रचित टीकायुक्त अध्यायों को विवेक शब्द से संज्ञित किया है। इस ग्रन्थ को पांच अध्याय (विवेक) में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय में श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, वर्ण, अलंकार व स्वर विन्यास पर आधारित है। पं. सोमनाथ ने स्वर को मृदु रूपी शब्द से अभिहित किया है। द्वितीय अध्याय में रूद्र वीणा की सम्पूर्ण संरचना तत्व पर केन्द्रित किया है। सोमनाथ ने शुद्ध मेल, मध्यमेल दो प्रकार की वीणाओं की विशद् व्याख्या की गयी है। तृतीय अध्याय में मेल वर्गीकरण का विशद् वर्णन 960 मेलों की उत्पत्ति जन्य विवरण के साथ मुख्य 23 मेल व अन्य 76 रागों का विवण दिया है। चतुर्थ अध्याय राग की परिभाषा व राग वर्गीकरण पर आधारित है। पंचम अध्याय में 51 रागों का विस्तृत वर्णन, रागों के गायन समय सिद्धान्त, आलाप, मूर्च्छना, तान तथा रागों के देवमयी स्वरूप का भी विस्तृत वर्णन किया है।

संकेत शब्द

संगीत, संगीतशास्त्र, राग, अध्याय, विवेक, ग्रन्थ, स्वर

भूमिका :

संगीतशास्त्र मर्मज्ञ पंडित सोमनाथ दक्षिण भारत के आन्ध्र प्रदेश के अत्यन्त विद्वत परिवार से सम्बन्धित हैं। मुद्गल शूरी और जम्प अम्बा के पुत्र हैं। पं0 सोमनाथ के पारिवारिक सम्मान हेतु 'सकल कला' उपाधि स्वरूप विद्वानों ने प्रयोग किया है। इस ग्रन्थ की रचना स्वयं सोमनाथ ने शक संवत् 1531 अर्थात् 16091 अश्विनी तृतीय बताया है। तत्कालीन इस समय में मुगल वंश शासक जहांगीर का शासनकाल था उत्तर भारत में। पं. सोमनाथ ने राग विबोध के अतिरिक्त जातिला एवं वैराग्य शतक नामक ग्रन्थ लिखे इनके तीनों ही ग्रन्थ राग विबोध, जातिमाला, वैराग्य शतक संस्कृत भाषा में लिखे गये थे। वे संस्कृत के सुपण्डित, उच्चकोटि के वीणा वादक, उत्तरी व दक्षिणी संगीत के विशेषज्ञ तथा एक उत्तम वादक, उत्तरी व दक्षिणी संगीत के

विशेषज्ञ तथ एक उत्तम वादक, उत्तरी व दक्षिणी संगीत के विशेषज्ञ तथा एक उत्तम वादक, उत्तरी व दक्षिणी संगीत के विशेषज्ञ तथा एक उत्तम शास्त्रज्ञ व धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। राग विबोध ग्रन्थ शास्त्रज्ञ व धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। राग विबोध ग्रन्थ की सबसे अधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि मूलस्वरूप के साथ टीका भी लेखनबद्ध किया हो। राग विबोध की मुख्यतः चार पाण्डुलिपियां प्राप्त हैं पूना, मद्रास और बीकानेर के अलावा चौथी पाण्डुलिपि इंग्लैण्ड में आक्सफोर्ड में है। पूना भण्डारकर ओरिएण्टल लाइब्रेरी, पूना में यह ग्रन्थ सटीक उपलब्ध है और मद्रास के अड्यार लाइब्रेरी में भी।''[2]

अध्याय विवरण

प्रथमो विवेकः, द्वितीयो विवेकः, तृतीयो विवेकः, चतुर्थो विवेकः, पंचमो विवेक :

प्रथम अध्याय में ग्रन्थकार ने सर्वप्रथम अपनी रचना को ईश्वर समर्पित करने के पश्चात् अपने गुरुजनों व सांगीतिक आधार 'ध्वनि' को नमन किया है, तत्पश्चात् स्वयं का परिचय, लक्ष्य-लक्षण परिभाषा, मार्गी-देशी परिभाषा, श्रुति स्वर, मूर्च्छना ग्राम वादी संवादी वर्ण अलंकार ग्रह अंश न्यास, विभिन्न आचार्यों सम्बन्धित श्रुति का उल्लेख किया है व इस अध्याय में 83 श्लोक हैं।

पं. सोमनाथ जी के 22 श्रुतियों पर शुद्ध और विकृत स्वर की तालिका निम्नवत् है।[3]

श्रुति संख्या	शुद्ध स्वर	विकृत स्वर
1. तीव्रा		कैशिक नि या तीव्रतम ध
2. कुमुद्वती		काकली नि
3. मंदा		मृदु सा
4. छंदोवती	सा	
5. दयावती		
6. रजनी		
7. रक्तिका	रे	
8. रौद्री		तीव्र रे
9. क्रोधा	ग	तीव्रतर रे
10. वज्रिका		साधारण ग या तीव्रतम रे
11. प्रसारिणी		अन्तर ग
12. प्रीति		
13. मार्जनी	म	
14. क्षिति		
15. रक्ता		
16. संदीपनी		मृदु प या तीव्रतम म
17. अलापिनी	प	
18. मदन्ती		
19. रोहिणी		
20. रम्या	ध	
21. उग्रा		तीव्र ध
22. क्षोभिणी	नि	तीव्रतर ध

पंडित सोमनाथ ने भी अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के ही भांति बाईस श्रुतियां मानी हैं। पं0 सोमनाथ के शुद्ध स्वरों की आधारभूत श्रुतियों की संख्या 4, 7, 9, 13, 20, और 22 थी। पं0 सोमनाथ ने वीणा के दंड पर 22 श्रुतियों को स्थापित करने हेतु जो पद्धति अपनाई वो पं0 शारंगदेव जी के ढंग से भिन्न थी। पं0 सोमनाथ ने अपनी वीणा के तारों के नीचे बाईस परदे लगाकर उनसे बाईस श्रुतियों का प्रकटीकरण किया था।

मंद्रतमध्वनिराद्या त्रयं क्रमोच्चस्वनं किंचित।
न्यस्याः सूक्ष्माः सार्योऽथ द्वाविंशतिरधश्चरमंतव्याः।।
तंत्री यथेयमुच्चोत्तरखा किमपि तासु स्यात्।
द्व्यतर्नेष्टोडन्यरखः श्रुतयः इति इन्हांत्यतन्त्रया सः।।
ऋषभस्तृतीयसार्याम । - इत्यादि
मनागुच्चध्वनिः 'मध्ये विसदृशं ध्वन्यंतरं न स्यात् था'।4

सर्वप्रथम पहले तार को जितना भी नीचा मिला सके मिला लीजिये। यही प्रथम श्रुति होगी फिर अगले तीन तारों को इस प्रकार मिलाइये कि सब अपनें से पहले तार से कुछ चौथे तार के नीचे छोटे-छोटे ऐसे परदे रख दो, जिनमे प्रत्येक परदे का नाद पहले परदे से तनिक ऊंचा न हो, बस इस बात का ध्यान रखना है कि किन्ही भी दो परदों से समान ध्वनि उत्पन्न न हो जाए। चौथा तार षड़ज का नाद उत्पन्न करेगा। पंडित जी ने सात शुद्ध, पांच विकृत स्वर जिनके दो-दो नाम हैं इस आधार

पर दस विकतृ स्वर कहे जा सकते हैं। तीव्रतर रे, तीव्रतम रे, तीव्रतम ग, तीव्रतर ध और तीव्रतम ध क्रम से वही स्वर हैं जो शुद्ध ग साधारण म, शुद्ध म, शुद्ध नि और कैशिक नि है। 'पं0 सोमनाथ ने स्वरों की चढ़ी हुई अवस्थाओं को तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम कहा हैं।[5] प्रमुख रूप से यह भी स्पष्ट होता है कि सोमनाथ के समय विकृत स्वरों के लक्ष्य-लक्षण में विभेद था परन्तु स्वरों के नामकरण में सोमनाथ ने पं0 शारंगदेव का अनुगमन किया और रामामात्य के स्वरविभाजन पद्धति को भी स्वीकार किया है किन्तु रामामात्य ने विकृत स्वरों हेतु 'च्युत' शब्द को प्रयोगार्थ किया है परन्तु पंडित सोमनाथ जी ने 'च्युत' शब्द के स्थान पर 'मृदु, मृदुतर, मृदुतम्' शब्द को संज्ञित किया है।

निः कैशिकी च काकल्यथ सस्यैकां भजंश्च तां द्वे।
निगमा मृदुपर समयाः समपतृतीयश्रुतिस्थित्या6।।

अर्थात् जब निषाद षड़ज की प्रथम श्रुति ले लेता है तो वह कैशिक नि और जब दूसरी श्रुति पर पहुंच जाता है तो काकली नि बन जाता है जब नि, ग, और म क्रमशः स, म और प की तीसरी श्रुतियों पर पहुंच जाते हैं तो वे क्रमशः मृदु स, मृदु म और मृदु प बन जाते हैं।

द्वितीयो विवेकः (अध्याय) में रूद्र वीणा की सम्पूर्ण संरचना क्रम का विशद् वर्णन है। इसमें वीणा के शुद्ध, मध्य प्रकार का वर्णन तथा इनमें तार एवं पदों की व्याख्या व विविध स्वरोत्पादन की व्याख्या की गई है। इसके अलावा वीणा के स्वर और कंठ स्वरों का अंतर, शुद्ध मेल तथा मध्यमेल वीणाओं का अन्तर आदि का वर्णन है।

तृतीयो विवेकः (अध्याय) यह अध्याय मेल वर्गीकरण पर है। मेल की परिभाषा, 960 मेलों की उत्पत्ति विवरण परन्तु उनमें से 23 मेल व उससे जन्य 76 रागों का स्पष्ट उल्लेख किया है। पं0 सोमनाथ जी के 23 मेल व उसमें जन्य राग7-

	मेल नाम	**जन्य राग-नाम**
1.	मुखारी	मुखारी
2.	रेवगुप्ति	रेवगुप्ति
3.	सामवराली	सामवराली, बसंत वराली
4.	तोड़ी	तोड़ी
5.	नाद रामक्री	नाद रामक्री
6.	भैरव	भैरव, भैरवी
7.	बसंत	बसंत, टक्क, हिज्जेज, हिदोल
8.	बसंत भैरवी	बसंत भैरवी, मारवा
9.	मालवगौड	मालवगौड़, चैतीगौड़ी, पूर्वी, पाडी, देवगांधार, गौडक्रिया, कुरंजी, बहुली, रामक्री, पावक, आसाव. री, पंचम, बंगाल, शुद्ध ललित, गुर्जरी, परज, शुद्ध गौड़।
10.	रीति गौड़	रीति गौड़
11.	आभीर	आभीर
12.	हमीर	हमीर, विहंगड, केदार
13.	शुद्ध वराटी	शुद्ध वराटी
14.	शुद्ध रामक्री	देशकार, ललित, जैतश्री, त्रिवेणी, देशी
15.	श्री राग	श्री, मालवश्री, धन्यासी, भैरवी, धवला, सैंधवी
16.	कल्याण	कल्याण
17.	कांबोदी	कांबोदी, देवक्री
18.	मल्लारी	मल्लारी, नट मल्लार, पूर्व गौड़, भूपाली, गौड़, शंकराभरण, नटनारायण, नारायणी, केदार, सा. लंकनाट, बेलाबली, मध्यमादि, सावेरी, सौराष्ट्र
19.	सामंता	सामंत
20.	कर्णाट	कर्णाक, अड्डाणा, नागध्वनि, शुद्ध बंगाल, वर्णनाट, तुरूष्कतोड़ी या ईराख
21.	देशाक्षी	देशाक्षी
22.	शुद्ध नाट	शुद्ध नाट
23.	सारंग	सारंग

चतुर्थो विवेकः (अध्याय) इस अध्याय में राग परिभाषा, राग वर्गीकरण, उत्तम तथा अधम प्रकार

के रागों का भी वर्णन, रागों का समय निर्धारण, स्वरों में गमकों का प्रयोगादि का वर्णन है।

पंचमो विवेकः (अध्याय) राग विबोध का यह अध्याय रागरूप विषयाधारित है। राग-विबोध ग्रन्थ के इसी पंचम अध्याय के श्लोक 2 से 6 के अन्तर्गत 51 रागों का वर्णन किया गया है।

पं0 सोमनाथ जी के 51 रागों का विवरण निम्नवत है[8]-

1. बेलावली, 2. भूपाली, 3. ललित, 4. हिण्डोल, 5. विभासललित, 6. जैताश्री, 7. धनाश्री, 8. भैरव, 9. पौरविका, 10. तोड़ी, 11.तुरूष्कतोड़ी, 12. नटमल्लारि, 13. गोण्ड, 14. सैंधवी, 15. देशीकार, 16. शुद्धवराटी, 17. बाहुली, 18. शारंग, 19. नटनाराश्ण, 20. देवक्रिया, 21. सौराष्ट्री, 22. गौड़ी, 23. चैत्री, 24. पूर्वी, 25. त्रवणी, 26. काम्बोदी 27. शुद्धनाट, 28. आभीरी, 29. कल्याण, 30. श्रीराग, 31. मालवगौड़, 32. गौड़, 33. करनाट, 34. वर्णनाट, 35. हम्मीर, 36. केदार, 37. मल्लारी, 38. बसन्त, 39. शुद्धरामक्री, 40. हुसैनी, 41. हुसैनी, 42. आशावरी, 43. देवगान्धार, 44. धवला, 45. हमीरा, 46. मालवश्री, 47. मराविका, 48. मुखारी, 49. परज, 50. पावक, 51. पूर्वगौड़।

इसके पश्चात् गायन समयानुसार के अन्तर्गत 41 रागों का वर्णन किया है और पं0 सोमनाथ जी के अनुसार गायन समयानुरूप रागों का वर्णन निम्नवत्[9]-

गायन समय	**रागों का नाम**
प्रातःकालीन राग	शंकराभरणम्, भूपाली, ललित (शुद्ध), वसन्त, हिण्डोल और विभासललित
दिन के प्रथम प्रहर (प्रातः)	जैतश्री, धनाश्री, भैरव और पौरविका
दिन के द्वितीय प्रहार (संहव)	तोड़ी, तुरूष्कतोड़ी, मल्लारी, नटमल्लारि
दिन के तृतीय प्रहर (मध्याह्न)	गौड़, पूर्वगौड़, देशकार, शुद्धवराटी
दिन के चतुर्थ प्रहर (अपराह्न)	भूपाली, शारंग, नटनारायण, देवक्री
संध्याकाल (प्रदोश)	शुद्धनट, आभीरी, कल्याण, श्री, मायामालवगौड़, गौड़
रात्रि	करनाट, अड़ना, वर्णनाट, हम्मीर, केदार, बिहावड़ा
सर्वकालिक राग	मालवश्री, धवली, मुखारी, रामक्री, पावक, सैंधवी, आशावरी, देवगान्धार, मारूविका, परज

इस अध्याय में पंडित जी ने रागरूपों के अतिरिक्त रागों के स्वरमय स्वरूप विवरण, आलाप, शुद्धतान कूटतानों एवं वादन भेद गमक, स्थाय वीणा के 22 वादन भेद, रागों के देवमय स्वरूप का भी विस्तृत वर्णन किया है।

निष्कर्ष

इस प्रकार इस ग्रन्थाध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि संगीतशास्त्रीय ग्रन्थों में पं0 सोमनाथ विरचित 'राग विबोध' निश्चित ही रागों का सर्वांगीण स्वरूप हमें प्रदान करता है और यह ग्रन्थ राग के सन्दर्भ में ही केन्द्रित है। इस ग्रन्थ की विभिन्न राग संगीत सम्बन्धी तत्वान्वेषणों के कारण भारतीय संगीत के मध्यकालीन सांगीतिक ग्रन्थों में अपना विशेष महत्व रखता है।

अंत टिप्पणी

1. दासगुप्ता, प्रो. लिपिका, भारतीय संगीतशास्त्र ग्रन्थ परम्परा, पृ. 155
2. वही, पृ. 156
3. वर्मा, डॉ. सिम्मी, प्राचीन एवं मध्यकाल के शास्त्रकारों का संगीत में योगदान, पृ. 134-135
4. वही पृ. 132
5. मालवीय, डॉ. श्रद्धा, भारतीय संगीतज्ञ एवं संगीत ग्रन्थ, पृ. 165
6. वर्मा, डॉ. सिम्मी, प्राचीन एवं मध्यकाल के शास्त्रकारों का संगीत में योगदान, पृ. 133
7. वही पृ. 135-136
8. दासगुप्ता, प्रो. लिपिका, भारतीय संगीतशास्त्र ग्रन्थ परम्परा, पृ. 159
9. वही

Rāgataraṅṅgiṇi of Lōcana – An overview

Lakshmipriya R
Research scholar
Department of Indian Music
University of Madras, Chennai

Dr. Rajshri Ramakrishna
Associate Professor and Head i/c
Department of Indian Music
University of Madras, Chennai

Abstract

The treatise Rāgataraṅgiṇi of Lōcana deals with 12 samsthān-s and lists 77 janya raga-s. This work gives the details about śruti, gīta, nāda and also gives the rāga-rāgiṇi classification. The exact period of the work is not known but however, various scholars have suggested different time periods ranging from the later part of the 14th century to the end of the 17th century. This paper gives an overview of the samsthān-s/mēḷa-s seen in this treatise. This paper is also an attempt at suggesting a tentative date for this treatise based on a comparative study of some of the samsthān-s given in this work with that of the other works written before or after this work. The other details seen in this work such as the appropriate time of singing various raga-s, the raga-s that were prevalent in other regions and so on are also dealt with in this paper.

Key Words:

Rāgataraṅgiṇi, Samsthān, Rāga-s, Lōcana, Hindustāni,Lakṣaṇa.

Introduction

In the history of Indian music, the rāga-s were classified on the basis of various factors into different groups like, Sūryāṁśa, Madhyāhna, Candrāṁśa (on the basis of the time of singing), Ghana, Naya, Dēśi (emotions evoked by them), Uttama, Madhyama, Adhama (the utilization of the rāga-s) and so on. During the 16th century, a more technical system of classification of rāga-s came into existence, namely the mēḷa-janya system of classification. In this system, the rāga-s taking the same set of svara-s were grouped together and the popular rāga from the group was termed as a mēḷa. A mēḷa was distinct from a rāga, as a mēḷa had to have all the seven svara-s, while it was not necessary for a rāga to have all the seven svara-s. Many treatises have dealt with this system of classification of rāga-s and the first treatise to mention this is Svaramēḷakalānidhi of Rāmāmātya, which was written during the 16th century. Saṅgītasudhā of Gōvinda Dīkṣita is the next treatise to mention this system of classification, but however, Gōvinda Dīkṣita attributes his system to Vidyāraṇya, the author of the work Saṅgītasāra. This work of Vidyāraṇya is not available and hence Svaramēḷakalānidhi is consid-

ered to be the first available work which deals with the mēḷa-janya system. The mēḷa-janya system is being followed in the South Indian system in the present day and it is seen that from the period of Svaramēḷakalānidhi written in 1550 AD, there are 24 available treatises (Hema Ramanathan:2004) written in a span of about 350 years dealing with this system of classification and it is also observed that there has been a significant evolution in the number of mēḷa-s and the janya rāga-s. Rāgataraṅgiṇi of Lōcana is one among the 24 treatises and can be considered as an important work which predominantly deals with the North Indian raga-s. In this work, the term mēḷa is not seen and instead the term 'samsthān' has been used to denote a parent scale. This treatise deals with 12 samsthān-s in detail and lists out the janya rāga-s under each samsthān.

The 12 samsthān-s mentioned in Rāgataraṅgiṇi are as follows:

Bhairavi, Tōḍi, Gauri, Karṇāṭa, Kēdāra, Īmana, Sāraṅga, Mēgha, Dhanāśri, Pūrvā, Mukhāri and Dīpaka.

The details of the 12 samsthān-s are as follows:

- Bhairavi samsthān is the śuddha scale and is the first samsthān and all the other samsthān-s have been mentioned by way of a modification of the previous scales except for Dhanāśri, where the svara-s taken are explained individually.
- The śuddha scale, given in this work corresponds to the Kāfi thāṭ of the present day Hindustāni system and the 22nd mēḷakarta Kharaharapriya of the Karṇāṭak music system.
- Lōcana derives the second samsthān Tōḍi from the Bhairavi samsthān by changing the ṛṣabha and the dhaivata to kōmal. This corresponds to the modern Bhairavi thāṭ of the Hindustāni music system and the 8th mēḷakarta Tōḍi of the Karṇāṭak music system.
- The third samsthān Gauri is derived from Tōḍi by shifting the śruti positions of both gāndhāra and niṣāda to tīvra. This scale corresponds to the modern Bhairava thāṭ of the Hindustāni music system and the 15th mēḷakarta Māyamāḷavagauḷa of the Karṇāṭak music system.
- Karṇāṭa, the fourth samsthān however, is derived from the first samsthān Bhairavi instead of Gauri by changing the position of gāndhāra to tīvra. This corresponds to the present day Khamāj thāṭ of the Hindustāni music system and the 28th mēḷakarta Harikāmbhōji of the Karṇāṭak music system.
- The fifth samsthān is Kēdāra and it is derived from Karṇāṭa by changing the śruti position of niṣāda to tīvra. This corresponds to the modern Bilāval thāṭ of the Hindustāni system and the 29th mēḷakarta Śaṅkarābharaṇam of the Karṇāṭak music system.
- Īmana, the sixth samsthān is derived from the previous samsthān Kēdāra, by shifting the position of madhyama to tīvra. This scale corresponds to the modern Yaman thāṭ of the Hindustāni system and the 65th mēḷakarta Kalyāṇi of the Karṇāṭak music system.
- Sāraṅga, the seventh samsthān, is derived from Īmana, where the gāndhāra (Atitīvratama) coincides with the position of śuddha madhyama and the dhaivata takes the position of kaiśiki niṣāda (Tīvratara).

- Mēgha, the eighth samsthān is derived from Sāraṅga by retaining the śruti positions of dhaivata and niṣāda and shifting the positions of gāndhāra and madhyama to that of Karṇāṭa thāṭ. This corresponds to the 30th mēḷakarta Nāgānandini of the Karṇāṭak music system.
- Dhanāśri is the ninth samsthān and the only one which has been explained separately and not by way of a modification of the svara-s taken by the other samsthān-s. Here, the ṛṣabha is kōmal, gāndhāra and madhyama are tīvra, dhaivata is kōmal and niṣada is tīvra. The resulting scale corresponds to the modern Pūrvadhanāśri thāṭ of the Hindustāni system and the 51st mēḷakarta Kāmavardhini of the Karṇāṭak music system.
- The tenth samsthān is Pūrva and it is derived from Īmana by shifting the position of dhaivata to the place of kaiśiki niṣāda. This corresponds to the 66th mēḷakarta Chitrāṁbari of the Karṇāṭak music system.
- The eleventh samsthān Mukhāri is derived from the first samsthān Bhairavi by changing the position of dhaivata to kōmal. This corresponds to the present day Asāvari thāṭ of the Hindustāni system and the 20th mēḷakarta Naṭabhairavi of the Karṇāṭak music system.
- The twelfth and the last samsthān given in Rāgataraṅgiṇi is Dīpaka. The description of this samsthān is not given in this work and it has been stated that Dīpaka is no longer in practice and that the features of this samsthān must be set by the best living experts.

Date of the work

It has been suggested that Rāgataraṅgiṇi was written during the later part of the 17th century, i.e., after 1667 AD, which falls immediately after the period of Hṛdayanārāyaṇadēva, who has authored the two works Hṛdayaprakāśa and Hṛdayakautukam. (Hema Ramanathan:2004)

However, various scholars have suggested different dates for this work and the actual date of this work is still in question. In the treatise, there is a reference to the Shāka year 1082 which, according to Raghavan V, corresponds to the year 1160 AD. The following ślōka gives the reference to the above mentioned date:

भुजवसुदशमितशाकेश्रिमद्बल्लासेनराज्यादौ ।
वर्षैकषष्टिभोगेमुनयस्त्वासन्विशाखायाम्॥

Bhujavasudaśamitaśākē śrimadballālasēnarājyādau |
varṣaikaṣaṣṭibhōgē munayastvāsan viśākhāyām ||

The details of the date of the work as inferred by various scholars are given below:

1. V N Bhatkhande, in his book 'A comparative study of some of the leading music systems of the 15th, 16th, 17th, and 18th centuries', has suggested that the scholars disagree with the date given in the treatise because of the inclusion of Mohemmadin rāga-s (Rāga-s that flourished during the Persian rule) like Īman and Phirōdast. He also states that it is possible that Hṛdayanārāyaṇādēva quotes from Rāgataraṅgiṇi, thereby suggesting that Rāgataraṅgiṇi was written before the two works of Hṛdayanārāyaṇa.
2. V Raghavan, in his book 'Later Saṅgīta literature', also disagrees

with the date given in the treatise and suggests that Rāgataraṅgiṇi could have been written in the year 1700 AD.

3. C S Pant, in his article titled 'Lōcana's Rāgataraṅgiṇi' for The Journal of The Madras Music Academy, has inferred that Lōcana has borrowed from Hṛdayanārāyaṇa because of the following reason-

Bhāvabhaṭṭa, the author of the works Anūpasaṅgītaratnākara and Anūpasaṅgītavilāsa (18th century) has quoted from the authors Ahōbala (Saṅgītapārijāta), Śrīnivāsa (Rāgatattvavibōdha), Hṛdayanārāyaṇadēva and a few others but not from Lōcana. He suggests that the treatise Rāgataraṅgiṇi should fall between the period of 1670 and 1705 AD.

4. O C Ganguly, in his book 'Ragas and Raginis', has suggested that Rāgataraṅgiṇi belonged to the year 1375 AD. He has also addressed the questioning of the inclusion of the rāga-s Īman and Phirōdast by various scholars and says that such rāga-s were the creations of the Persian poet Amir Khusrao (1253-1325 AD), thereby suggesting that Lōcana belonged to a period later than, or immediately after the period of Amir Khusrao.

With the views of the scholars about the date of this work, an attempt has been made in this paper to ascertain the date of this work with the help of the samsthān-s Bhairavi and Dīpaka as given in Rāgataraṅgiṇi.

The following observations are made with regard to the samsthān Dīpaka:

- In Rāgataraṅgiṇi, even though Lōcana has mentioned the rāga-s like Īman and Phirōdast, he has also included the samsthān Dīpaka. Dīpaka is believed to have been sung by Tansen (1493-1586), the court musician of Akbar. This suggests that the work could not have belonged to a period earlier than the period of Tansen since the treatises written before the given period do not mention this rāga.
- The description of the samsthān/rāga Dīpaka can be seen in Saṅgītapārijāta of Ahōbala and Rāgatattvavibōdha of Śrīnivāsa, two works that were written during the 17th Century AD. Rāgataraṅgiṇi, which is also referred to as a 17th century work, does not provide a description for this samsthān and it can possibly be inferred that this treatise was written before the two works mentioned above. Hṛdayanārāyaṇadēva might have followed the work Rāgataraṅgiṇi, since he also does not give the description for Dīpaka. Since there have been two or three rāga-s in the name of Dīpaka, it would be difficult to ascertain the lakṣaṇa of this particular Dīpaka mentioned in Rāgataraṅgiṇi and it is also difficult to arrive at a conclusive date by taking only this into consideration.

The inferences made with regard to the Samsthān Bhairavi are as follows:

- Lōcana states that the samsthān Bhairavi takes all the śuddha svara-s. This corresponds to the present day Kāfi thāṭ of the Hindustāni music system and the 22nd mēḷakarta Kharaharapriya of the Karṇāṭak

music system. He also states that Bhairavi is sung with kōmal dhaivata sometimes and suggests that such a practice is incorrect and will sound displeasing to the ears. This indicates that he was aware of the Southern tradition of singing Bhairavi with śuddha dhaivata (Kōmal, according to Lōcana; śuddha in the South Indian tradition).

- The first South Indian text to describe Bhairavi with śuddha dhaivata is Sangītasudha of Gōvinda Dīkṣita which was written in 1614 AD. The Bhairavi mēḷa given in Sangītasudha corresponds to the 20th mēḷa of the 72 mēḷa scheme. Svaramēḷakalānidhi of Rāmamātya mentions a mēḷa by the name Hindōḷa which corresponds to the 20th mēḷa, whereas in Sangītasudha, Hindōḷa is replaced by Bhairavi as a mēḷa and is instead listed as a janya rāga under it. Svaramēḷakalānidhi gives the rāga Bhairavi as a janya of Śrīrāga mēḷa which takes the higher variety of dhaivata.
- Caturḍaṇḍiprakāśika of Vēṅkaṭamakhi (1620 AD) also follows Sangītasudha in naming Bhairavi as a mēḷa with śuddha dhaivata. Thus, it can be said that the mēḷa/rāga Bhairavi had the higher variety of dhaivata during the 16th century when Svaramēḷakalānidhi was written and the dhaivata eventually diminished during the early 17th century as evident from Sangītasudha and Caturḍaṇḍiprakāśika, which has been acknowledged by Lōcana in this work.
- It can therefore be suggested that the treatise Rāgataraṅgini possibly belonged to the period 1620-1667 AD, that is, before the period of Hṛdayanārāyaṇadēva. The reason for this inference is the clear omission of the samsthān Hṛdayaramā in this treatise. This particular samsthān can be seen in the two texts Hṛdayakautuka and Hṛdayaprakāśa of Hṛdayanārāyaṇa and is believed to have been his creation, but Lōcana has not mentioned it anywhere in his work. All the other samsthān-s given in this work can also be seen in Hṛdayanārāyaṇa's two works, except Dīpaka which is not seen in Hṛdayaprakāśa. Although, it is possible that Lōcana did not want to acknowledge a samsthān that was newly created by a contemporary or an earlier author, it may also be presumed that he belonged to an earlier period and did not come across the works of Hṛdayanārāyaṇa and that he was unaware of the existence of the samsthān Hṛdayaramā.

Thus, it can be said that the period suggested by V N Bhatkhande seems to be right and that the treatise Rāgataraṅgiṇi was written well before Hṛdayakautuka and Hṛdayaprakāśa, probably between 1620 and 1667 AD.

Now some interesting aspects about the samsthān Sāraṅga as given in Rāgataraṅgiṇi are taken up:

Another notable aspect in Rāga-taraṅgiṇi is the description of the samsthān Sāraṅga by Lōcana. He arrives at this samsthān from the previous samsthān Īmana. With the description given by him, the svarā-s taken by the samsthān Sāraṅga

in accordance with the 22 śruti system are inferred as below:

S R2 G (M1) M2 P D3 N3

Here, the svarā-s are śuddha ṛṣabha (corresponds to catuśruti ṛṣabha), atitīvratama gāndhāra, tīvra madhyama, pañcama, tīvratara dhaivata and tīvra niṣāda. Atitīvratama gāndhara is a term given by Lōcana when the gāndhāra takes the position of śuddha madhyama. Most of the Northern texts describe the lakṣaṇa of the samsthān Sāraṅga in the same manner. But interestingly, the South Indian works, Rāgalakṣaṇamu of Śāhaji (1684-1712), Rāgalakṣaṇam of Muddu Vēṅkaṭamakhī (later part of 18th century) and Saṅgītasampradāyapradarśini of Subbarāma Dīkṣitar (1904) follow this tradition of giving the term śuddhamadhyama gāndhāra for the gāndhāra in the raga Sāraṅga, even though that variety of gāndhāra is not in vogue in the South Indian system. Incidentally, Rāgalakṣaṇamu mentions Sāraṅga as a Dēśi raga, that is, a rāga which has originated in the North and has come into the Southern practice. The other two works mention the rāga as a Naya/Rakti as well as a Dēśi raga.

The lakṣaṇa for the mēḷa Sāraṅga given in Rāgalakṣaṇamu of Śāhaji is similar to that which is seen in Rāgataraṅgiṇi. Śāhaji states that Sāraṅga takes the following svara-s:

Ṣaḍja, pañcaśruti ṛṣabha, śuddhamadhyama gāndhāra, uccamadhyama, pañcama, ṣaḍśruti dhaivata and kākali niṣāda.

Since gāndhāra takes the position of śuddhamadhyama, Śāhaji has referred to it as śuddhamadhyama gāndhāra and this particular term has been mentioned in both Rāgalakṣaṇam of Muddu Vēṅkaṭamakhī and Saṅgītasampradāyapradarśini, while describing the lakṣaṇa for the rāga Sāraṅga.

As gāndhāra occupies the position of śuddhamadhyama, the position of madhyama in Sāraṅga could have been even higher than cyutapañcama madhyama (corresponds to the present day Prati madhyama) and therefore, Śāhaji might have given the term uccamadhyama instead. The explanation for the term uccamadhyama with reference to the position taken by the svara is not seen in Rāgalakṣaṇamu of Śāhaji but this term is seen only under the mēḷa Sāraṅga. It is interesting to note that Rāgalakṣaṇamu of Śāhaji gives the term cyutapañcama madhyama for the madhyama occurring in the mēḷa-s Varāḷi, Rāmakṛiya and Sindhurāmakṛiya.

The term uccamadhyama however, is not mentioned in the works Rāgalakṣaṇam of Muddu Vēṅkaṭamakhī and Saṅgītasampradāyapradarśini and instead the authors have given the term prati madhyama for Sāraṅga. Even though Śāhaji has described Sāraṅga as a mēḷa, the works Rāgalakṣaṇam of Muddu Vēṅkaṭamakhī and Saṅgītasampradāyapradarśini, which have otherwise followed the tradition of Rāgalakṣaṇamu of Śāhaji, have given Sāraṅga as a janya rāga under the mēḷakarta Kalyāṇi, which takes antara gāndhāra and pañcaśruti dhaivata (corresponds to catuśruti dhaivata of the present day). The term śuddhamadhyama gāndhāra nevertheless, is given in both works for the rāga Sāraṅga.

The lakṣaṇa ślōka given in Rāgalakṣaṇam of Muddu Vēṅkaṭamakhī for Sāraṅga is as follows:

सायंगेयस्तुसारङ्गः शुद्धम्ध्यमगान्वितः

S ā y a ṁ g ē y a s t u s ā r a ṅ g a h śuddhamadhyamagānvitah|

The lakṣaṇa ślōka for Sāraṅga in Saṅgītasampradāyapradarśini is given below:

शुद्धमध्यमगान्धारंकृत्वागेयादिनान्यये।
śuddhamadhyamagāndhāraṁkṛtvā gēyā dinānyayē |

The rāga Sāraṅga, described in Rāgalakṣaṇamu of Śāhaji might have been adapted from the works pertaining to the North Indian samsthān-s/mēḷa-s like Lōcana's Rāgataraṅgiṇi and this tradition has been followed by the works Rāgalakṣaṇam of Muddu Vēṅkaṭamakhī and Saṅgītasampradāyapradarśini respectively. In today's Karṇāṭak music tradition, Sāraṅga is not sung with śuddhamadhyama gāndhāra, but is sung with the presence of śuddhamadhyama itself, which occurs in a few phrases in the avarōhaṇa. The gāndhāra used in Sāraṅga is antara gāndhāra.

The other details seen in this work are as follows:

- The concept of Nāda and the two types of Gīta-s namely, Nibaddha and Anibaddha are seen in this work.
- The names of the 22 śruti-s starting from Tīvra, Kumudvati and so on have been mentioned, along with the position taken by each śruti. The śuddha and vikṛta svara-s have been classified on the basis of the 22 śruti positions.
- There are 77 janya rāga-s under the 12 samsthān-s and it is seen that the samsthān-s Gauri, Karṇāṭa and Kēdāra take the maximum number of janya rāga-s under them.
- Besides the mēḷa-janya system of classification, the rāga-rāgiṇi system of classification can also be seen in this work. This classification has almost lost its relevance today.
- Many of the janya rāga-s seen in this treatise are still in vogue in both the Hindustāni and the Karṇāṭak music system. For example, the rāga-s like Asāvēri, Dhanāśri, Rāmakali which can be seen in this work are in practice in both the Hindustāni and the Karṇāṭak music tradition.
- A section named "Rāgaṇām gānakālāh" is given where the appropriate time of singing for some of the raga-s is stated. It is also emphasized that only when the rāga-s are sung during the time suggested, they provide rañjaka to the listeners.
- A reference to another work written by Lōcana called Rāgasaṅgītasaṅgraha is seen in this work.
- A list of the raga-s that were popular in the other parts of the country during the author's period has been given in a segment named 'sakaladēśa sādhāraṇa guṇigaṇa prasiddha rāga saṅkarā.' Some of the rāga-s included are Kalyāṇi, Sahāna, Kāpi which again, are in practice in both Hindustāni and the Karṇāṭak system of music, especially the latter.

It is important to understand that this system of classification of the samsthān-s has paved way for the formulation of the present day Thāṭ system of the North Indian tradition.

Conclusion

Rāgataraṅgiṇi of Lōcana is a work that is relevant to the present day Hindustāni as well as Karṇāṭāk music system in terms of the samsthān-s seen in this work. This system of classification of the samsthān-s has been followed in many of the contemporary as well as the later North Indian treatises and has been the

source of origin and development for the present day 10 Thāṭ system of the Hindustāni music tradition.

In Rāgataraṅgiṇi, each samsthān has been described by way of a modification in the svara-s taken by a previous samsthān. The exception to this is however, Dhanāśri, the 9th samsthān, where the svarā-s are mentioned and described individually and not by way of a modification of the svarā-s taken by the previous samsthān-s. The reason behind this is unclear since it is possible to derive this from the 3rd samsthān Gauri, by shifting the position of madhyama alone.

The lakṣaṇa for the samsthān Dīpaka is not given in this treatise and it can be inferred that the samsthān/rāga Dīpaka had already gone out of vogue by the time of Lōcana since he himself has suggested the samsthān to be revived by the best living experts.

The clear description of the samsthān-s helps in tracing the historic evolution of the Thāṭ-s of the present day.

However, there are a few limitations seen with regard to the rāga-s that are given in this work.

- A total of 77 janya rāga-s have been listed but the lakṣaṇa or description of the janya rāga-s is not seen in this treatise.
- The list of various rāga-s that were popular in the other parts of the country has been given by the author. However, this remains just as a list of raga-s as it is not possible to do a comparative study of these rāga-s with respect to the rāga-s dealt with in the contemporary or earlier works, since the lakṣaṇa for the rāga-s is not available.
- Since the lakṣaṇa for the rāga-s is not available, it is also not possible to trace the historic evolution of these rāga-s.

It can be seen that a mēḷa/samsthān was always considered to be distinct from a rāga and this has been followed in this work as well. For instance, when the author gives the janya rāga-s for the samsthān Bhairavi, he lists a rāga in the name of Bhairavi under it.

Bibliography

- Dīkṣitar Subbarāma - Saṅgītasampradāyapradarśini, Vidyā Vilāsini Press, Eṭṭaiyapuram Samasthānam, Eṭṭaiyapuram.1905. http://ibiblio.org/guruguha/ssp_cakram7-12.pdf
- Ganguly O C, Ragas and Raginis, Nalanda books, published in 1935 and revised in 1947.
- Hema Ramanathan, Rāgalakṣaṇasaṅgraha: Collection of Rāga Descriptions from Treatises on Music of the Mēla Period with translation and notes, publisher N Ramanathan, Chennai, 2004.
- Ed. Joshi D K, Rāgataraṅgiṇi of Lōcana Paṇḍita, Published by B S Sukthankar, Bombay, 1918
- Ed. Mehta R C, A Comparative study of some of the leading music systems of the 15th, 16th, 17th and 18thcenturies by Bhatkhande V N, Indian Musicological society, Baroda, 1972.
- Pant C S, Lochana's Ragatarangini, The Journal of the Madras Music academy, Vol. XXXVI, 1965
- Raghavan V, Later Saṅgīta literature, Sangeet Natak Akademi, Bulletin no.18, April, 1961
- Rāgalakṣaṇam of Muddu Vēṅkaṭamakhī - printed as an Appendix to the Caturdaṇḍī-prakāśikā of Vēṅkaṭamakhī, ed. by Pandit S Subrahmanya Sastri, T V Subba Rao and T.L. VenkataramaIyer, pub. by The Music Academy, Madras, 1934.
- Rāgalakṣaṇamu of Śaha Mahārāja, Editor-Dr S Seetha, Bṛhaddhvani, Chennai.1990.

The Mēla-s and Rāga-s of Svaramēlakalānidhi – An Overview

S Suchitra
Research Scholar
Department of Indian Music
University of Madras, Chepauk, Chennai

Dr R Hemalatha
Assistant Professor
Department of Indian Music
University of Madras, Chepauk, Chennai

Abstract:

South Indian Music portrays a strong basis and classification in the rāga system. The Mēla-janya classification bloomed into the South Indian system during 15th – 16th Century. Svaramēlakalānidhi (SMK) of Rāmamātya in 1550 AD formulated the mēla-janya classification with 20 mēla-s. The author classifies 68 rāga-s under 20 mēla-s into Uttama, Madhyama and Adhama rāga-s, following which a major change in the classification is observed in Vēṅkaṭamakhī's Caturdandīprakāśika, 1620 AD where he has devised the 72 mēlakarta scheme and has described only 19 mēla-s. However, the complete nomenclature was given by Muddu Vēṅkaṭamakhī in his work "Rāgalakṣaṇam", RL-MV (first quarter of 18th century), in which he gives the nomenclature and detailed description to all the 72 mēla-s. The Saṅgītasampradāyapradarśini of Subbarāma Dīkṣitar (SSP), 1904 AD., to a great extent follows RL-MV and is found to be an extensive text, which is closest to what is in practice today. The mēla-janya system hence, has developed and evolved into a very structured system. Most of the rāga-s that were in vogue during the SMK period have undergone a lot of changes, whereas some of the rāga-s have withstood through centuries and have not seen much changes.

This paper gives an overview of the mēla-s and rāga-s in SMK and the overview of growth of the rāga-s today.

Keywords:

South Indian Music, Mela, Janya, Raga, Melakarta

Introduction:

Rāga is a melodic structure in Indian Classical Music. The rāga-s have been the basis of Indian Music, especially South Indian Music. A defined mēla-janya system is believed to have come into existence during the period of Vidyaranya in the 15th Century through his text Saṅgītasāra. This work is not available and hence the first evidential work giving mēla-janya classification is Svaramēlakalānidhi (SMK) by Rāmamātya in 1550 AD. In

this work, he classifies 68 rāga-s under 20 mēla-s. He also classifies the rāga-s into Uttama, Madhyama and Adhama rāga-s based on their popularity and usage during that period.

The Uttama rāga-s are those rāga-s that are pure and are fit for singing ālāpa, Thāya and compositions. The madhyama rāga-s are those rāga-s that are fit to sing compositions. The adhama rāga-s are those that are not fit for ālāpa, thāya and prabandha.

This paper gives an overview of the mēla-s and rāga-s in SMK.

The mēla-janya classification:

Rāmamātya has grouped rāga-s having similar svarasthāna-s under a mēla, in which the most popular rāga has been termed the mēla of the group. Some of the rāga-s mentioned in SMK have developed into major rāga-s today. A very few of them have become obselete in today's context.

The 20 mēla-s mentioned in SMK are as below:

1. Mukhāri
2. Māḷavagauḷa
3. Śrīrāga
4. Sāraṅganāṭa
5. Hindōla
6. Śuddharāmakriyā
7. Dēśākśi
8. Kannaḍagauḷa
9. Śuddhanāṭi
10. Āhari
11. Nādarāmakriyā
12. Śuddhavarāḷi
13. Rītigauḷa
14. Sāmantha
14. Vasantabhairavi
15. Kēdāragauḷa
16. Hejujji
17. Sāmavarāḷi
18. Rēvagupti
20. Kāmbhōji

Mēla-s and their description in SMK:

1. Mukhāri: All the svara-s mentioned are śuddha svara-s. The mēla corresponds to the 1st mēla, Kanakāṅgi according to the 72 mēla scheme.

2. Mālavagaula: Svara-s mentioned are śuddha sa, ri, ma, pa, dha, cyutamadhyama ga and cyutaṣaḍja ni. -s The mēla corresponds to the 15th mēla according to the 72 mēla scheme. The janya rāga-s mentioned under the mēla are Mālavagaula, Lalita, Bauli, Sauraśtra, Gurjari, Mēcabauli, Palamañjari, Guṅdakri, Sindhurāmakri, Chāyāgaula, kurañji, kannḍabaṅgala, Maṅgalakaiśiki and Malhari.

3. Śrīrāga: Svara-s mentioned are śuddha sa, ma, pa, sādhāraṇa ga, pañcaśruti ri and dha, kaiśiki ni. The mēla corresponds to the 22nd mēla according to the 72 mēla scheme. The janya rāga-s mentioned are Śrirāga, Bhairavi, Gauli, Dhanyāsi, Śuddhabhairavi, Vēlāvali, Mālavaśri, Śaṅkarābharaṇam, Āndōli, Dēvagāndhāri, Madhyamādi.

4. Sāraṅganāṭa: Svara-s mentioned are śuddha sa, ma, pa, pañcaśruti ri and dha, cyutamadhyama ga, cyutaṣaḍja ni. The mēla corresponds to the 29th mēla according to the 72 mēla scheme. The janya rāga-s mentioned are Sāraṅganāṭa, Sāvēri, Sāraṅgabhairavi, Naṭanārāyaṇi, Śuddhavasanta, Pūrvagaula, kuntalavarāli, Bhinnaṣaḍja, Nārāyaṇi.

5. Hindōla: Svara-s are śuddha sa, ri, ma, pa, dha, sādhāraṇa ga, kaiśiki ni. The mēla corresponds to the 20th mēla according to the 72 mēla scheme. The janya rāga-s mentioned are Hindōla, Mārgahindōla, Bhūpāla.

6. Śuddharāmakriyā: Svara-s are śuddha sa, ri, pa, dha, cyutamadhyama ga, cyutapañcama ma, cyutaṣaḍja ni. The mēla corresponds to the 51st mēla according to the 72 mēla scheme. The janya rāga-s mentioned are Śuddharāmakriya, Pāḍi, Ārdradēśi, Dīpaka.

7. Dēśākṣi: Svara-s mentioned are śuddha sa, ma, pa, ṣaṭśruti ri, cyutamadhyama ga, pañcaśruti dha, cyutaṣaḍja ni. The mēla corresponds to the 35th mēla according to the 72 mēla scheme. The janya rāga-s are Dēśākṣi and other rāga-s.

8. Kannaḍagaula: Svara-s mentioned are śuddha sa, ma, pa, śaṭśruti ri, cyutamadhyama ga, pañcaśruti dha, kaiśiki ni. The mēla corresponds to the 34th mēla according to the 72 mēla scheme. The janya rāga-s mentioned under the mēla are Kannaḍagaula, Gantārava, Śuddhabangala, Chāyānāṭa, Turuṣkatōḍi, Nāgadhvani, Dēvakriya and a few others.

9. Śuddhanāṭi: Svara-s mentioned are śuddha sa, ma, pa, ṣaṭśruti ri, cyutamadhyama ga, ṣaṭśruti dha, cyutaṣaḍja ni. The mēla corresponds to the 36th mēla according to the 72 mēla scheme. The janya rāga-s Śuddhanāṭi and other rāga-s.

10. Āhari: Svara-s mentioned are śuddha sa, ma, pa, dha, pañcaśruti ri, sādhāraṇa Ga, cyutaṣaḍja ni. The mēla corresponds to the 21st mēla according to the 72 mēla scheme. The janya rāga-s are Āhari and other rāga-s.

11. Nādarāmakriyā: Svara-s mentioned are śuddha sa, ri, ma, pa, dha, sādhāraṇa ga, cyutaṣaḍja ni.

The mēla corresponds to the 9th mēla according to the 72 mēla scheme. The janya rāga-s are Nādanāmakriya and other rāga-s.

12. Śuddhavarāḷi : Svara-s mentioned are śuddha sa, ri, ga, pa, dha, cyutapañcama ma, cyutaṣaḍja ni. The mēla corresponds to the 39th mēla according to the 72 mēla scheme. The janya rāga-s are Śuddhavarāli and other rāga-s.

13. Rītigauḷa: Svara-s mentioned are śuddha sa, ri, ga, ma, pa, pañcaśruti dha, kaiśiki ni. The mēla corresponds to the 4th mēla according to the 72 mēla scheme. The janya rāga-s are Rītigaula and other rāga-s.

14. Vasantabhairavi: Svara-s mentioned are śuddha sa, ri, ma, pa, dha, cyutamadhyama ga, kaiśiki ni. The mēla corresponds to the 14th mēla according to the 72 mēla scheme. The janya rāga-s are Vasantabhairavi and Sōmarāga.

15. Kēdāragauḷa: The svara-s mentioned are śuddha sa, ma, pa, pañcaśruti ri, pañcaśruti dha, cyutaṣaḍja ni. The mēla corresponds to the 28th mēla according to the 72 mēla scheme. The janya rāga-s mentioned are Kēdāragaula, Nārāyaṇagaula and a few other rāga-s.

16. Hejujji: The svara-s mentioned are śuddha sa, ma, pa, pañcaśruti ri, pañcaśruti dha, cyutaṣaḍja ni. The mēla corresponds to the 15th mēla according to the 72 mēla scheme. The janya rāga-s mentioned are Hejujji, other rāga-s and few other grāma rāga-s.

17. Sāmavarāli: The svara-s mentioned are śuddha sa, ri, ga, ma, pa, dha, kākali ni. The mēla corresponds to the 3rd mēla according to the 72 mēla scheme. The janya rāga-s mentioned are Sāmavarāli, Thōṇḍi, Pūrvavarāli and a few grāma rāga-s.

18. Rēvagupti: The svara-s mentioned are śuddha sa, ri , ma, pa, dha, ni and antara ga. The mēla corresponds to the 13th mēla according to the 72 mēla scheme. The janya rāga-s mentioned are Rēvagupti and a few other śuddha rāga-s.

19. Sāmantha: The svara-s mentioned are śuddha sa, ma, pa, ṣaṭśruti ri, dha, antara ga, kākali ni. The mēla corresponds to the 36th mēla according to the 72 mēla scheme. The janya rāga-s mentioned are Sāmanta and other rāga-s.

20. Kāmbhōji: The svara-s mentioned are śuddha sa, ma, pa, pañcaśruti ri, dha, kākali ni. The mēla corresponds to the 29th mēla according to the 72 mēla scheme. The janya rāga-s mentioned are Kāmbhōji and other rāga-s.

Observation:

18 mēla-s out of 20 are seen to be śuddha madhyama mēla-s except for Śuddharāmakriyā and Śuddhavarāli. Rāmamātya, after explaining the mēla-s and rāga-s, states that the svara position of cyutamadhyama gāndhāra and antara gāndhāra are almost similar and hence the mēla-s having these svarasthāna-s can be equated to one mēla. Similarly, the svara position of cyutaṣaḍja niṣāda and kākali niṣāda are almost similar and hence these mēla-s having these svarasthāna-s can also be equated to one mēla. Therefore, as a whole, the total number of mēla-s can be equated to 15. Hence, the mēla-s Hejujji, Sāmavarāli, Rēvagupti, Sāmanta and Kāmbhōji can be considered under Vasantabhairavi, Śuddhavarāli, Bauli, Kannaḍagaula, Sāraṅganāṭa respectively. For instance, Rāga Hejjuji has antara ga and rāga Vasantabhairavi has cyutaṣaḍja ga. All the other svarasthāna-s are the same. Therefore, according to Rāmamātya's statement, both these mēla-s can be equated to one. Whereas, with regards to the graha, amśa and the nyāsa svara, there is a difference observed in all these mēla-s. It is also important to note that Govinda in his text "Saṅgītasudha" has mentioned only 15 mēla-s well in par with SMK, where the actual number of mēla-s can be equated to only 15 and not 20.

Rāga Classification:

As mentioned earlier, the rāga-s mentioned in the text have been classified into Uttama, Madhyama and Adhama rāga-s.

The following 20 rāga-s have been mentioned as Uttama rāga-s:

1. Mukhāri; 2. Śuddhanāṭi; 3. Mālavagaula; 4. Śuddhavarāli; 5. Gurjari; 6. Lalita; 7. Śuddharāmakriya; 8. Śuddhavasanta; 9. Bhairavi; 10. Hindōla; 11. Śrīrāga; 12. Kannaḍagaula; 13. Sāmantha; 14. Dēśākṣi; 15. Dhanyāsi; 16. Bauli; 17. Āhari; 18. Malhari; 19. Mālavaśri; 20. Sāraṅganāṭa

The following 15 rāga-s have been mentioned as Madhyama rāga-s:

1. Kēdāragaula; 2. Kāmbhōji; 3. Kannaḍagaula; 4. Vēlāvali; 5. Madhyamādi; 6. Nārāyaṇi; 7. Rītigaula; 8. Nādanāmakriya; 9. Pāḍi; 10. Bhūpāla; 11. Rēvagupti; 12. Gunḍakriya; 13. Hejujji; 14. Vasantabhairavi; 15. Sāmavarāli

The following 33 rāga-s have been mentioned as Adhama rāga-s:

1. Saurāśtra; 2. Mēcabauli; 3. Chāyagaula; 4. Kurañji; 5. Sindhurāmakriya; 6. Gauli; 7. Dēśi; 8. Maṅgalakaiśiki; 9. Pūrvagaula; 10. Sōmarāga; 11. Āndōli; 12. Palamañjari; 13. Saṅkarābharaṇam; 14. Dēvagāndhāri; 15. Dīpaka; 16. Naṭanārāyaṇi; 17. Śuddhabhairavi; 18. Bhinnaṣaḍja; 19. Kunthalavarāli; 20. Sāraṅgabhairavi;

21. Śuddhabaṅgala; 22. Nāgadhvani; 23. Ghantārava; 24. Mārgahindōla; 25. Chāyanāṭa; 26. Dēvakriya; 27. Nārāyaṇi; 28. Gaularāga; 29. Tōḍi; 30. Varāli; 31. Thuruṣkatōḍi; 32. Sāvēri; 33. Ārdradēśi.

Uttama rāga-s:

The Uttama rāga-s are first taken up for a discussion.

Rāmamātya mentions 10 Sampūrṇa Uttama rāga-s, 5 Ṣāḍava Uttama rāga-s and 5 Auḍava Uttama rāga-s. SMK mentions **Sampūrṇa Uttama rāga-s:** Nāṭi, Varāli, Sāraṅganāṭa, Śuddharāmakriya, Mukhāri, Bhairavi, Āhari, Sāmantha, Kannaḍagaula and Dēśākṣi; **Ṣāḍava Uttama rāga-s:** Bauli, Śuddhavasanta, Mālavaśri, Gurjari, Lalita: **Auḍava Uttama rāga-s:** Hindōla, Malhari, Dhanyāsi, Mālavagaula, Śrirāga.

Rāga-s Kannaḍagaula and Mālavagaula possess ni as the graha, amśa and the nyāsa svara. Rāga-s Bauli and Malhari possess ma and dha as their graha, amśa and the nyāsa svara respectively. All the other uttama rāga-s have 'sa' as the graha, amśa and the nyāsa svara.

Rāga Mukhāri corresponds to the 1st mēla Rāga Mukhāri mentioned in SMK is called Śuddhamukhāri in practice today and the rāga possesses all śuddha svara-s. According to SSP, the rāga Mukhāri mentioned in SMK is rāga Śuddhamukhāri. It is also imperative to note that SSP mentions another Mukhāri under the 20th mēla. Apparently, Muddu Vēnkaṭamakhī in RL-MV also mentions Mukhāri under 20th, Rītigaula mēla in which he describes it to be a bhāṣāṅga rāga, but has ga ni varja similar to Śuddhamukhāri. Rāga-s Bauli, Gurjari, Lalita, Malhari and Mālavagaula correspond to the 15th mēla according to the 72 mēla scheme. These rāga-s have remained under the same mēlarāga till today and there are no much changes in the svarasthāna-s. Rāga Mālavagaula has been mentioned as an auḍava rāga which omits ri and pa, but the author says that it is retained sometimes. Whereas, Rāga Mālavagaula is a sampūrṇa rāga as seen today.

Rāga Hindōla and rāga Āhari correspond to 20th and 21st mēla respectively, according to the 72 mēla scheme. Both rāga-s have remained unchanged throughout many centuries till today. Rāga-s Bhairavi and Mālavaśri have been placed under a mēla corresponding to the 5th mēla according to the 72 mēla scheme. Both rāga-s have not seen much changes. Rāga Sāraṅganāṭa and rāga Śuddhavasanta are placed under a mēla corresponding to the 6th mēla according to the 72 mēla scheme. The rāga Sāraṅganāṭa is seen as Sāḷaṅganāṭa in SSP under the 15th mēla and hence, it is to be noted that the svarasthāna-s have changed in the rāga today. The rāga-s Kannaḍagaula and Dēsākśi are classified under a mēla corresponding to 34th and 35th mēla. Presently, Kannaḍagaula is a rāga under the 22nd mēla and SSP also mentions it under 22. The svarasthāna-s of rāga Kannaḍagaula have changed through the years whereas, the rāga Dēsakśi has not changed much and has remained under the same mēla. Rāga Śuddhanāṭi and rāga Sāmantha are mentioned under a mēla correponding to 36th in the 72 mēla scheme. Śuddhanāṭi has not changed much whereas, rāga Sāmantha has been mentioned under 30th mēla in SSP and hence there is a major change in the svarasthāna-s. Rāga Sāmantha is

apparently found to have no compositions with respect to SSP except for a gīta and a sañcāri.

It is also quite interesting to note that out of the 20 mēla-s, 12 mēla rāga-s are mentioned under the list of Uttama rāga-s. Uttama rāga-s mentioned in the text are those rāga-s that are pure and fit for singing ālāpa and hence, this might be one of the reasons for these twelve rāga-s being classified as mēla-s.

Madhyama rāga-s:

SMK mentions 8, 4 and 3 rāga-s under the sampūrṇa, ṣāḍava and the auḍava madhyama rāga-s respectively. The **Sampūrna Madhyama rāga-s** are**:** Kēdāragaula, Nādanāmakriya, Kāmbhōji, Sāmavarāli, Rītigaula, Hejujji, Nārāyaṇi, Vēlāvali; **Ṣāḍava Madhyama rāga-s:** Kannaḍabaṅgala, Pāḍi, Vasantabhairavi, Gunḍakriya; **Auḍava Madhyama rāga-s:** Madhyamādi, Bhūpāla, Rēvagupti.

Rāga-s Kēdāragaula and Rītigaula possess ni as the graha, amśa and the nyāsa svara. Rāga-s Hejujji and Madhyamādi possess ma as the graha, amśa and the nyāsa svara. Rāga-s Nārāyaṇi and Kannaḍabaṅgala possess ga as their graha, amśa and nyāsa svara. Rāga-s Vēlāvali and Rāvagupti possess dha and ni as their graha, amśa and nyāsa svara respectively. All the other rāga-s have sa as their graha, amśa and nyāsa svara.

Rāga-s Hejujji, Kannaḍabaṅgala, Gunḍakriya are mentioned under a mēla corresponding to the 15th mēla according to the 72 mēla scheme. Hejujji is seen as Gēyahejujji as the 13th rāgaṅga rāga in SSP and hence a change in svarasthāna-s are seen. The other two rāga-s have not seen much changes. Rāga-s Madhyamādi and Vēlāvali are mentioned under a mēla corresponding to the 22^{nd,} according to the 72 mēla scheme. Both rāga-s have not changed much. Rāga-s Nārāyaṇi and Kāmbhōji are mentioned under a mēla corresponding to the 29th according to the 72 mēla scheme. Rāga Kāmbhōji is mentioned under the 29th mēla according to the 72 mēla scheme. Kāmbhōji is mentioned to have kākali ni in SMK and now in practice, kaiśiki ni is used predominantly and kākali ni occurs as an anya svara. Apparently, it is seen that the rāga has been placed under the 28th mēla Harikāmbhōji in most of the texts that are seen after SMK. Rāga Nārāyaṇi has not changed much. Rāga-s Sāmavarāli, Rītigaula, Nādanāmakriya, Rēvagupti, Vasantabhairavi, Bhūpāla, Kēdāragaula and Pādi are mentioned under a mēla corresponding to 3rd, 4th, 9th, 13th, 14th, 20th, 28th and 51st mēla respectively. Rāga Rītigaula is mentioned under the 20th mēla according to SSP and in today's practice. The svarasthāna-s have seen a lot of changes through the centuries and the rāga is a bhāṣāṅga, rakti rāga today. Rāga Nādanāmakriya is a janya rāga of the 15th mēla Māyāmālavagaula and is also a rakti rāga today. Rēvagupti has been placed under 15th mēla today, but the structure has not changed much. Rāga Bhūpāla is placed under the 9th mēla today and is mentioned as a rakti rāga in SSP. Rāga Pāḍi has been mentioned as a prati madhyama rāga in SMK, whereas it is mentioned under the 15th mēla in SSP and is sung as a śuddha madhyama rāga today.

As such, 5 rāga-s namely, Kēdāragaula, Nādarāmakriya, Kāmbhoji, Madhyamādi, Bhūpāla have become rakti rāga-s today. Kedāragaula,

Sāmavarāli, Rītigaula, Hejujji, Vēlāvali, Vasantabhairavi are all mentioned as rāgāṅga rāga-s in RL-MV and SSP. The 8 rāga-s, Nādarāmakriya, Kāmbhōji, Rītigaula, Hejujji, Kannaḍabaṅgala, Pāḍi, Bhūpāla, Rēvagupti have undergone changes.

Adhama rāga-s:

The author mentions 33 Adhama rāga-s but describes only 7 of them. Rāga-s Śsaṅkarābhāraṇām, Nāgadhvani, Sōmarāga are mentioned as **Sampūrna Adhama rāga-s**; rāga-s Ghantārava, Bhinnaṣaḍja are mentioned as **Ṣāḍava Adhama rāga-s**; rāga-s Sāvēri and Āndōli are mentioned as **Auḍava Adhama rāga-s**. Rāga-s Sāvēri and Ghantārava have dha as the graha, amśa and the nyāsa svara. Rāga Bhinnaṣaḍja has ma as the graha, amśa and the nyāsa svara. All the other rāga-s possess sa as their graha, amśa and the nyāsa svara. Rāga Nāgadhvani is mentioned under a mēla corresponding to 34th in the 72 mēla scheme. This rāga is described in RL-MV as well as SSP and there is only one place where the rāga occurs in compositions apart from the gīta. In the rāgamālika "Pūrṇacandra binbhavadana" of Muttusvāmi Dīkṣitar, the rāga Nāgadhvani is seen to be the last one, according to SSP. Both Ghantārava and Bhinnaṣaḍja have seen a lot of changes and Bhinnaṣaḍja has been mentioned as the 9th mēla (Rāgāṅga rāga) in SSP. Ghantārava has been mentioned as a rakti rāga in SSP. Sōmarāga is not found in the later texts and hence has become obselete. Rāga Sāvēri has been mentioned under a mēla corresponding to the 29th according to the 72 mēla scheme, whereas in today's context, the rāga is placed under the 15th mēla Māyāmālavagaula. Both Rāga Sāvēri and rāga Śaṅkarābharaṇa which have been described under the adhama category have become very major rakti rāga-s today. While considering the other Adhama rāga-s that have been mentioned and not described, it is seen that some of them have evolved into important rāga-s today. For example, rāga Tōḍī, Dēvagāndhāri, Chāyāgaula, Pūrvagaula, Gaularāga and Varāli have become major Rakti rāga-s today.

From the 68 rāga-s mentioned and classified, rāga Dēśi is not classified under any mēla. It has been mentioned only under the Adhama category. No description is also given about the rāga.

Conclusion:

SMK has been a forerunner for the mēla-janya classification and it is quite surprising to see that many of the rāga-s mentioned and described by Rāmamātya are still in practice. Changes have crept into some of the rāga-s through the ages. But rāga-s like Mālavagaula, śrīrāga, Hindōla, Kēdāragaula have not seen much changes. The lakṣaṇa of the rāga-s have been almost the same with respect to today. Only a few rāga-s like Sōmarāga have become obselete today.

The mēla-s Mālavagaula, Śrirāga and Sāraṅganāṭa are seen to have many janya rāga-s in the text. Quite interestingly, the mēla-s Māyāmālavagaula, Kharaharapriya and Śaṅkarābharanam which correspond to the former respectively, also seem to possess many janya rāga-s today. Probably, this has been the case because of the popularity and the availability of compositions in these rāga-s. It is also important to note that the text mentions

only 3 rāga-s as prati madhyama rāga-s in total.

SMK hence, has been the most important genesis for the growth of rāga-s and has been the starting point for rāga evolution of the mēla period. Most of the rāga-s described in SMK are seen to be present even today in some form and have not become extinct, except for a very few. It is also important to note that many rāga-s of the adhama category have grown into mighty rakti rāga-s today. Contrastingly, there are a few rāga-s in the uttama category that are not very popular rāga-s today. But as a whole, it is seen that most of the rāga-s are in use even today where, some of them have evolved into major rāga-s which are sung alaborately in concerts today.

References:

Rāmāmātya, *Svaramēlakalānidhi* (1550 AD), ed. by Bharadvaja Sharma, pub. by Sri Ganesa yantralaya, 1910.

Rāmamātya, *Svaramēlakalānidhi* (1550 AD), ed. With Introduction and Translation by M S Ramaswami Aiyar, pub. by The Annamalai University, 1932.

Mudduvēṅkaṭamakhī, *Rāgalakṣaṇa* (first quarter of 18th C. AD), Printed as an Appendix to the Caturdaṇḍī-prakāśikā of Vēṅkaṭamakhī, ed. by Pandit S.Subrahmanya Sastri, T.V.Subba Rao and T.L. Venkatarama Iyer, pub. by The Music Academy, Madras, 1934.

Subbarāma Dīkṣitulu, *Saṅgīta-sampradāya-pradarśini* (1904), pub. The Music Academy, Madras, 2011, Volume 5, Volume 2, English translation

Vēṅkaṭamakhī, *Caturdaṇḍīprakāśikā* (1620 AD), ed. by D.K.Joshi, Balachandra Sharma, Aryabhushana Mudralaya, Pune, 1918.

Vēṅkaṭamakhī, *Caturdaṇḍīprakāśikā* (1620 AD), critically edited text with critical notes by R.Sathyanarayana, Kalāmūlaśāstra series, Pub. Indira Gandhi National Centre for the Arts, New Delhi & Motilal Banarsidass Publishers pvt. Ltd., 2002.

Hema Ramanathan, *Rāgalakṣaṇasaṅgraha*, Pub. N.Ramanathan, Chennai, 1st Edition, 2004.

References to Music Therapy in Lakṣaṇa Grantha-s - A Literature Review

Deepa Iyer S
Research Fellow
Department of Indian Music
University of Madras, Chennai

Dr Rajshri Ramakrishna
Associate Professor
Department of Indian Music
University of Madras, Chennai

Abstract:

The profession of music therapy as an area of study and research is gaining popularity in India. The influence of sound and music on healthy and unhealthy states of mind and body seems to have been known since ancient times. References to Indian music therapy practices are found in the Vēdic traditions, Āyurvēda, Yōga, etc. Musicological texts or Lakṣaṇa Grantha-s that deal with the essentials of music such as Nāda, Śṛuti, Grāma, Rāga-s and various other aspects have also discussed the concept of Music Therapy in the Indian context.

This paper aims to understand and highlight the therapeutic power of Indian Music as documented in musicological texts written in Saṁskṛta and to also find parallel concepts which have formed the basis of various studies conducted around the world

Keywords:

Music Therapy, Indian Music, Ragas, Lakshana Granthas, Musicology

1. INTRODUCTION

Music Therapy is the clinical & evidence-based use of music interventions to accomplish individualized goals within a therapeutic relationship by a credentialed professional who has completed an approved music therapy program. Music therapy interventions can address a variety of healthcare & educational goals: Promote Wellness, Manage Stress, Alleviate Pain, Express Feelings, Enhance Memory, Improve Communication, Promote Physical Rehabilitation and more. (*American Music Therapy Association (AMTA)*, 2005). Music therapy is appropriate for people of all ages, whether they are virtuosos or tone deaf, struggling with illnesses or totally healthy by touching all aspects of the mind, body, brain and behaviour. Music can provide a distraction for the mind, it can slow the rhythms of the body, and it can alter our mood, which in turn can influence behaviour.

In the present day, Music therapy primarily involves four broad types of interventions; Receptive, Re-creation, Improvisation, and Song writing

(Edwards, J., et al. 2015). In the Receptive method, the client listens to music and responds to it silently, verbally, or in any other modality. This method is used to promote stimulation or relaxation, facilitate memory, develop auditory skills, enhance mood and reduce anxiety. The Re-creation method aims to strengthen motor skills, improve social interaction and develop self-expression through instrument playing or singing by encouraging to play or sing along to a pre-composed song (familiar or new), or playing various instruments depending on a client's abilities and objectives. Improvisation involves extemporaneous music making using simple instruments, body percussion, or the voice. This intervention method facilitates expression and communication through music, especially when verbal communication is limited, increases freedom and the ability to make choices and develops the capacity for socializing with another individual through music. Song writing is an intervention method where the therapist encourages and assists the client in creating their own music or lyrics. This helps in validating experiences, externalizing thoughts or emotions, building creativity and in promoting a different mode of expression.

The impact of sound and music on healthy and pathological states of mind and body appears to have been understood from ancient times. References to Indian music therapy practices are found in the Vēdic traditions, Āyurvēda, Yōga, etc. Musicological texts or Lakṣaṇa Grantha-s that deal with the essentials of music such as Nāda, Śṛuti, Grāma, Rāga-s and various other aspects have also discussed the concept of Music Therapy in the Indian context.

This paper aims to understand and highlight the therapeutic power of Indian Music as documented in musicological texts written in Saṁskṛta and to also validate the same with various studies conducted around the world.

2. REFERENCES TO MUSIC THERAPY IN LAKṢAṆA GRANTHA-S

The references to music therapy is found in the following treatises; Bṛhaddēśi of Mataṅga, Saṅgīta Ratnākara of Śārṅgadeva and Saṅgīta Makaranda of Nārada. The references related to music therapy given in these texts have been discussed below along with the evidence of studies conducted around the world validating the same.

2.1. Bṛhaddēśi

Bṛhaddēśi is a text attributed to Sage Mataṅga that spans the period from Nāṭyasāśtra to Saṅgīta Ratnākara. Bṛhaddēśi that is available today is an incomplete work with only five hundred of its verses available. The available verses and chapters deal with Music; and, conclude with the remark that the forthcoming chapter will deal with Musical instruments (*Vadya*) but unfortunately, the subsequent chapters are not available.

In the chapter Śrutiprakaraṇam of Bṛhaddēśi, under śrutinirnayam the author brings to light the different ideas of sruti classifications of various scholars. treatise are as follows:

1. Sahajaṁ, Dōṣajam and Abhighātajaṁ = 3 Śruti-s

2. Vāta, Pitta, Kapha and Sannipata = 4 Śruti-s
3. Dviśruti, Triśruti and Catuśruti = (2 + 3 + 4) = 9 Śruti-s
4. The fourth classification is a detailed explanation of the 22 Śruti-s concept
5. The author also mentions 66 Śruti-s but does not go into detail about them.

The second classification connects the concept of śruti-s to the Tridōṣa-s theory in Āyurvēda. According to Āyurvēda, the science of understanding one's nature or constitution is the science of Tridōṣa. Tridōṣa defines the three fundamental energies or principles which govern the function of the human body on the physical and emotional level. The three energies are known as Vāta, Pitta and Kapha. Each individual has a unique balance of these three energies. In this context, the verse given in the text reads as follows:

अपरे तु वातपित्तकफसन्निपातभेदभिन्नां
चतुर्विधं श्रुतिं प्रतिपेदिरे।
तथाचाह चतुरः-
"उच्चैस्तरो ध्वनी रूक्षो विज्ञेयो वातजो बुधैः।
गम्भीरो घन(नी? शी) लस्हच ज्ञातव्यः
पित्तजो ध्वनिः॥
स्निग्धश्च सुकुमारश्च मधुरः कफजो ध्वनिः।
त्रयाणां गुणसंयुक्तो विज्ञेयः सन्निपातजः॥"

Aparē tu vātapittakaphasannipātabhēdabhinnāṁ caturvidhaṁ śrutiṁ pratipēdirē |
tathacāha catura: -
"Uccaistarō dhvanī rūkshō vignyēyo vātajō budhai: |
Gambhīrō ghanalashca/gananīlashca/ghanaśīlaśca gnyatavya: pittajō dhvani: ||
snighdascha sukumarasca madhura: kaphajō dhvani: |
trayāṇāṁ guṇasaṁyuktō vignyēya: sannipātaja: ||"

The above verse translates that some divide śruti-s into four categories: Vāta, Pitta, Kapha and Sannipata. It is Vāta when the sound has a high frequency. When the voice is thick and heavy, it is Pitta. The soft and pleasant voice/sound is due to Kapha, and the sound is called Sannipata when Vāta, Pitta and Kapha are well balanced in the body.

2.1.1. Indian Music for Physical Health

This concept mentioned in Bṛhaddēśi relates music to one's physical wellbeing apart from the Tridōṣa-s theory in Āyurvēda. Contemporary studies have proved that Indian Music has a positive impact on physical health. A study published in the International Journal of Ayurveda and Pharma Research states the usage of Indian classical music as receptive music therapy to improve the tridōṣic balance and major depression in pregnant woman (Sundar Sumathy, et al. 2016). The selection of rāga-s for the subject's music therapy was selected by analysing the levels of tridōṣa-s as per Ayurveda and on Time Theory of rāga-s. The results showed progressive improvement on the depression scale and improvement was seen in the balance of Vāta, Pitta and Kapha. While highlighting the description of music therapy in āyurvēda, Pal Guru Sharan (2017) justifies the connection between the tridōṣa theory and music. Tridōṣa is affected by kāla (time) and ṛtu (season); and Rāga is also concerned with time and season. Medicine is selected to pacify the

dōṣa-s involved in the disease. Similarly, rāga is selected to pacify dōṣa-s involved in the disease. A recent study states that music removes fear which pacifies Vāta. It removes anger which pacifies Pitta and it removes sadness and disgust which pacify Kapha. Thus, music removes the negative mental aspects and pacifies the śārīrika dōṣa (Vd. Kusum Malik, Vd. Brijesh R. Mishra, 2019).

2.2. Saṇgīta Ratnākara

The work Saṅgīta Ratnākara is one among the most important text on the Indian Music. This 13th Century text written by Śārṅgadeva is divided into seven chapters and the first chapter, Svaragatādhyāya is further divided into eight prakaraṇa-s or sections. The second section called the Piṇḍōtpatti Prakaraṇa gives a detailed and in depth physiological account of the human body is given next according to the Ayurveda system followed by the indication of chakra-s, energy centres, based on the yogic school in the first chapter, Svaragatādhyāya. There are seven Cakra-s: Mūlādhāra (Base of the Spine), Svādhiṣṭhāna (Pelvic), Maṇipūra (Navel), Anāhata (Heart), Viśuddha (Throat), Ājñā (Third Eye) and Sahasrāra (Crown). These Cakra-s are responsible also for various functions in the human body and mind. The excess or deficiency of any Cakra creates health issues. By concentrating on some of these cakra-s one could attain great heights in music. (Sarangadeva 54–58 vv. 136–150). Each of the seven cakra-s is associated with a specific note. The sapta svara-s Sa, Ri Ga, Ma, Pa, Dha and Ni correspond respectively to Mūlādhāra, Svādhiṣṭhāna, Maṇipūra , Anāhata, Viśuddha, Ājñā and Sahasrāra. The balance in all seven chakras is necessary for complete physical, mental and spiritual well- being of an individual. The sapta cakra-s and their corresponding svara-s has been illustrated in the figure below:

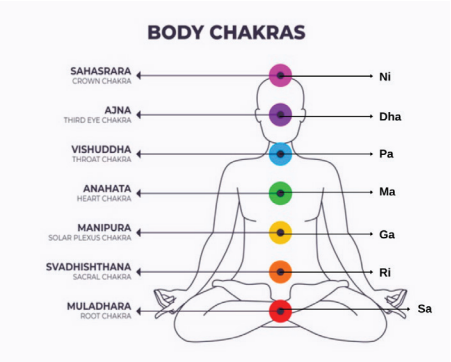

Fig.1: The sapta cakra-s and their corresponding svara-s

In the third prakaraṇa, the Nāda-Sthāna-Śruti-Svara-Jāti-Kula-Daivata-Ṛṣi-Canda-

Rasa-prakaraṇa connects the concept of 22 śruti-s (microtones) to the 22 small nāḍī-s (nerves) that branches from the Ida (left nostril) and Pingala (right nostril) which are called the side channels to the heart. (Sarangadeva 37 vv. 8–9)

2.2.1. Indian Music for Wellbeing

A study published in the International Journal of Indian Psychology (Poornima Viswanathan and Nishal Pinto, 2015) on the effect of classical music based cakra Meditation on the Symptoms of Premenstrual Syndrome point out that cakra meditation has a significant effect in reducing the number and severity of symptoms of individuals with symptoms of premenstrual syndrome.

An exploratory study on the effect of a single musical cakra activation manoeuvre on body temperature using vocal technique (Parmar and Sumathy 3) involved singing ascending notes S, R, G, M, P, D, N, Ṡ followed by descending notes N, D, P, M, G, R, S in the scale of rāga Māyāmālavagaula. The subjects were allowed to pause for inhalation in between. It was observed that after a single session of vocal cakra activation manoeuvre, body temperature was elevated in all subjects. The idea that with concentrated listening and intense practicing or chanting of AUM which is the sound for cakra balancing, one can reach into the meditative state, and can balance one's body, mind and spirit is highlighted by Bhetiwal (2017).

2.3. Saṇgīta Makaranda

The work Saṅgīta Makaranda has been ascribed to Narada. This work has been divided into two parts; Saṅgītādhyāya and Nṛttādhyāya. Each part has been further divided into four sections called as pāda:. The entire grantha consists of 560 ślōka-s. It is seen that the tṛtīyā pāda: (third part) of the Saṅgītādhyāya handles rāga classification in detail. The author has classified rāga-s under three categories; Puruṣarāga: (Masculine rāga-s), Strīrāga: (Femenine rāga-s) and Napunsakarāga: (Neuter rāga-s).

It is observed that the 82nd and 83rd ślōka-s given in the third part of the Saṅgītādhyāya gives a brief reference to the healing and curative nature of raga-s.

व्याधिनाशी शत्रुनाशी भयशोकविनाशने।
व्याधिदारिद्र्यसन्तापे विषमग्रहमोचने॥82॥

vyādhināśī śatrunāśī bhayaśōkavināśanē | vyādhidāridryasantāpē viṣamagrahamōcanē || 82 ||

कामडम्बरनाशे च मङ्गलं विषसंहते।
औडवेन प्रगातव्यं ग्रामशान्त्यर्थकर्मणि॥83॥

kāmaḍambaranāśē ca maṅgalam viṣasamhṛtē |
auḍavēna pragātavyam grāmaśāntyarthakarmaṇī || 83 ||

The author states that the auḍava rāga-s or the pentatonic scales can ward off enemies, illness, fear and misery, poverty, alter the planetary positions that cause mishaps and cure the ill effects of poison.

The work lists eight scales; Dhanaśri, Madhu Mādhavi, Gurjari, Mēgha Rañji, Vēlavali, Rāmakri, Nārayani and Pāli as auḍava rāga-s. Though the therapeutic powers of the scales mentioned in Saṅgīta Makaranda are yet to be validated, various studies conducted around the world suggest that pentatonic scales or auḍava rāga-s are therapeutic in nature.

2.3.1. Rāga Therapy

Michale F. Legge (1999) states that Five Elements music (Pentatonic Scales) works well as an independent modality or as a complement to physical medicine in a mind/body approach to wellness and calls it the 'energetic medicine'. A study conducted by the Division of Neonatology and Institute of Clinical Chemistry, University of Munich (D. Schwilling et al., 2011) to test the effect of live pentatonic music on the ambient stress level of very low birthweight infants, indicates that pentatonic music exposure can decrease stress hormone levels of preterm neonates in a Neonatal Intensive Care Unit environment.

Another study conducted for precise and appropriate brain rehabilitation for dementia patients using Japanese ethnic music (Yuki Tanaka et al., 2011), suggests that a few frequencies generated great response from the dementia patients and it is observed that all the scales used in the course of this experimental study are pentatonic scales. Apart from this, the study also states that the dementia patients responded to japanese music better than to western classical music indicating that the cultural orientation of the patients play a major role in their response to therapy.

The Indian rāga-s as a whole have proven to have therapeutic values. The effect of the rāga Ānanda Bhairavi in post operative pain relief management has been elaborated in the Indian Journal of Surgery (Kumar, T.S., Muthuraman, M. & Krishnakumar, R., 2014). Another research paper published in the Journal of Anesthesia & Critical Care concludes that Indian classical rāga therapy in the form of rāga Darbāri effectively reduced the intra operative stress and reduced the requirement of drugs during Cardiopulmonary bypass. (Kar SK, Ganguly T, Roy SS, Goswami A., 2015).

3. CONCLUSION

It is observed that each work has a different focus point. While Bṛhaddēśi discusses music with Āyurvēda, Śārṅgadeva connects music to human physiology and yogic cakra-s. Narada in the work Saṅgīta Makaranda brings forth the idea of rāga therapy. Apart from the musicological texts described in this study, it is learnt that ancient works collected by King Sahaji (1684–1711) that have been preserved in the Tanjavur Sarasvati Mahal Library in the form of palm leaf manuscripts also serve as a record of remedial use of music in psychological ailments.

The few studies that have been done around the world validate and ratify the notions of music therapy outlined in the treatises Bṛhaddēśi, Saṅgīta Ratnākara and Saṅgīta Makaranda. Even though Indian music has been tested and proven to be therapeutic; it remains a minimally studied area. Therefore, there is a need and scope for greater research in these areas.

4. REFERENCES

Source Texts:

Matanga. (1928). *The Brhaddesi of Matangamuni* (K. S. Sastri, Ed.). The Government of Her Highness The Maharani Regent of Travancore. Available at: http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/780

Narada. (1920). *Sangita-Makaranda*. Edited by Mangesh Ramakrishna Telang, Baroda, Central Library.

Available at: http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/822

Sarangadeva. (1943). *Saṅgītaratnākara of Sārṅgadeva: With Kalānidhi of Kallinātha and Sudhākara of Siṁhabhūpāla: Vol. I - Adhyāya 1* (S. P. S. Sastri, Ed.; Vol. 1). The Adyar Library. Available at: http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/827

Books/Journals/Articles:

Bhetiwal, D. A. (2017). The Role of Musical Notes and Color Frequencies for Balancing Chakras in Human Body. *International Journal for Research in Applied Science and Engineering Technology*, *V*(VIII), 1556–1561. Available at: https://doi.org/10.22214/ijraset.2017.8221

Edwards, J., Trygve A., and Stine C. Blichfeldt A. (2015) "Songwriting Techniques in Music Therapy Practice." *The Oxford Handbook of*

Music Therapy.

Kar SK, Ganguly T, Roy SS, Goswami A (2015) Effect of Indian Classical Music (Raga Therapy) on Fentanyl, Vecuronium, Propofol Requirements and Cortisol levels in Cardiopulmonary Bypass. J Anesth Crit Care Open Access 2(2): 00047.

Kumar, T. S., Muthuraman, M., & Krishnakumar, R. (2012). Effect of the Raga Ananda Bhairavi in Post Operative Pain Relief Management. *Indian Journal of Surgery*, *76*(5), 363–370. https://doi.org/10.1007/s12262-012-0705-3

Lakshmi, V. M. (1996). *Critical Study of Sangita Makaranda of Narada* (1st ed.). Gyan Publishing House.

Legge, M. (1999). Music for health: the five elements tonal system. *IEEE Engineering in Medicine and Biology Magazine*, *18*(2), 80–88. Available at: https://doi.org/10.1109/51.752983

Pal Guru Sharan. (2017). Description Of Music Therapy In Ayurved. *International Ayurvedic Medical Journal.*

Available at: http://www.iamj.in/search_results/images/upload/2901_2905.pdf

Parmar, P., & Sumathy, S. (2016). Effect of a Single Musical Cakra Activation Manoeuvre on Body Temperature: An Exploratory Study. *Ancient Science of Life*, *36*(1), 3. Available at: https://doi.org/10.4103/0257-7941.195414

Poornima Viswanathan, & Nishal Pinto. (2015). The Effects of Classical Music based Chakra Meditation on the Symptoms of Premenstrual Syndrome. *International Journal of Indian Psychology*, *2*(3). Available at: https://doi.org/10.25215/0203.017

Schwilling, D., Vogeser, M., Kirchhoff, F., Schwaiblmair, F., Schulze, A., & Flemmer, A. W. (2011). Endogenous Stress Response on Pentatonic Music in Very Low Birthweight Infants. *Pediatric Research*, *70*, 724. Available at: https://doi.org/10.1038/pr.2011.949

Sairam TV. (2014). Music for the emotionally disturbed. *Bhavan's J*; 61. pp. 56–60.

Stephen. (2019, October 27). *The Pentatonic Scale*. Music & Sound Therapy. Available at: https://musicalzheimer.net/mst/2019/10/27/aticolo-1/

Sundar Sumathy, Durai Pavitra, Parmar Parin N. (2016) Indian Classical Music as Receptive Music Therapy Improves Tridoshic Balance and Major Depression in A Pregnant Woman. *International Journal of Ayurveda and Pharma Research*. 4(9). 8-11. Available at: https://ijapr.in/index.php/ijapr/article/view/414

Tanaka, Y., Nogawa, H., & Tanaka, H. (2012). Music Therapy with Ethnic Music for Dementia Patients. *International Journal of Gerontology*, *6*(4), 247–257. Available at: https://doi.org/10.1016/j.ijge.2012.01.026

Vd. Kusum Malik and Vd. Brijesh R. Mishra (2019) "Music - A remedy in Psychological Disorders (Manas Vikara)", *Journal of Ayurveda and Integrated Medical Sciences*, 4(06), 131-140. Available at: https://www.jaims.in/jaims/article/view/775

Description of Rāga-s in select Tamil Publications

Dr. M Subhasree
Assistant Professor
Department of Indian Music, University of Madras

Introduction:

Rāga-s are the basis of Karnatic music. They have undergone various changes as centuries passed by. The History, evolution, growth and development of the rāga system forms the primordial research areas in current scenario, for which source texts and other research publications form the primary sources. There were many Tamil treatises and source texts which enable us to understand the early system of practice with regard to rāga-s. This paper will focus on the Tamil publications which gives description of the rāga-s incorporating various details.

In Tamil music system, the term Paṇ-s were described, which were the melodic entities. The Paṇ system was very much in vogue even before the Tēvara period. The early Tamil works namely Pañcamarabu give detailed note on Paṇ-s and their characteristics. The works Piṅgala niganḍu, Divākaram also describe paṇ-s. The classical Tamil epics like the Silappadigāram also gives an account of the music and dance references. The commentaries and the explanations written by various scholars on Silappadigāram also give detailed description of the ancient Tamil music.

As mentioned before, this paper will throw light on some of the important Tamil publications belonging to 19th and early 20th century which give description about the rāga system. Few books have been taken up and the contents regarding the rāga-s are summarised to give an overview.

1. Bharatacāttiram of Arabhatta Nāvalar

This was written by Arabatta Nāvalar and is said to have been written between 1770-1775. Bharatacāttiram deals with Nāṭya. However, the Rāgaviyal chapter of this work discusses the rāga-s. The author mentions only 32 rāga-s in this work. He does not mention the 72 mēḷa rāga system. This shows that this work should have been written even before Caturdaṇḍiprakāśika.

The Rāgaviyal chapter commences with the explanation of the svara-s and the food and dēha (nature of the body) associated with the seven svara-s. The author goes on to prescribe jāti, gandha, puṣpa, cloth, ornaments, dēva-s, kaṇḍava-s (gāndharva-s), vṛkṣa, vāhana,

weapon, life span, wives, dīpa, śruti and vamśa. After this, the author gives the list of rāga-s in along verse where he mentions a long list of rāga-s(174 rāga-s- which also includes rāga-s like Andāḷi, Kauśikam, Kuṛiñci .. which have been in vogue for a long time in tamil music), list of 32 major rāga-s (mēḷa-s?) puruṣa rāga-s(8) and corresponding jāti-s, wives, atidēvata-s are mentioned. Rāga-s suitable for Tamil poetry, three guṇa-s (sattva, rajas and tāmas), Ghana rāga-s (10), Dēśika rāga-s (9 rāga-s from other systems like Paraju, Khamāju, Bhibāsu, Hamīrukalyāṇi, Bēriṇi, Kāpi, Hamīru, Darbāru, Yamuna), naya rāga-s – here the author mentions that the other rāga-s not mentioned above are naya rāga-s), mentions the term *ina rāgam* and *thani rāgam* – rāga-s with similar feature and rāga-s that stand alone), rāga-s termed as udaya-parānna-madhyānna –aparānna – chāyanna and rāga-s which are to be sung in the first quarter of night-midnight-late night-vasanta kāla are described.

2. Mahābharatacūḍāmaṇi

Mahābharatacūḍāmaṇi is one of the earliest works which give description of the rāga-s. The second prakaraṇam of the fourth adhyāyam of Mahābharatacūḍāmaṇi (MBC) named Saṅgītādi rāga mēḷa lakṣaṇam gives description of rāga-s under various categories. This work is priamarily based on Saṅgīta Ratnākara. The scholars are of the view that MBC would have been written either during the end of 18th century or at the beginning of 19th century. The name of the author is not known.

Though this work is predominantly written based on the work Saṅgīta Ratnākara(SR), the classification of rāga-s as Puruṣa rāga-s, Stri rāga-s are not given in SR. This type of claasification is seen in Saṅgīta Makaranda (which is considered prior to SR) and also in some works belonging to 16th, 17th and 18th centuries. The author of MBC has managed to include details which are seen in various other North Indian works and some South Indian works and has also included various other details. However, the source for this is yet to be discovered.

i. Puruṣa rāga-s – 8

Bhūpāḷam, Bhairavi, Śrīrāgam, Phalamañjari, Vasanthā, Māḷavi, Baṅgāḷam, Nāṭṭai

After mentioning the names of Puruṣa rāga-s, the author adds further more details like Vēda, Jāti and Dēham which are as follows:

Puruṣa raga

Bhūpāḷam, Bhairavi – Sāma – Bramma - Tūla
Śrīrāgam, Phalamañjari – Yajur - Kṣatriya -Sama
Vasanthā, Māḷavi - Ṛg - Vaiṣya - Kuppa
Baṅgāḷam, Nāṭṭai - Atarvaṇa- Sūdra - Dīrga

There are additional details like Dīpam (Islands), Vamśa, Gōtra, ṛṣi, No of faces, Eye, Ear and Shoulders , colours and ornaments assigned to each rāga.

Apart from these, the author also describes Gandha, Puśpa, Ahāra (food), Vāhana, Rasa, Day Nakśatra, Lagna, Vṛukśa, Atidēva, Āyudha, for all the eight puruṣa rāga-s. This kind of description is not likely to be seen in any other Tamil work. The sspurce from which the author has derived the above details is yet to

be noticed.

After mentioning the above details, the author mentions the Stri rāga-s for the above eight puruṣa rāga-s

Name of the Puruṣa rāga	Stri rāga-s / Wives
Bhūpāḷam	Malahari, Blahari, Pāḍi
Bhairavi	Dēakriyā, Mēgharañji, Kuṛiñji
Śrīrāgam	āndōḷi, Pallādi, Jujāhuḷi
Phalamañjari	Dēśi, Mukhāri, Lalitā
Vasanthā	Rāmakriyā, Varāḷi, Gauḷa
Māḷavi	Guṇṭakriyā, Gūrjari, Bauḷi
Baṉgāḷam	Kalyāṇi, Āhiri, Sāvēri
Nāṭṭai	Śaṅkharābharaṇam, Kāmbhōji, Ghaṇṭāravam

Name of the Puru□a rāga	Dūti rāga
Bhūpāḷam	Dēśākṣi, Dēvagāndhāri
Bhairavi	Kannaḍā
Śrīrāgam	Dēśi
Phalamañjari	Āsāvēri
Vasanthā	Mōhanam
Māḷavi	Hindōḷam
Baṉgāḷam	Ābhōgi
Nāṭṭai	Vēḷāvaḷi
Name of the Puru□a rāga	**Putra rāga**
Bhūpāḷam	Nīlāmbari
Bhairavi	Kāpi, Rēgupti (Rēvagupti)
Śrīrāgam	Mārva, Rāmakriyā
Phalamañjari	Sāraṅga, Mandāri, Sourāśṭra, Kēdāram
Vasanthā	Mukhāri, Lalita, Tōḍi, Dhanyāsi, Nārāyaṇi, Gauri
Māḷavi	Pantuvarāḷi, Varāḷi, Gauḷa
Baṉgāḷam	Pūrvi, Sāvēri, Bēgaḍa, Bauḷi
Nāṭṭai	Manōhari, Yamunā

Following this the third parakaraṇam gives a detailed note on the 72 mēḷa and janya rāga-s. Here the author has also followed the work Sangraha Cūḍāmaṇi particularly the janya rāga-s. Initially, this work gives the nomenclature Kanakāmbari, Phēnadyuti system and gives the lakṣaṇa-s incorporating the graha, amśa concepts and then gives the details for the 72 mēḷa-s incorporating the Kanakāṅgi, Ratnāṅgi nomenclature, where the mēḷa-s are mentioned as sampūrṇa. For better understanding, the first verse dedicated to Kanakāṅgi/ Kanakāmbari mēḷa is given below;

ari tāḷa kanakāṉgi mēḷakartā ārōham
avarōham pūraṇa māgum
maruvudiṛ sanitta kana kāmbarikku
vaḷarārōham
pūrāṇa maramava rōhat
turuniḍadam varjjiyam adan kūḍa vanda sudda
mukārik kārōham māvarjjiyam
perugum ava rōhaṇam daivata niśādam
pēsumē varjjiyamena vādimēḷam

Description:

Kanakāṅgi mēḷa lakṣaṇam – ārōham, avarōham pūrṇam

Janya-s

1. Kanakāmbari (ārōhaṇam) Pūraṇam (avarōhaṇam) ni varja
2. śuddha mukhāri (ārōhaṇam) ma varja (avarōhaṇam) dha - ni varja

After giving the description of all the 72 mēḷa-s there is a small unit called Rāgattogudi where details regarding further more classification of rāga-s are given.

- Rāga-s which will be suitable for different Tamil poetic metres
- Rāga-s which have different emotive content
- Rāga-s which are suitable for different seasons

this work is one of the prominent Tamil works which enable us to understand the music of that particular time.

3. Prabandha Dīpikai

This book was written by Muttuvēṅkaṭa Subbayyar, during 1849(?). This work mainly describes the Tamil prabandha-s. There are also some music references seen in this work. The author metions 32 mēlā-s

starting from Bhairavi and also mentions 8 puruṣa rāga-s namely Bhairavi, Bhūpāḷam, śrīrāgam, Patāmañjari, Vasantam, Māḷavi, Baṅgāḷam and Nāttai. Further, he also adds information regarding wives (stri rāga-s), Jāti and God for all the eight puruṣa rāga-s. Following this, the author also mentions 32 janya rāga-s. There is also information regarding the rāga-s suitable for singing certain Tamil poetic metres and structures namely Śaṅkharābharaṇam for Veṇpā , Tōḍi for Agaval and so on. He also gives the details regarding the rāga-s and the emotive content and the time when it can be sung.

4. Saṅgīta Candrikai of Māṇikka Mudaliyār (1902)

This is also one of the important works in Tamil. The Svaraparakaraṇam which is the first chapter gives details egarding the rāga-s. The author mentions five types of classification.

- Mēḷakartā – janya rāga-s
- Sampūrṇa - ṣāḍāva - auḍava rāga-s
- Śuddha – vakra rāga-s
- Śuddha - sāḷaga - saṅkīrṇa rāga-s (śuddha referes to traditional and pure rāga-s; sāḷaga refers to rāga-s which have the chāya of other rāga-s; saṅkīrṇa refers to the rāga-s which are the combination of both)
- Mitra – śatru rāga-s

Next the author moves on to describe the rāga prastāra, where he gives the names as

- Śuddha sampūrṇa
- Vakra sampūrṇa
- Śuddha ṣāḍāva
- Vakra ṣāḍāva
- Śuddha auḍava
- Vakra auḍava

With the permutation and combination of the ascent and descent, the author derives 414 prastāra-s which are given in a table. Further the author goes on to describe the 72 mēḷa scheme, Kaṭapayādi scheme, and gives a detailed table of 1072 rāga-s with the names, ārōhaṇa - avarōhaṇa, the mēḷa number in case of a janya rāga. As an extension of this table, the author has also included another table which lists 1000 janya rāga-s along with ārōhaṇa and avarōhaṇa, which are mentioned in the order of mēḷakarta.

Then the author lists out the rāga-a according to the suffix with whih the names end. He derives nearly 100 suffix and lists the rāga-s under them. Some of them are

- *aṇgi* - Kanakāṇgi, Dhavalāṇgi ….(Total – 16)
- *ambari* – Citrāmbari, Nīlāmbari …. (Total – 17)
- *hari* – Malahari , Lalitamanōhari … (Total – 19)
- *ānḍāḷi* - Karnāṭaka āndāḷi … (Total – 3)
- *ābharaṇam* - Naṭābharaṇam, Umābharaṇam .. (Total – 11)

Then follows the list of ghana, naya, dēśya rāga-s, rāga-s for navarasa, Tamizhisai, Puruṣa – Stri – Dūti – putra rāga-s, udaya-parānna-madhyānna-aparānna – chāyanna rāga-s, munrātri-madhyarātri- pinrātri rāga-s and vasantakāla rāga-s.

With regard to the rāga-s the author has meticulously recorded the names of all the rāga-s, he had come across and has created this raga database which is more likely an encyclopaedia. However, the source and the detailed description of the rāga-s mentioned require a further study.

5. Pūrvīga Saṅgīta Uṇmai

This was written by Nāgasvara Vidvān Madurai Ponnusāmi Piḷḷai and published in the year 1930. This work does not accept the 72 mēḷa scheme. According to the author, the 40 mēḷa-s out of the 72 are not acceptable and are musically of no importance. Therefore, he has formulated only 32 mēḷa-s and has given the lakṣaṇa for the 32 only. He denies the concept of 16 svara names.

6. Karunāmrta Sāgaram of Abraham Paṇḍitar (1946)

This is also a voluminous work, where the author describes all the concepts of Karnatic music. Abraham Panḍitar has devoted a separate volume for the discussion of rāga-s. This was published in the year 1946. Initially, the author discusses about the possible prastāra-s with the svara combinations and goes in detail to explain the rāga-s. In the second segment of this volume the author commences on the general description of mēḷakarta and discusses some of the aspects of Tamil music system. He also mentions the rāga-s described in Saṅgīta Ratnākara, Bharata's Nāṭya Sāśtra, rāga-s which were in vogue in ancient Tamil land, 72 mēḷakarta rāga-s chart and Vēṅkaṭamakhi scheme of nomenclature.

The rāga discussion is continued in third chapter as well. In this segment the author gives the list of janya rāga-s of all the 72 mēḷakarta with the ascent and descent. The list of janya rāga-s are also given in the alphabetical order. (988 rāga-s) Then follows the list of rāga-s categorised according to the suffix. The author also gives explanations and suggestions on composing gīta-s, kīrtana-s and compositions with the ārōhaṇa and avarōhaṇa available.

7. Dakśiṇarāga Ratnākaram of K Rāmachandran

This book is completely devoted to the rāga description and the lakṣaṇa-s for various rāga-s. This is one of the earliest books in Tamil to focus more on the rāgalakṣaṇa-s published in the year 1949. The author mentions the svarasthāna-s taken by the rāga, thea ascent and descent, details regarding the graha svara, rāga chāya svaras, rāga prayōga-s, svara sañcāra-s and quotes few popular compositions chomposed in that particular rāga. The lakṣaṇa-s for 425 rāgas are compiled in this book. Apart from this the author gives the ārōhaṇa and avarōhaṇa for 1044 rāga-s along with the mēḷa number. In the Anubandham part, the author gives description of 25 rāga-s where he gives additional details quoting from Caturdaṇḍiprakāśika.

Observations:

The publications discussed here are just to have an overview of the works that have been written in Tamil. This is not an exhaustive list. Apart from the above mentioned books, there are some other publications which give description of rāga-s either in brief or in a detailed manner. However, there are some common observations with regard to the publications discussed above.

- Most of the Tamil works gives the list of 1000 janya rāga-s. However, all the rāga-s were not in vogue and not popular.
- Mahābharatacūḍāmaṇi and Bharatacāttiram though being

books on dance, also give enough information regarding the rāga system prevailing at that period. Most of the rāga-s mention Puruṣa rāga-s and those mentioned by the texts Mahābharatacūḍāmaṇi and Bharatacāttiram are the same. Instead of Palamañjari/Paṭamañjari some works give the name Rāgapañjari/ Rāgapañjaram. Most of the works mention the concept of 32 mēḷa rāga-s.

- While Bharatacāttiram describes the details like food, dēha for the seven svara-s in the Rāgaviyal chapter, Mahābharatacūḍāmaṇi mentions all those attributes for the seven svara-s and also the eight puruṣa rāga-s as well.
- Works like Pūrvīga Saṅgīta Uṇmai give a different connotation for the rāga scheme, which also denies the 72 mēḷa structure.
- The Tamil publications mentioned above, have taken references from the ancient Tamil music system, references from the important treatises like Saṅgīta Ratnākara, Caturdaṇḍiprakāśika and have also included their views and opinions incorporating the current practice.

References:

1. Abraham Paṇḍitar. Karuṇāmrta Sāgaram, Book II. Tañjāvur, 1946.

Māṇikka Mudaliyār. Saṅgīta Candrikai. 1902.

Saṇgīta Kalānidhi Muḍikoṇḍān Venkaṭarāma Aiyar & R Viśvanāthaiyar. Mahābharata Cūḍāmaṇi. Mahāmahōpādhyāya Doctor V.Swāmināthaiyar Library, 1955.

Rāmachandran K. Dakṡiṇarāga Ratnākaram. 1949.

Aruṇāchalam M, Tamil Isai Ilakkaṇa Varalāru, Kaḍavu Pathippagam, 2009.

A study of Rāga Varāli with special reference to Gīta-s seen in the early Telugu Publications

Pranathi G
Research Scholar
Department of Indian Music
University of Madras, Chepauk, Chennai

Dr. Rajshri Ramakrishna
Associate Professor
Department of Indian Music
University of Madras, Chepauk, Chennai

Abstract

The early Telugu music publications have documented various theoretical and practical aspects of Karṇāṭaka Saṅgīta. The theoretical aspects include the characteristics of various rāga-s, tāḷa-s, etc. The practical concepts range from the basic exercises like svarāvaḷi, jaṇṭa varisa-s, heccu sthāyi varisa-s, mandra sthāyi varisa-s, dāṭu varisa-s, alaṅkāra-s, gīta-s, varṇa-s, etc. to the advanced concepts like kṛti-s/kīrtana-s, padam-s, jāvaḷi-s, tillāna-s, manōdharma aspects including rāgam tānam pallavi, etc. These musical forms are composed in various rāga-s and tāḷa-s by different composers. Rāga and Tāḷa are the two important components of a musical form or a composition.

Rāga Varāḷi is one of the Ghana-rāga-s (Ghana-naya-dēśya classification of rāga-s based on the emotions evoked); It is a traditional rāga which is still in vogue. Various musical forms set to rāga Varāḷi are seen in the early Telugu music publications. The characteristics of any rāga can be understood by studying the melodic, structural and rhythmic aspects of the musical forms composed in the same rāga. This study gives an overview of rāga Varāḷi as seen in the compositions documented in the early Telugu music publications with special reference to the Gīta-s.

Keywords

Varali, Early Telugu music publications, Raga, Ghana raga, Gita

Introduction

The early Telugu publications include forty one music publications from the year 1859 to 1934. The publication Saṅgīta-sarvārtha-sāra-saṅgrahamu of Vīṇa Rāmānuja (1859) is the earliest Telugu music publication and Gāna-bhāskaramu of K.V. Śrīnivāsa Aiyaṅgār (1934) is the last publication to be included in this timeline.

According to the present day understanding, the Ghana rāga pañcaka include

the rāga-s Nāṭa, Gauḷa, Ārabhi, Varāḷi and Śrī. Varāḷi is one of the Ghana-rāga-s which is classified under the 39th mēḷa of the present day rāga classification. It is also one of the vivādi rāga-s as it includes śuddha gāndhāra in its scale. Each rāga is characterized by an ārōha and avarōha which is the scale of the rāga. Though the rāga is not restricted to just the scale, it defines the svara-s occurring in the rāga. Rāga Varāḷi includes the svara-s ṣaḍja, śuddha ṛṣabha, śuddha gāndhāra, prati madhyama, pañcama, śuddha dhaivata and kākali niṣādha. The prati madhyama of this rāga has a unique position which resulted in Varāḷi being used as a suffix to this svarasthāna of madhyama known as the Varāḷi madhyama.

Many composers have composed wide variety of compositions in this rāga and they have been documented in the early Telugu music publications. Twelve publications out of the forty one early Telugu music publications include compositions or musical forms set to rāga Varāḷi, which are taken up for study. The purpose of this paper is to study rāga Varāḷi from the different musical forms seen in these early Telugu music publications with special reference to the Gīta-s.

In Karṇāṭaka saṅgīta, rāga-s are first introduced to a student through musical phrases in a composition, beginning from the musical form - Gīta. Rāga-s are seen under various classifications like the Janaka-Janya classification, Ghana-Naya-Dēśi classification and others. The Ghana-Naya-Dēśi classification is first seen in the Telugu work Rāgalakṣaṇamu of Śahaji and later in the work Rāgalakṣaṇa of Muddu Vēṅkaṭamakhi. In these treatises, though the list of Ghana-rāga-s is mentioned, the reason for including them under Ghana-rāga-s is not mentioned. Saṅgīta-Sampradāya-Pradarśini is the first publication to define Ghana-rāga-s. It defines Ghana-rāga-s as the ones which are ideal for singing Tāna and in which the sound originates from the nābhi. The classification and description of Ghana-rāga-s seen in the publication Gāna-bhāskaramu of K.V. Śrīnivāsa Aiyaṅgār seem similar to that of the publication Saṅgīta-Sampradāya-Pradarśini.

The following twelve early Telugu music publications include different musical forms set to rāga Varāḷi like Gīta-s, Varṇa-s, Kṛti/Kīrtana-s, Tāna-s, Sañcāri-s and Rāgamālika-s. Hence, they are taken up for study.

1. Saṅgīta-Sarvārtha-Sāra-Saṅgrahamu (SSSS) of Vīṇa Rāmānuja
2. Gāyanā-Gāyanī-Jana-Pārijātamu (GGJP)
3. Pallavi-Svarakalpavalli (PS) of Tiruvottūru Tyāgayya
4. Gāyaka-Lōcanamu (GL) of Taccūru Śiṅgārācāryulu & Taccūru Cinnaśiṅgārācāryulu
5. Saṅgīta-Sampradāya-Pradarśini (SSP) of Subbarāma Dīkṣita
6. Saṅkīrtana-Ratnāvali (SR) of Tiruvottūru Tyāgayya
7. Saṅgīta-Sudhā-Saṅgrahamu (SSS) of C.Munusvāmi Nāiḍu
8. Gānēnduśēkharamu (GS) of Taccūru Śiṅgārācāryulu & Taccūru Cinnaśiṅgārācāryulu
9. Saṅgīta-Kaḷānidhi (SK) of Taccūru Śiṅgārācāryulu & Taccūru Cinnaśiṅgārācāryulu
10. Saṅgīta-Svara-Prastāra-Sāgaramu (SSPS) of Nādamuni Paṇḍita M

11. Saṅgītānanda-Ratnākaramu (SAR) of Tenmaṭham Vēṅkaṭanarasimhācāryul & Tenmaṭham Vēṅkaṭavaradācāryulu
12. Saṅgīta-Sudhāmbudhi (SS) of K.V. Śrīnivāsa Ayyaṅgār

The table mentioned in Appendix 1.1 lists these publications, mentioning their author, year of publication and the musical forms seen in these publications set to rāga Varāḷi.

Musical forms seen in the early Telugu music publications set to rāga Varāḷi

Musical forms or compositions of six types are seen in the early Telugu music publications which are set to rāga Varāḷi. They are the following.

1. Gīta (5)
2. Varṇa (2)
3. Kīrtana or Kṛti (7)
4. Rāgamālika (4)
5. Tāna (2)
6. Sañcāri (1)

The compositions or musical forms set to rāga Varāḷi documented in the early Telugu music publications have been tabulated in the Appendix (1.2, 1.3, 1.4, 1.5, 1.6 and 1.7) according to the musical form. They are discussed below.

Gīta-s

Gīta-s are syllabic compositions where each svara has a sāhitya syllable. The melody of the gīta is continuous, without any saṅgati-s or repetitions.

There are five Gīta-s set to rāga Varāḷi which are seen in the early Telugu music publications (refer Appendix 1.2). The name of the composer is mentioned only for two gīta-s (Saṅgrāma-bhūma and Rāma-rākṣasa-bhīma) while it is not mentioned for the other three gīta-s. The following can be inferred from their notations.

- The gīta Arē-rē-nīlamēgha seen in Gānēnduśēkharamu may be attributed to Gōvinda as it is the same Lakṣaṇa-gīta seen in the lakṣaṇa grantha Saṅgraha-Cūḍāmaṇi of Gōvinda.
- The gīta Atulita-vibhava seen in Saṅgīta-sarvārtha-sāra-saṅgrahamu may be attributed to Vīṇa Vijaya Varadayya as his mudra (Vijaya Varada) is seen in the sāhitya of the gīta.
- The composer of the gīta Sārasa-sambhava seen in Saṅgīta-Svara-Prastāra-Sāgaramu is not known.

Varṇa-s

Varṇa is a musical form which includes a Pallavi, Anupallavi, Muktāyi svara, Caraṇa and multiple Ciṭṭa-svara-s in the present day. Varṇa-s seen are of different types namely tāna varṇa, cauka varṇa, pada varṇa, etc. (Refer Saṅgīta-Sampradāya-Pradarśini for detailed description).

There are two Varṇa-s set to rāga Varāḷi (refer Appendix 1.3) seen in the early Telugu music publications among which, the composer of the varṇa - Tōyajākṣi-rō is not known while the composer of the varṇa - Tāmarasākṣi is mentioned as Tiruvottūru Tyāgayya.

Kīrtana-s/ Kṛti-s

Kīrtana-s/Kṛti-s are a part of the advanced musical forms of Karṇāṭaka saṅgīta which have a pallavi, anupallavi and a caraṇa or multiple caraṇa-s.

The Kṛti/Kīrtana-s set to rāga Varāḷi

are seen with their notations in the following publications.

- Pallavi-Svarakalpavalli
- Saṅgīta-Sampradāya-Pradarśini
- Saṅkīrtana-Ratnāvaḷi
- Saṅgīta-Sudhāmbudhi

The Kṛti/Kīrtana-s set to rāga Varāḷi are seen with their sāhitya only in the following publications.

- Saṅgīta-Sarvārtha-Sāra-Saṅgrahamu
- Gāyanā-Gāyanī-Jana-Pārijātamu
- Saṅgīta-Kalānidhi
- Saṅgīta-Sudhā-Saṅgrahamu

There are seven Kṛti-s/Kīrtana-s set to rāga Varāḷi seen in the early Telugu music publications out of which, five Kṛti-s/Kīrtana-s (refer Appendix 1.4) are seen with their notations while only the sāhitya is seen for four Kṛti-s/Kīrtana-s (refer Appendix 1.5). For example, the notation of the kṛti Kanakana-rucira is seen in the publication Saṅgīta-Sudhāmbudhi while the sāhitya only is mentioned in the publications Saṅgīta-Sarvārtha-Sāra-Saṅgrahamu (1873), Gāyanā-Gāyanī-Jana-Pārijātamu (1878) and Saṅgīta-Kalānidhi (1912).

Rāgamālika-s

Rāgamālika-s are compositions which are set to more than one rāga.

The tāḷa of the Rāgamāla gīta – Karnāṭa-koṅkaṇa seen in Saṅgīta-Sarvārtha-Sāra-Saṅgrahamu is not mentioned (refer Appendix 1.6). Each āvarta is set to a different rāga in the two Rāgamāla gīta-s seen in the publication Saṅgīta-Sarvārtha-Sāra-Saṅgrahamu.

Tāna and Sañcāri

Tāna-s are a part of the manōdharma saṅgīta (creative music). These are sung using the syllables nam, tam, tom, ta, etc. Sañcāri-s are rāga phrases or prayōga-s.

There are two tāna-s seen in the publications Saṅgīta-Sarvārtha-Sāra-Saṅgrahamu and Saṅgīta-Sampradāya-Pradarśini (refer Appendix 1.7). The tāna seen in the publication Saṅgīta-Sampradāya-Pradarśini is attributed to Veṅkaṭamakhi while the tāna seen in the publication Saṅgīta-Sarvārtha-Sāra-Saṅgrahamu is not mentioned. Tāna-s are not set to any tāḷa. Sañcāri seen in the publication Saṅgīta-Sampradāya-Pradarśini is set to Miśra ēka tāḷa.

Observations

From the various musical forms seen in the early Telugu music publications set to rāga Varāḷi, the following observations can be made.

Ghana-rāga-gītamulu seen in the early Telugu music publications include various other rāga-s like Bhairavi, Mōhanam, Ānandabhairavi, Kāmbhōji, Nīlāmbari, Sahāna, etc. in addition to the modern day's list of Ghana rāga-s which include Nāṭa, Gauḷa, Ārabhi, Varāḷi, Śrī, Nārāyaṇagauḷa, Rītgauḷa, Sāḷaṅganāṭa, Kēdāram and Bauḷi.

The concept of Ghana-rāga-pañcaka (Nāṭa, Gauḷa, Ārabhi, Varāḷi, Śrī) and the addition of rāga Varāḷi to this group seems to be a later development as this term is not seen in the twelve publications taken up for study. Also because, rāga Varāḷi is not included in the Ghana-rāga-gītamulu in the following publications although Ghana-rāga-gīta-s in other Ghana-rāga-s like Nāṭa, Gauḷa, Ārabhi and Śrī are seen in the same order.

- Gāyanā-Gāyanī-Jana-Pārijātamu
- Saṅgīta-Vidyā-Darpaṇamu

- Saṅgīta-Prathama-Bōdhini

Rāga Varāḷi is not included in the Gīta-s seen in the following publications though the Gīta-s set to rāga-s Nāṭa, Gauḷa, Ārabhi and Śrī are seen in the same order.

- Prathamābhyāsa-pustakamu
- Svara-Mañjari
- Saṅgīta-Sudhāmbudhi
- Saṅgīta-Sudhā-Saṅgrahamu
- Saṅgīta-Prathama-Bōdhini
- Saṅgīta-Pradāyini
- Gāna-Vidyā-Vinōdini
- Pallavi-Svarakalpavalli

Tāna-s are not seen in rāga Varāḷi in the following publications although tāna-s in other Ghana-rāga-s are seen in the following publications.

- Prathamābhyāsa-pustakamu of Subbarāma Dīkṣita
- Svara-Mañjari of Taccūru brothers
- Saṅgīta-Sudhāmbudhi
- Saṅgīta-Pradāyini of Tiger Varadācārya
- Saṅgīta-Svayambōdhini of T.M.Veṅkaṭēśa Śāstri

Before analysing the compositions set to rāga Varāḷi seen in the early Telugu music publications, it is imperative to study the rāga lakṣaṇa of Varāḷi. So, the lakṣaṇa of rāga Varāḷi seen in the early Telugu music publications is seen and discussed below.

Lakṣaṇa of Rāga Varāḷi in the early Telugu music publications

Elaborate lakṣaṇa of rāga Varāḷi is seen only in the publication Saṅgīta-Sampradāya-Pradarśini while the other publications have only mentioned the ārōha and avarōha of rāga Varāḷi at the beginning of the notations. Saṅgīta-Sampradāya-Pradarśini gives a detailed lakṣaṇa for the rāga-s including their ārōha, avarōha, time to be sung, jīva and nyāsa svara-s, prayōga-s, gamaka-s, varja and vakra svara-s, etc.

The ārōha and avarōha of rāga Varāḷi is mentioned in the early Telugu music publications as follows:

- Pallavi-Svarakalpavalli of Tiruvottūru Tyāgayya - "s g_2 r_2 g m_2 p d_1 n_3 ṡ (or) s r_1 g_1 m_2 p d_1 n_3 ṡ - ṡ n_3 d_1 p m_2 g_1 r_1 s"
- Saṅgīta-Sudhāmbudhi of K.V. Śrīnivāsa Ayyaṅgār - "s g_1 r_1 g_1 m_2 p d_1 n_3 ṡ - ṡ n_3 d_1 p m_2 g_1 r_1 s"
- Saṅkīrtana-Ratnāvaḷi of Tiruvottūru Tyāgayya and Saṅgītānanda-Ratnākaramu of Tenmaṭham brothers - "s r_1 g_1 m_2 p d_1 n_3 ṡ - ṡ n_3 d_1 p m_2 g_1 r_1 s"
- Saṅgīta-Sampradāya-Pradarśini of Subbarāma Dīkṣita - "s g_1 r_1 g_1 m_2 p d_1 n_3 ṡ - ṡ n_3 d_1 p m_2 g_1 g_1 r_1 s"

The ārōha is given as krama sampūrṇa in Saṅgītānanda-Ratnākaramu and Saṅkīrtana-Ratnāvaḷi but the krama (sequential) prayōga "s r g m" or "s r g m p" is not seen in the compositions mentioned in these publications (gīta Rāmā-rākṣasa-bhīma in Saṅgītānanda-Ratnākaramu and the kṛti Ninu-vinā in Saṅkīrtana-Ratnāvaḷi). So, the ārōha and avarōha in these publications might be mentioned to indicate the svara-s included in this rāga although the rāga prayōga slightly differs from the ārōha.

Saṅgīta-Sudhāmbudhi and Saṅgīta-Sampradāya-Pradarśini includes a vakra (zig-zag) prayōga "s g r g" in the ārōha. The addition of a vakra prayōga "s g r g" might be an attempt to eliminate the vivādi-dōṣa. The gāndhāra is a jaṇṭa-

prayōga in the avarōha mentioned in Saṅgīta-Sampradāya-Pradarśini while the avarōha is a krama-avarōha in Saṅgīta-Sudhāmbudhi.

Pallavi-Svarakalpavalli mentions that rāga Varāḷi includes the svara-s sādhāraṇa gāndhāra and catuśruti ṛṣabha in the ārōha, which is unique. Pallavi-Svarakalpavalli also mentions that rāga Varāḷi is a sampūrṇa rāga which has the svara-s sādhāraṇa gāndhāra and catuśruti ṛṣabha in the ārōha and śuddha gāndhāra in the avarōha as rāgachāya svara-s. It also mentions that Varāḷi is a Ghana rāga.

Saṅgīta-Sampradāya-Pradarśini mentions that Varāḷi is a rāgāṅga, sampūrṇa-rāga, with ṣaḍja as the graha. It also mentions that it is a Ghana-rāga, suitable to be sung at all times.

(s g r g m p) (p m g g r s) are the prayōga-s that impart rañjakatva to rāga Varāḷi, which are shown in the mūrcchana ārōha and avarōha. Gāndhāra is the jīva-svara for this rāga. Hence, it is shown as a twin note in the mūrcchana-ārōha. The prayōga (sgrgm) is only seen in the Gīta and Tāna while the prayōga (srgm) is also seen in the Kīrtana-s.

Having seen the rāga lakṣaṇa of rāga Varāḷi, the notations of Gīta-s set to rāga Varāḷi seen in the early Telugu music publications are analysed based on their melody, structure, rhythm and the following observations are made.

Rāga prayōga-s

The frequent use of jaṇṭa prayōga-s in the Gīta-s set to rāga Varāḷi resemble the tāna pattern played on the Vīṇa. This could probably be because Varāḷi is a Ghana rāga which is extensively used for tāna playing on the Vīṇa.

The phrase “s g r g” is not seen in the ārōha prayōga-s (phrases) of the two gīta-s Sārasa-sambhava and Rāma-rākṣasa-bhīma out of the five Gīta-s set to rāga Varāḷi. In the gīta Sārasa-sambhava, the ascent in the melody is done using the dāṭu prayōga from ṣaḍja to dhaivata instead of any krama prayōga-s. For example, the phrases - “s d p ,” “s d d m” “s , d d p m” and “s d d p”.

▪ Rare phrases

In the gīta Rāma-rākṣasa-bhīma, both the āvarta-s end with a dīrgha svara of gāndhāra, which is unusual in the case of rāga Varāḷi.

Phrases like “p d s”, “g p p” and “p g r” are seen in the gīta Atulita-vibhava; “g p p” is also seen in the tāna in Saṅgīta-Sarvārtha-Sāra-Saṅgrahamu; “d ṡ ṡ” is seen in the gīta-s Saṅgrāma-bhūma and Ārē-rē-nīlamēgha.

Phrase “ṡ ṙ ṁ” is seen in the kṛti Māmava-mīnākṣi and the phrase “m p g r” is seen in the kṛti Śēṣācala-nāyakam seen in Saṅgīta-Sampradāya-Pradarśini.

Pañcama varja phrases are frequently seen in this rāga. For example, the phrase “d m g r” is frequently seen in the Gīta-s, Varṇa - Tōyajākṣi rō and the Sañcāri in Saṅgīta-Sampradāya-Pradarśini.

The entire ārōha and avarōha of Varāḷi is seen in the phrase “s r g m p d n s n d p m g r” in the gīta Ārē-rē-nīlamēgha.

▪ Melody

The range of the melody of the gīta Saṅgrāma-bhūma is till the tāra sthāyi niṣādha, which is rare.

Each section of the Tāna seen in Saṅgīta-Sarvārtha-Sāra-Saṅgrahamu ends on the ṣaḍja and the next section begins

on a new note or svara, where the tāna is elaborated. The Tāna seen in Saṅgīta-Sampradāya-Pradarśini ranges mostly in the mandra sthāyi. Few madhya sthāyi prayōga-s are seen. The Tāna in Saṅgīta-Sampradāya-Pradarśini ranges between mandra ṣaḍja and tāra ṣaḍja.

The Kṛti - Ninu vinā of Tiruvottūru Tyāgayya in Saṅkīrtana-Ratnāvaḷi includes 8 saṅgati-s (improvisations) in the Pallavi, showcasing the gradual development in the movement of the melody by implementing small changes to the rāga phrases.

Tāla-s

The Gīta-s set to rāga Varāḷi are composed in Sūlādi sapta tāḷa-s like Jhampa, Tripuṭa, Rūpaka and Ādi.

Gīta-s usually start with a sama eḍuppu or graha. There are Gīta-s with different kinds of eḍuppu-s (graha) seen in the early Telugu music publications. For example, the gīta Ārē-rē-nīlamēgha is composed in Tripuṭa tāḷa with an atīta eḍuppu. The gīta starts at the dhrutam of the previous āvarta. Eḍuppu of the gīta Saṅgrāma-bhūma is atīta. It starts 3 akṣara-s before samam.

The gīta Rāma rākṣasa bhīma is set to Ādi tāḷa, composed with 4 svara-s per beat of the tāḷa. This is rare as Gīta-s are usually composed with one svara per beat of the tāḷa.

The tāḷa of the Rāgamāla gīta - Karṇāṭa-Koṅkaṇa is not mentioned while the Rāgamāla gīta – Śrī-ramaṇi-kuca is composed in Dhruva tāḷa.

Both the varṇa-s Tōyajākṣi and Tāmarasākṣi are composed in Ādi tāḷa.

The kṛti-s set to rāga Varāḷi are composed in the tāḷa-s Ādi, Cāpu, Rūpaka and Miśra ēkam.

The Sañcāri seen in Saṅgīta-Sampradāya-Pradarśini is also composed in Miśra ēkam.

Structure

The publications Saṅgīta-Sarvārtha-Sāra-Saṅgrahamu and Saṅgīta-Sampradāya-Pradarśini include different sections like Khaṇḍika, Antari, Jāvaḍa and Mudrākhaṇḍa in the gīta-s while the other publications include gīta-s with only one section.

Subbarāma Dīkṣita in his Saṅgīta-Sampradāya-Pradarśini mentions that a gīta includes three sections Udgrāha, Ābhōga and Mudrākhaṇḍa. Udgrāha is the introductory section which consists of two sections Dhruva and Antari. Antari is the one connecting the preceding and the following sections. Ābhōga khaṇḍa, also known as Jāvaḍa is the latter half of the composition, which is the concluding section. Mudrākhaṇḍa is the section in which the mudra of the composer is seen in the gīta's sāhitya.

Most of these gīta-s set to rāga Varāḷi are composed as single sectioned compositions without any divisions. Different sections of the gīta-s are seen in the publications - Saṅgīta-Sarvārtha-Sāra-Saṅgrahamu of Vīṇa Rāmānuja and Saṅgīta-Sampradāya-Pradarśini of Subbarāma Dīkṣita. The sections Khaṇḍika and Mudrākhaṇḍa are seen in the gīta Atulita-vibhava in the publication Saṅgīta-Sarvārtha-Sāra-Saṅgrahamu. The sections Antari and Jāvaḍa are seen in the gīta Saṅgrāma-bhūma in the publication Saṅgīta-Sampradāya-Pradarśini of Subbarāma Dīkṣita.

The Kṛti - Ninu-vinā of Tiruvottūru Tyāgayya in his Saṅkīrtana-Ratnāvaḷi has

a ciṭṭasvara after the Anupallavi which is not repeated after the caraṇa. This is rare as the ciṭṭasvara is usually repeated after the caraṇa also.

The tāna seen in Saṅgīta-Sarvārtha-Sāra-Saṅgrahamu is mentioned as aittamu. The structure of this tāna has an Eḍpu, Muktāyi, Udgrāha and another Muktāyi.

Notations in the early Telugu music publications

The presentation of the notations differs in each early Telugu music publication. The evolution of the system of notations can be seen in these publications. The earliest publications didn't use the modern day tāḷa markings or the sthāyi symbols. For example, The present day's usage of tāḷa markings are not seen in the notations of the publication Gāyanā-Gāyanī-Jana-Pārijātamu. A double bar (||) is given at the end of the gīta and sometimes at the end of each section. Phrases are separated by a (-). Svara and sāhitya do not have a clear distinction; they are given continuously in a prose manner.

The notations in Pallavi-Svarakalpavalli and Saṅkīrtana-Ratnāvaḷi have a dot above the svara at the beginning of each aṅga of the āvarta, indicating the tāḷa marking. A double bar is seen at the end of each section of the composition.

Sthāyi symbols are not seen in the publications Saṅgīta-Sarvārtha-Sāra-Saṅgrahamu, Saṅkīrtana-Ratnāvaḷi, Saṅgīta-Sudhā-Saṅgrahamu and Gānēndu-Śēkharamu. Sthāyi is mentioned using an inverted comma (') in Saṅgītānanda-Ratnākaramu. Gamaka symbols are seen only in Saṅgīta-Sampradāya-Pradarśini.

The sāhitya of the kṛti-s are mentioned without their notations in the publications Saṅgīta-Sarvārtha-Sāra-Saṅgrahamu, Gāyanā-Gāyanī-Jana-Pārijātamu, Gāyaka-Lōcanamu, Saṅgīta-Sudhā-Saṅgrahamu and Saṅgīta-Kaḷānidhi.

The kṛti Kanakana rucira is seen with a pallavi, anupallavi and 2 caraṇa-s in the three publications - Saṅgīta-Sarvārtha-Sāra-Saṅgrahamu (1859), Gāyanā-Gāyanī-Jana-Pārijātamu (1878) and Saṅgīta-Kalānidhi (1912) while Saṅgīta-Sudhāmbudhi (1917) documents it with a pallavi, anupallavi and 8 caraṇa-s, including the notation only for the pallavi, anupallavi and the last caraṇa. It is also mentioned in this publication that the notation for the other 7 svara sāhitya-s is unavailable. These caraṇa-s might be a later addition to this composition as they are not seen in the publications earlier to Saṅgīta-Sudhāmbudhi of K.V.Śrīnivāsa Aiyaṅgār (1917).

The kṛti Vara nārada is mentioned to be set to rāga Varāḷi in Gāyanā-Gāyanī-Jana-Pārijātamu whereas it is currently sung in the rāga Vijayaśrī.

Notations of the Lakṣaṇa Gīta-s seen in Gānēndu-Śēkharamu of Taccūru brothers are the same as the ones in the lakṣaṇa grantha Saṅgraha-Cūḍāmaṇi of Gōvinda.

Conclusion

Rāga Varāḷi is one of the traditional rāga-s whose structure seems to remain the same through several years. The lakṣaṇa of this rāga is seen to be similar in most of the compositions though the approach to explore and elaborate this rāga through musical forms may vary according to the composer's creativity.

Over a period of time, many composers have composed various musical forms like Gīta-s, Varṇa-s, Kṛti-s/Kīrtana-s, Rāgamālika-s, Tāna-s, Sañcāri-s, etc. set to rāga Varāḷi. Though this rāga has been classified under ghana rāga-s, the combination of the svara phrases, most importantly the Varāḷi madhyama defines the characteristics of the rāga as well as the important place Varāḷi has had in the history of evolution of rāga-s.

The close proximity of svara-s "n s r g" (form consecutive svarasthāna-s) and "m p d" (again consecutive svarasthāna-s) allow very fast ravai saṅgati-s (maneuvering phrases) between these two clusters involving long jāru-s (glide). The vakra (zig-zag) phrase in the ārōha also involves kampita (oscillation), varja (omitting) and jāru prayōga-s. Therefore, this rāga involves both fastest and slowest rāga sañcāra-s which lends its characteristic beauty to the rāga Varāḷi.

Introducing rāga Varāḷi at an early stage like Gīta-s to students of Karṇāṭaka Saṅgīta will be an enriching experience as Gīta-s are an integral part of the beginner's lessons of Karṇāṭaka saṅgīta. In a student's journey of advanced learning also, these gīta-s become tools to improve tāna singing or playing, as most of the phrases in these gīta-s (set to rāga Varāḷi) resemble tāna patterns.

References

Publications:

1. Vīṇa, Rāmanuja (1859). *Saṅgīta Sarvārtha Sāra Saṅgrahamu*, pub. Śrī lakṣmi nṛsimha mudrākṣaraśāla Chennappaṭṭaṇamu, 1912. Available at : http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/605
2. Sastri, Venkatesa T M (1892). *Saṅgīta Svayambōdhini*, pub. G.W.Taylor, Lawrence institute press, Mount Road, Madras Available at : http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/657
3. Tiruvattūru, Tyāgayya (1900). *Pallavi Svara Kalpavalli*, Vasuratnākara mudrākṣaraśāla, Chennai, Available at : http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/646
4. Dīkṣita, Subbarāma (1904). *Saṅgīta Saṁpradāya Pradarśini*, pub. T. Rāmacandra Ayyaṅgār, Vidia Vilasini Press,
5. Dīkṣita, Subbarāma (1904). *Saṅgīta Saṁpradāya Pradarśini*, pub. T. Rāmacandra Ayyaṅgār, Vidia Vilasini Press, English (web) edition, 2008
6. Dīkṣita, Subbarāma (1905). *Prathamabhyāsa Pustakamu*, pub. Eṭṭayapuram Samasthanam, Vidia Vilasini Press. Available at : http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/630
7. Dīkṣita, Subbarāma (1905) *Prathamabhyāsa Pustakamu*, pub. Eṭṭayapuram Samasthanam, Vidia Vilasini Press, English (web) edition, 2010. Available at : http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/2282
8. Ummiḍi Śetti, Veṅkaṭa Svāmi Nāiḍu (1910). *Saṅgīta Vidya Darpaṇamu*
9. Naidu, Moonooswamy N (1906). Saṅgīta Sudhā Saṅgrahamu, pub. Sreenikathanam Press, Madras, Available at : http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/2884
10. Vīṇa, Basavappa (1915). *Gāna Vidya Vīnōdini*, pub. Anandamudranalaya, Madras Available at: http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/660
11. Tenmaṭham Vēṅkaṭanarasimhācāryulu & Tenmaṭham Vēṅkaṭavaradācāryulu (1917). *Saṅgītānanda Ratnākaramu*, pub. Śrīnikētanamudrāyantra, Madras Available at : http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/645
12. Ayyeṅgār, Śrīnivāsa K V (1917). *Saṅgīta Sudhāmbudhi*, Pub. M. Adi & co, Madras

Available at: http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/675
13. Taccūru Śiṅgārācāryulu & Taccūru Cinnaśiṅgārācāryulu (1927). *Gāyaka Pārijātamu*, pub. Śaśilēkhā mudrākṣaraśāla
Available at : http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/638
14. Govinda (1938). *The Samgraha Cudamani*, Chennai: Adyar Library
15. Taccūru Śiṅgārācāryulu & Taccūru Cinnaśiṅgārācāryulu (1912). *Gānēndu śēkharamu*, pub. Kalāratnākara mudrākṣaraśāla
Available at : http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/670
16. *Gāyana Gāyani Jana Pārijātamu* (1878). ed. Tanjore A. Kannayya Śeṭṭi
Available at : http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/653
17. Taccūru Śiṅgārācāryulu & Taccūru Cinnaśiṅgārācāryulu (1914). *Svaramañjari,* Pub. Maharaja of Vijayanagaram, K.R.Press
Available at : http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/669
18. Aripirāla, Satyanārāyaṇamūrti (1933). *Gānakaḷācandrika,* Pub. Nāgēśvara Rāo Pantulu
Available at : http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/3234
19. Ēka, Subbā Rāo (1934). *Saṅgīta Prathama bōdhini,* Tenāli Orient press
Available at: http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/572
20. Tiger Varadācārya, Kriṣṇamācārya, Ayyaṅgār Śrīnivāsa K V (1916), *Saṅgīta Pradāyini*
Available at : http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/673
21. Paṇḍita, Nādamuni M (1914). *Saṅgīta Svara Prastāra Sāgaramu* (1909), Daudan Press, Cannapuri
Available at: http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/2465
22. Taccūru Śiṅgārācāryulu & Taccūru Cinnaśiṅgārācāryulu (1902). *Gāyaka Lōcanamu*, Pusparatha Setty & Company
23. Tiruvattūru, Tyāgayya (1907). *Saṅkīrtana Ratnāvaḷi*, Uḷḷiyanellūru Aḷagam Kṛṣṇamācāryulu
24. Taccūru Śiṅgārācāryulu & Taccūru Cinnaśiṅgārācāryulu (1912). *Saṅgīta Kalānidhi*

Articles:

1. Ramanathan N, *Pre 1940 Music Publications, by N Ramanathan*
Available at http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/2355
2. Nagarajan, Premalatha, *Ghana - Naya – Dēśya Rāga-s*
Available at http://musicresearchlibrary.net/omeka/items/show/2289

Thesis:

1. Vijayalakṣmi S, *The Evolution, Structure And Musical Analysis Of Select Lakṣya And Lakṣaṇa Gīta-s*
Available at https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/193877

Appendix

1.1 List of early Telugu music publications which have been taken up for study, mentioning their author, year of publication and the musical forms set to rāga Varāḷi.

Sl. No	Publication (Abbreviation)	Author	Year of publication	Musical forms seen
1.	Saṅgīta-Sarvārtha-Sāra-Saṅgrahamu (SSSS)	Vīṇa Rāmānuja	1873	Gīta
				Varṇa
				Kṛti
				Rāgamāla gīta
				Tāna
2.	Gāyana-Gāyanī-Jana-Pārijātamu (GGJP)	Various Scholars (Ed.)	1878, 1898, 1904	Kṛti
3.	Pallavi-Svarakalpavalli (PS)	Tiruvottūru Tyāgayya	1900	Kṛti
				Svara sāhitya Rāgamālika
4.	Gāyaka-Lōcanamu (GL)	Taccūru Śiṅgārācāryulu & Taccūru Cinnaśiṅgārācāryulu	1902	Kṛti
5.	Saṅgīta-Sampradāya-Pradarśini (SSP)	Subbarāma Dīkṣita	1904	Gīta
				Kṛti
				Sañcāri
6.	Saṅkīrtana-Ratnāvali (SR)	Tiruvottūru Tyāgayya	1907	Varṇa
				Kṛti
7.	Saṅgīta-Sudhā-Saṅgrahamu (SSS)	C.Munusvāmi Nāiḍu	1909	Kṛti
				Rāgamālika varṇa
8.	Gānēnduśēkharamu (GS)	Taccūru Śiṅgārācāryulu & Taccūru Cinnaśiṅgārācāryulu	1912	Gīta
9.	Saṅgīta-Kaḷānidhi (SK)		1912	Kṛti
10	Saṅgīta-Svara-Prastāra-Sāgaramu (SSPS)	Nādamuni Paṇḍita M	1914	Gīta
11	Saṅgītānanda-Ratnākaramu (SAR)	Tenmaṭham Vēṅkaṭanarasimhācāryulu & Tenmaṭham Vēṅkaṭavaradācāryulu	1917	Gīta
12.	Saṅgīta-Sudhāmbudhi (SS)	K.V. Śrīnivāsa Ayyaṅgār	1917	Kṛti

1.2 List of Gīta-s seen in the early Telugu music publications

Sl. No.	Composition	Type of Gīta	Tāla	Composer	Publication	Year
1	Atulita vibhava	Yatirāja Gītāṣṭakamu	Jhampa	Vīṇa Vijaya Varadayya	SSSS	1873
2	Saṅgrama bhūma	Gīta	Jhampa	Veṅkaṭamakhi	SSP	1904
3	Arē rē nīlamēgha Śyāma	Lakṣaṇa gīta	Tripuṭa	Gōvinda	GS	1912
4	Sārasa sambhava vinuta	Ghana rāga gīta	Rūpaka	Not mentioned	SSPS	1914
5	Rāma rākṣasa bhīma	Ghana rāga gīta	Ādi	Tenmaṭham brothers	SAR	1917

1.3 List of Varṇa-s seen in the early Telugu music publications

Sl. No	Composition	Tāla	Composer	Publication	Year
1	Tōyajākṣi rō	Ādi	Not mentioned	SSSS	1873
2	Tāmarasākṣi		Tiruvottūru Tyāgayya	SR	1907

1.4 List of Kṛti-s/Kīrtana-s for which the notations are documented in the early Telugu music publications

Sl. No	Composition	Tāla	Composer	Publication	Year
1	Prakṛta janulatō	Cāpu	Tiruvottiyur Tyāgayya	PS	1900
2	Māmava mīnākṣi	Miśra ēkam	Muttusvāmi Dīkṣita	SSP	1904
3	Śēṣācala nāyakam	Rūpakam			
4	Ninnu vina evarunnāru	Ādi	Tiruvottiyur Tyāgayya	SR	1907
5	Kanakana rucira	Ādi	Tyāgayya	SS	1917

1.5 List of Kṛti-s/Kīrtana-s for which only the sāhitya are documented in the early Telugu music publications

Sl. No	Composition	Tāla	Composer	Publication	Year
1	Kanakana rucira	Ādi	Tyāgayya	SSSS	1873
				GGJP	1878
				SK	1912
2	Vara nārada nārāyaṇa	Ādi		GGJP	1878
3	Śēṣācala nāyakam	Rūpakam	Muttusvāmi Dīkṣita	GL	1902
4	Nī kṛpacē nākiṭula	Ādi	C.Munusvami Naidu	SSS	1909

1.6 List of Rāgamālika-s seen in the early Telugu music publications

Sl. No	Composition	Type of composition	Tāla	Composer	Publication	Year
1	Ō varada	Svara sāhitya rāgamālika	Ādi	Tiruvoṭṭūru Tyāgayya	PS	1900
2	Inta kōpa	Varṇa rāgamālika	Ādi	Vīṇa Veṅkaṭasāmi	SSS	1909
3	Nī darabāru	Navaratnamālika	Rūpaka	Tirupati Vidyala Nārāyaṇasvāmi		
3	Karnāṭa koṅkaṇa	Rāgamāla gīta	Not mentioned	Vīṇa Vijaya Varadayya	SSSS	1873
4	Śrī ramaṇīkuca	Rāgamāla gīta	Dhruva			

1.7 List of Tāna-s and Sancāri-s seen in the early Telugu music publications

Sl. No	Type of Musical form	Tāla	Composer	Publication	Year
1	Tāna	Not mentioned		SSSS	1873
2		Not mentioned	Veṅkaṭamakhi	SSP	1904
3	Sañcāri	Miśra ēka	Subbarāma Dīkṣita		

संस्कृति

भारतीय संस्कृति में गुरु शिष्य परम्परा 'गुरु पूर्णिमाः' सार

डॉ. रमा सिंह

प्राचार्या,
आर्य कन्या डिग्री कॉलेज, प्रयागराज

शोध सारः-

आसाढ़ माह की पूर्णिमा को जब चन्द्रमा अपनी पूर्ण कलाओं से युत होता है भारत में गुरुपूर्णिमा के रूप मे मनाया जाता है। भारत मे गुरु शिष्य परम्परा आदि काल से चली आ रही है। 'विनु गुरु होय न ज्ञान' अर्थात् कुछ भी सीखना है तो उसके लिए गुरु का होना आवश्यक है। यही कार्य वर्तमान मे शिक्षक करता है परन्तु गुरु और शिक्षक मे अन्तर है। गुरु अर्थात् श्रेष्ठ जो स्वयं मे श्रेष्ठ है वही आपको श्रेष्ठ बना सकता है। गुरु द्वारा प्राप्त होने वाली शिक्षा नैतिक मूल्यों से युक्त होगी जिससे समाज का प्रवाह सतत गतिमान रहेगा जबकि शिक्षक केवल किसी विषय की जानकारी मात्र देगा। यही कारण है कि भारतीय व्यवस्था मे गुरु का स्थान श्रेष्ठ है। सामाजिक व्यवस्था में प्रथम गुरु का स्थान माता का है जो बच्चे को बोलना सिखाने के साथ परिवार और समाज से परिचय कराती है दूसरा स्थान बाहरी गुरु का है जो मूल्यों से परिचय कराकर वाह्य दुनिया में श्रेष्ठता से कार्य करता हुआ ईश्वर के साथ, सत्य के साथ साक्षात्कार कराता है। इसलिए भारतीय व्यवस्था मे गुरु के प्रति आदर भाव व्यक्त करने के लिए गुरु पूर्णिमा का दिन महत्वपूर्ण है यद्यपि कि प्रत्येक पल गुरु के प्रति समर्पित होना व्यक्ति में नैतिक मूल्यों का संरक्षण देगा।

मुख्य शब्द

चार वेद, चार वर्ण, सुर, असुर, चतुर्मास, गुरुधर्म

गुरु पूर्णिमा का दिन सम्पूर्ण भारत में अपने गुरु के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए उसके प्रति सम्मान भाव व्यक्त करने के लिए गुरु का पूजन अर्चन भेंट प्रस्तुत कर अपना आदर भाव व्यक्त करने के लिए अनूठा दिन है। अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता है गुरु को नमन करता है। हमें यह जानना चाहिए गुरु पूर्णिमा क्या, क्यों गुरु शिष्य परम्परा का भारत में क्या महत्व है? अगर हम इसके इतिहास पर दृष्टिगत हों तो हमें पता चलेगा गुरु का स्थान भारतीय व्यवस्था में सामाजिक एवं राजनैतिक दोनों व्यवस्थाओं में सर्वोच्च रहा है। गुरु का दर्जा ईश्वर का दर्जा रहा है। इसीलिए कबीर ने मथते हुए मक्खन निकाल तो कहाः-

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूं पाय
बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियों बताए।[1]

आध्यात्मिक जगत में सर्वोच्च स्थान गुरु का है यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति में आत्मा है। कहा गया है वो परमात्मा सर्वश्रेष्ठ रचयिता सृष्टि का पालक, नियामक का अंश है अगर व्यक्ति अपनी आत्मा को समुन्नत करता है तो वो सीधे प्रकृति के मूल से साक्षात्कार करता है जो अंश उसमें उस परमात्मा

का है। इस दृष्टि से हमारे अंदर जो ज्ञान है मूल तत्व है गुरु उसे उभार कर, उकेर कर, उस पर चलने का रास्ता बताकर ईश्वर तक ले जाने में सहायक होता है। गुरु शिष्य की यह परम्परा देखा जाए प्राचीन काल से ही मिलती है जहां व्यक्ति को तैयार करने उसके व्यक्तित्व को विकसित करने का काम गुरु करता है वहीं सामाजिक संरचना में प्रत्येक व्यक्ति अपना दायित्व समझे प्रत्येक व्यक्ति का दायित्व क्या है? उस दायित्व की व्यक्ति पहचान कैसे करे? कहीं संघर्षो में न उलझे इसका मार्ग दर्शा कर प्रदर्शित करता है और अगर राज्य की बात हो तो गुरु राजनैतिक व्यवस्था में भी धर्म को प्रमुखता देकर व्यक्ति को धर्म में यानि जो उसके लिए उचित है समाज में अपने-अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करे। राजनैतिक व्यवस्था कैसी हो जो सर्वोत्तम हो नैतिक हो मूल्यों से युक्त हो। ये भी गुरु निर्देशित करता है। इस तरह गुरु का स्थान समाज की संरचना में व्यक्ति के निर्माण से लेकर समाज को स्थायित्व देने तक है तो राज्य की भूमिका मे राज्य को संगठित करने, व्यवस्थित करने और दिशा देने में भी है। अगर इसका ऐतिहासिक पक्ष देखें तो गुरु पूर्णिमा कृष्ण द्वैपायन व्यास जी के जन्म को गुरु पूर्णिमा के रूप में मनाते है इसलिए कभी उसको व्यास पूर्णिमा भी कहते हैं। ऐसा क्यों? वास्तव में भारतीय संस्कृति में वेद वे मूल ग्रंथ है, प्रथम ग्रंथ हैं, जो हमे सृष्टि का ज्ञान देते हैं, जो हमें मानवता का पाठ पढ़ाते हैं जो मानव की संरचना उत्पत्ति की बात बताते हैं। उन वेदों का वर्गीकरण ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद इन चार भागों में बांटने का काम गुरुदेव व्यास ने ही किया। महाभारत जो कर्म पर जोर देता है, सामाजिक व्यवस्था को बताता है, और जो राजनैतिक व्यवस्था को भी स्पष्ट करता है उसके रचयिता भी वेदव्यास जी है। वेदव्यास के जन्मदिन को भले ही हम गुरु पूर्णिमा के रूप में मनाते हैं लेकिन अगर देखा जाए तो गुरु की महिमा वेद काल से ही मिलती है। भारतीय व्यवस्था में सप्तऋषि का वर्णन है। सात ऋषियों के माध्यम से संपूर्ण सृष्टि को आधार मिला है। और उन ऋषियों में सर्वश्रेष्ठ स्थान गुरु वृहस्पति एवं गुरु शुक्राचार्य को मिला। गुरु वृहस्पति देवों के गुरु हुए योग्यता में कुछ अधिक होते हुए भी क्रोधी प्रवृत्ति के होने के कारण शुक्राचार्य को वह स्थान नही मिल पाया गुरु शुक्राचार्य ने अपने को साबित करने के लिए दानवों का गुरु बनना स्वीकार किया। ये देव और असुर क्या हैं? सृष्टि में सदैव से दो प्रवृत्तियां रही हैं एक रचनात्मक दूसरा विध्वंसात्मक। रचनात्मक प्रवृत्ति देव शक्ति है, विध्वंसात्मक शक्ति असुर शक्ति है। प्रत्येक व्यक्ति में ये दोनों शक्तियां होती हैं। व्यक्ति, किस शक्ति को निखार कर अपने को प्रस्तुत करता है ये गुरु पर निर्भर करता है। उससे यह अपेक्षा होती है कि वह नैतिकता का पक्ष स्वीकार करे। मूल्यों से व्यक्तित्व उभर कर सामने आए ये उसे देवत्व की श्रेणी में खड़ा करता है। लेकिन जब उसकी विध्वंसात्मक प्रवृत्ति जिसे वो नियंत्रित नहीं करता जिसको गुरु गढ़ करके समाप्त नहीं कर पाता तब वो राक्षस प्रवृत्ति का हो जाता है। उसके कार्यो से दूसरे व्यक्ति का नुसकान होता है। हिंसात्मक प्रवृत्ति की उसमें वृद्धि होती है। अगर हम एक और तरह से देखें तो भारतीय सृष्टि की संरचना नौ ग्रहों पर आधारित है और उन नौ ग्रहों में एक ग्रह वृहस्पति अर्थात् गुरु का है। जो सम्पूर्ण सृष्टि को दिशा देता है। इस तरह से भारतीय व्यवस्था में गुरु का स्थान सर्वोत्तम है। उसी गुरु परम्परा में ऐसे ऋषि हुए जिन्होने तप बल से, ज्ञान बल से अपनी योग्यता स्थापित की और अपनी योग्यता का लाभ मानवता के कल्याण को दिया। ऋषि पराशर, ऋषि मनु आदि इस श्रेणी के ऋषि हैं। वेदों के बाद ब्राहमण ग्रथों में ऋषियों ने बहुत सारे ऐसे ग्रंथों की रचना की जिसमें जीवन का सार, जीवन जीने की कला, जीवन का मूल्य बताया है। अलग-अलग ऋषियों के नाम पर ग्रंथों के नाम हुए। आज भी उन ग्रंथों को पढ़कर मानवता को विकसित करने की दिशा मे हम अपने को रख सकते हैं। जब हम भटकते हैं वराह मिहिर को याद करते हैं। संस्कृति के लिए मनु का स्मरण करते हैं। इस ऋषि परम्परा में स्मृतियां आती हैं लेकिन जब हम महाभारत के

काल में आते है जहां महाभारत के संपूर्ण ग्रंथ का अध्ययन करते हैं। एक तरफ श्रीकृष्ण गीता का उपदेश करते हुए कहते है- यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवतु भारतः, जब-जब होए धरम की हानि बढ़ै असुर महाअभिमानी, तब-तब धर प्रभु मनुज सरीरा, हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरायह रामचरित मानस परमी कहा गया है।[3]जब भी ऐसी स्थिति होती है समाज में ईश्वर का अवतरण होता है। ईश्वर वो जो सर्वशक्तिमान है, सर्वज्ञानी है। जो समाज को नयी दिशा देता है। जो समाज को सन्मार्ग पर ले जाता है। यही नही यह भी कहा गया-'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'।[4]कर्म करो अधिकार फल की अभिलाषा मत करो। जब लाभ की आकांक्षा से कार्य करते है तब काम नैतिक नहीं रह जाता है। दो प्रवृत्तियां महाभारत काल में देखने को मिलती है एक तरफ कौरव दूसरी ओर पांडव दोनों मे प्रवृत्तियों की संघर्ष है। जब बाणों की शैय्या पर पड़े हुए भीष्म कहते हैं राज्य करने वाले को उन-उन गुणों से युक्त होना चाहिए तो राजनीति को परिभाषित करते हैं। लेकिन जब धृतराष्ट्र के अंधे होने के कारण गांधारी भी अपनी आंख पर पट्टी बांध लेती हैं न केवल समाज का पतन होता है,राज्य का पतन भी होता है। क्योंकि ऐसे में राजा कर्त्तव्य विहीन होता है तो राज्य दिशा हीन होगा और समाज पतन की ओर होगा। उस समाज में व्यक्ति में संघर्ष होना आवश्यक है। उस वक्त आसुरी प्रवृत्तियों का प्रबल होना स्वभाविक है। वहां गुरु का स्थान द्रोणाचार्य लेते हैं। तब शिक्षा समाज के राजनायिक वर्ग को मिलता है। लेकिन समाज के सामान्य वर्ग को वो शिक्षा नहीं मिल पाती जो राजधर्म में रहते हुए विदुर देते हैं। अगर गुरु द्रोणाचार्य थे गुरु कृपाचार्य थे और गुरु विदुर महाराज भी थे जिन्होनें समाज को सही दिशा देने का कार्य किया तो संघर्ष क्यों हुआ निश्चित गुरु की सोच सकूं चित हुई जिससे समाज मे न्यास नही स्थायी न हो सके। गुरु ज्ञान कैसे देता है? जब सूर्य के ताप से संपूर्ण पृथ्वी तृप्त हो जाती है तब पृथ्वी की शीतलता देने के लिए वर्षा आती है और प्रकृति में नए-नए जीव, नए-नए पेड़ पौधों को जीवन मिलता है मानवता भी शांत होती है वही कार्य गुरु का है। जब उस तृप्त विचारों में गुरु ज्ञान आता है तब वह ईश्वर की ओर जाता है। वह ईश्वर को पहचान कर अपने आचरण को निर्धारित करता है और वह समाज को दिशा देने वाला होता है। जीवन में शीतलता के साथ-साथ ताप भी जरूरी है। क्योंकि समभाव से जीवन चलता है। अति का भला ना बोलना अतिकी भली न चूप। इस तरह किसी चीज की अधिकता से आसुरी एवं दैवीय प्रवृत्ति बनती है। जो माध्यम होता है वह मानव और मानवता को लेकर चलता है। चतुर्मास में किसान खेती में, विद्यार्थी विद्याध्यन में और गुरु आत्मचिंतन में लगता है इसलिए कहा गया वर्षा काल में गुरु के भ्रमण पर वर्षा रोक लगाती है ऐसी स्थिति में वह सुरक्षित जगह आत्ममंथन करता है। उससे जो नवनीत प्राप्त होता है उसे वह शिष्य को देता है। इसीलिए गुरु पूर्णिमा से गुरु आत्मकेन्द्रित हो ज्ञान का मंथन करता है। और समाज में नैतिकता देकर सामाजिक व्यवस्था सुदृढ़ करता है। जब भारतीय व्यवस्था को चार वर्गों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र में बांटा गया तो कर्म के आधार पर था परन्तु बाद में इसे लोगों ने जन्मना बना दिया। जो उचित नहीं है। आज भी अगर हम अपने ऋषियों की धरोहर का अध्ययन करें तो हम गुरु को और अपने समाज को अपने को समझ पायेंगे। इन चार वर्गों को चार आश्रमों में स्थापित किया गया विद्याध्ययन, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ, सन्यास आश्रम। विद्याध्ययन के अवधि में मनुष्य जो अध्ययन करता है अपनी उसी योग्यता के अनुसार गृहस्थ आश्रम में अपने कार्यों के द्वारा आजीविका से समाज के सभी वर्गो के लिए कमाता है, वानप्रस्थ के पश्चात सन्यास में वो आत्मचिन्तन, विश्लेषण करता है। गुरु परम्परा में राजनैतिक पहलू देखें तो जब गुरु वृहस्पति देवताओं को नैतिकता पर, सन्मार्ग पर चलने के लिए बल देते हैं तो वो सामन्जस्य करते हैं सम व्यवस्था स्थापित करने के लिए समान उन्नत करने के लिए। लेकिन जब गुरु शुक्राचार्य असुरों का गुरु होकर उग्र होकर अधिकार

छीनने की बात करते हैं तो वहां अव्यवस्था को स्थान मिलता है। ऋषियों की परम्परा में जब महाभारत में द्रोणाचार्य गुरु बनते है राजसभा में उनका सम्मान राजा की तरह ही है। द्रोणाचार्य पांडवों और कौरवों का शस्त्र एवं शास्त्र दोनों की समान शिक्षा देते हैं। लेकिन जो शिक्षा की अभिलाषा रखने वाला है अपने लिए गुरु खोज लेता है जैसा कि एकलव्य ने किया।[3] अपने राजधर्म का निर्वहन करते हुए गुरु द्रोणाचार्य ने एकलव्य का अंगूठा गुरु दक्षिणा में भाग लिया वहीं अपने प्रति किए गए अपमान का बदला लेने के लिए जब उन्होंने राजा द्रुपद से संघर्ष करने के लिए अपने पुत्र अश्वत्थामा को दूध पिलाने के लिए गाय मांगी राजा ने मित्र को गाय नहीं दिया उसके बदले में वह विकराल युद्ध महाभारत जैसा हुआ। गुरुधर्म था दोनों को शान्त करना लेकिन जब कभी गुरु भ्रमित होता है तब वह संघर्ष का रास्ता खोजता है। रामचरित मानस काल में एक ओर वशिष्ठ है तो एक तरफ विश्वामित्र हैं। वशिष्ठ को राजगुरु का दर्जा मिला, विश्वामित्र ने जंगल में जाकर तपस्या के दम पर अपने को निखारा और वन में विश्वामित्र ने गुरु धर्म का निर्वहन करते हुए राजा दशरथ के पुत्र राम लक्ष्मण को ले जाकर सामाजिक व्यवस्था का ज्ञान दिया उन्हें दिखाया समाज में किस तरह आसुरी प्रवृत्ति बढ़ रही है जिसे नियंत्रित करवाना दूसरी ओर उन्हें सभी शस्त्रों एवं शास्त्रों का ज्ञान देकर समाज से बुरी प्रवृत्तियों से निपटने के लिए तैयार करना उत्तम योग्य राजा तैयार करना, स्वत धर्म का अनुसरण किया। राजधर्म के माध्यम से गुरु वशिष्ठने कर्त्तव्य का निर्वहन किया तो दूसरी ओर उचित कर्त्तव्यों द्वारा गुरु विश्वामित्र ने भी अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन किया। इससे राम राज्य का निर्माण हुआ जहां कहा गया कि दैहिक दैविक भौतिकता रामराज्य कबहूं नही व्यापा, ऋषियों की परम्परा में प्रयागराज में भारद्वाज ऋषि के तपस्या और योग को भुलाया नहीं जा सकता। इस परम्परा में महिला ऋषि भी हुई जिनमें गार्गी, मैत्रेयी,अरून्धती का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। अगर इसी क्रम में वर्तमान में देखा जाय तो जगतगुरु द्वारा भारत में शान्ति की स्थापना के लिए भारत के चारों कोनों पर चार पीठ और चारों में जगद्गुरु पद स्थापित किया गया इसीलिए भारत को धर्म गुरु कहा गया है इसीलिए कि धर्म कहता है अपने कर्त्तव्य को करो। धर्म कहता सब समान है। धर्म कहता है स्त्री पुरुष में भेद नहीं है। धर्म कहता है पृथ्वी को माता और आकाश को पिता माने इसीलिए हम सभी भाई बहन हैं। विवेकानन्द जी ने जब अमेरिका में जाकर 'भाइयों बहनों' कहकर स्पष्ट किया कि भारत मे सम्बन्धों पर बल दिया गया है। भारत की संस्कृति सभ्यता आज भी श्रेष्ठ है जिसका अनुपालन विश्व के लोग कर रहे हैं। और राजतंत्र से जब प्रजातंत्र की ओर भारत अग्रसर हुआ तो विश्व का सबसे बड़ा जनतांत्रिक देश बनाजो अपने धर्म और परम्परा है ये बात और है कि आज धर्म के नाम पर संघर्ष दिखता है। परन्तु वह पंथ के नाम पर संघर्ष है। धर्म कहता है श्रेष्ठ कर्म ही धर्म है। उसका पाठ गुरु पढ़ायेगा सभी धर्म श्रेष्ठ हैं और उसका ज्ञान देने वाले सभी गुरु श्रेष्ठ हैं। उन गुरुओं की शरण में जाकर हम किसी भी देश की सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था को मजबूती दे सकते हैं। कौटिल्य (चाणक्य) की बात करे तो महान राजनैतिक चिन्तक लेकिन जब धर्म की बात करते हैं तो बताते हैं राजधर्म कैसे धर्मानुकूल चलेगा जब वह कहता है राजा कर तो ले सकता है[5] लेकिन उतना ही ले जिससे राजकार्य चल सके जनता का शोषण न हो। छठांश कर के रूप में ले क्योंकि यह धर्म है उसके बाद प्रजा का शोषण होगा। जब वो कहता है कि देश में आन्तरिक भाग में शान्ति हो सब धर्मानुकूल काम करें तब वो देश की व्यवस्था की भी बात करता है। अगर कहता है राजा अन्यायी आतताई, अत्याचारी है तो उसे हटाया जा सकता है वही राज बने, जो जनहित में कार्य करे। इसी तरह से आधुनिक विचारकों में गांधी जी ने कहा 'धर्म वो अफीम है जिसे चटा दो जनता शान्त रहे।' अफीम धर्म क्यों हैं क्योंकि धर्म मन को शान्त करता है और व्यक्ति सन्मार्ग पर चलता है। इस तरह से

व्यक्ति को धर्म का मर्म बताकर राजनैतिक व्यवस्था को मजबूती देने का काम गुरु करता है। यह बात अलग है कि यदि गुरु का विकास नहीं होगा तो वह समाज में क्या दिशा देगा? राज्य को किस दिशा में ले जाएगा? कर्मयोगी हो या धर्मयोगी जरूरी है कि समाज को मजबूती देते हुए राज्य को सर्वोत्तम पराकाष्ठा पर पहुंचाए। कबीरदास जी ने कहा- सब धरती कागज करू लेखन ते वन राय, सात समुद्र को मसि करू गुरु गुन लिखा न जाय। जो सच्चा गुरु है उसके बारे में लिखने के लिए शब्द, कागज, स्याही सब कम है क्योंकि वह परमात्मा से साक्षात्कार कराता है जिसने संपूर्ण सृष्टि की रचना की है, जो सृष्टि का रचयिता है। और ईश्वर ही राजनैतिक चक्र चला रहा है। ऐसे शासक के पास वह दायित्व है जिससे सम्पूर्ण व्यवस्था चल सके। रवीन्द्र नाथ टैगोर जिनको 'गुरु'की संज्ञा दी गयी है उन्होंने गुरुओं की व्याख्या करते हुए कहा ''गुरु योद्धा है, सर्वशक्तिमान है, क्योंकि सामने वाले व्यक्ति के अर्न्तमन में हुये उस बीज को निकाल कर मजबूती दे सकता है जो उसे सन्मार्ग पर ले चले सन्मार्ग चाहे वो सामाजिक व्यवस्था पर जाए राजनैतिक व्यवस्था मे जाए, उसका मार्ग प्रशस्त करता है।'' भारत के गुरुओं की परम्परा, जो श्रेष्ठ परम्परा है, अरविन्दो बनर्जी का आध्यात्म को पहचानने से अपने आप सब कुछ नियमित हो जाएगा। हमें भारतीय उन सभी गुरुओं के प्रति नतमस्तक होना चाहिए अपने विशेष गुरु जिनसे वह सीखता वह एक होता है लेकिन जिनका समाज की रचना नियामकता और संचालन मे सहयोग हैजीवन मे हरपल बहुत से लोग मिलते है जो हमे जीवन की सीख देते है वे सब हमें संवारते है वह सब समाज को बनाते हैं हमे उन सबके प्रति नतमस्तक होने का एक दिन निर्धारित है वह है गुरु पूर्णिमा।[6] हम उनके प्रति नतमस्तक होकर आस्था प्रकट करते हैं गुरु के ज्ञान के प्रति, त्याग के प्रति, समर्पण के प्रति, योग्यता के प्रति और गुरु के उन कर्त्तव्यों के प्रति जिससे वह व्यक्ति, समाज और राष्ट्र बनाता है। राज्य चलाने वाले को सही दिशा देता है। अतः सभी गुरुओं को नमन...।

सन्दर्भ :-

1. कबीर के दोहे
2. महाभारत - गीता प्रेस
3. रामचरितमानस - गीता प्रेस
4. श्रीमद्भागवतगीता - गीता प्रेस
5. चाणक्य का अर्थशास्त्र
6. गुरुपूर्णिमा 2021 - टाइम्स ऑफ इण्डिया

काशी के संस्कृति में आध्यात्म व संगीत

डॉ. प्रेम किशोर मिश्र

सहायक प्रवक्ता, वाद्य विभाग, संगीत एवं
मंच कला संकाय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सारांश

वाराणसी के विभिन्न नाम है, परन्तु बनारस को 'काशी' के नाम से पूरे विश्व में प्रसिद्धता प्राप्त होने का मुख्य कारण यही है कि 'काशी विश्वनाथ' जो समस्त प्राणियों के मुक्तिदाता है और बाबा विश्वनाथ का परिवार सहित इस पावन भूमि पर निवास माना जाता है। काशी वासियों का मानना है कि, जीवनम्, मरणम्, मंगलम् (यहाँ जन्म लेना, मृत्यु को प्राप्त होना सभी मंगलमय है।) काशी की होली विश्वप्रसिद्ध मानी जाती है। कहा जाता है कि शिवशम्भू स्वयं मणिकर्णिका में चिता के भस्म से होली खेलते है और उन्हें मोक्षप्रदान करते है। अनेक सांगितिक पदो के माध्यम से शिव के होली खेलने का वर्णन मिलता है जैसे- 'खेले मसाने में होली दिगम्बर, चिता भस्म भरी झोरी दिगम्बर'', इसी प्रकार 'अंग में लगाते सदा से चिता के भस्म फिर भी शिव परम पवित्र कहलाते है। मोक्षदायिनी काशी में अनेक भजनों के माध्यम से शिव की महिमा का गुणगान किया जाता है। यहाँ शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, लोक एवं अन्य सभी विधाओं के पदों में सांगितिक दृष्टि से अन्य जगहों की अपेक्षा काशी के संगीत को सर्वोत्कृष्ठ माना गया है यहाँ के लोगों की संस्कृति में ही संगीत है और संगीत से ही आध्यात्मिकता का प्रणय होता है, जिसकी डोर सीधे आत्मा को परमात्मा से जोड़ती है प्रत्येक संगीतज्ञ भले ही अपना व्यक्तिगत जीवन जैसे भी जीते हो, उन्हें संगीत से जुड़ने और जनमानस को रससिक्त करने के लिए कुछ पलों के लिए ही सही आध्यात्मिक होना ही पड़ता है तभी संगीत के प्रस्तुतिकरण में शुद्धता एवं निश्च्छलता के साथ सांगितिक रस की सुखद आनन्दानुभूति प्राप्त कर सकता है अन्यथा नहीं।

मुख्य शब्द

महात्मा, साधू, औलिया, फकीर, व्यंग्यकार साहित्यकार

काशी एक ऐसी पावन भूमि है जो प्राचीन काल से ही संगीत नगरी के रूप में विश्वविख्यात हैं। काशी को वाराणसी, बनारस और कुछ लोग आनन्दवन के नाम से भी पुकारते है। काशी को बाबा विश्वनाथ की नगरी भी कहा जाता है। पूरे भारतवर्ष में कुछ ही ऐसे गिने चुने नगर है जो संस्कृति विशेष, वस्तु विशेष एवं व्यक्ति विशेष के कारण सदियों से एक अलग पहचान बनाए हुए है जिसमें काशी को इन सबके 'मुकुट' के रूप में होने का गौरव प्राप्त है।

महाभारत के अनुशासन पर्व के अनुसार काशी राज दिवोदास के पिता हर्यश्व उनके पुत्र सुदेव हुए, तत्पश्चात् दिवोदास ने काशी के राज्य सिहांसन को सुशोभित किया राजा दिवोदास ने ही गोमती नदी के उत्तरी तट पर सभी वर्णों से युक्त वाराणसी

नगर की स्थापना की। इससे यही स्पष्ट होता है कि प्राचीनकाल में काशी एक राज्य का नाम था और प्राचीन विश्वास के अनुसार दिवोदास वाराणसी नगर का संस्थापक था। दिवोदास के पुत्र प्रतर्दन ने दुर्दम से नष्ट भष्ट अपहृत काशी राज्य को पुनः प्राप्त किया। प्रतर्दन के पुत्र अलर्क ने पुनः काशी राज्य को सुसंगठित कर वाराणसी की नवी रखी। हरिवंश पुराण अध्याय (1,29) से ज्ञात होता है वाराणसी कई बार नष्ट-भष्ट हुआ तत्पश्चात् अनेक कुलों ने काशी के राज्य सिंहासन पर अपनी सत्ता स्थापित की।

वैदिक संहिता, ब्राह्मण एवं उपनिषद् में काशीराज दिवोदास का वर्णन प्राप्त होता है इन्होंने इन्द्र की आज्ञा से इस नगर की स्थापना कर वाराणसी नामकरण प्रदान किया।

ऐतिहासिक क्रमबद्धता न होने के कारण प्रमाणिकता के अभाववस मान लिया जाता है कि 16वीं शती के पूर्व के इतिहास का अवलोकन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि कहीं न कहीं काशी में संगीत सर्वदा से ही विद्यमान रहा है। काशी नगरी से यह कला कही भी विलुप्त नहीं हुई है इसकी संस्कृति धर्म, विचार, कला, दर्शन, गुण, चरित्र, एवं संगीत परम्परा का मनोमुग्धकारी तथा अजेय इतिहास क्षण-भर में मनुष्य के मन मष्तिष्क पर अंकित हो उठता है।

काशी नगरी में संगीत की एक छोटी कणी से लड़ी बनकर बड़ी परम्परागत श्रृखंला के रूप में, प्राचीन काल से, अविछिन्न रूप से चलती आ रही है। यहाँ की सुबह (प्रभात) ब्रह्ममुहूर्त से शुरू होकर, बजती हुई शहनाई की सुमधुर मंगल ध्वनि, मन्दिरों में देवालयों के निनादित घण्टे घडियाल, बृहद नगाड़े, एवं दक्षिणात्य मंदिरों में नागस्वरम्, मृदंगम् की संगीतमय स्वर लहरियों से होता है जो अतिपावन माँ गंगा की अविरल, निर्मल स्निग्ध धवल-धारा जो कल-कल करती निनादित होती हुई एवं ब्रह्ममुहूर्त के मन्द-मन्द मलयसमीर के झोकों के साथ अठखेलियाँ करती हुई काशी के नगर वासियों को सुखद निद्रा से जगाकर प्रतिदिन अपने कार्य को सुचारू रूप से करने को प्रेरित करती है।

काशी नगरी की महत्ता को निरन्तर बढ़ाते रहने का उत्कृष्ट कार्य यहाँ के वयोवृद्ध गुणी पंण्डित, महात्मा, साधु, फकीर, सन्त, औलिया, साधक, अवधूत, लेखक, कवी, नाटककार, चित्रकार, व्यंग्यकार, साहित्यकार, एवं गुणग्राहक राजा, रईसों एवं संगीतज्ञों की पीढ़ी का महत्वपूर्ण योगदान चिरस्मरणीय रहा है जिनके प्रकाण्ड पाण्डित्य-प्रकाश से समय-समय पर पूरा विश्व प्रकाशमय होता रहा है। यहि कारण रहा है की प्रत्येक युग में जन्म लेने वाले अनेकों धर्म सम्प्रदाय, साहित्य कला, दर्शन, राजनीति, आयुर्वेद एवं संगीत के दिग्गजों आचार्यों एवं प्रवर्तकों को भी यहाँ की पुण्यभूमि के मिट्टी को मस्तक पर लगाकर इस नगरी को शत्-शत् नमन करना पड़ा है। कितने ही विद्वानों की गर्वोक्तियाँ यहाँ आकर चूर-चूर हुई है और विश्व-विश्रुत विद्वान भी यहाँ आकर नतमस्तक हुए है।

प्रत्येक क्षेत्र वह चाहे धर्म से सम्बन्धित हो, चाहे साहित्य से, चाहे राष्ट्रीयता से या संगीत से ही क्यों न रहा हो, अनेक धर्म-सम्प्रदाय यहाँ फले-फूले और विकसित होकर सम्पूर्ण जनमानस की विचारधारा को पल्लवित एवं पुष्पित किया है।[1]

विद्वानों के मतानुसार 'स' का अर्थ हुआ उत्तम तथा 'गीत' का अर्थ हुआ गायन, अर्थात् उत्तम गायन ही संगीत है जिसे संगीतज्ञ स्वर तथा लय के माध्यम से अपने मनोभावों को जन-जन के समक्ष प्रस्तुत करते है।

वास्तव में सूक्ष्म दृष्टि डालने पर यह ज्ञात होता है कि 'ओऽम्' शब्द संगीत के जन्म का साधन है ओऽम् जो तीन अक्षरों की संधि से अवतरित हुआ है। ओऽम् के तीन अक्षर अ+उ+म् तीन प्रमुख शक्तियों के द्योतक है। आकार+उकार+मकार = ब्रह्म+विष्णु+महेश (उत्पत्ति करने वाला, पालन करने वाला, संहार करने वाला) शक्तियों का पुंज ईश्वर है ग्रंथों में भी कहा गया है। संगीत वेदों से उत्पन्न माना गया है ओऽम् वेद का बीज मंत्र है इसी बीज मंत्र से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है।[2]

संगीत में उपयोग होने वाले दिव्य नाद का आश्रय यह मानव शरीर ही सर्वप्रथम है संगीत शास्त्र में कंण्ठ को एक वाद्य के रूप में तथा मानव शरीर को वीणा के रूप में वर्णित किया गया है तत्पश्चात् धातु, काष्ठ एवं चर्म आदि की गणना की गयी है। संगीत के विभिन्न अंगों यथा ग्राम, विभाग, स्वर, वर्ण, अलंकार इत्यादि का अभ्युदय मानव शरीर से ही 'नाद' प्रस्फुटन के बाद होता है।

अनाहत नाद ही आहत नाद की उत्पत्ति का कारण है कुछ धार्मिक सन्तों एवं तत्ववेंत्ताओं ने इसी अनाहत नाद (अव्यक्त शब्द) को अनहदनाद, अनहदवाणी, अनहदशबद, अनहदधुनि आदि शब्दों में व्यक्त किया है।[3]

मन को एकाग्रचित करना, चित्तवृत्ति का निरोध करना और उसके द्वारा ईष्ट के स्वरूप का तैल धारावत ध्यान करना भक्त का मुख्य लक्ष्य होता है। संम्भवतः इस रहस्य को जानकर ही हमारे सांगितिक सन्तों ने इसे साधन के रूप में अपनाया होगा। इन संतो में कुछ राग कुछ तालाधारित पदों का गान किया करते थे तो कुछ मात्र हरीनाम के संकीर्तन में ही लीन रहते थे। यहाँ संकीर्तन का तात्पर्य सम्यक् रूप से संगीतमय भगवान का गुणगान करना है क्योंकि कीर्तन में व्याख्यान, लाक्षणिक गान-अथार्त स्तुति और स्वर लय युक्त गायन तीनों का समावेश होता है, इसीलिए स्वर-लय संगीत के दो पहलू हैं।[4]

'यदि लय न होती तो स्वर का कोई मूल्य नहीं होता, स्वर नहीं होता केवल लय ही होती तो उसका भी कोई अर्थ नहीं होता। यदि हृदय में प्रेरणा के हिलकोरे न लगते, अनाहतनाद उत्पन्न न होता, तो न लय होती न स्वर ही होता, और न ही बाहरी संगीत का अस्तित्व होता। यह ईश्वर की सृष्टि है? नाद भी ईश्वर की सृष्टि है, अन्दर से उठी तरंगो से लय और स्वर का सामंजस्य बनता है।'

प्रकृति ही नादमय है। पक्षीयों के बोलने में लय है। पत्तियों के हिलने में लय है, फूलों के खिलने में लय है, नदियों के बहाव में लय है, झरनों के पानी के बहने में लय है ये सभी हमें नाद का अनुभव कराते हैं। यही संगीत मनुष्य के कोमल भावनाओं को उत्पन्न कर मानवीय जीवन की ओर प्रेरित करता है। संगीत ही शान्ति की सनातन साधना है।[5]

परिवर्तन प्रकृति का साश्वत नियम है जिसके फलस्वरुप समय-समय पर हुए अनेक धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक परिवर्तनो से संगीत कला भी परिवतह्नत होती रही और विभिन्न मान्यताएँ टूटी नवीन शैलियों का जन्म हुआ।

प्राचीन ग्रंथों के अध्यन से ज्ञात होता है कि बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी तक देश में छंन्द-प्रबन्ध, स्तुति, जाति-गायन शैली ही प्रचलित था। उस समय इस गायन शैलीयों को गाने वाले महान अद्वितीय, प्रतिभाशाली कलाकार के रुप में शीर्षस्थ नाम गोपाल नायक का लिया जाता था। जो देवगिरिनरेश, रामदेव यादव के दरबारी कलावन्त थे। सन् 1296 ई. में अलाउद्दीन खिलजी के दरबारी विशिष्ट कवि ईरानी एवं भारतीय संगीत के ज्ञाता अमीर खुसरों ने गोपाल नायक के छन्द प्रबन्ध की अद्भुत गायकी को बादशाह के दरबार में चोरी से सुनकर आत्मसात कर लिया तत्पश्चात् अमीर खुसरों ने नायक गोपाल की परम्परागत भारतीय गायन शैली को लोकरंजन स्वरुप प्रदान कर, अपने बहुमुखी प्रतिभा का योगदान देकर एक नवीन अध्याय का सृजन किया। और संगीत के लिए प्रयुक्त सहित्य में लोक भाषा का प्रयोग कर उसे जनप्रिय बनाया।

ख्याल गायकी को अमीर खुसरो के ही शासनकाल से ही सभी विद्वानों ने अपने-अपने तरीके से इसका मार्ग प्रशस्त करने के प्रयास में तत्पर रहे परन्तु कुछ खास प्रसिद्धि न मिल सकी तत्पश्चात् मुहम्मद शाहरंगीले के शासनकाल में नियामत खाँ (सदारंग) के द्वारा मुख्य ख्याल गायकी का प्रादुभाव (जन्म) हुआ और आज भी ख्याल गायन शैली ने स्वर, ताल, पद के अनुराग से हमारे हृदय के तारों को झंकृत कर देती है। आज यह गायन शैली चर्मोत्कर्ष पर जन जन में व्याप्त है।[6]

स्वर तथा लय ये दोनों संगीत कला के आधारस्तम्भ माने जाते है जिनके सहारे संगीत की पूरी इमारत का निर्माण किया जाता है। सूक्ष्म दृष्टि डालने पर यह तथ्य प्रकट होता है कि स्वर एवं लय

इन्ही दो के बीच भिन्न-भिन्न शैली से एक विभाजन रेखा खींचकर सभी घरानों ने अपनी-अपनी मौलिकता के आधार पर स्वतंत्र एवं शाश्वत अस्तित्व को बनाए रखा है। सभी घरानों की अपनी अलग-अलग विशेषताएँ व मान्यतांए है किसी ने स्वर को तो किसी ने लय को प्राथमिकता दी किसी घरानों ने स्वर लय दोनों को ही प्राथमिकता दी।

सारांश यह है कि कण्ठ संगीत के शारीरिक अंग-उपागों खटका, मुर्की, स्वर संयोजन, अलाप, गमक, सूत, मींड, बंदिशों, में प्रचलित, अप्रचलित, मिश्रित, अर्धमिश्रित, रागों का प्रभावशाली प्रस्तुतिकरण में प्रवीणता तानों के विभिन्न प्रकारों पर अधिकार बंदिशों के बोलों मुखड़ो के साथ नये-नये तरीके से सम पर आने का एक मनोमुग्धकारी ढंग इत्यादि सभी घरानों को एक दूसरे से पृथक करता है। विभिन्न अवयवों पर प्रवीणता अपनाकर प्रत्येक घरानों ने अपनी-अपनी एक अलग पहचान बनायी है।

उपर्युक्त सभी घरानों में 'बनारस घराना' मात्र अपवाद स्वरूप है। यहाँ छन्द-प्रबन्ध, ध्रुपद, धमार, होरी, विष्णुपद की प्राचीन गायकी के साथ-साथ विकसित ख्याल, टप-ख्याल, ठुमरी, दादरा, गजल, भजन तक की लोकप्रिय गायकी को साधिकार गाने में विशिष्टता प्राप्त कर उसे अपने में आत्मसात कर लिया। यही नहीं लोकसंगीत में रची चैती, होली, कजली, घाटो, बारहमासा आदि की लोकरंजन शैली को शास्त्रीयता की परिधि में प्रतिष्ठित कर लोकप्रिय बनाया।

टप ख्याल इसके जनक नेपाल दरबार के उत्कृष्ठ गायक उस्ताद इनायत हुसैन खा जी थे। टप ख्याल, टप्पा एवं ख्याल का एक सुन्दर एवं मनमोहक मिश्रणयुक्त एक नीवन गायनशैली रही है। सभी गायन शैलीयों में से ठुमरी को बनारस के लोगों ने अपने हृदय के सबसे उच्चतम शिखर पर प्रतिष्ठायमान रखा है।

ठुमरी लखनऊ से बनारस तक की याषा कर यहाँ की मिट्टी में घुल-मिल गई और उसकी महक को सभी लोगों ने अपने में आत्मसात कर लिया। आज उसी ठुमरी को, बोल-बनाव की ठुमरी, पूरब अंग की ठुमरी के नाम से प्रसिद्धता प्राप्त है। ठुमरी को काशी का संगीतमय वातावरण, माँ गंगा की शान्त सौम्य धारा काशी के संगीतज्ञों तथा समस्त संगीत प्रेमियों का अटूट प्यार, इसे इतना भाया कि उसने लखनवी तहजीब की भारी भरकम दरबारी पोशाक चिकन, समीज, चूड़ीदार, पजामा, ओढ़नी को स्वतः छोड़ दिया, द्रुत लययुक्त चपलचाल की ठुमरी ने चंचलता का परित्याग कर लज्जाशील, शालीन नारी के उपयुक्त बनारसी रेशमी साड़ी के आवरण में अलंकृत होकर नये श्रृगांर द्वारा एक नवीन स्वरुप धारणकर धीर-गंम्भीर विंलम्बिल लय की आश्रित हुई।

काशी की सांगितिक याषा कर ठुमरी ऐसी बनी की सुनने वाले, पत्थर दिल को भी, मोम की तरह पिघला देने की क्षमता रखने लगी। काशी में यह विशेषता रही है कि यहाँ के जितने भी संगीतज्ञ, कलाकार रहे है, उन्होंने प्रत्येक विधा के निजि मौलिकता से उसे ओतप्रोत किया उसमें उचित सुधाकर नवीन स्वरुप में उसे ढ़ालकर सौन्दर्य में वृद्धि की और अपनी साधना से तराशकर जब उसे जन-मानस के समक्ष रखा तो उसे सुनकर लोग आत्मविस्मृत हो उठे। इसी प्रकार बनारस (काशी) ने सभी गायनशैलीयों को आत्मसात कर उसे अपना बना लिया।

काशी में शिवरात्रि को शिव जी और माता पार्वती का विवाह होता है।

एकादशी होली से पाँच दिन पहले मनाया जाता है। जिसमें शंकर भगवान माता पार्वती की विदाई करवा कर विश्वनाथ मंदिर में आते है। उस दिन को 'रंगभरी एकादशी' के नाम से जाना जाता है। उस दिन मंदिर में रंग-बिरंगे गुलाल उड़ाये जाते है। सारे लोग 'रंगभरी एकादशी' का आनन्द उठाते है। कलाकार बुलाए जाते है। भजन, होरी, कजरी, चैती से पूरा संगीतमय वातावरण बन जाता है। कलाकार बुलाये जाते है। इसी प्रकार रंगभरी एकादशी के पाँचवे दिन फगुआ खेला जाता है। होली के बाद काशी के सांस्कृतिक संगीत समरोह में सबसे प्रिय

समारोह 'बुढ़वा मंगल संगीत मेला' के नाम से विश्व भर में जाना जाता है।

शचीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय की पुस्तक 'काशीधाम' के अनुसार इस 'बुढ़वा मंगल संगीत मेला' के शुभारम्भ में काशी के शासक 'मीर रुस्तम अली' का उल्लेख है, जो मुगल शासन के प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किया गया था।

यह शासक मुस्लिम होने के बावजूद हिन्दुओं के सभी धार्मिक एवं सामाजिक उत्सवों में बड़े उत्साह, प्रसन्नता से सम्मिलित होता था साथ ही संगीत कला में भी उसे विशेष रुचि थी।

'बुढ़वा मंगल संगीत मेला' होली के बाद पहले मंगलवार को बड़ी ही धूम-धाम से मनाया जाता था। इसमें स्त्रीयों और बच्चों को नहीं सम्मिलित किया जाता था, केवल बड़े, युवा, प्रौढ़ व्यक्ति को ही सम्मिलित होने की अनुमति मिलती थी। इसीलिए इस मेले का नाम 'बुढ़वा मंगल' पड़ा। ऐसा लोगों का मानना है। हलवाई, पनवाड़ी, माली सभी अपनी-अपनी दुकान नाव के ऊपर ही लगाते थे और खाने-पीने की सुविधा भी नावों पर ही रहती थी।

विभिन्न आकार से सुसज्जित बजड़ों पर विभिन्न प्रकार के निशान होते थे, जिससे यह पता चलता था कि कौन-सा बजड़ा किस राजा अथवा रइस का है। लोग दूर-दूर से इस मेले में आते थे। बड़े-बड़े संगीतज्ञ, कलाकार, नृत्यकार अपनी कला के प्रदर्शन से इसमें चार चाँद लगा देते थे इस संगीत मेले में सर्वप्रथम जनरुचि एवं समयानुरूप राग का ख्याल का प्रस्तुतीकरण किया जाता था फिर होली के अन्त में चैती गायी जाती है।

होली के बाद गुलाब के पुष्प से सुसज्जित, गुलाब की सुगन्ध से मदहोश कर देने वाली गुलाबी वातावरण में 'गलाबबाड़ी' संगीत समारोह में चैती गायन के महफिल के आयोजन के लिए काशी के रइसों में होड़ लग जाया करती थी। 'गुलब बाड़ी' के संगीत का आनन्द लेन के लिए लोग गुलाबी पगड़ी, गुलाबी कुर्ते, धोती, चादर, दुपट्टे में लोग एक-दूसरे को अबीर गुलाल लगाते, कुमकुमा फेंकते हास-परिहास करते हुए संगीत का आनन्द लेते थे।

विश्व के अनेक नगर किन्हीं न किन्हीं नदियों के किनारे अवस्थित है, किन्तु बुढ़वा मंगल, गुलाब बाड़ी एवं ऋतु परिवर्तन से सम्बन्धित अनेक उल्लासमय उत्सवों के मनाने की अभिनव, मनमोहक परिकल्पना काशी में ही साकार हुई, जिसमें काशी के कलाकारों राजा, रईसो ने भरपूर सहयोग देकर वर्षों तक इस परम्परा को बनाये रक्खा।

विश्व के समस्त संगीत प्रेमीयों के मानसपटल पर अपनी भारतीय संगीत ने अमिट छाप छोड़ी है जिसमें सर्वदा से काशी के कलाकारों की एक अटूट श्रृंखला में संगीत का विशेष योगदान रहा है। जिनकी कला साधना के वैशिष्ट्य लोकप्रियता को किसी लेखनी के प्रमाण की आवश्यकता नही है उनकी विश्वविश्रुत ख्याति स्वयं ही इसका प्रमाण है।[8]

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कामेश्वरनाथ मिश्र, काशी की संगीत परम्परा (संगीत जगत को काशी का योगदान), प्रकाशक-भारत बुक सेन्टर (लखनऊ), प्रथम संस्करण 1997, पृ. सं - 1.
2. डॉ. सुमन, हिन्दुस्तानी गायन शैलियों निहित पदों का साहित्यिक अवलोकन (अलंकार एवं छन्द के विशेष संदर्भ में), नैतिक प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2013, पृ. सं.-12.
3. शर्मा, स्मृति, आत्मबोध के आयाम भारतीय संगीत में अनाहत नाद, लोकभारतीय प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2018, पृ. सं.-79.
4. (ऋतुराज कात्यायन) चौबे, डॉ. सत्येन्द्र कुमार, अनहद की झनकार, संगीत : आध्यात्मिक, साधना का सुगम मार्ग, प्रकाशक-लुमिनस् बुक्स, प्रथम संस्करण 2018, पृ. सं.-113.
5. शर्मा, स्मृति, आत्मबोध के आयाम भारतीय संगीत में अनाहत नाद, लोकभारतीय प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2018, पृ. सं.-79.
6. कामेश्वरनाथ मिश्र, काशी की संगीत परम्परा (संगीत जगत को काशी का योगदान), प्रकाशक-भारत बुक सेन्टर (लखनऊ), प्रथम संस्करण, 1997, पृ. सं. 62.

मिसिंग जनजाति की लोकसंस्कृति और समाज

डॉ. नुरजाहान रहमातुल्लाह

सहकारी अध्यापक, हिन्दी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी

शोध-सार

हमारे देश की एक अनोखी विशेषताएँ हैं भाषाई वैविध्यता,जो देश की आन्तरिक शक्ति को जोड़कर इसे मजबूत बनाती हैं। इस महान पुण्यभूमि का पूर्वोत्तरी भाग बहुत ही वैचित्र्यों के लिए धरती के संक्षिप्तम संस्करण के रूप माना जाता हैं। पूर्वोत्तर भारत बहु जनजातियों का मिलन स्थल हैं। यह सात बहनों के राज्य में सेरू अरूणाचल प्रदेश, नागालेण्ड, मणिपूर, मेधालय, मिजोराम, त्रिपूरा और असम हैं। यहाँ अनेक जनजातियों का निवास स्थल हैं।अनेक जनजातियों में से मिसिंग जनजाति असम की एक मुख्य जनजाति हैं। यह जनजाति धुमक्कड़ थी तथा अपनी सुविधानुसार स्थानों का परिवर्तन कर लेते हैं।विशेषतः वे नदी के तटों पर ही रहते हैं। इस जनजाति की अपनी भाषा,संस्कृति और लोक-साहित्य की धनी हैं। इनके लोक-साहित्य लोक जीवन की सहज भावाभिव्यक्ति ही हैं।मिसिंग जनजाति के लोग संगीत प्रिय और सुरीली हैं। अन्य जनजातियों की भाती मिसिंग लोक-साहित्य और लोक-गीतों में भी बहुमुखी विषयों का समावेश हैं।उनके लोकगीतों में लोकजीवन की वास्तविक भावनाओं को व्यक्त करते हैं। भाषा-साहित्य, रीति-रीवाज, पर्व-त्योहार, इतिहास-समाज, कला-संस्कृति आदि के आधार पर मिसिंग जनजाति की एक विशिष्ट पहचान हैं। यहाँ मिसिंग जनजाति का संक्षिप्त परिचय और मिसिंग जनजाति के लोक-संस्कृति, लोकगीतों का वर्गीकरण किया गया हैं।

बीज शब्द

मिसिंग, जनजाति, भाषा, साहित्य, लोकगीत

पूर्वोत्तर भारत सात बहनों का मिलन भूमि है। यहाँ बहु भाषा-भाषियों का प्रदेश है। यहाँ विभिन्न जनजातियों का सदियों से सहचर्य एवं सह अस्तित्व रहा है। इन जनजातियों में मिसिंग जनजाति एक अन्यतम। जनसंख्या के आधार पर मिसिंग जनजाति को दूसरे स्थान पर है। मिसिंग जनजाति के लोगों नदी उपत्यकाओं में निवास करते हैं। वे ब्रह्मपुत्र नदी या उससे निकलने वाले कई छोटी-बड़ी नदियों के किनारे पे अपना गाँव बसाते हैं। यह जनजाति के लोग असम के अतिरिक्त अरुणाचल प्रदेश के कुछ हिस्सों में रहते हैं। यह लोग ब्रह्मपुत्र नदी या उसके उपनदियों के किनारे सदियो से जैसे-धेमाजी, लखीमपुर, जुनाई, डिब्रूगढ़, सोनारीघाट, दिसांमुख, माजुलि, लोहितमुख, टेकेलिफुटा, शिवसागर, जोरहाट, गोलाघाट आदियों में उनका निवास स्थल है। मिसिंग जनजाति के लोग साधारणतः नदी के तट पर इसीलिए निवास करते हैं, ताकि कृषि के लिए उपजाऊ भूमि, विभिन्न प्राकृतिक सुविधाएँ और नदी से यातायत की सुविधा मिले।

मिसिंग शब्द की व्युत्पत्ति 'मि ''और 'आसि" दो शब्दों से बना है। जिसका अर्थ है 'पानी'।

शायद इसीलिए यह जनजाति के लोग नदी के तट पर रहना पसंद करते हैं। जैसे पानी सबको को शान्ति प्रदान करते हैं। उसी तरह मिसिंग जनजाति के लोग शान्तिप्रिय होते हैं। मिसिंग जनजाति की अपनी भाषा, साहित्य और संस्कृति से समृद्धशील है। मिसिं लोकगीतों ने सैकड़ों वर्ष पूर्व से ही विशेष रूप से वैभवशाली रहा है। मिसिंग जनजाति के लोग कृषि जीवि है। नदी के तट पर उपजाऊ भूमि पर फसल करके वे अपना जीवन निर्वाह करते हैं। वे लोग खेतों में चांग घर बनाते हैं, जिसे 'तो-ड़ी" कहते हैं। चांग घर पर बैठकर बाँस से बने 'टोका' वाद्य यन्त्र को बजाकर फसलों को नष्ट करने वाले जानवर और पशु-पक्षिओं को भगाते हैं। मिसिंग जनजाति के समाज मूलतः सरल स्वतंत्र पद्धति से निवास करते हैं। गौत्र के अनुसार ही मिसिंग समाज के गाँवें गठित होता है। गाँव के विभिन्न काम-काज, जैसे - उत्सव, पर्व, विवाह, अन्यान काम-काज, असामाजिक कर्म का समाधान इत्यादि विचारों का माध्यम दो सामाजिक अनुष्ठानों के द्व ारा किया जाता है। जैसे- (1) युवक-युवतियों का अनुष्ठान मृमवृब-याः मे, (2) मिसिंग समाज का गाँव सभा या कोबांग

(1) मृमवृब-याः में -

मिसिंग जनजाति लोगों का सामुहिक पूजा, उत्सव आदि, जैसे - आलि-आये-लृंगा, 'पंराग' आदि समाज के विभिन्न मांगलिक काम-काज, जैसे - विवाह (मिदां), ददगां आदि के क्षेत्रों में मृमवृब-यां में कार्यवाही की भूमिका निभाते हैं। विभिन्न अनुष्ठानों का पदवी का निर्वाचन गणतान्त्रिक पद्धति से किया जाता है। जैसे - डेकाबरा, तिरीबरा, बारंग, चौतां आदि। कई कई गाँव में 'मिगम बरा' नामक एक पदवी भी देखा जाता है। डेकाबरा का काम होता है गाँव के युवकों को सामाजिक कार्य में सुपरिचालना करना, तिरीबरा का काम है युवतियों को निमन्त्रण करना, बारेगें का काम है कई कार्य में लोगों को एकत्रित करके रखना और चौता का काम है नियम भंग करने वाले को दण्डित करना। सभी मिल झुल कर अपना कर्म निभाते हैं।

(2) कौबांड -

मिसिंग गाँव एक एक गाँवबूढ़ा रहते हैं। गाँवबूढ़ा यागाम को गाँव के साधारण जनता गाँव के दक्षशिल, न्यान प्रिय, बुजुर्ग को कौबांड द्वारा निर्वाचन करके बनाया जाता है। वही गाँव के मुरब्बी माना जाता है। गाँव के कई भी न्याय-विचार करना हो, जमीन-जायदात का मामला हो, समाज अनीति या या अनियम मूलक काम हो त वे कौबांड में ही विचारर किया जाता है। गाँव के भलाई के लिए सिद्धान्त लेना हो तो वह गाँवबूढ़ा लेते हैं। हर एक गाँव में डेकाचांग की व्यवस्था है, जिसमे गाँव के युवक एक साथ होकर गाँव का रखवाले करते हैं। डेकाचांग को मूरांधर करते हैं। वर्तमान गाँव के युवक शिक्षित होने के कारण मूराधर की प्रथा नहीं रही। फिर भी उत्सव के समय या पःराग उत्सव के समय इसकी व्यवस्था किया जाता है।

मिसिंग समाज में विवाह संस्कार का महत्वपूर्ण स्थान है। मिसिंग भाषा में 'मिदाङ' को विवाह कहते हैं। साधारणतः मिदाङ चार प्रकार के होते हैं–

(1) दा-शे मिदाङ (परिवारर के सम्मति से विवाह)
(2) दूग्ला ला-नाम (प्रेम विवाह)
(3) सो-ला ला-नाम (अपहरित विवाह)
(4) कूमचू-द चला ला-नाम (सतकार और लोगों के आशीर्वाद लेकर करने वाले विवाह)

दा-शे मिदाङ में लड़का और लड़की के परियाल वाले रिश्ता तय करते हैं। लड़के वाले को लड़की पसन्द आने पर लड़की के हाथ मांगने के लिए लड़केवाले पान, सूपारी और एक रुपया एक टोकरी में भर कर देते हैं। इसे 'आकुन बिनाम' कहते हैं। मिसिंग लोगों के उपाधि के माध्यम से गोत्र पहचाना जाता है। मिसिंग समाज में एक गोत्र या उपाधि के लड़का लड़की में विवाह नहीं होता। रिश्ता तय

होने के बाद उनलोगों के रिवाज है घर के होनेवाले दामाद (माग्बो) को लड़की के घर में दो चार साल रहना पड़ता है जिसे 'माग्बों दुगानाम' कहते हैं। वर्तमान समय में इस रिवाज प्रचलन नहीं है। मिसिंग समाज में बहु विवाह का भी प्रचलन है। मिसिंग समाज में विधवा विवाह का भी प्रचलन है। मिसिंग समाज पितृसत्तात्मक है। मिसिंग विवाह-उत्सवों में मिदां-निःतम नामक गीतों का आज भी प्रचलन हैं। इन गीतों में सामाजिक प्रतिच्छवि की मात्राई दिखाई देती हैं-

"बाः ब बाः बा धगिरिएम लागिमांध बाः ब बाः बा बातिएम् लागिमाध सुः सांक अकुम्सोम का पो मालाङो गृयेमो ओ सि-सि।"[1]

अर्थात है पिताजी है, पिताजी, आपने जो दहेज में मेरे साथ बर्तन और लोटा दिया हैं यह सब मुझे नहीं चाहिए। बल्कि जिस घर में मेरे बचपन बिता और मैं बड़ी हुई, उस घर को छोड़कर कैसे जाऊँ?

मिसिंग जनजाति के लोग धार्मिक और सामाजिक दोनों दिशाओं को महत्व देते हुए उत्सव-पर्व मानाते हैं। मिसिंग समाज में भी असमीया समाज की तरह बिहु मनाया करते हैं। जैसे - बहाग बिहु, माघ बिहु, काति बिहु, आलि-आये-लिगाङ, पो-राग उत्सव आदि मिसिंग जनजाति की जातीय उत्सव के रूप में आलि-आये-लिगाङ और पो-राग है, जो कृषि पर आधारित है।

'पो-राग' मिसिंग जनजाति की कृषि, कर्म से सम्बन्धित उत्सव है। इस उत्सव को 'भो-पुन' भी कहते हैं। जिसका अर्थ है 'पृथ्वी'। यह उत्सव मुख्यतः युवक-युवतियों का त्यौहार है। यह उत्सव आश्विन-कार्तिक या माघ-फाग्लुन महीने में धान के कटाई के बाद बड़े धुम-धाम के साथ तीन से पाँच दिन तक मनाया जाता है। इस उत्सव को मनाने के लिए युवक-युवतियों का एक समिति गठन किया जाता है। इस समिति का काम होता है पो-राग उत्सव के लिए धन एकत्र करना और इस धन का उपयोग उत्सव पालन करने के लिए किया जाता है। पो-राग उत्सव एक सामूहिक उत्सव है, जिसमें अइ निःतम के गीत भी गाये जाते है–

"दोरमि सितुङा तोर मेक तोरृमाङों, कमबङ आपपुनो रोयिब रोयावो पहर को लाबरे ओ गारसापो आजि ङ्ल लाबरेऔ गारसाङ दुबनी।"[2]

उक्त पंक्ति का मतलब यह है कि 'दोरमि ' वृक्ष के किसलय और कम्बड़ के रंग-बिरंगे फुल वैशाख ऋतु आने पर पंख फैलाकर खिलते हैं। और हम सभी उन पुष्पों की सुगन्ध लेकर आनन्दित होते हैं।

पो-राग उत्सव में 'मूरंधर' होना चाहिए। इस उत्सव में बनाया हुआ मूरंधरर में गूमराग नृत्य करके मेहमानों को लाया जाता है। पो-राग के नियम के अनुसारक शादी सुधा लड़की, उसके पति, और बच्चों को अपने मायेक के गाँव में सम्मान के साथ बुलाया जाता है और भोजन आदि खिलाने का भी परम्परा है। पो-राग उत्सव में मिसिंग लोगों का विश्वास करते हैं छोटा सूअर को वाँस से मार मार के वध किया जाता है और उसके खून से मनुष्य का खून मानकर उनलोगों के देवता और पूर्व-पुरुष को भेट किया जाता है। वे मानते हैं इससे भेद को चढ़ाने से गाँव के खेत और गाँव के सुख शान्ति विराजमान होगा। यह पो-राग तीन दिनों तक पालन किया जाता है। बुधबार से आरम्भ करके गुरुबर तक मनाते है। इस उत्सव से मिलन का समन्वय मानते हैं। आस-परोस के गाँव के लोग, परिवार के सभी लोग, शादी कराई बुई लड़ई आदि का पूनमिलन होता है और मिल बाँट के भोजन का व्यवस्था कराया जाता है।

पो-राग उत्सव की तौयारी साल भर पहले से ही होती है। क्योंकि इसके लिए अधिक परिण ाम में धन, खाद्य-सामग्री, 'आपोङ' तथा मांस की जरूरत होती है। खाद्य-सामग्री का संग्रह वे गाँव के प्रत्येक घर से करते हैं। सब मिलकर नृत्य-गीतों के साथ मनोरंजन करते हुए यह उत्सव का पालन किया जाता है।

आलि-आये-लिगाङ भी मिसिंग जनजाति का महत्वपूर्ण उत्सव है। यह उत्सव भी कृषि से सम्बन्धित है। 'आलि' का अर्थ 'बीज', 'आये' का अर्थ 'फल' और 'लिगाङ' का अर्थ 'रोपण' करना।

इसीलिए इसे बीज रोपण करने का त्यौहार भी कहा जाता है। इस उत्सव में बहत मनोरंजन के साथ नृत्य-गीत, खान-पान का आयोजन कर बढ़े धुमधाम के साथ मनाया जाता है। और सभी बड़े उल्लास से नाचते गाते है -

"मीःब नम् काः तपो लृगाङइ सःमान व
मृमहर याःमेः पङ्नक कहो बारेयिदइया बोरकदला,
नक् को आमिग काः नाम दो नकको नापपाङ यिरनाम दो
उकको आसिन मोःनाम दीम अइया लुबि दागबतो।"[18]

अर्थात एक प्रेमी अपनी प्रेमिका को अपने दोस्तों के साथ धुमते हुए देखना चाहता हैं, क्योकि उसकी मुसकुराहट से अपने प्रेम का अंदाजा लगा सके।

आति-आये लिगाङ मिसिंग जनजाति का जातीय उत्सव है। यह फाग्लुन महीने के प्रभम बुधबार के दिन मनाया जाता है। इसीलिए बुधबार को मिसिंग जनजाति के लोग शुभ दिन मानते हैं। फाल्गुन महीने में आहो और बाउ धान का समय है। उस समय आहो धान का बीज फाल्गुन महीने की प्रथम बुधबार के दिन बो करं शुभ करते हैं। उसी दिनके रात को भोजन का आयोजन किया जाता है। इसके लिए विशेषकर 'पूराङ आपिन' का तैयार किया जाता है। जो मछली, सूअर का मांस आदि के साथ खाया जाता है। लिगाङ के रात युवक-युवती 'गुमराग चङमान' यानि बिहु मनाते हैं। यह बिहु नृत्य-गीत गा गा कर लिगाङ के चारों ओर घुम-घुम कर नाचते हैं। इसमें तरह तरह के नृत्य प्रदर्शित किया जाता है। इसमें गाँव के बुढ़े, युवक-युवतियों सभी भाग लेते हैं। युवक-युवती नृत्य-गीत गा गा के गाँव के प्रत्येक घर में जाने का नियम भी है। हर घर के गृहस्थ प्रणाम करके आशीर्वाद लेते हैं। बिहु मारने के विनिमय में जो धन एकत्र होते हैं, उसे गाँव के लोग भोजन का आयोजन करते हैं। इसे 'दपान-नृडपान' कहते हैं। पहले लिगाङ पालन करने से गाँव के लोग एक साथ शिकार करने जाया करते थें। वर्तमान वह नहीं रहें। पहले लिगाङ एक दिन ही मनाया जाता था। आजकल मिसिंग जनजातियाँ अलग-अलग जगह पे पाँच दिनों तक मनाते हैं। पहले दिन में मांगलिक कार्य करते। रात को नृत्य गीत गाते हैं। दूसरे दिन शाम को 'गूमराग चडमान' यानि बिहु नृत्य करते। गाँव के घर घर जाकर नृत्य कर धन इकठा करते। तीसरे दिन उसे धन से भोजन का आयोजन किया जाता है। चतुर्थ दिन 'यदनाम' यानि रोना पालन किया जाता है। पाँचवे दिन 'लिडलेन' या गेना भंग मानते हैं। उसी दिन लिगाङ कार्य को एक वर्ष के लिए विदाई समारोह सम्पन्न किया जाता है।

मिसिंग लोकगीतों में उनका जीवन पूर्णरूप से प्रतिफलित होता है। यह लोकगीत मौखिक है इसीलिए ये उनके जनजीवन पर ही आधारित है। जब ये लोग शिक्षा से कोसों दूर था तब से लेकर आज जो ये लोगों में शिक्षा हार बढ़ चुका है तब भी उनके लोकोगीतों की परम्परा चली जा रही है। कहा जाता है मिसिंग समाज में लोक-गीत का महत्वपूर्ण स्थान है। मिसिंग भाषा में लोक गीत को 'नि-तम' कहते हैं। मिसिंग लोक गीत अनेक प्रकार के होते हैं। यह लोक गीत अलग-अलग परिस्तितियों में गाया जाता है। कुछ गीतोंनाम इस प्रकार - लू-पो नि-तम, ओई नि-तम, मोमान, काबान, आबाङ इत्यादि। जैसे हर जनजाति की समाज अपने खूद के विचारों, विश्वासों परम्पराओं से परिचालित होता है, ठीक उसी प्रकार मिसिंग समाज का भी है। साल भर अलग अलग ऋतुओं के अनुसार उनके परम्परागत पूजा-अर्चना धार्मिक अनुष्ठान, बीमारी, सामाजिक अनुष्ठान, ईशोपासना करते हैं। उन अनुष्ठानों के साथ-साथ उनके लोक गीत गाने का भी परम्परा है। मिसिंग समाज में पुरोहित को 'मिबू' कहते हैं। ऐसे मान्यता है कि देवता आकर इन्हें मंत्र सिखा जाते हैं। ओर 'आबाड' गीत 'मिबू' द्वारा धार्मिक अनुष्ठानों में गाया जाता है। 'मिदाङ नि-तम' विवाह गाये जाने वाले गीत है। 'काबान' विरह या दुःख

में गाए गये गीत है इत्यादि। मिसिंग लोकगीतों में उनके जातीय जीवन का प्रतिबिम्ब देखने को मिलता है। वे प्रकृति के बीच में जीते हैं, उनके संस्कृति में भी प्रकृति का ही चित्रण झलकते हैं।

मिसिंग जनजाति की भाषा तिब्बत वर्मा जनगोष्ठी के अन्तर्गत आते हैं। उनकी अपनी भाषा है जिसे 'मिसिंग आगोम' कहते हैं। मिसिंग भाषा सामग्रीक रूप से एक जैसे लगने से वे अपने दल के अनुरूप अलग अलग है। जैसे - दोलू, पागर, आयान, मिरङ, चमूवा, चाङ्याङ, इत्यादि दल के अनुसार मिसिंग उपभाषाएँ है। वे लोग असमिया भाषा भी जानते हैं, परन्तु आपस में बातचीत करने के लिए मिसिंग भाषा ही प्रयोग करते हैं। मिसिंग भाषा का अपना लिपि नहीं है। वे लोग असमिया लिपि को ही व्यवहार करते हैं। मिसिंग लोगों का भात (चाँवल) को ही प्रधान मानते हैं। परम्परागत उत्सव में आलि-आये- लिगाङ में 'पूराङ आपिन' खाते हैं। मिसिंग लोगों में दो तरह के आपङ (मद) प्रचलन है। एक 'पडर आपङ' यानि राख के मद और 'नगिन आपङ' यानि सफेद मद। सूअर का मांस उनलोगों को ज्यादा पसन्द होते हैं।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि अन्य जनजातियों के समान मिसिंग जनजातीय समाज, संस्कृति, लोक-साहित्य में भी बहुमुखी का समावेश है। मिसिंग लोग धुमक्कड़ होने के कारण उनकी भाषा संस्कृति, रीति रिवाज में भिन्नता दिखाई देता है। देखा जाता है आज भी मिसिंग लोग परम्परागत अनुष्ठानों उत्सवों में परम्परागत पोशाक ही पहनते हैं। आज भी मिसिंग समाज में एकता बोधता दिखाई देता है। उनके सहजता में ही मनुष्यत्व अन्तनिहित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. डॉ. अनुशब्द, पूर्वोत्तर भारत का जनजातीय साहित्य, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, पृष्ठा न. 40
2. दले, मिसिंग समाज : संस्कृतिर समीक्षा, पृ. 50
3. वही, पृ. 52
4. शर्मा, शाशि, असमर लोक साहित्य, स्टूडेट्स स्टोर्स, पान बाजार, गुवाहाटी, 2003
5. दोले, बसन्त, मिसिंग समाज : संस्कृति समीक्षा, चन्द्र प्रकाश, गौहाटी, असम, 2008
6. मृगुमुनी (सं), मिसिंग संस्कृतिर आलेख, शराईघाट प्रिण्टार्स, गौहाटी, असम, 1989
7. शर्मा, श्रीराम, लोक-साहित्य, स्वरूप और मूल्यांकन
8. डॉ. अनुशब्द (सं), पूर्वोत्तर भारत का जनजातीय साहित्य, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
9. बरा, देवजीत, उत्तर पूर्वांचल जनगोष्ठीय लोक संस्कृति, एम.आर. पब्लिकेशन, गौहाटी

भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में छठ पूजा

डॉ. रीना सिंह

सहायक प्राध्यापक

आर. के. तलरेजा महाविद्यालय, महाराष्ट्र

सारांश

छठ पूजा एक ऐसा पर्व है जो भारतीयों के सिर्फ सभ्यता, धर्म एवं परंपरा से नहीं अपितु उनकी भावनाओं से भी जुड़ा है। छठ पूजा एक अत्यंत ही प्राचीन एवं पौराणिक लोक प्रसिद्ध पूजा है, जिसका वर्णन महाभारत एवं रामायण जैसे ग्रंथों में उल्लिखित है। जितनी प्राचीन यह पूजा पद्धति है, उतनी ही प्राचीन इस पूजा की ख्याति है एवं मानव जाति में बसी इसके प्रति प्रेम एवं श्रद्धा की भावना है। आधुनिकता के इस दौर में मानव जीवन एवं उनके रहन.सहन की प्रणाली, सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश एवं रीति रिवाज, प्रत्येक स्थान पर आधुनिकता के कारण बदलते स्वरूप को महसूस किया जा सकता है। इतने बदलाव के बीच यदि कुछ नहीं बदला तो वह है भारतीयों के मन में छठ पूजा के प्रति उनकी भावना एवं सच्ची श्रद्धा। चाहे भारतीय दुनिया के किसी भी कोने में क्यों ना रहें, लेकिन छठ पूजा के अवसर पर वह बड़े ही हर्षोल्लास के साथ अपनी मातृभूमि पर वापस लौट आते हैं। यदि किन्हीं कारणों से नहीं लौट पाए तो वे जहां होते हैं, वहीं पर ही अपने प्रिय जनों के साथ छठ पूजा को बड़े हर्ष उल्लास के साथ मनाते हैं।

अगामी भविष्य में आने वाली पीढ़ी छठ पूजा के प्रति जुड़े भावना को और इस परंपरागत पूजा विधि को आगे ले जा सके, छठ पूजा के प्रति निष्ठावान एवं कर्मबद्ध रहे इस दृष्टि से यह संशोधन नई पीढ़ी को छठ पूजा से जुड़ी कथाओं को, नियमों को समझने एवं इस पूजा को सुचारू रूप से बनाए रखने में उनका मार्गदर्शन करेगा।

संकेत शब्द

छठ पूजा की परंपरा, भारतीय समाज एवं संस्कृति, रीति - रिवाज, संस्कार, समाज पर प्रभाव।

छठ पूजा हिंदूओं द्वारा मनाया जाने वाला एक प्राचीन पर्व है, जो भगवान सूर्य को समर्पित है। छठी मैया को भगवान सूर्य की बहन के रूप में जाना जाता है। छठ माता की पूजा की उत्पत्ति महाभारत के काल से ही मानी जाती है। इसके प्रारंभ के संबंध में मान्यता है कि जब पांडवों से उनका राज्य छीन लिया गया था तब पांडवों ने अपनी पत्नी द्रौपदी समेत छठ मैया की पूजा की थी और अपना राज्य वापस लिया था। एक अन्य मान्यता के अनुसार अंग प्रदेश के राजा कर्ण सूर्य के पुत्र माने जाते थे। वे अपने पिता देवता सूर्य की उपासना करते थे। इसी के फलस्वरूप उन्हें राजा का पद मिला था और उनकी कीर्ति में भी वृद्धि हुई थी। तब से भी छठ का प्रादुर्भाव माना जाता है। महाभारतकालीन अंग प्रदेश आधुनिक बिहार में स्थित है। अतः बिहार का यह सबसे बड़ा पर्व है। छठ पूजा के दौरान भगवान सूर्य की प्रार्थना की जाती है। सूर्य ही शक्ति, संपन्नता, ऊर्जा एवं जीवन संचार के प्रतीक माने जाते हैं।

छठ शब्द षष्ठी का अपभ्रंश है। दिवाली के छठे दिन मनाए जाने के कारण इसका नामकरण छठ व्रत पड़ा। छठ मैया का यह पर्व विशेष रूप से बिहार, झारखंड, पूर्वी उत्तर प्रदेश और नेपाल के तेराई क्षेत्रों में मनाया जाता है। छठ इस पर्व को हिंदुओं के साथ साथ इस्लाम सहित अन्य धर्मावलंबी भी मनाते हुए देखे जाते हैं। प्रवासी भारतीयों के साथ यह पर्व धीरे-धीरे पूरे विश्व में प्रचलित हो गया है। इसकी अपनी अपनी पूजा विधि भी है। छठ पूजा में कोई मूर्ति पूजा नहीं होती। यह बड़ा ही कठिन त्यौहार है और चार दिनों की अवधि तक मनाया जाता है। जिनके घरों में यह व्रत किया जाता है उनके परिवार के पूरे सदस्यों के लिए लहसुन प्याज खाना वर्जित होता है। नदी से मिट्टी निकाल कर छठ माता का चौरा बनाया जाता है। उसी चौरे के पास पूजा का सारा सामान रखकर कलश में नारियल रखा जाता है और दीप जलाया जाता है।

छठ पूजा के पहले दिन लौकी भात होता है। दूसरे दिन दिनभर अन्न-जल त्यागकर शाम को खीर पूरी प्रसाद के रूप में ग्रहण किया जाता है, जिसे खरना कहते हैं। तीसरे दिन निराजल व्रत होता है। घाट पर जाकर नदी से मिट्टी निकाल कर छठ माता का चौरा बनाया जाता है। उसी चौरे के पास पूजा का सारा सामान रखकर कलश में नारियल रखा जाता है और दीप जलाया जाता है। पूजा के बाद नदी में खड़े होकर डूबते सूर्य को अर्घ्य चढ़ाया जाता है। चौथे और अंतिम दिन उगते हुए सूर्य को अर्घ्य चढ़ाया जाता है।

पूजा के समय जब स्त्रियां साज सज्जा के साथ और सारी सामग्री के साथ घाट पर जाती है तब सुमंगल गीत गाए जाते हैं। कुछ लोकगीत भी हैं जो काफी प्रचलित हैं और छठ पूजा के दौरान गाए जाते हैं। छठ पूजा के दौरान गाया जाने वाला सबसे लोकप्रिय लोकगीत है–

काँच ही बांस के बहंगिया
बहंगी लचकत जाय
बहंगी लचकत जाय

होई ना बलम जी कहरिया
बहंगी घाटे पहुंचाय
बहंगी घाटे पहुंचाय

काँच ही बांस के बहंगिया
बहंगी लचकत जाय
बहंगी लचकत जाय

बाट जे पूछेला बटोहिया
बहंगी केकरा के जाय
बहंगी केकरा के जाय

हुनवे जे बारी छठी मैया
बहंगी उनके के जाय
बहंगी उनके के जाय

काँच ही बांस के बहंगीया
बहंगी लचकत जाय
बहंगी लचकत जाय

होई ना देवर जी कहरिया
बहंगी घाटे पहुंचाई
बहंगी घाटे पहुंचाई

बाटे जे पुछेला बटोहिया
बहंगी केकरा के जाय
बहंगी केकरा के जाय

तू त आन्हर हौवे रे बटोहिया
बहंगी छठ मैया के जाय
बहंगी छठ मैया के जाय

हुनवे जे बारी छठी मैया
बहंगी उनके के जाय
बहंगी उनके के जाय

जब छठी माई का सामान पूरी तरह से तैयार होकर घाट पर भव्य तरीके से जाने लगता है, तब राह में चलने वाले राहगीर एक-दूसरे से प्रश्न पूछने लगते हैं कि आखिर यह क्या हो रहा है, ये लोग कहां पर जा रहे हैं? सबके मन में कई सवाल उठते हैं। तब वहीं उसी राह में बैठा एक इंसान सबको जवाब देता है कि शायद तुम अंधे हो गए हो।

तुम्हें दिख नहीं रहा है कि यह साज-सज्जा, यह भव्य सामग्री यह गन्ना, यह दौरा यह सब छठी मैया के पूजा आग्रह के लिए घाट पर जा रहा है। ऐसे ही अनेकों लोक गीत छठ माता के पूजा में गाए जाते हैं, जिसकी अपनी - अपनी विशेषताएं एवं अपने-अपने मायने हैं।

जब विश्व की सबसे प्राचीन सभ्यता की स्त्रियां अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ सज-धज कर अपने आँचल में फल ले कर निकलती हैं, तो लगता है जैसे संस्कृति स्वयं समय को चुनौती देती हुई कह रही हो, ''देखो! तुम्हारे असँख्य झंझावातों को सहन करने के बाद भी हमारा वैभव कम नहीं हुआ है। हम सनातन हैं, हम भारत हैं। हम तबसे हैं जबसे तुम हो, और जब तक तुम रहोगे तब तक हम भी रहेंगे।''

जब घुटने भर जल में खड़ी व्रती की सिपुलि में बालक सूर्य की किरणें उतरती हैं तो लगता है जैसे स्वयं सूर्य बालक बन कर उसकी गोद में खेलने उतरे हैं। स्त्री का सबसे भव्य, सबसे वैभवशाली स्वरूप वही है। इस धरा को ष्भारत माताष् कहने वाले बुजुर्ग के मन में स्त्री का यही स्वरूप रहा होगा। कभी ध्यान से देखिएगा छठ के दिन जल में खड़े हो कर सूर्य को अर्घ दे रही किसी स्त्री को, आपके मन में मोह नहीं श्रद्धा उपजेगी।

छठ वह प्राचीन पर्व है जिसमें राजा और रंक एक घाट पर माथा टेकते हैं, एक देवता को अर्घ देते हैं, और एक बराबर आशीर्वाद पाते हैं। धन और पद का लोभ मनुष्य को मनुष्य से दूर करता है, पर धर्म उन्हें साथ लाता है।

अपने धर्म के साथ होने का सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि आप अपने समस्त पुरुखों के आशीर्वाद की छाया में होते हैं। छठ के दिन नाक से माथे तक सिंदूर लगा कर घाट पर बैठी स्त्री अपनी हजारों पीढ़ी की अजिया सास ननिया सास की छाया में होती है, बल्कि वह उन्हीं का स्वरूप होती है। उसके दउरे में केवल फल नहीं होते, समूची प्रकृति होती है। वह एक सामान्य स्त्री सी नहीं, अन्नपूर्णा सी दिखाई देती है। ध्यान से देखियेगा तो आपको उनमें कौशल्या, मैत्रेयी, सीता, अनुसुइया, सावित्री, पद्मावती, लक्ष्मीबाई, भारत माता दिखेगी। इसमें कोई संदेह नहीं कि उनके आँचल में बंध कर ही यह सभ्यता अगले हजारों वर्षों का सफर तय कर लेगी। बड़ी खुशी होती है घाट जाती स्त्रियों को देख कर, खुशी होती है उनके लिए राह बुहारते पुरुषों को देख कर, खुशी होती है उत्साह से लबरेज बच्चों को देख करण्- सच पूछिए तो यह मेरी खुशी नहीं, मेरी मिट्टी, मेरे देश, मेरी सभ्यता की खुशी है।

छठ डूबते सूर्य की आराधना का पर्व है। डूबता सूर्य इतिहास होता है, और कोई भी सभ्यता तभी दीर्घजीवी होती है जब वह अपने इतिहास को पूजे। अपने इतिहास के समस्त योद्धाओं को पूजे और इतिहास में अपने विरुद्ध हुए सारे आक्रमणों और षड्यंत्रों को याद रखे।

छठ उगते सूर्य की आराधना का पर्व है। उगता सूर्य भविष्य होता है, और किसी भी सभ्यता के यशश्वी होने के लिए आवश्यक है कि वह अपने भविष्य को पूजा जैसी श्रद्धा और निष्ठा से सँवारे। हमारी आज की पीढ़ी यही करने में चूक रही है, पर उसे यह करना ही होगा। यही छठ व्रत का मूल भाव है।

संदर्भ ग्रंथ-

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, प्रभात प्रकाशन
2. भारतीय लोक साहित्य, श्याम परमार, राजकमल प्रकाशन
3. भारतीय कला एवं संस्कृति, नितिन सिंघानिया mcgraw-hill प्रकाशन
4. हिंदू संस्कृति, राकेश गुप्ता, डायमंड बुक्स प्रकाशन
5. प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, दामोदर धर्मानंद कोसांबी, अनुवाद- गुणाकर मुले, राजकमल प्रकाशन
6. भारतीय संस्कृति सभ्यता एवं परंपरा, डॉ रमेश पोखरियाल निशंक, डायमंड बुक्स पब्लिकेशन प्रकाशन
7. लोक साहित्य, डॉ राजेश श्रीवास्तव 'शम्वर', कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल
8. लोक साहित्य विज्ञान, डॉक्टर सत्येंद्र, शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी

मानव विकास की प्रक्रिया में संगीत की अहम भूमिका

डॉ. अंकिता चतुर्वेदी

असिस्टेंट प्रोफेसर, (गायन)
जगत तारन गर्ल्स पी.जी. कालेज, प्रयागराज

सारांश

वैदिक काल से ही संगीत मानव संस्कृति व सामाजिक परिवेश का अभिन्न अंग रहा है और शिक्षण प्रक्रिया के माध्यम से पुष्ट व प्रभावित होता आया है। प्राचीन काल से वर्तमान समय तक उत्तर भारत ने विविध भौगोलिक परिवर्तन एवं राजनैतिक उतार-चढ़ाव देखे जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव यहां के समाज व संस्कृति पर पड़ा। जिसके फलस्वरूप शिक्षा तथा संगीत जगत भी इन परिवर्तनों और प्रभावों से अछूता नहीं रहा। वर्तमान समय में उत्तर भारत में संगीत शिक्षा गुरुकुल व घरानों से होते हुए संस्थाओं में प्रवेश कर चुकी है परंतु अधिकांश शिक्षण संस्थाओं में संगीत को पाठ्यक्रमेत्तर क्रिया कलाप के अंतर्गत सम्मिलित किया जाता है ना कि मुख्य धारा के विषयों में। समाज में एक बड़े वर्ग के मध्य आज भी संगीत को मनोरंजन का एक साधन मात्र माना जाता है। किंतु शिक्षा के माध्यम से संगीत मानव के मन का रंजन करने के साथ ही उसे वास्तविक अर्थों में शिक्षित भी करता है और इस प्रकार से मानव के सर्वांगीण विकास जो किसी भी प्रकार की शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संगीत शिक्षा को वास्तव में मानव विकास की प्रक्रिया माना गया है। संवेगात्मक परिपक्वता तथा नैतिक मूल्यों के विकास के अतिरिक्त संगीत अन्य विषयों की भांति मनुष्य के बौद्धिक विकास में भी सहायक सिद्ध हुआ है। इस परिकल्पना की मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की सहायता से पुष्टि भी की गई है इस प्रकार से मानव विकास में संगीत की अहम भूमिका का वर्णन इस शोध पत्र के माध्यम से किया गया है।

बीजाक्षर

संगीत, विकास प्रक्रिया, सर्वांगीण विकास, परिपक्वता, अभिवृद्धि

मानव मन के आंतरिक भावों की अभिव्यक्ति के रूप में जन्मा संगीत, शिक्षा व परंपरा के माध्यम से प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक पुष्पित पल्लवित होता आया है। अतः यदि यह कहा जाए कि युगो-युगो से निरंतर प्रवाहित होती चली आ रही भारतीय संगीत की अविरल धारा का सशक्त माध्यम शिक्षा है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। आधुनिक समय की मांग को दृष्टिगत रखते हुए शिक्षा के ढांचे में अनेक परिवर्तन हुए जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है शिक्षा में मनोवैज्ञानिक दृष्टि का समावेश। अपने प्रसार हेतु शिक्षा को माध्यम के रूप में अपनाने के कारण शिक्षा व्यवस्था में आए इन परिवर्तनों का प्रभाव संगीत शिक्षा पर भी पड़ा। संगीत की शैक्षिक प्रक्रिया, अर्थात संगीत सिखाने व सीखने से संबंधित ऐसे अनेक महत्वपूर्ण तत्व हैं जिन्हें शिक्षा मनोविज्ञान की दृष्टि से बेहतर ढंग से समझा जा सकता है।

शिक्षा का सर्वप्रथम व सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य है मानव का सर्वांगीण विकास करना। अतः संगीत अपने सूक्ष्म तथा आकर्षक प्रकृति के कारण मनुष्य के व्यक्तित्व के विविध पक्षों को न्यूनाधिक रूप से प्रभावित करने में सक्षम है। इस प्रकार से मानव के सर्वांगीण विकास हेतु संगीत कला एक सशक्त माध्यम स्वरूप है। यह एक ऐसी कला है जो सहज ही प्रणियों को अपनी ओर आकर्षित करने की अद्भुत क्षमता रखती है। संगीत की इसी विशेषता को ध्यान में रखते हुए यदि शिक्षा के माध्यम से इसका प्रयोग मनुष्यों के जीवन में किया जाए तो अवश्य ही हम सभी को सकारात्मक परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। मनुष्य के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों को विकसित करने में संगीत अत्यंत प्रभावी सिद्ध हो सकता है। शिक्षा के माध्यम से संगीत की इस प्रभावोत्पादकता में महत्त्वपूर्ण रूप से वृद्धि हो जाती है क्योंकि मनुष्य को जिस वस्तु का जितना अधिक ज्ञान होता है, उस पर उस वस्तु का उतना ही अधिक प्रभाव भी देखने को मिलता है। केवल संगीत को सुन लेने और उसे सुनकर समझने में अंतर है और यही अंतर संगीत के प्रभाव में भी दृष्टिगोचर होता है। अतः शिक्षा के माध्यम से संगीत मानव के व्यक्तित्व एवं उसके जीवन के विभिन्न पक्षों का बेहतर ढंग से विकास कर सकता जो कि इस प्रकार से हैं-

शारीरिक विकास में संगीतः-

संगीत की तीनों विधाएँ- गायन, वादन एवं नृत्य व्यायाम का अच्छा विकल्प हैं। गायन कला को एक प्रकार का योगाभ्यास माना जाता है। यही नहीं, वक्ष तथा कंठ के समीपवर्ती अंग-प्रत्यंगों के व्यायाम का उपयुक्त साधन भी है गायन। गान क्रिया में नियमित व नियंत्रित श्वासोच्छवास की क्रिया का विशेष महत्त्व है जो प्राणायाम का ही एक स्वरूप है। स्वरोत्पत्ति की क्रिया से स्नायु तंत्र का सीधा संबंध होता है, अतः विभिन्न स्वरों के उच्चारण से शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों का व्यायाम होता है।

जैसा कि विभिन्न अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि गायन का विधिपूर्वक अभ्यास रक्त संचार को सुचारु रूप से बनाए रखने में, पाचन क्षमता बढ़ाने तथा पेट की मांसपेशियों को पुष्ट बनाने में सहायक होता है। इसके अतिरिक्त गायन के अभ्यास से कंठ एवं हृदय संबंधी रोगों से भी निजात पाया जा सकता है। संगीत के सात स्वर शरीर में स्थित सात चक्रों व बिंदु विसर्ग स्थान को जाग्रत करते हैं और इस प्रकार ध्यान (Meditation) का बेहतर विकल्प सिद्ध होते हैं। गायन की ही भांति वादन भी शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यंत लाभदायक है। बाँसुरी, शहनाई, बीन आदि मुँह से बजाए जाने वाले वाद्यों को बजाने से श्वास नली व फेफड़े मजबूत होते हैं। हाथ से बजाए जाने वाले विभिन्न वाद्य अंगुलियों के कुशल संचालन का अभ्यास कराने के साथ ही एक्यूप्रेशर (Accupressure) का कार्य भी करते हैं। गायन एवं वादन के दौरान प्रयोग में लायी जाने वाली विभिन्न मुद्राएँ विभिन्न योगासानों की भांति हैं जो रीढ़ की हड्डी को सुदृढ़ बनाने के साथ ही एकाग्रता में भी वृद्धि करती हैं तथा गायन और वादन के साथ - साथ नृत्य कला भी मृदु व्यायाम ही है। इससे शरीर का पूर्ण व्यायाम हो जाता है। नृत्य करने से रक्त संचालन की प्रक्रिया तेज हो जाती है जिसका बालकों के शारीरिक विकास में विशेष महत्त्व है। नृत्य शरीर को सुगठित, सुडौल व लचीला बनाने के साथ ही साथ शारीरिक दमखम (Staminaa) को भी बढ़ाता है। नृत्य की विभिन्न मुद्राओं द्वारा शरीर के सभी अंगों का उचित रूप से संचालन हो जाता है जिससे शरीर के सभी जोड़ दुरुस्त हो जाते हैं।

डॉ. सुशीला कटारिया (2008) के अनुसार नृत्य एक प्रकार का एरोबिक (Aerobic) व्यायाम है जो वजन कम करने में सहायता करता है। विभिन्न शोध अध्ययनों के निष्कर्ष से यह भी प्रमाणित हुआ है कि संगीत शरीर के रोग-प्रतिरोधक तंत्र (Immune System) की क्षमता को बढ़ाता है क्योंकि संगीत सुनने अथवा करने के दौरान शरीर में कुछ ऐसे

हार्मोन्स (Hormones) का स्राव होता है जो मानव शरीर के रोग प्रतिरोधक तंत्र को मजबूत बनाते हैं।

मानसिक एवं ज्ञानात्मक विकास में संगीतः-

मानव शरीर में मन एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटक है। इसे मानसिक क्रियाओं के केंद्र माना जाता है। मानव शरीर तथा मन दोनों परस्पर सम्बद्ध हैं क्योंकि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का निवास होता है तथा मन की अवस्था का प्रभाव भी सर्वप्रथम शरीर पर ही पड़ता है। संगीत का सकारात्मक प्रभाव शरीर के साथ-साथ मन पर भी देखने को मिलता है। डॉ. लॉरेन्स वॉल्टर्स (Dr. Lawrence Walters) के अनुसार - "Music very definitely produces measurable effects on the brain and mind".

जापानी चिकित्सकों द्वारा किये गये एक अध्ययन के अनुसार गायन के दौरान मस्तिष्क में एडाफिन्स नामक रसायन का अधिक स्राव होता है जिससे मस्तिष्क की सक्रियता में वृद्धि होने के साथ ही मन भी प्रसन्नचित रहता है। नीदरलैण्ड्स में हुए एक सर्वेक्षण के अनुसार नियमित रूप से संगीत सुनने व सीखने से शरीर व मन में तनाव पैदा करने वाले रसायन निष्प्रभावी हो जाते हैं। अतः संगीत मानसिक शांति देने का एक उपयुक्त साधन है। संगीत में मानव मन को एकाग्र करने की क्षमता होती है जिसका सीधा सकारात्मक प्रभाव मनुष्य के ज्ञानात्मक स्तर पर दिखायी पड़ता है।

नैतिक विकास में संगीतः-

संगीत द्वारा बालकों का नैतिक विकास संभव है। वर्तमान वैज्ञानिक युग में अन्य विषय जहाँ बालक के बौद्धिक कौशल में वृद्धि करते हैं, वहीं संगीत उन्हें आध्यात्मिक स्तर पर सुदृढ़ आधार प्रदान कर उनका नैतिक एवं चारित्रिक विकास करता है।

भाषागत विकास में संगीतः-

संगीत को भाषा विकास का भी उत्तम साधन माना गया है। विभिन्न भाषाओं में रचित गीतों के माध्यम से बालक सरलतापूर्वक विविध भाषाएँ सीख लेता है। घुपद गायन में प्रयुक्त होने वाले री, र, ना,नूम, जैसे मंगलार्थक अक्षरों एवं तराना में प्रयोग किये जाने वाले तन, दिर, दानी जैसे निरर्थक शब्दों के द्रुत प्रयोग से जिव्हा में लचीलापन आता है जिसकी परिणति उच्चारण की स्पष्टता में होती है। भाषा शिक्षा के अंतर्गत केवल ध्वनियों का उच्चारण ही यथेष्ट नहीं होता बल्कि वाक्योच्चारण का भी महत्त्व होता है जिसमें एक ही वाक्य को कई प्रकार से बोल कर विविध अर्थों का पालन भी किया जाता है। उदाहृ के तौर पर-

वह आ रहा है। (सूचना मात्र)

वह आ रहा है? (प्रश्न सूचक)

वह आ रहा है! - (आश्चर्य सूचक)

संगीत में इसी क्रिया को काकु भेद के अंतर्गत समझा जाता है। ठुमरी गायन में इसका सर्वाधिक प्रयोग सुनने को मिलता है जिसमें एक छोटी सी बंदिश के शब्दों की पुनरावृत्ति विभिन्न भावों के साथ की जाती है। अतः संगीताभ्यास से सुर मात्रा व बलाघात की समझ बढ़ती है जिसका उपयोग भाषा प्रयोग में भी होता है। संगीत स्वयं एक भाषा है जो भावों की अभिव्यक्ति में पूर्णतः सक्षम है। पी. साम्बमूर्ति (1966) के अनुसार ''Music is a language by itself and is capable of expressing subtle thoughts and refined ideas''

सौंदर्यात्मक विकास में संगीतः-

संगीत द्वारा मनुष्य में सौंदर्य बोध दृष्टि का विकास किया जा सकता है। स्वरों तथा रागों के माध्यम से अभिव्यक्त तथा निष्पन्न होने वाले विविध भाव व रस, रागों के काल्पनिक चित्रण, बंदिशों में निहित नायक-नायिका भेद आदि के माध्यम से संगीत मानव मन को सौंदर्यानुभूति करने में सक्षम बनाता है और इस सौंदर्य बोध का गहरा सकारात्मक प्रभाव मनुष्य के व्यवहार, आचरण, दृष्टिकोण व उसके संपूर्ण व्यक्तित्व में स्पष्ट दिखायी देता है।

वी. हॉर्नर (V. Horner) के अनुसार ''Music education is concerned with musical literacy] entertaining] creating of music and the

emotional and aesthetic growth of the pupil as well as the enjoyment of music''

संवेगात्मक विकास में संगीतः-

संगीत मानव मन के नकारात्मक भावों का दमन कर उसके सकारात्मक भावों को जगाता है। इस प्रकार संगीत मनुष्य को अपने संवेगों को नियंत्रित करने में सहायता करता है। संगीत भावाभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। जिसके द्वारा मनुष्य एक-दूसरे के हृदय के भावों को प्रकट करता व समझता है। वास्तव में संगीत मानव मस्तिष्क के थैलेमस (Thalamus) को प्रभावित करता है जो मनुष्य की भावनाओं, संवेदनाओं व अनुभवों के प्रस्फुटन का केंद्र है। भाव व संवेग मनुष्य की जन्मजात शक्तियाँ हैं जिनका उचित विकास संगीत के माध्यम से किया जा सकता है। अन्य शब्दों में संगीत मनुष्य को संवेगात्मक रूप से परिपक्व बनाता है।

संगीत द्वारा मानव विकास की यह एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि जहाँ अन्य विषय बालक को पहले बौद्धिक स्तर पर और फिर संवेगात्मक स्तर पर परिपक्व बनाते हैं, वहीं संगीत बालक को सर्वप्रथम संवेगात्मक स्तर परिपक्व बनाता है और फिर उसे बौद्धिक विकास की ओर अग्रसर करता है।

सामाजिक विकास में संगीतः-

एक सामाजिक प्राणी होने के कारण मनुष्य का सामाजिक स्तर पर विकसित होना अत्यंत आवश्यक है। संगीत मनुष्य में सामाजिकता को बढ़ाता है। कनाडा में हुए एक शोध के अनुसार गीत गुनगुनाने वाले लोग अधिक सामाजिक व मिलनसार होते हैं। वृंदगान, वृंदवादन, समूह नृत्य इत्यादि में प्रतिभागिता मनुष्य को अधिक सामाजिक बनाने के साथ ही उसमें आत्मविश्वास व नेतृत्व क्षमता का भी विकास करती है और इस प्रकार उसके समग्र व्यक्तित्व को विकसित व संतुलित बनाती है।

प्रो़. पी. साम्बमूर्ति (1966) के शब्दों में ''Music is a social virtue and a civilized virtue- It enables the individual and develops a sense of humility- It diminishes the arrogance (ego) within him and makes him more dignified''-

इस प्रकार से यह कहा जा सकता है शिक्षा का सर्वप्रथम व सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य है मानव का सर्वांगीण विकास। संगीत कला अपनी सूक्ष्म तथा आकर्षक प्रकृति के कारण मनुष्य के विविध पक्षों को न्यूनाधिक रूप से प्रभावित करने में सक्षम है। यही कारण है कि शिक्षा के माध्यम से संगीत मनुष्य का सर्वांग संतुलित विकास करने में सहायक सिद्ध हुआ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

1- उत्पल, सविता, संगीत शिक्षण और मनोविज्ञान, मार्डन बुक हाउस, चण्डीगढ़, 2003
2- भटनागर एस., संगीत शिक्षण, राज प्रकाशन, मेरठ, 1969
3- पाठक पी. डी., शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1995
4- कुलकर्णी वसुधा, भारतीय संगीत एवं मनोविज्ञान, राजस्थानी ग्रंथगाार, जोधपुर, 2004
5- माथुर, एस. एस., शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, 2007/08

जैन धर्म और संगीतः राग के विशेष संदर्भ में

सुखवीर कौर

शोध छात्र

गुरुनानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर

सारांश

धर्म से अभिप्राय उस भावना से है जिसमें ईश्वर के प्रति अपार आस्था रखते हुए उसकी पूजा अर्चना आदि को विभिन्न-विभिन्न विधियों से अपनाया जाता है साधारण भाषा में ईश्वर प्रति आस्था रखना और उसकी पूजा-अर्चना और उपासना करना ही धर्म है इस प्रकार ही एक पुरातन धर्म जैन धर्म के नाम से जाना जाता है। जैन धर्म के सिद्धान्तों का मानवीय जीवन पर बहुत अधिक प्रभाव है जैन धर्म का महत्वपूर्ण सिद्धान्त कर्म का है महावीर ने बार-बार कहा है कि जो अच्छा, बुरा कर्म करता है उसका फल अवश्य भोंगना पड़ता है मनुष्य जो चाहे वह कर सकता है, बन सकता है अर्थात् वह अपनी किस्मत का विधाता स्वयं है। संगीत सदैव से ही भक्ति और मोक्ष का साधन रहा है संगीतिक नाद मानवीय जीवन का अटूट अंग है जैन धर्म में भी संगीत को विशेष महत्ता दी गई है। इसमें संबंधित सभी पद रूप ग्रन्थ राग आधारित है और सभी कर्म-कांड संगीत की धुनों से ही सम्पन्न होते है। प्रस्तुत शोध प्रपत्र को जैन धर्म में प्रयुक्त संगीत और रागों तक ही सीमित रखा गया है प्रस्तुत शोध प्रपत्र का लक्ष्य जैन धर्म में संगीतिक रागों की भूमिका पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करना है।

संकेत शब्दः

जैन धर्म, तीर्थंकर, संगीत, राग, स्तवन

भारतीय विचारधारा सदैव से ही आदर्श की भाव भूमि से प्रवाहित होती है और उसका प्रयोजन लोक कल्याण रहा है। इसके कण-कण में राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर और नानक की आत्मा समाई हुई है। भारतीय परम्परा में धर्म का लक्ष्य मनुष्य को सत्य का मार्ग दिखाकर उसकी संसारिक और अध्यात्मिक उन्नति करना है। हर धर्म का उद्देश्य मानवता का कल्याण करना है।

जो तत्व सम्पूर्ण संसार के जीवन को धारण करता हो, जिसके बिना संसार में व्यक्ति की स्थिति सम्भव न हो वही धर्म है। समान अर्थ में धर्म एक विश्वास, भावना और संकल्प की व्यवहारिक क्रिया है, दूसरे शब्दों में धर्म भावना, बुद्धि और क्रिया का सामजस्य है।

जैन विजयलक्ष्मी मैक्समूलर का हवाला देते हुए लिखते है, ''धर्म वह मानसिक शक्ति या प्रकृति है, जो मनुष्य को अध्यात्मक सत्ता का ज्ञान कराने में सक्षम बनाती है।''[1]

''धर्म व्यक्ति की ऐसी अचित्र अदृश्य शक्ति पर आस्था है, जो उसके भविष्य पर नियंत्रण करती है और जो उसकी अज्ञायाकरिता, शील, समान तथा अराधना का विषय है''[2]

इन विद्वानों की परिभाषाओं से समझा जा सकता है कि जिन मौलिक सिद्धांतो में मानव जीवन

का आधार है उनका नाम ही धर्म है। भारतीय दर्षन में धर्म का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है, यहां अनेकों भारतीय दार्शनिकों का जन्म हुआ, जिसमें से जैन धर्म संस्थापक महावीर जैन का महत्वपूर्ण स्थान है।

विद्वानों के मतानुसार जैन धर्म वैदिक काल से ही चला आ रहा है जैनी अपने धर्म के इतिहास की प्राचीनता का विचार अपने 24 तीर्थंकरों अर्थात् धर्म गुरूओं के क्रम का हिसाब लगा कर करते है।

''तीर्थंकर शब्द का व्याकरणीय अर्थ है घाट या पुल बनाने वाला।''[3]

दूसरों शब्दों में जो घाट स्थापित कर जीवों को संसार सागर से पार करवाता है वह तीर्थंकर है। जैन धर्म में भी 24 तीर्थंकर पुरातन काल में आये थे और भविष्य काल में भी आएगे इस प्रकार सिलसिला सदैव चलता रहेगा।

जैन धर्म के उद्धभव की स्थिति अस्पष्ट है। सबसे प्राचीन धर्म माना जाता है। जैन ग्रंथों (आगाम) के अनुसार वर्तमान में प्रचलित जैन धर्म भगवान आदिनाथ के समय से प्रचलन में आया। यहीं से जो तीर्थंकर परम्परा प्रारम्भ हुई वह भगवान महावीर तक चलती रही। ''इस धर्म के संस्थापक ऋष्भ देव है। कुछ का मानना है अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीर ने जैन धर्म की नींव रखी थी। महावीर जैन धर्म के 24 तीर्थंकरों अर्थात् परम गुरूओं में एक थे। वर्तमान आगम शास्त्रयों में उनकी ही वाणी सम्मिलित है।''[4]

इस से पता चलता है कि जैन धर्म अनादि काल से चला आया है। अनंत काल तक चलता रहेगा। धर्म का प्रचार करने के लिये समय-समय पर अनेक तीर्थंकारों का अविर्भाव होता रहता है जैन धर्म प्रकृति और मानव की तरह प्राचीन है।

जैन धर्म आगे चल कर दिगम्बर और श्वेताम्बर दो सम्प्रदायों में विभाजित हो गया। दिगम्बर आचरण पालन में अधिक कठोर है और श्वेताम्बर कुछ उदार हैं। श्वेताम्बर मुनी सफैद वस्त्र पहनते है जबकि दिगम्बर मुनि नगन रह कर साधना करते हैं। जैन धर्म में साहित्य को दो भागों में विभाजित किया गया है अर्थमागधी और शौरसेनी है। श्वेताम्बर संघ का अर्थमागधी और दिगम्बर संघ का शौरसेनी है। इनके धार्मिक ग्रंथों को आगम कहा गया है यह आगमों के सबसे पहले भाग 400 ई.प. और 200 ई. के मध्यम में रचे गये।

संगीत आरम्भ से ही धर्म का अहम अंग रहा है संगीत जीवन को प्रभावशाली बनाने का मार्ग है विश्व की सभी प्राचीन संस्कृतैं में धर्म और संगीत का गहरा संबंध रहा है प्राचीन काल में संगीत न केवल समाज का सांस्कशतिक दर्पण था, अपितु भारतीय विचारों की आध्यात्मिक विचारणाओं एवं सात्विक कल्पनाओं की प्रस्तुतिकरण का सशक्त माध्यम भी बन गया। भारतवर्ष के कण-कण में इस प्रकार का आकर्षण है कि विश्व के अनेक धर्म और जातियां आरम्भ से ही संगीत की तरफ आकर्षित रही है भारतीय लोग संगीत का संबंध धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के अंतिम लक्ष्य की तरफ ले जाने में सहायक सिद्ध हुए है। भारतीय समाज के आध्यात्मिक व्यक्तित्व को सभी धर्मों में गीतों, भजनों, स्त्रोतों, मंत्र-पाठों आदि के समाज से अभिव्यक्त किया गया जिससे जनसाधारण लाभान्वित हो सके। सभी धर्मों के महापुरूषों, संतों तथा विचारकों, दार्शनिकों एवं मनीषियों ने संगीत को परम पवित्र, कल्याणकारी तथा ईश्वर-प्राप्ति का प्रमुख साधन माना है। हमारे देश में विभिन्न भाषा एवं विविध धर्मों एवं सम्प्रदायों के लोग रहते है।

जैन धर्म में धार्मिक अवसरों पर गायन-वादन का आयोजन किया जाता था। ''जैन साहित्य में भी श्रुति, स्वर, नाद, वाद्य, ग्राम, मुर्च्छना, तान, राग-रागनियों का विवरण जैन साहित्य के अनुसार ही क्रियात्मक पक्ष में हमें मिलता है, जिससे मोक्ष प्राप्ति और आनंद का संचार होता था।''[5]

जैन धर्म की हर सम्प्रदाय संगीत कला को स्वीकार करते है, क्योंकि सभी सम्प्रदाय संगीत को तीर्थकर भगवान् की देन मानते है।

इसके विषय में कहा गया है कि अरिहंत भगवान् जब उपदेश देते थे तब उनके उपदेशों की

35 विशेषताएँ होती थी। उनमें एक विशेषता यह है कि यह सारा उपदेश संगीतात्मक होता था।

तीर्थंकर भगवंतों के पश्चात् आधुनिक काल में विद्वान आचार्य ने इस महत्ता को उजागर किया है जिसके बारे में श्रीमति रेनू सचदेव लिखती है कि ''वह निर्विवादत : सत्य है कि जैन ग्रंथों में उपलब्ध पदों मे गीति तत्व के साथ-साथ संगीत का माधुर्य भी प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। जैन आचार्य ने संस्कृति, प्रकृति, अपभ्रंश, हिन्दी, कनड़, मराठी एवं गुजराती आदि भाषाओं में गेय-पदों की रचना करके संगीत का विवहारिक पक्ष उद्घाटित किया है''[6]

जैन धर्म के हजारों स्तवन, मंत्र आदि संगीत धुनों में निबन्ध है। जेनालिओं, चैतालीओं, उपासना ग्रह में संगीत का उपयोग जतिंदर देव की पूजा, अर्चना और स्तवन के लिए सदैव ही होता रहा है। मंदिरों में जो स्तवन गाए जाते है उनको रागबद्ध किया गया है। जैन लोगों द्वारा लिखे गए अनेकों धार्मिक काव्य ग्रंथों का नामकरण और उनका वर्णन विषय भी रागों से संबंधित है-

''जैन ग्रंथों में कुछ काव्य रूप इस प्रकार के है जिसमें संगीत ग्रंथ होने का क्रम उत्पन्न हो जाता है, ऐसे काव्य ग्रंथों मे तीन प्रकार की रचनाएँ है 1) काम ग्रंथ 2) बारहमासा 3) रागमाला[7]

डी. एस नरूला जी के कथन अनुसार, ''17वीं सदी में महोपाध्याय जैन कवि 'समैसुंदर के ग्रंथ 'पालनपुर मंडल चंद्रप्रभ जिन' में 44 रागों के अंतर्गत स्तवन मिलते है। इसी प्रकार ई. सन् 1656 में जैसलमेर में उनके 36 पद 'छतीसी' ग्रंथ में उपलब्ध है। उनकी 563 लघु रचनाओं का संग्रह भी समैसुंदर 'कृत कुसमांजलि' साम से भी प्रकाशित हो चुका है''[8]

जैन धर्म में जितने भी प्राचीन तीर्थंकर हुए है उन्होंने रागों में ईश्वर स्तुति का गायन किया है ''मृदंग, गीया, उपजाति, वसन्तलिका, शार्दूल, शिवरंजनी, हरिगितिका, मालकौष, टोडी, मालिनी, ललितछंद, कल्याणी, पणिहारी, माढ, धन्याश्री, भुजंगप्रयात, दरबारी, अनुष्टुप, शालिनी, भैरवी आदि अनेक रागों में प्राचीन स्तवन स्तुति, स्त्रोत, पद उपलब्ध है जिनमें छंद में रचित भक्तामर स्त्रोत, कल्याण मन्दिर स्त्रोत आदि अधिक प्रचलित है''[9]

जैन धर्म में संगीत और काव्य का मुख्य उद्देश्य भक्ति और आध्यात्मिकता प्रदान करना है। अधिकतर स्तुतियां हरिगितिका तर्जों में उपलब्ध है। हर राग में लाखों ही स्तवन, पद और स्त्रोत मिलते है। जैन धर्म के तीर्थंकरों ने बहुत सारे रागों में सत्वनों और पदों की रचना की है। तीर्थंकरों के अतिरिक्त जैन साहित्य में बनारसीदास, दौलतराम, बुद्धजन, भागचन्द, ध्रुधरदास, जिनचत सूची आदि के पदों में संगीतकधारा प्रवाहित है। जैन धर्म के विद्वान कवियों ने समय-समय पर अपनी कला के जोहर और रूचि को प्रदर्शित किया है। प्रभात राग, रामकली, ललित, बिलावत, आसावरी, टोडी, सारंग, लुहरि सारंग, यमन, खमाज, बिहाग, मालकौंस, कालिंगड़ा, मल्हार आदि अनेक राग रागनियों में पद प्रयुक्त है।

पद, स्तवन का साहित्य रागों में निबंध है, जिन में से कवियों और तीर्थंकारों द्वारा रचित कुछ पदों और स्तवनों की उदाहरणएँ इस प्रकार है

श्री महावीर जिनके अनेक स्तवन रागों में निबद्ध है जिसमें से एक उदाहरण धन्याश्री राग में मिलती है।

श्री महावीर जिन स्तवन, राग-धन्याश्री
''वोर जिनेश्वर चरणे लागूं, वीर पगूं ते मांगूं रे।
मिथ्या मोह तिमिर भय भाग्यूं,
जीत नगारूं वाग्यूं रे।। वीर॰।।''[10]

इसी प्रकार श्री ऋषभ जिनका दूसरा नाम आदिनाथ भी है जो कि पहले तीर्थंकर है। उन्होंने बहुत से स्तवन रागों में रचित किये है, जिसमें से एक उदाहरण राग मारू में मिलता है।

श्री ऋषभ जिन स्तवन

(राग मारुः करम परीक्षा करण कुंवर चाल्यो, ए देशी)
''ऋषभ जिणेसर प्रीतम माहरो, और न चाहूँ कंत।
रीईंयो साहब संग न परिहरे, भांगे सादि अनन्त।।
ऋ॰।।''[11]

जैन धर्म के सोलहवे तीर्थंकर श्री शान्ति जिन ने बहुत से स्तवन प्राचीन रागों में रचित किये है, जिसमें से राग मल्हार के अन्तर्गत स्तवन निम्नलिखित अनुसार है।

श्री शान्ति जिन स्तवन

(राग मल्हार चतुर चौमासो पडकमी-ए-देशी)
''शान्ति जिन एक मुक्त विनती, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शान्ति सरूप किम जाणिये, कहो मन किम परखाय रे।।''[12]

इस तरह जैन धर्म के चौथे तीर्थंकर श्री अभिनन्दन है। इन्होंने ईश्वर की स्तुति के लिये बहुत से स्तवन रचित किये जो कि रागों में निबद्ध है। इसमें एक उदाहरण राग परिहारी में इस प्रकार है—

श्री अभिनन्दन स्तवन (परिहारी-ए-राग)
आभिनन्दन जिन सेवना, सुखकारी, रे लो,
चौथा श्री जिन चंद जाणी रे लो।
सेवाथी शिवमेवा मिले, सुखकारी रे लो।
दूर टले भव फन्द मानी रे लो।''[13]

इनके अतिरिक्त कुछ कवियों के पद भी मिलते है। जिसमें नाद, सौदर्य, संगीत का वर्णन मिलता है कुछ उदाहरण इस प्रकार है।

कवि दौलतराम के पदों में नाद सौंदर्य के साथ स्वर और ताल का मूर्त संगीत मुखरित होता है-

''चलि सखिदेखन नाभिराय धर नाचत हरिनटवा। उद्भुत ताल मान शुभ लययुत चवत रागपटवा।।चलि।[14]

कवि नयनानन्द ने विभिन्न रागों में 'नयनसुख विलास' की रचना की है, नयनानन्द कवि का ''नैनसुख विलास'' गायन शिक्षा का ग्रन्थ है और इसके सभी पद संगीतज्ञों के लिए आकर्षक है-

''सब करनी दया बिन थोथी रे।
जीव दया बिन करनी निष्फल,
निष्कल तेरी पोथी रे।
चन्द्र बिना जैसे निष्फल रजनी,
आब बिना जैसे मोती रे।।
नीर बिना जैसे सरवर निष्फल,
ज्ञान बिना जिम ज्योति रे।।
छायाहीन तरोवर की छवि,
नयनानन्द नहिं होती रे।।''[15]

महाकवि बनारसीदास द्वारा अनेक रचनाएँ जैसे कल्याण, केदार, आसावरी, मल्हार आदि रागों में रचित है। इन्हीं के प्रयोगों में अध्यात्म की प्रबलता है, उसी दृष्टि से इन्होंने रागों में रचनाएँ निबद्ध की। विविध स्तुतियां सारंग, जंगला, मल्हार, गौरी, चेतावनी, धनाश्री, विलावल आदि में है। आसावरी राग का एक उदाहरण निम्न है।

''रे मन कर सदा संतोष।
जातै मिटत सब दुख-दोष।। रे मन.

बढ़त परिग्रह मोह बढ़ावत, अधिक तृष्णा होत।
बहुत ईंधन जरत जैसे, अगनी ऊँची ज्योति।।
रे मन.।।''[16]

इस प्रकार से अनेक कवियों के पदे रागों में निबन्ध मिलते है। ''जगजीवन कवि ने मल्हार, रामकली, बिलावल, सारंग आदि रागों में अपने पद दिये है। जगत राम ने सोरठ, रामकली, ललित, बिलावल, सारंग आदि रागों में अपने पद दिये है जगत राम ने सोरठ, रामकली, ललित, बिवावल, ई मन, सिन्दुरिया, जंगला, मल्हार आदि रागों में पदें की रचना की है। भूधरदास ने सोरठ, मांढ़, मल्हार, विहाग, बिलावल, भैरवी, आसावरी पीलू होरी रागों और धूनें में पदें की रचना की है। 13 वीं सदी में भागवंद ने बसंत, मल्हार, सारंग और बिलावल रागों में अनेक पद लिखे है''[17]

इस प्रकार संगीत और ईश्वर स्तृति एक ही सिक्के के दो पहलुओं की तरह है। आरम्भ से ही संगीत का प्रयोग गायन, वादन और नृत्य पूजा के लिए मंदिरों में होता आ रहा है। पूजा अर्चना, आरती और भजन कीर्तन आदि की स्तुति सांगीतिक रूप में हो रही है वैदिक काल से ही ईश्वर की भक्ति

के लिए मंत्र उचारण और उपासना के लिए संगीत का प्रयोग किया गया है इस प्रकार जैन धर्म द्वारा भारतीय संस्कृति में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान दिया गया है उन्होंने भक्ति और उपासना के माध्यम से मनुष्य मोह माया के बन्धनों से मुक्त करवा ईश्वर से जोड़ने पर बल दिया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. जैन विजयलक्ष्मी, प्रथम संस्करण 1989, संगीत दर्शन, पृ 16, राधा पब्लिकेशन नई, दिल्ली।
2. ब्यास रामानंद (डॉ.), प्रथम संस्करण 1999, धर्म दर्शन, पृ 23, वाराणसी, प्रकाशन।
3. जोशी, लालमणि हरबंस सिंह, प्रथम संस्करण 2001, भारतीय धर्मों का परिचय', पृ. 62, पंजाबी यूनिवरसिटी पटियाला।
4. सेठ अक्षत (जैन कथावाचक) के साथ हुई हुए साक्षात्कार से प्राप्त, दिनांक 23.08.2019
5. सिंह गुरविंदर, प्रथम संस्करण 2019, श्री गुरु नानक देव जी की वाणी में संगीत (साहित्य और अध्यात्मकता का सुमेल एक अध्ययन), पृष्ठ 20, चेतना प्रकाशन पंजाबी भवन, लुधियाना।
6. सचदेव रेनू, प्रथम संस्करण 1999 धार्मिक परम्पराएँ एवं हिन्दुस्तानी संगीत, पृ. 7, राधा पब्लीकेशन नई दिल्ली।
7. वहीं, पृ. 18
8. नरूला डी.एस., प्रथम संस्करण 1991, संगीत समीक्षा, पृ. 254, संगीत कार्यलय, 1991
9. श्रवजी, जैनाचार्य श्री मदिजय जयन्तसेब सूरी, प्रथम संस्करण 1995 जिनभक्ति मंजूषा भाग 1-2, पृष्ठ 16, श्री राज राजेन्द्र प्रकाशन, ट्रस्ट, अहमदाबाद।
10. महाराज आनंदघन जी, प्रथम संस्करण 1999, आनंदघन चोविसी, पृष्ठ 28, श्री मद् राजचन्द्र ज्ञान मन्दिर ट्रस्ट राजकोट।
11. वहीं, पृ. 5
12. वहीं, पृ. 20
13. जैनाचार्य जयन्त सेन सूरिजी म.सा, प्रथम संस्करण 1996, भक्ति संगम, पृष्ठ 36, श्री राज राजेन्द्र प्रकाशन ट्रस्ट, अहमदाबाद।
14. जैन जया, प्रथम संस्करण 1977, संगीत शती, पृ 101 से 102, पब्लिश श्री 108 आचार्यान्ता देवभूषण जी महाराजा ट्रस्ट, दिल्ली 1977
15. वहीं, पृ. 104 से 106
16. वहीं, पृ. 114
17. वहीं, 1977,

हिमाचल प्रदेश की गद्दी जनजातिकी लोकसंस्कृति का विश्लेष्णात्मक अध्ययन

भरत सिंह

शोधार्थी, हिन्दी विभाग
हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला

भौगोलिक दृष्टि से हिमाचल-प्रदेश भारत का दुर्गम एवं प्राकृतिक सुषमा-सम्पन्न प्रदेश है। हिमाचल-प्रदेश के जिला चम्बा में अवस्थित हिमखंडों व प्राकृतिक सौन्दर्यता से परिपूर्ण 'भरमौर' जनपद गद्दी समुदाय का मूल निवास स्थान रहा है। 'गद्दी' शब्द का सीधा अर्थ- आसन अथवा राजसिंहासन से है। प्रागैतिहासिक काल से ब्रह्मपुर अथवा भरमौर जनपद में गद्दियों का निवास रहा है, जिससे स्पष्टतः होता है कि वहाँ के स्थानीय निवासियों ने 'ब्रह्मपुर' रियासत की स्थापना कर एक स्वतंत्र संघ की नींव रखी। ब्रह्मपुर में 'राजगद्दी' स्थापित होने के कारणवश समूचे क्षेत्र 'गद्देरण' (गद्दियों का घर) तथा राज्याभिषेक में सम्मलित हुए पांच-छः क्षत्रियय सूर्य, चन्द्र, सोमद्ध कबीलों की सन्तति कालान्तर में 'गद्दी' शब्द के रूप में लोक प्रसिद्धि हेतु प्रयुक्त हुआ। ज्ञातव्य है कि गद्दी कोई जाति नहीं अपितु एक समुदाय हैं जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, शुद्र और वैश्य आदि चारों वर्ण सम्माहित होते हैं। समस्त वर्णों की भाषा, संस्कृति, रीति-रिवाज और परम्पराएँ एकसमान हैं लेकिन इस समुदाय में केवल क्षत्रिय वंशज ही स्वयं को 'गद्दी' नाम से विभूषित करते हैं अन्य वर्णों के लोग अपने नाम के सम्बोधन में गद्दी-ब्राह्मण, गद्दी-सिप्पी, बाढ़ी आदि की संज्ञा देते हैं।

सीमित अर्थ में गद्दी एक विशेष समुदाय है जिनकी एक विशिष्ट लोक संस्कृति, रीति-रिवाज, पहनावा, लोकाचार तथा लोकभाषा है। इस समुदाय का पारम्परिक व्यवसाय भेड़-बकरी पालन रहा है। भेड़-बकरी (धण-रेवड) पालने वाले व्यक्ति की स्थानीय भाषा में 'पाल्ल' अथवा 'पुहाल' कहा जाता है। डॉ. श्याम शशि ने गद्दियों को एक अर्द्ध-यायावर, अर्द्ध-कृषक तथा अर्द्ध-पशुपालक की संज्ञा दी है।'' यह बात ध्यान देने योग्य है कि 'गद्दी' और 'पाल' या पुहाल शब्दों में भेद है। भेड़-बकरियों के रेवड़े यधणद्ध के साथ जिसे 'पाळ' या 'पुहाल' की संज्ञा दी जाती है, प्रायः उसे ही लोग 'गद्दी' पहचानते-समझते हैं। 'पुहाल' का जीवन ऋतुचक्र के क्रम में, ग्रीष्म में पर्वतीय वन-घाटियों में परसता और सर्द ऋतु में समतलीय क्षेत्रों की वन सम्पदा व नदी तटों पर विचरता दिखाई देता है।'' जबकि 'गद्दी' शब्द का प्रयोग उस विशेष वर्गध्वर्ण के लोगों के साथ अलंकरण रूप में प्रयुक्त

होता था जिन्होंने ब्रह्मपुर (भरमौर) में गद्दी की स्थापना की थी। लेकिन कालान्तर में इस शब्द की व्याख्या केवल 'भेड़-पालक' जाति के रूप में की जाने लगी।

बहुत से विद्वान लेखक और स्थानीय जनमानस 'गद्दी' शब्द का अर्थ सीधे तौर पर सिंहासन अथवा राजवंश से जोड़ते हैं। चम्बा जनपद की प्राचीन रियासतकालीन ब्रह्मपुर थी। इस गणराज्य की स्थापना स्थानीय क्षत्रिय कबीलों के मुखियों की सहायता से राजा मारू ने 550 ई. में की थी। ''गण पाठ अष्टाध्यायी 4/2/82 के अनुसार भी उस युग में चम्पा और ब्रह्मपुर दो भिन्न-भिन्न क्षेत्र थे तथा उनके अलग-अलग गणपति थे। मार्कण्डेय पुराण में भी इस क्षेत्र का वर्णन आया है जो अभिसारजन यजनपदद्ध और राजधानी ब्रह्मपुत्र के नाम से वर्णित है। इस क्षेत्र में पाणिनि काल में गाब्दिक शब्द प्रचलन था जो आज गद्दी का पर्यायवाची समझा जाता है। आज भी इस क्षेत्र को गद्देरन' की संज्ञा देकर गद्दियों में मूल स्थान से जोड़ते हैं।'' पाणिनि कृत 'अष्टाध्यायी' (4/3/93) में 'गब्दिका' शब्द का अर्थ पूर्ववर्ती साहित्यकारों ने चम्बा वादी और धौलाधार के पर्वतीय इलाकों के स्थान विशेष के रूप में की है और इस स्थान पर रहने वाले लोगों को 'गब्दिक' से अभिहित किया है। लेकिन उस समय तक चम्बा जनपद अस्तित्व में नहीं आया था।'' ऋषि पतंजली ने पाणिनि के सिंधवादिगण सूत्र (4/3/93) में 'किष्किंधगब्दिका' शब्द का अपने भाष्य में जरुर किया है, परन्तु वह किसी भी दिशा में भरमौर के आसपास भी नहीं पड़ता। किष्किंधा कर्नाटक के मैसूर में है, और यही कहीं गब्दिका भी होना चाहि, क्योंकि किष्किंधा गब्दिका साथ-साथ है अतः यह भौगोलिक परिवेश में भी साथ-साथ होने चाहिए?'' महाभाष्याकर ऋषि पतंजलि ने 'गब्दिका' को आर्यवर्त से अलग रखा है।

गद्दी एक जाति नहीं बल्कि समुदाय है, 5-6 ई. तक यह समुदाय छोटे-छोटे कबीलों में विभक्त था, जिनपर वहाँ के क्षत्रिय कबीलों का आधित्य था। अतः उक्त समस्त कबीलों के मुखियों को हूणों तथा बाहरी राज्यों के आक्रमण को विफल करने हेतु आपस में संघटित करके एकमंच होकर भगवान शिव की गद्दी (सिंहासन) को अपने गणराज्य का प्रतीक मानकर राजा मारू के नेतृत्व में 'ब्रह्मपुर' संघ की स्थापना की। इतिहासकार कल्पना का सहारा लेकर राजा मारू को अयोध्या के समीपवर्ती 'कल्पा' का राजा मानते हैं किन्तु इतिहास में उनका नाम नहीं आता, सीधे ब्रह्मपुर में उनका अस्तित्व दिखता है। जिससे स्पष्ट होता है कि मारू अथवा माडू भरमौर के स्थानीय निवासियों में से एक थे, जिन्होंने अपने राज्य के समस्त क्षत्रिय कबीलों को संगठित करके भरमौर में 550 ई. में 'ब्रह्मपुर' रियासत की स्थापना की। भरमौर में 'राजगद्दी' स्थापित हो जाने के उपरांत इस समूचे जनपद तथा यहाँ पर निवास करने वाले समस्त जनसमुदाय को 'गद्दी' नाम से विभूषित किया जाने लगा जिसका प्रयोग कालान्तर में सीमित अर्थ में भेड़पालक जाति के रूप में होने लगा। श्री रत्न चंद वर्मा ने अपनी पुस्तक 'गद्दी भरमौर के वीर संस्थापक' में 'गद्दी' शब्द को पारिभाषित करते हुए लिखते हैं-''गद्दी शब्द की व्युत्पत्ति जाति एवं समाज के लिए नहीं, अपितु अलंकरण के रूप में उस विशेष वर्ण के लोगों के लिए थी जिन्होंने गद्दी की स्थापना की थी। जिसका सम्बोधन आज हम गद्दी जाति के रूप में करते हैं।'' इस वर्णों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शुद्र सभी सम्मिलित हैं जो कर्म आधार पर हिन्दू वर्ण व्यवस्था की भांति विद्यमान है। इन चारों वर्गों के रीति-रिवाज, भाषा-बोली, रहन-सहन, परम्परा तथा लोकसंस्कृति एकसमान है। इनको गद्दी ब्राह्मण, गद्दी राजपूत, गद्दी सिप्पी, रिहाड़े आदि जातीय विधान से जाना जाता है। इन सभी वर्णों में क्षत्रिय वर्ग को ब्रह्मपुर में 'गद्दी' की स्थापना करने का श्रेय प्राप्त है।

गद्दी समुदाय अर्द्धध-यायावरी, अर्द्धध-कृषक जीवन व्यतीत करता है। इस समुदाय का मुख व्यवसाय भेड़-बकरी पालन रहा है। ''भेड़-बकरियों के लिए चरागाहों की अधिकता रहने से भेड़-बकरियों का पालना यहाँ के निवासियों का प्रारम्भिक व्यवसाय है।'' अतः सर्दियों में यह समुदाय अपने 'धण' (भेड़-बकरियाँ) सहित पर्वतीय चारागाहों अर्थात लाहौल जाते हैं तथा गर्मियों में 'जांधर'

(समतलीय भूभाग) की ओर विचरण करते हैं। छः माह धौलाधार की तलहटी और मैदानी इलाकों में बसने के कारणवश कालान्तर में इस समुदाय ने भरमौर जनपद के इत्तर जम्मू, वणी, भद्रवाह, चम्बा, डलहौजी, खजियार, भट्टियात, नूरपुर, जसूर, शाहपुर, धर्मशाला, पालमपुर, बैजनाथ, पपरोला इत्यादि क्षेत्रों में अपनी बस्तियां बना ली हैं। लेकिन इन समस्त लोगों का मूल स्थान भरमौर जनपद रहा है, जिसे यह लोग 'गद्देरण' के नाम से भी अभिहित करते हैं। गद्दी पुरुष अपनी पीठ पर 'त्रयोड़ी' (झोला) लेकर चारागाह पर जाता है तो घर का सारा कार्य मुख्यतः स्त्रियाँ ही करती हैं।

पारम्परिक रीति-रिवाजों, विशिष्ट पहनावे, भाषा-बोली के आधार पर सांस्कृतिक दृष्टि से इस समुदाय की एक विशिष्ट पहचान है। यह समुदाय अपने पृथक जीवन-पद्धति, रहन-सहन तथा लोक परम्पराओं के लिए प्रसिद्ध है। यह लोग हिन्दू धर्मावलम्बी हैं तथा मुख्यतः 'शिव' भक्त है। इसके अतिरिक्त राम, कृष्ण, ब्रह्मा, विष्णु, सीता-सती, सहित स्थानीय देवी-देवताओं केलंग (कार्तिकेय), भद्रकाली, बन्नी भगवती, भरमाणी, मराली, सिद्ध, नाथ, नाग, तथा शक्ति के अनेक रूपों की उपासना करते हैं।

गद्दियों का खान-पान, रहन-सहन एवं पहनावा यहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों के अनुकूल है। भरमौर जनपद का प्राकृतिक परिवेश अत्याधिक ठंडा है, जिसके कारणवश यहाँ के स्थानीय निवासी कड़ाके की ठण्ड से बचने हेतु स्वनिर्मित ऊनी वस्त्र पहनते हैं। पुरुष वर्ग ऊनी चोला, कमर में डोरा, सिर पर साफा तथा 'सुत्थण' (पाजामा) जबकि महिला वर्ग नुआचडी, कमर में डोरा आदि पहनते हैं। इसके अतिरिक्त विवेच्य समुदाय के स्त्री तथा पुरुष दोनों विविध प्रकार के आभूषण पहनते हैं। यह आभूषण प्रायः सोना और चाँदी के होते हैं जो इनके काँनों, गले, पैर आदि को सुशोभित करते हैं। स्त्रियाँ प्रायः सिर पर चाँदी का चौंक, फुल्लू, मुजकुड्डू, माथे पर 'चिड़ी' तथा कानों में 'फेर', झुमके, बुँदे, वाली तथा टुंगणी आदि पहनती हैं। नाक में लौंग, बालू, तीली, बलाक, तथा गले में चन्द्रहार, कपूरमाला, डोडमाला, चौकली आदि पहनती हैं। कलाईयों में चाँदी की चूड़ियाँ, टोके, गोजक, हाथों अंगूठियाँ तथा पैरों में झांकरे, फुलणू तथा पैरी आदि आभूषण पहनती है। जबकि पुरुष प्रायः कानों में सोने की नतियाँ, चाँदी के बटन तथा हाथों में अंगूठी पहनते हैं।

(पारम्परिक वेशभूषा में सुसज्जित गद्दी युवक एवं युवतियाँ)

गद्दी समुदाय की अपनी निजी बोली है जिसे 'गादी' अथवा 'गद्दियाली' से अभिहित किया जाता है। 'गादी' पहाड़ी भाषा की उपबोली है, जो शौरसैनी अपभ्रंश से प्रभावित है। यह बोली इतनी संस्कृत निष्ट है कि इसके बहुत से शब्द संस्कृत भाषा के अनेक शब्द वर्तमान में भी प्रचलित हैं। गद्दियाली भाषा का व्याकरणिक पक्ष काफी सबल है। इस भाषा में साहित्यिकता के स्वाभाविक गुण हैं जो इनके लोकगीतों में दृष्टव्य हैं। लेकिन दुर्भाग्य से इसकी अभी तक कोई लिपि नहीं है। रियासतकाल में ब्रह्मी, खरोष्ठी, कुटिल एवं टांकरी लिपि प्रयोग में लाई जाती थी। यह भाषा मौखिक रूप से एक-पीढ़ी-से दूसरी पीढ़ी तक प्रवाहित होती रही है। वर्तमान में गद्दियाली भाषा को लिखने के लिए देवनागरी-लिपि का प्रयोग करना पड़ता है। किन्तु स्थानीय भाषा के ऐसे अनेक शब्द हैं जो देवनागरी लिपि उनके कथ्य

और मूल भाव को ग्रहण नहीं कर पाती। बोलचाल में इसका माधुर्य गुण तथा सरल लहजा सुनते ही बनता है। 'गद्दियाली' भाषा में लोकसाहित्य की समृद्ध परम्परा है।

लोकसाहित्य के माध्यम से जनजातीय रहन-सहन, रीति-रिवाज, परम्परा, लोकसंस्कृति तथा उनके हर्ष-विषाद आदि मनोभाव समयमेव अभिव्यंजित होते हैं। गद्दी समुदाय का लोकसाहित्य श्रुत-परम्परा के फलस्वरूप पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होता रहा है और वर्तमान में भी एक समृद्ध लोकसाहित्य के रूप में उपलब्ध है। चरवाहे जीवन की विषम परिस्थितियों, हिमखंडों को चीरते, घर में अपने पति के प्रवासीय जीवन को स्मरण करते हुए विरह में संतप्त गद्दी युगल जब अपने आंतरिक मनोभावों को व्यक्त करते हैं तो वह लोकगीतों का रूप लेकर अपनी अनुभूतियों को प्रकट करता हुआ बाद में सांस्कृतिक धरोहर का रूप बनते हैं।

गद्दी लोकसमाज में अनेकानेक पर्व-त्यौहार एवं मेलों का आयोजन किया जाता है जिसमें मुख्यतः बसोआ, 'लोहड़ी', 'हैइरी', 'ढोलरु', बसोआ आदि प्रमुख त्यौहार हैं वहीं मणिमहेश, भरमौर, कुगति, शिव-शक्ति छतराड़ी आदि अनेक देव-स्थलों में धार्मिक तथा सांस्कृतिक जात्राएँ तथा मेले सम्पूर्ण देश और प्रदेश में प्रसिद्ध हैं। लोक-कला के क्षेत्र में गाद्दियों का मूल-स्थान भरमौर और उनके संलग्न क्षेत्र में मूर्ति-कला, वास्तुकला ताम्र-पत्र लेखन, वस्त्रों पर काशीदाकारी, मुखौटा निर्माण कला, कम्बल-पट्टू पर डिजाईन, नक्काशी किए गए लकड़ी के वर्तन तथा लोक-कला के कई प्राचीन नमूने देखे जा सकते हैं जिसमें पनघट शिलाओं तथा प्राचीन मंदिरों यथा छतराड़ी के शक्ति देवी मन्दिर तथा चौरासी परिसर में लखना देवी मन्दिर इसके प्रमुख उदाहरण हैं। ''भरमौर के प्राचीन मन्दिरों में लोक-कला के अनुपम उदाहरण देखने को मिलते हैं। भरमौर के लक्षणा देवी और भरमौर के संलग्न क्षेत्र छतराड़ी में शिव शक्ति के सातवीं और आठवीं शताब्दी के प्राचीनतम मंदिर मन्दिर हैं जो लकड़ी के बने हैं तथा लोककला के अथाह भण्डार हैं।'' वस्तुतः लोक-कलाएँ प्राकृतिक संपदा और सांस्कृतिक धरोहर की सार्थक अभिव्यक्ति है। पर्वतीय जीवन को जहाँ प्रकृति ने संवारा, सजाया और विभूषित किया है, वहीं यहाँ के चिंतन, मननशील मानव, दस्तकारों, कारीगरों तथा शिल्पियों ने भी अपनी प्रतिभा के अंशदानों से इसे प्रफुल्लित, अलंकृत और विकसित किया है।

समग्रतः गद्दी समुदाय का लोकजीवन, रीति-रिवाज, संस्कृति, परम्परा और जीवन-शैली हिमाचल-प्रदेश की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का परिचायक है। लोकसंस्कृति के आरम्भिक धरातल पर रहने वाला यह आदिम समुदाय है, जो अपने भोलेपन, साधारण प्रवृत्ति, स्पष्टवादिता, पृथक जीवन-पद्धति, रहन-सहन, रीति-रिवाज, भाषा-बोली, धार्मिक प्रवृत्ति तथा लोक संस्कृति, लोकसाहित्य के प्रति आस्थावान है। समय के बदलते परिवेश और संस्कृतियों के आपसी संक्रमण के कारणवश इनके लोकजीवन और लोकसंस्कृति में परिवर्तन आया है। सम्प्रतिकाल में इस समुदाय के लोगों ने अपने स्थायी निवास की भावना जागृत हुई है, ताकि यायावरी के संघर्षपूर्ण जीवन से मुक्ति मिल सके। बदलती परिस्थितियों, वन-चारागाहों की कमी, शिक्षा, रोजगार के नये साधनों की उपलब्धि एवं राजकीय विकास घोषणाओं आदि के फलस्वरूप पारम्परिक व्यवसाय की ओर झुकाव कम हो रहा है। लेकिन फिर भी आधुनिकता के इस दौर में इस समुदाय ने अपनी पुरात्तन लोक-संस्कृति, रीति-रिवाजों, बोली, धार्मिक आस्था तथा जीवन-पद्धति को आत्मसात करते हुए अपने निजी जीवन में उसके न्यूनाधिक स्वरूप को वर्तमान में भी बनाए रखा है।

सन्दर्भ सूची

1. श्याम सिंह शशि, हिमालय के खानाबदोश, पृ.-27
2. रत्न चंद वर्मा, भरमौर–चम्बा के संस्थापक वीर गद्दी, सावित्री ऐतिहासिक शोध केंद्र उपरली दाड़ी धर्मशाला, प्रथम संस्करण 2015-14
3. डॉ. गौतम शर्मा व्यथित, हिमाचल की जनजाति गद्दी देव परम्परा और संस्कृति, पृ.-13
4. रत्न चंद वर्मा, भरमौर–चम्बा के संस्थापक वीर गद्दी, सावित्री ऐतिहासिक शोध केंद्र उपरली दाड़ी धर्मशाला, प्रथम संस्करण 2015, पृ.-5
5. वही, पृ.-27
6. शशि श्याम सिंह, हिमालय के खानाबदोश, पृ.-28
7. गौतम शर्मा व्यथित, हिमाचल की जनजाति गद्दी देव परम्परा और संस्कृति, साहित्य रत्न, दिल्ली, पृ.-184

Devi Krithis And Their Potential Influence on Human Values

Narayanan P Iyer
Research Scholar, Jain University

Dr Meera Rajaram Pranesh
Jain University

Abstract

A super busy family where a teenage child is seeking refuge on the internet, an elderly couple at an old aged home pining to meet their children for years, and a couple separating after years of marriage, with their children now sure that marriage is an evil! Such situations are not uncommon nowadays and one of the prime reasons for these is the deterioration of Human Values. This calls for an immediate attention to all humans to tap into effective tools successfully used in the past for the mitigation of this situation. Music is one such tool for reinforcing Human Values. This study analyzes compositions of Carnatic Music to highlight the Human Values they encapsulate. It can be seen that most of these compositions are treasure troves of human values and through the blend of the various musical dimensions of melody, rhythm, prosody, symbolism and others , they hold huge potential to reinforce human values. Thus they can enable a good life for every human being.

Keywords

Human Values, Music, Devi, Shakti, Carnatic

Overview

A super busy family where a teenage child is seeking refuge on the internet, an elderly couple at an old aged home pining to meet their children for years, and a couple separating after years of marriage, with their children now sure that marriage is an evil!

Such situations are not uncommon nowadays and one of the prime reasons for these is the deterioration of Human Values. This calls for an immediate attention to all humans to tap into effective tools successfully used in the past for the mitigation of this situation. Music is one such tool for reinforcing Human Values. This study analyzes compositions of Carnatic Music to highlight the Human Values they encapsulate .

Understanding Human Values

Value can be defined in a layman's language as something which is worthy or important. The worthiness can be because of its utility, beauty or power to help us lead a good life. Human values are defined

as those values which help man to live in happiness, peace and harmony with the world. Human Values are universal in nature and grounded in rationalism and acceptance.

Human Values are a set of attributes that we consider important for peaceful coexistence and hence they guide our behavior. These could be qualities like honesty and trust, or an end state like happiness and success.Human Values can be genetic, or can be learnt. Personality traits can influence certain values , for eg a shy person may not value celebration and may value calmness more.

"Human Value is an enduring belief that a specific mode of conduct or end-state of existence is personally or socially preferable to an opposite or converse mode of conduct or end-state of existence. A value-system is an enduring organization of beliefs concerning preferable modes of conduct or end-state of existence along a continuum of relative importance" (Rokeach 1973:5). "The *Sruti* and *Smriti* provide a general understanding of *Dharma* and *Adharma* which most of us have heard from childhood" (Tejomayananda 1994: 93). The essence of Humanism is handed down to us through various epics and in the epic Ramayana, the qualities of Rama stand out as a personification of Humanism (Rajagopalachari 2001).

"The characters from the *Puranas* show us the goal. The way to reach it is through the actual practice of prescribed *Karmas* "(Saraswathi 2014: 247).

The Need for Human Values Reinforcement

We are shaped by life experiences and learnings from the day we are born . The behaviour of our parents, the examples set by our siblings and teachers, the kind of friends we make in school and the values they influence, all the above contribute to shaping our value system and thereby our behaviour . Good and bitter experiences can both shape our value system.

Depending on our life experiences and what we observe, read, and are taught, our value systems can diverge from those needed for peaceful coexistence

For humankind to coexist , sustain and progress, these human values need to be imbibed and practised by everyone. Such values are independent of time and space . When these universal values deteriorate, there is degradation of the quality of life. Hence Human Values need to be reinforced time and again

Human Value Reinforcement Approaches

- Human Values can be reinforced in some of the following ways
- Parents setting the right examples of human values in their own behaviour
- Schools inculcating Human Values through Value Education
- Writings and speeches of various Philosophers
- Religious texts and their teachings and preachings
- Music and other Arts

Music as an effective Mitigation Tool

Music has the necessary attraction and the right vibrations for the mind, heart and soul to receive the human value reinforcement easily. Even without any explicit message, the vibrations of

music can put us at peace. Music creates an instant environment of receptivity to Human Value Reinforcement

"Indian Music is essentially impersonal: it reflects an emotion and experience which are deeper and wider and older than the emotion or wisdom of any single individual" (Coomaraswamy 2013: 101).

"Art experience is well adapted to arouse our interest in the ideal state by giving us foretaste of it, and thus to serve as a powerful incentive to the pursuit of that state. By provisionally fulfilling the need felt by man for restful joy, art experience may impel him to do his utmost to secure such joy finally" (Hiriyanna 1997: 32).

"Music is one of the God given gifts to humanity. It has been cultivated from the dawn of human history. It is the noblest of the fine arts. It is the language of pure sound. It has a humanising influence. It is a powerful factor in the moulding of one's character" (Sambamoorthy 2013a: 6).

Existing Studies and Gaps

There are various studies that give the philosophical meaning of specific compositions in specific genres, but no cross genre study to the knowledge of the author exists, where the exclusive focus is on the underlying Human Values conveyed by the compositions, and the factors that help communicate this message.

Significance

This study will help musicologists, practitioners , teachers, students, and rasikas alike in enjoying, communicating, and benefiting from the compositions, with increased awareness of the Human Values they can potentially influence. This will in turn help mitigate the Human Value crisis we face time and again

Scope and Methodology

The scope of the paper is limited to Carnatic Music Compositions on Devi

This is a qualitative study using purposive sampling for the compositions. It is exploratory in nature. The following parameters are used for the analysis of the compositions.

Raga

Even without words, the raga by itself can invoke the right vibrations, taking us to certain moments ,eliminating toxic emotions and retaining positive emotions . From the positive emotions, flow the human values Crystallized negative emotions are removed by music thereby allowing the messages to sink in and even if the message is not there, exposing a better state of being - which means a better state of human values

Tala/Laya

Without rhythm life would not exist. This is evident from the rhythmic beating of our hearts, the rhythmic flow of the river, waves of the sea etc. If any of these go out of rhythm there is bound to be problems . The rhythm in music reinforces the rhythm in life. In the olden days, the rhythm and melody in nature used to automatically keep us in resonance with the universe, but in the current times, when we are mostly disconnected from nature, the rhythm and melody in music can help us stay connected with the creator, and thereby

be in a state of being from where human values can naturally flow

Lyrics

The lyrics carry a message in most compositions. They can be explicit messages or an implicit message

Prosody

The following prosodical elements add beauty and appeal, and help draw the listeners towards the inherent message. The following are examples of this

- Prasam - alliterations and rhyming
- Yati - tapering and other patterns
- Swaraksharam - swara and sahitya having the same syllable
- Jati - Meaningless but melodious syllables
- Yamakam - The same word used more than once in different contexts

Inner Meaning

The inner meaning can be expressed through the following ways

- Symbolism (Real / Fictitious)
- Direct messages

Besides the above, the **blend** of the above dimensions and the **composer's impulse** also play a role in the communication of the message though the song. Besides, the above initial parameters , there could be other parameters discovered as part of the study

Analysis

The following symbolism for expressing human values is chosen for the study. The author explains this symbolism in detail below and cites the compositions that use this symbolism with details on the same.

The Shakti or Devi Principle, and Human Values

Even before we are born, we are exposed to the feminine voice first. Here begins the journey of experiencing the Shakti or power of life. Various religious and spiritual texts, and later commentaries on these, have communicated Human Values through the Shakti principle. Some of these are

Lalitopakhyanam (Sri Vidya)

Lalitopakhyanam is the last section in the Brahmanda Puranam, in which the story of Devi Lalita Tripura Sundari vanquishing the Asura Bhandasura, and restoring Manmatha, is narrated by Hayagriva to Sage Agasthya. In this, Bhandasura and his army of Asuras stand for the vices within us, and the army of Lalita Tripurasundari stands for the army of Human Values that can protect us from these vices. The 1000 names also echo a host of Human Values. Following is an example

Trigunamba Trikonaga

- Triguna - are the three attributes of Rajas, Tamas, and Satva
- "Rajas" refers to materialistic values, "Tamas" for sense related pleasures and "Satva" for the spiritual values. A balance of these is needed to lead a good life as also enunciated by the Purusharthas - Dharma, Artha, Kama, Moksha
- "Tamas" refers to the sensory values of pleasure. These are needed in a balanced proportion to ensure sustenance of the Human race, and for aesthetic conditioning that is needed for a healthy life

- "Satva" refers to the spiritual values which help us lead a harmonious life
- Amba - stands for care and protection
- Trikonaga - Triangular positions are used in mythology and astrology with varying significances. The Sri Chakra which is the central theme of the Lalita Sahasranama is itself comprised of a lot of triangles

Devi Mahatmyam

Devi Mahatmyam , also known as Durga Saptashati, or Chandi or Chandi Patha, is a section of the Markandeya Purana, an ancient HIndu philosophical text. The story starts with Suratha, a king, and Samadhi, a merchant, both being thrown out of their homes by their very own people. They end up meeting at the hermitage of Sage Medhas and have the same question - Why is it that we are thinking good of our family even though they have betrayed us? They pose this question to Sage Medhas and that's how the Devi Mahatmyam unfolds as the answer to their questions.

Through the various incarnations of the Devi, the sage unveils one by one the secret of some of the most intriguing questions of life .

In the first section, on invocation by Brahma, the Devi appears in the form of Mahamaya or Yoganidra from the dirt of Vishnu's ears and deludes Madhu and Kaitabha, the two asuras who sought to slay Brahma . Vishnu kills the asuras.

In the second section , on invocation by the Devas, the Devi incarnates from the shakti of all the devas to kill the demon Mahishasura in a fiercely fought battle

In the third section , she incarnates as Ambika , and Kali, and also as the sapta matrikas (seven goddesses) to kill the mighty Asuras Shumbha and Nishumbha, Dhumralochana, Chanda, Munda, and Raktabeejasura

In the above , King Surata represents courage, dutifulness and also material pursuits. Samadhi represents surrender, love and peace. Yoganidra represents the need for constant awareness to fight delusion . Parvati represents the fair and Kali represents the dark , both standing for the balance of the known and the unknown. Raktabeejasura represents the ever growing tree of desires and Kali represents the Shakti which can control our desires. Gauri also represents dutifulness and shrewdness. Shumbha and Nushumbha represent greed and Mahishasura represents the out of control senses within us which can lead us to destruction. Shumbha and Nishumbha also represent procrastination

Thus we see the Devi Mahatmyam through the story helps us discover the Shakti within us to fight the asuras tormenting us in daily life. It is woven in a melodic language like Sanskrit where it can be recited. Recitation is akin to music where it sets the right vibrations for the essence of the message to enter even if we do not understand the meaning

Devi Gita (Dasha Mahavidya)

Devi Gita is a section of the Devi Bhagavata Purana which extols Devi as the all pervading force of existence of all beings. An important part of Devi Gita is the Dasa Mahavidyas. The 10 Maha Vidyas represent the 10 aspects of wisdom and are a treasure trove of Human Values

- Kali : stands for solitude (darkness), and time - both important human values

- Tara : courage, compassion, protection (she healed the poison in shiva's neck)
- Tripura Sundari or Sodashi - beauty, detachment, awareness
- Bhuvaneswari - materialism, worldly living, universality, desire
- Chinnamasta - freedom, liberation, sacrifice
- Tripura Bhairavi - wisdom, fearlessness, perfection
- Dhumavati - awareness of the transient nature
- Bagalamukhi - control, meditation, stillness
- Matangi - acceptance, knowledge
- Kamala - wealth, prosperity, totality

Sapta Matrika

The Sapta Matrikas or the Shaktis of Durga find references in the Lalita Sahasranamam as well as the Devi Mahatmyam. These goddesses are revered as a personification of victory of good over evil. Each matrika is a female power manifestation of the corresponding male deity and exemplify the following values

- Brahmi - Creativity
- Kaumari - Valour
- Varahi - Balance
- Indrani - Majesty, Charisma
- Vaishnavi - Sustenance, Temperament
- Maheshwari - Focus
- Narasimhi - Courage

Navadurga

The Nava Durgas are nine forms of Parvati symbolizing the various stages in the life of Parvati and each stage standing for a certain of Human Values

- Shailaputri - childhood, celebration
- Brahmacharini - asceticism, meditation, concentration
- Chandraghanta - independence, positivity
- Kushmanda - power, self discovery
- Skandamata - motherhood, compassion, attachment
- Kathyayani - warrior, courage ,
- Kalaratri - destruction of bad
- Mahagauri - recovery
- Siddhidatri - knowledge, discipline, wisdom

Analysis of Devi Krithis and their Potential Influence On Human Values

Kamalamba Samrakshatu Mam
Ragam: Anandabhairavi
taaLam: Misra Eka
Composer: MuthuswAmi Dikshitar
Language: Sanskrit

Sahitya

Pallavi

kamalAmbA samrakSatu mAm hrt-kamalAnagara nivAsinI

Anupallavi

sumana sArAdhitAbja mukhI sundara manah-priyakara sakhI kamalajAnanda bOdha sukhI kAntAtAra panjara shukI

caraNam

tripurAdi cakrEshvarI aNimAdi siddhIshvarI nitya kAmEshvarI

kSitipura trailOkya mOhana cakra vartinI prakaTa yOginI

suraripu mahiSAsurAdi marddinI nigama purANAdi samvEdinI

tripurEshI guruguha jananI tripura bhanjana ranjani

madhuripu sahOdarI talOdarI tripura sundarI mahEshvarI

Literary Meaning

May goddess Kamalaamba, who resides ("nivasini") at the heart ("hrut") of

Kamalaanagara, protect ("samrakshatu") me ("maam").

Her lotus-like ("abja") face ("mukhi") is praised ("sa-aaradhita") by virtuous people ("su-mana").

She, who is the beloved ("manah-priyakara") companion ("sakhi") of Lord Sundara-Shiva, who revels in joy ("ananda") deriving from wisdom ("bodha") and is very beautiful. She is like the she-parrot ("shuki") in the center of the cage ("panjara") known as Tara.

She is the chieftain of the Chakra cosmogram ("chakra-eshwari"), i.e. tripura etc., goddess ("eshwari") for the Siddhi powers such as Anima. She is eternal ("nitya") and beloved of Kameshvara-Nityakameshvari.

She is the sovereign ruler ("vartini") of the Trailokya Mohana Chakra, the circle that beguiles the three worlds. She is the manifestation ("prakata") of Yogic power ("yogini"), conqueror of the enemies ("ripu") of celestials ("sura") such as Mahishasura. She is revealed ("samvedhini") in holy ("nigama") scriptures ("puraana"). She is the spouse of Tripuresha-Shiva and the mother ("janani") of Guruguha. She enjoyed ("ranjani") the destruction ("bhanjana") of Tripura. She is the sister ("sahodari") of Vishnu, who is the enemy ("ripu") of the demon Madhu. She is slender-waisted ("talodhari"), Tripurasundari the great goddess and spouse ("eshwari") of Maheshvara.

Human Values Analysis

In this Krithi, Muthuswamy Dikshitar has subtly imported the Human Values from the Lalita Sahasranama, the Devi Mahatmyam, and the Dasha Mahavidyas as we will see below

Kamal Amba Samrakshatum Am

Key Human Value - **Protection**

In the pallavi line Samrakshatumam represents the protective nature of the Mother Goddess. From the womb till the grave, we all feel a need for protection, and if someone gives us that assurance, we are able to tide over life. If we can develop the quality to protect others in times of their trouble, we can make this world a better place

The SGRN, MGPMNPGR phrase , the Madhyama halts, and the rare antara Gandharam prayoga are used beautifully to suggest her protective assurance

Kamalaja Ananda Bodha Sukhi

Key Human Value -> **Happiness** and **Bliss, Acceptance** and **Awareness**

This line refers to the happiness and bliss that one can attain from understanding oneself. The example of the Lotus is very apt because the lotus blooms and blossoms giving radiance to others, despite the dirt on which it grows. This is because it is aware of its surrounding and has accepted it

The ascent from the Panchamam to the upper Shadjam and then back to the lower Shadjam, cutting across the Ananda Bhairavi typical prayogas gives the happiness and bliss blend

KAntA TAra Panjara Shuki

Key Human Value -> **Compassion** and **Courage**

Here the dual values of compassion and courage are beautifully brought out. The parrot is symbolic of Meenakshi Devi

who was a queen and was symbolic of courage. Tara is a one of the 10 Goddesses of the Dasha Mahavidya and she stands for compassion. One needs to show both courage and compassion to live a happy life

nitya kAmEshvarI

Key Human Value -> **Satisfaction**

Here the quality of the Goddess to fulfil others' desires is exemplified. We should be like her. We can fulfil the desires of others only when we are satisfied irrespective of our situations

Kshitipura

Key Human Value -> **Balance and Awareness**

Kshitipura or Bhupura chakra , the first avarana of the Shri Chakra symbolises the control of one's senses. Balance is a very important Human Value. Physical and mental balance are essential to a good life

The matrikas stand for our temptation to succumb to the senses and the mudra shaktis bring us back to soulful awareness. Awareness protects us from being swayed by sensual attractions, and keeps us in the zone of conscious unperturbed actions

trailOkya mOhana cakra vartinI

Key Human Value -> **Beauty**

Beauty is a key Human Value essential to the survival of the Human Race. It is a combination of both outer and inner beauty. We admire nature for its beauty. Similarly, our beauty is primarily our nature. Happiness and a smile can make anyone look beautiful. Kamalamba represents that subtle aspect of beauty

The phrases used here have a balance of slow and fast tempo as well as the melody shows a fine balance of all aspects of Ananda Bhairavi including the rare notes

Mahishasuraadi mardini

Key Human Value -> **Collaboration and Courage**

Here Muthuswamy Dikshitar subtly brings about the aspect of collaboration. The shakti of Devi that killed Mahishasura was drawn from the powers of several Gods collaborating. This represents teamwork that can vanquish any obstacle or overcome any situation..

The Kaisiki Nishada Nokku gamaka, and the foray into the upper octaves asserts the collaborative and courageous spirit of Mahishasura Mardhini

Narthana Samrajya

taaLam: Adi
Composer: Narayanan Iyer
Language: Sanskrit and Tamizh

Sahitya

Narthana Saamraajya Samrakshini
Nritya Niranjana Samyogini
Bharata Naatya Paripaalini
Krupayaa Karunaarasa poorini

Dharmangal Valarthidum Naatyashaastirathin
Abhinaya varam Nee tharuvaaye
Aangikam Vaachikam Aahaaryam Pugazha
Arangetrum (Aanandam) enakku arulvaaye

Saptaswaram petra Sheetalaambike
Saptaswaram petra Sheetalaambike

Saamagaanapriya Vedaambike
Sakala kalai arulvaay Saptamaatrike
Brahmi - Kaumaari - Maaheswari - Vaaraahi - Vaishnavi - Indraani - Chaamundeswari

Navarasa nadi oram Navavidha Bhaktiudan
Navashakti rupini Navadurgaambike
Shailaputri - Brahmachaarini - Chandraghantaa - Kushmandaa Skandamaata Kaatyayini - Kaalaraatri - Mahaagauri - Sidhidaatri
Nadiyin Alaigal Aadum Raagathin

Maanasarovarara Guru Matangiyin
Maanikya Charanangal Vanangi Vanden
Kalaiyin naayaki Kalaivaani Thaaye
Kaalam muzhudhum unnai thudhipom

Uyirum Udalum thalarndhu ponnaalum
Nee kuduutha kalaigal valaraname
Naatyamum Neeyum Naanum onre.. amma
Yengum Yendrum unnai thudhithu

Literary Meaning

Narthana (Dance) Saamraajya (Universe) Samrakshini (Protector)
Nritya (Dance) Niranjana (pure) Samyogini (merge/blend into)
Bharata Naatya (Bharata Natya) Paripaalini (Sustainer)
Krupayaa (Grace) Karunaarasa (Compassion) poorini (Full Of)

Dharmangal (Values) Valarthidum (Upholding) Naatyashaastirathin (in Natyashastra)
Abhinaya (Expression) varam (blessing) Nee tharuvaaye (you will give)
Aangikam Vaachikam Aahaaryam Pugazha (making these three tenets prosper)
Arangetrum (ascending the dance podium) / Aanandam (Happiness) enakku arulvaaye (you will bless me with)

Saptaswaram (Seven swaras) petra (born) Sheetalaambike (mother of coolness/calmness) Saamagaanapriya (one who adores music) Vedaambike (the upholder of Vedas)
Sakala kalai (All fine arts) arulvaay (bless with) Saptamaatrike (The seven forms of Chamundi who killed Shumba and Nishumba)
Brahmi - Kaumaari - Maaheswari - Vaaraahi - Vaishnavi - Indraani - Chaamundeswari
Swarangal (Swaras) sollum (speak) sundara (beautiful) kadhaiyin (story)

Navarasa (The nine Rasas) nadi oram (sea shore) Navavidha Bhaktiudan (The nine ways of worshipping the Lord)
Navalokam (The nine planets) peruga (attain) aadi vandhen (I came dancing)
Navashakti rupini (The nine shakti forms of Durga) Navadurgaambike (The nine Durgas)
Shailaputri - Brahmachaarini - Chandraghantaa - Kushmandaa Skandamaata Kaatyayini - Kaalaraatri - Mahaagauri - Sidhidaatri
Nadiyin Alaigal (Sea waves) Aadum Raagathin (Dance to the tunes)

Maanasarovarara (the lake of knowledge) Guru Matangiyin (Guru of cosmic wisdom)

Maanikya Charanangal (diamond feet) Vanangi Vanden (I came worshipping)

Kalaiyin naayaki (The queen of Fine Arts) Kalaivaani Thaaye (Saraswati Devi)

Kaalam muzhudhum (Entire lifetime) unnai thudhipom (We will praise you)

Uyirum (LIfe/Soul) Udalum (Body) thalarndhu ponnaalum (become weak)

Nee kuduutha (given by you) kalaigal (arts) valaraname (should grow)

Naatyamum (dance) Neeyum (you) Naanum (me) onre...amma (are one oh Mother!)

Yengum (Everywhere) Yendrum (at all times) unnai thudhithu (heralding you)

Human Value Analysis

Samrakshini, Samyogini, Paripaalini, Karunaarasa poorini

Key Human Value **-> Creativity, Protection, Wisdom, Compassion**

The Mahamaya stands for creation, sustenance and dissolution which are values needed for our everyday life. We need to know what to make, what to retain and what to give up! WE also need to constantly merge knowledge streams with the glue of wisdom and compassion

Dharmangal Valarthidum Naatyashaastiram,Abhinaya, Aangikam Vaachikam Aahaaryam Pugazha,Arangetrum

Key Human Value **-> Culture, Fundamentals,Expression and Perfection**

Natyashastra stands for culture and respect for culture is a core human value. Abhinaya or expression helps us live life better. The fundamentals of the dance form refer to fundamentals of life or any seeking in life. Finally the value journey is from fundamentals to perfection and beyond.

Saptaswaram, Sheetalaambike, Saptamaatrike

Key Human Value **-> Music, Calmness**

Music itself is a value, because we are all products of vibrations and are in vibration and musical vibrations keep us in tune with nature. Sheetalamba stands for calmness which is essential to braving situations in life. The seven matrikas represent Human Values of creativity,sustenance,courage,compassion

Navarasa ,Navavidha Bhakti

The nine Rasas and the nine forms of worship denote values like laughter (Hasya), wonder (Adbhuta), friendship (Sakhyam), passion (Shrungara) and Surrender (Pada Sevanam)

Nadiyin Alaigal Aadum Raagathin

The above connects the sea waves to the waves of the dance and music within us, thereby highlighting the Human Value of "oneness with nature"

Matangi, Maanikya Charanangal Vanangi, Kaalam muzhudhum

Key Human Value **-> Knowledge, Grace, Humility, Endurance, Determination, UNity**

The Goddess Matangi who stands for the great cosmic wisdom and is a lake of knowledge

The Human Value of humility is reflected in the worship of the Guru's feet. "Endurance" is highlighted in the beholding of the Goddess forever

Uyirum Udalum thalarndhu ponnaalum,Nee kuduutha kalaigal valaraname

Key Human Value -> **Inner Strength, Growth**

Passion for knowledge and its practical pursuit for the goodness of society can keep us alive and going in spite of severe illnesses . Growth in all dimensions of life is paramount. Graceful Movements in life create happy moments similar to that in dance

Conclusion

From the above two compositions we see that through various symbolisms, the composers have tried to bring out the essence and importance of the core Human Values. Dikshitar uses symbols from the Sri Chakra analogy to reaffirm the values of Balance, Awareness, Compassion, Courage, Beauty, Collaboration, Awareness, Protection, Happiness, Bliss and Satisfaction. Dikshitar also draws from the references to Devi Mahatmyam and Dashamahavidyas. The author draws references from Devimahatmyam, comparing the pursuit of dance to the Mahamaya. He also refers to the Navarasa, Navavidha bhakti, the Sapta matrikas, and the Navadurgas, and the related set of Human Values from those symbolisms. The author brings out the Human values of Unity, "oneness with Nature", Friendship, Passion, Surrender, Inner Strength, Grace, Growth, Humility, Endurance, Determination, Music, Calmness,Music, Creativity, Sustenance.

Human Values can be materialistic or spiritual. Human Values go much beyond truth,honesty,peace etc that are used in common parlance. Melody, rhythm and words can help take them beyond the senses, into the core of the human being, thereby potentially reinforcing the much needed Human Values

Bibliography

Books

- Coomaraswamy Ananda. 2013. The Dance of Shiva. Rupa Publications: New Delhi
- Hiriyanna, M. 1997. Art Experience. Indira Gandhi National Centre For the Arts: New Delhi
- Rokeach, Milton. 1973. The Nature of Human Values. The Free Press: New York
- Rajagopalachari, C. 2001. Ramayana. Bhavan's Book University. Mumbai
- Sambamoorthy, P. 2013. South Indian Music. Book 1. The Indian Music Publishing House: Chennai
- Saraswathi, Chandrasekhara. 2014. The Vedas. Bharatiya Vidya Bhavan: Mumbai
- Tejomayananda, Swami. 1994. Hindu Culture – An Introduction. Central Chinmaya Mission Trust: Mumbai
- Tripathi, A N. 2009. Human Values. New Age International (P) Ltd: New Delhi

Websites for Lyrics of Compositions and General Meaning

- KamalambaSamrakshatumAm. http://www.shivkumar.org/music/kamalambasamrakshatu.htm. Last seen on Nov 6 2021
- Narthana Samrajya Samrakshini. Composed by the author himsel

भारतीय संस्कृति एवं लोक संगीत

रीनु शर्मा

असिस्टेंट प्रोफेसर, संगीत
एमडीएसडी गर्ल्स कॉलेज, अंबाला

भूमिका

भारतीय संस्कृति विश्व की सबसे पुरानी संस्कृति है! भारत में कई महाराजाओं ने राज किया और सब ने अपने संस्कृति परंपराओं और रीति-रिवाजों की विशेष छाप छोड़ी। भारतीय संस्कृति में लोक संगीत एक अहम भूमिका निभाता है। लोक संगीत से अभिप्राय आम जनता द्वारा गाए जाने वाले गीतों से है और भारतीय संस्कृति में यह गीत एक अहम भूमिका निभाते हैं। जैसा कि हम सब जानते ही हैं कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है भारत में सभी त्योहारों को बड़े ही आनंद और हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है जैसे होली, दीपावली, दशहरा, दुर्गा पूजा इत्यादि। सभी भारतीय एक दूसरे के धर्म, संस्कारों और त्योहारों का सम्मान करते हैं भारतीय संस्कृति अपने प्रसिद्ध साहित्य, दर्शन, कला और संगीत इसमें चाहे शास्त्रीय संगीत हो या लोक संगीत दोनों ही के लिए दुनिया भर में प्रसिद्धि पा चुकी है। जिस तरह से भारत में अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं उसी तरह अनेक प्रांतों में विभिन्न लोक गीत गाए जाते हैं जो कि उनकी संस्कृति की धरोहर माने जाते हैं! प्रत्येक प्रांत के लोग अपनी संस्कृति का उजागर अपने लोकगीतों के माध्यम से करते हैं।

मुख्य घटक

संस्कृति, भारत, लोक संगीत, मैलिनोवस्की के

संस्कृति का अर्थः-

"संस्कृति किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों के समग्र स्वरूप का नाम है, जो उस समाज के सोचने, विचारने, कार्य करने के स्वरूप में अन्तर्निहित होता है।"[1]

सामान्य अर्थ में कहा जाए तो संस्कृति सीखे हुए व्यवहारों की संपूर्णता है लेकिन संस्कृति की अवधारणा इतनी विस्तृत है कि उसे एक वाक्य में परिभाषित करना असंभव है! वास्तव में मानव जाति द्वारा प्रभावित प्राकृतिक शक्तियों को छोड़कर जितनी भी मानवीय परिस्थितियाँ जो हमारे चारों ओर हैं और हमें प्रभावित करती हैं उन सभी की संपूर्णता को हम संस्कृति कहते हैं और इस प्रकार संस्कृति के इस चक्कर को ही हम सांस्कृतिक पर्यावरण कहते हैं! अर्थात यह भी कहा जा सकता है कि संस्कृति एक व्यवस्था है जिसमें हम जीवन के प्रतिमानो, व्यवहार के तरीकों, अनेकानेक भौतिक व अभौतिक प्रतीकों, परंपराओं, विचारों, सामाजिक मूल्यों, मानवीय क्रियाओं और आविष्कारों को शामिल करते हैं! "इस प्रकार संस्कृति मानव जनित मानसिक पर्यावरण से सम्बंध रखती है जिसमें सभी अभौतिक उत्पाद एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्रदान किये जाते हैं!"[2] पहले समय के वायु पुराण में धर्म,

अर्थ, काम तथा मोक्ष विषयक मानवीय घटनाओं को ही संस्कृति के अंतर्गत लिया जाता था इसका तात्पर्य यह है कि मानव जीवन के दिन प्रतिदिन के आचार विचार जीवन शैली तथा कार्य व्यवहार ही संस्कृति कहलाती थी! साधारण शब्दों कहाँ जाए तो मानव समाज के धार्मिक, दार्शनिक, कलात्मक, नीतिगत विषयक कार्य-कलापों, परंपरागत प्रथाओं, खान.पान, संस्कार इत्यादि के मेल को संस्कृति कहा जाता है! कई विद्वानों का मत यह भी है कि संस्कार का परिवर्तित रूप ही संस्कृति कहलाता है!

अब मैं चर्चा करूंगी संस्कृति की व्यापकता पर, "निर-विज्ञान में संस्कृति शब्द का प्रयोग अत्यंत व्यापक अर्थ में हुआ है! प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक "मैलिनोवस्कीके" अनुसार "मनुष्य जाति की समस्त सामाजिक विरासत या मानव की समस्त संचित सृष्टि का नाम ही संस्कृति है!"[3] इसका अर्थ यह हुआ कि संस्कृति के अंतर्गत मानव निर्मित वह सतुल वातावरण आता है, जिसे मानव जाति ने अपनी ही कल्पना के अनुसार ज्ञान-विज्ञान और परिश्रम व कौशल के द्वारा रचित कर प्राकृतिक जगत के ऊपर एक सब निर्मित कृत्रिम जगत स्थापित किया है!

भारतीय संस्कृतिः-

यह माना जाता है कि भारत विविधताओं का देश है भारत एक ऐसा देश है जहां हर धर्म जाति विभिन्न संस्कृति और अलग-अलग विचारधाराओं के लोगों का समावेश है लेकिन इन सबके बावजूद भी भारत के सभी देशवासी मिल जुल कर रहना ही पसंद करते हैं अनेकता में ही एकता का निवास होता है और यही भारत देश की विशेषता है! "भारतीय संस्कृति की मेहता भारतीय संस्कृति विश्व के इतिहास में कई दृष्टि से विशेष महत्व रखती है!"[4] यह संसार की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है! भारत का राष्ट्रगान जन गण मन अधिनायक जया हे जोकि रविंद्र नाथ टैगोर जी ने लिखा है देश की संस्कृति और उनके मूल्यों को उजागर करता है! भारत देश को बहुत सी ऐसी परिस्थिति और चुनौतियों का सामना करना पड़ा लेकिन कोई भी भारत की बुनियाद को हिला न सका!

भारत देश में हर संस्कृति के लोग रहते हैं और सब तरीके के लोगों के अलग-अलग त्योहार यहां पर मनाए जाते हैं! भारत में 29 राज्य और 7 यूनियन टेरिटरीज है! सभी भारत के राज्यों में अलग -अलग भाषाएं बोली जाती हैं और सभी राज्यों के अलग अलग लज्जतदार पकवान हैं और सभी इन्हें मजे से खाते हैं! सभी राज्यों का अपना एक विचित्र अद्भुत और खूबसूरत इतिहास है और रहस्य में संस्कृति है जो बाकी देशों से बिल्कुल अलग है! भारतीय संस्कृति में बच्चों को नैतिक मूल्यों और शिष्टाचार के पाठ पढ़ाए जाते हैं! भाईचारा, सम्मान, आदर, इंसानियत सब भारतीय संस्कृति के मूल्य हैं भारत में रहने वाले सभी लोग अपने धर्म रीति-रिवाजों और परंपराओं की रक्षा करते हैं और उनका पालन भी करते हैं! भारतीय संस्कृति में मनुष्य की सोच और उसके गुणों को प्राथमिकता दी जाती है यहां के लोग विनम्रता पूर्वक वार्तालाप करते हैं और अतिथियों का सम्मान बड़े ही श्रद्धा से करते हैं!"[5] इस संस्कृति में जैसा अद्भुत समन्वय है वह मानवता के लिए एक श्रेष्ठतम देन है। इस संस्कृति की विशेषता ही यह है कि वह हर बात, हर पक्ष के लिए राजी है तथा और तो और, असत्य को भी परमात्मा की छाया के रूप मान्यता देती है! क्योंकि लक्ष्य है सत्य और असत्य से ऊपर उठकर, उसका अतिक्रमण करके यह जानने की चेष्टा कि पूर्णत्व है क्या?"[6]

भारतीय संस्कृति का इतिहास

भारतीय संस्कृति विश्व की सबसे पुरानी संस्कृति है! भारतीय संस्कृति की जागरूकता फैलाने के लिए स्कूलों और कॉलेजों में कई तरह की भाषण वाद-विवाद और निबंध लेखन जैसी प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती हैं ताकि विद्यार्थियों का भारतीय संस्कृति की ओर रुझान हो सके और वे इसका अध्ययन कर सकें! यही नहीं भारतीय संस्कृति का गहराई से अध्ययन करने के लिए विश्व के बहुत

से कोन से वैज्ञानिक यहां पर आते हैं!" भारत की राष्ट्रीय भाषा हिंदी है! 22 अधिकारिक भाषा और 400 से ज्यादा अन्य भाषाएं बोली जाती हैं यहां पर!"[7] "भारत देश में हर एक नागरिक आजाद है और वह किसी भी धर्म का पालन कर सकता है!"[8] यह माना जाता है कि सभ्यता और संस्कृति दोनों में फर्क है लेकिन यह फिर भी एक-दूसरे से जुड़ी हुई होती हैं! हम भारतीयों का रहन-सहन, पहनावा सब कुछ एक दूसरे से अलग है लेकिन फिर भी इन सब विविधताओं के पश्चात भी हम सब एक हैं, एक माला में जैसे विभिन्न प्रकार के फूल होते हैं सब की सुगंध अलग-अलग होती है लेकिन सब एक साथ ही विराजमान होते हैं! "उसी प्रकार भारत में सभी राज्यों की विविधताओं के होते हुए भी सब एकता में विश्वास रखते हैं!"[9] भारतीय इतिहास अपने धार्मिक ग्रंथों के लिए लोकप्रिय माना जाता है। विदेशों से लोग इनके बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए यहां आते हैं और हमारे संस्कृति से प्रभावित होकर उसका गहन अध्ययन करते हैंए विभिन्न राज्यों के त्योहारों के दौरान अलग-अलग मिठाईयाँ बनती हैं!

बाइबल हो या कुरान या महाभारत या रामायण सब धर्मों का सम्मान भारतीय संस्कृति में बड़ी खूबी के साथ किया जाता है और सभी भारतीय इसका सम्मान तहे दिल से करते हैं! भारत सांस्कृतिक और धार्मिक रूप से पूरी दुनिया भर में अलग है यहां के लोग मिलजुलकर "सारे जहां से अच्छा हिंदुस्तान हमारा" गाते हैं जो हमारे देश की संस्कृति को उजागर करता है! लोगों के जीवन में संस्कृति और सभ्यता में नयापन मूल्यों का समावेश हुआ है हम अपने बड़े बुजुर्गों से भारतीय संस्कृति और इतिहास की कई कहानियां सुनते हैं और प्रभावित होते हैं! यह कहा जा सकता है कि आत्मदर्शन ही भारतीय संस्कृति का निचोड़ है आज भी भारत का

चरवाहा गाथा सुनाई देता है "प्यारे मन की गठरी खोल उसमें लाल भरे अनमोल!"[10]

लोक संगीत

''लोकगीत लोक के गीत हैं। जिन्हें कोई एक व्यक्ति नहीं बल्कि पूरा लोक समाज अपनाता है। सामान्यतः लोक में प्रचलित, लोक द्वारा रचित एवं लोक के लिए लिखे गए गीतों को लोकगीत कहा जा सकता है। लोकगीतों का रचनाकार अपने व्यक्तित्व को लोक समर्पित कर देता है। शास्त्रीय नियमों की विशेष परवाह न करके सामान्य लोक-व्यवहार के उपयोग में लाने के लिए मानव अपने आनन्द की तरंग में जो छन्दोबद्ध वाणी सहज उद्भूत करता है। वही लोकगीत है।''[11]

इस प्रकार लोकगीत शब्द का अर्थ है।

1. लोक में प्रचलित गीत
2. लोक-रचित गीत
3. लोक-विषयक गीत

''लोकगीत तो प्रकृति के उद्गार हैं। साहित्य की छंदबद्धता एवं अलंकारों से मुक्त रहकर ये मानवीय संवेदनाओं के संवाहक के रूप में माधुर्य प्रवाहित कर हमें तन्मयता के लोक में पहुंचा देते हैं। लोकगीतों के विषय, सामान्य मानव की सहज संवेदना से जुड़े हुए हैं। इन गीतों में प्राकृतिक सौंदर्य, सुख-दुःख और विभिन्न संस्कारों और जन्म-मृत्यु को बड़े ही हृदयस्पर्शी ढंग से प्रस्तुत किया गया है।''[12] संगीतमयी प्रकृति जब गुनगुना उठती है लोकगीतों का स्फुरण हो उठना स्वाभाविक ही है। ''ग्रामीण भाषा में गाए जाने वाले लोकगीत जिनमें वहां की सभ्यता एवं संस्कृति की झलक मिलती हो लोकगीत कहलाते हैं या यह भी कहा जा सकता है कि जिन गीतों का प्रचलन गांव में होता है वे लोकगीत कहलाते हैं! ''लोकगीत अशिक्षित सामान्य जनों के उपयोग का कलात्मक माध्यम है। लोकगीत अपनी सरलता और प्रभाविता के कारण ही मोहक होते हैं।''[13]

भारत का लोक संगीत

भारत में लोक संगीत अलग-अलग राज्यों में विभिन्न प्रकार से गाया व बजाया जाता है! अर्थात विभिन्न राज्यों, जातियों तथा जनजातियों के हिसाब

से अलग-अलग हैं। भारत के अलग-अलग क्षेत्र में अलग-अलग लोक गीत विकसित हुए हैं। भारत में लोक.संगीत बहुत प्राचीन हैं। ''भारत के प्रमुख लोक संगीत इस प्रकार हैंः-

1. मदिगा दप्पू- आंध्र प्रदेश
2. माला जमदिका- आंध्र प्रदेश
3. बिहूगीत- असम
4. टोकरीगीत- असम
5. कामरूप लोकगीत- असम
6. गोलपरिया गीत- असम
7. पंडवानी- छत्तीसगढ़, राजस्थान, मध्य प्रदेश, झारखंड
8. बहुला- पश्चिम बंगाल
9. बटियाली- पश्चिम बंगाल
10. गरबा- गुजरात
11. दोहा- गुजरात
12. भावगीते- कर्नाटक, महाराष्ट्र
13. लावणी- महाराष्ट्र
14. पोवाडा- महाराष्ट्र
15. गोंधार- महाराष्ट्र
16. अभंग- महाराष्ट्र
17. ओड़िसी- ओड़िशा
18. संभलपुरी- ओड़िशा
19. महिया- पंजाब''

प्रमुख लोकगीत

लावणी - लावणी महाराष्ट्र का एक प्रमुख लोक संगीत है। यह संगीत उपकरण ढोलकी पर गाया जाता है। यह मुख्य रूप से महाराष्ट्र में प्रसिद्ध है, और कर्नाटक तथा मध्य प्रदेश में भी लावणी का प्रचलन है।

पंडवानी - पंडवानी राजस्थान का एक लोक संगीत है। यह छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, राजस्थान और झारखंड में प्रसिद्ध है।

बटियाली - इसकी उत्पत्ति वर्तमान बांग्लादेश के भाटी इलाके में हुई। यह पश्चिम बंगाल में प्रसिद्ध है।

अभंग - विट्ठल या विठोबा की स्तुति में अभंग नामक छंद गाये जाते हैं। बिहूगीत- बिहूगीत असम का लोकगीत है जो बिहू त्यौहार के अवसर पर गया जाता है।

संभलपुरी - यह उड़ीसा का एक संगीत है। यह मुख्य रूप से पश्चिम उड़ीसा में स्थित है।

पोवाडा - पोवाडा महाराष्ट्र का एक लोक संगीत है। यह वीर रस पर आधारित लोक संगीत है।

गरबा- गरबा गुजरात का अन्य प्रसिद्ध लोकगीत और नृत्य है। कामरूप लोकगीत– यह असम का लोकगीत है। यह असम के कामरूप जिले में विकसित हुई।

भजन और कीर्तन - एक भजन या कीर्तन एक हिंदू भक्ति गीत हैए जो अक्सर प्राचीन मूल का है। कीर्तन वेद की परंपरा में गहराई से निहित हैं। भजनों में अक्सर दिव्य भाषा में सरल गीत होते हैं।

भारतीय संस्कृति में लोक संगीत की उपयोगिता : भारतीय संस्कृति विभिन्न प्रदेशों के लोक गीतों में बसे साकार स्वरूप के दर्शन व उनकी सूक्ष्म अन्तरात्मा द्वारा पहचानी व देखी जा सकती है। अप्रवीण व्यक्ति भी इनकी सादगी, भोलेपन और माधुर्य को समझ सकता है जो विभिन्न दृष्टिकोणों से समरूपता को लिए हुए है। हमारे देश की संस्कृति और प्रकृति बड़ी अनूठी है इसकी गोद में असंख्य दुर्लभ चीजों का समागम है यहां अनेक प्रकार के पर्वों का सिलसिला लगा ही रहता है और इन उत्सव में अपने-अपने प्रांतों में अपनी-अपनी भाषाओं में गाए जाने वाले गीतों को लोकगीतों की श्रेणी में रखा जाता है! लोकगीतों के माध्यम से व्यक्ति अपने मन के अनछुए भावों की अभिव्यक्ति करने में सक्षम होता है वह अभिव्यक्ति खुशी, व्यथा, विस्मय, आल्हाद, भक्ति और वात्सल्य किसी भी रूप की हो सकती है इन लोकगीतों के माध्यम से संपूर्ण भारतवर्ष के निवासी अपने अपने भावों विचारों का आदान-प्रदान काफी समय से करते आए हैं।

भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विविधता ने लोक संगीत के विविध रूपों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। भारत के लगभग सभी क्षेत्रों का अपना लोक संगीत है जो कि क्षेत्र के लोग जीवन को प्रतिबिंबित करता है! ''भारतीय लोक

संगीत का सबसे प्राचीन उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलता है जो लगभग 1500 ईसा पूर्व के हैं कुछ विद्वान और विशेषज्ञ मानते हैं कि भारतीय लोक संगीत इस राष्ट्र जितना ही पुराना हो सकता है। उदाहरण के लिए संपूर्ण भारत में प्रचलित और प्रसिद्ध लोक संगीत "पंडवानी" हिंदू महाकाव्य "महाभारत" जितना ही पुराना माना जाता है।"[14] लोकगीतों की उत्पत्ति का कारण तथा इनका प्रयोग अधिकांशतः पूरे भारत में एक जैसा होता है केवल इन गीतों को गाने का तरीका अलग-अलग प्रदेशों में वहां की संस्कृति के अनुसार भिन्न हो सकता है। लोक संगीत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह हमें उन पूर्वजों द्वारा दी गई संस्कृति को जानने का अवसर देते हैं। नृत्य, लोक संगीत और अन्य कलाएं आदिम समाजों में भी उपलब्ध थे नृत्य और लोक संगीत भारत के आदिम समाजों के जीवन के अक्षुण्य अंग थे। आदिम लोग सामान्यतः संगीत के साथ नृत्य करते थे। भिन्न-भिन्न प्रकार के वाद्य यंत्र जैसे ढोल, बांसुरी आदि इसमें प्रयोग किए जाते थे विभिन्न मौकों पर अवसर के अनुसार लोक गीतों को गाया जाता है उदाहरण के लिए शादी के अवसर पर विवाहित युगल से संबंधित गाने गाए जाते हैं धार्मिक अवसरों पर देवी-देवताओं से जुड़े गीत गाए जाते हैं महिलाएं घरों में काम करते समय लोकगीत गाती हैं पुरुष खेतों में काम करते समय यह लोकगीत गाते हैं। लोकगीत हमारे जीवन विकास की गाथा हैं। उनमें जीवन के सुख-दुःख, मिलन-विरह, उतार-चढ़ाव की भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। सामाजिक रीति एवं कुरीतियों के भाव इन लोकगीतों में हैं। इनमें जीवन की सरल अनुभूतियों एवं भावों की गहराई है। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी का कहना है कि लोकगीत का मूल जातीय संगीत में है।"[15]

इस प्रकार लोक संगीत भारतीय संस्कृति में बहुत अधिक उपयोगिता रखते हैं अगर यह कहा जाए कि लोक संगीत ही भारतीय संस्कृति की धरोहर है तो यह अतिशयोक्ति न होगी।

संदर्भ सूची

1. "Meaning of "culture"". Cambridge English Dictionary. मूल से 23 जुलाई 2015 को पुरालेखित, अभिगमन तिथि July 26, 2015
2. https://hi.m.wikipedia.org>wiki
3. m.bharatdiscovery.org>india>
4. भारतीय संस्कृति का संक्षिप्त इतिहास, हरिदत्त वेद अलंकार, पृष्ठ 9
5. भारतीय संस्कृति कोष, लीलाधर शर्मा
6. भारतीय संस्कृति, लेखक प्रोफेसर शिवदत्त ज्ञानी, पृष्ठ संख्या-11
7. सम्मेलन पत्रिका लोक-संस्कृति अंक. पृ. 25
8. https://hi.m.wikipedia.org
9. https://hindigktoday.in
10. लोकगीतों के संदर्भ और आयाम, शान्ति जैन, प्रकाशक : विश्वविद्यालय प्रकाशन, प्रकाशित वर्ष : 1999, आईएसबीएन : 81-7124-214-6
11. https://gadyakosh.org

थाती

राजस्थान की लोकसंस्कृति का शाश्वत जीवनदर्पण : लोकसंगीत

डॉ. आकांक्षा गुप्ता

असिस्टेन्ट प्रोफेसर
संगीत (गायन)
जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कानपुर

सारांश :-

भारतीय जनजीवन सदा से संगीतमय रहा है। प्रत्येक उत्सव-पर्व-त्यौहार, धर्म, संस्कार पर यहाँ समयों चत गीत गाये जाते हैं एवं चित्त की प्रसन्नता के लिए दैनिक चर्चा का अंग संगीत ही है। भारत के विभिन्न प्रान्तों के ग्रामीण अंचलों में फैला हुआ लोक संगीत मानवीय उल्लास की चटक चाँदनी है। किसी भी राष्ट्र, प्रदेश और जनपद की संस्कृति एक अमूल्य निधि मानी जाती है। इसके अतीत का ऐतिहासिक दर्शन सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में दृष्टिगोचर होता है। समस्त राजस्थानी अपनी गौरवमयी संस्कृति व संगीत के लिए एक विशिष्ट स्थान व पहचान बनाये हुए हैं। इसका प्रत्येक क्षेत्र अपनी संस्कृति तथा सांगीतिक विशेषताओं के लिए प्रसिद्ध हैं राजस्थान के लोक संगीत में वहाँ के रीति-रिवाज, वेशभूषा, खान-पान, पर्व, तीज-त्यौहार इत्यादि का वर्णन किया जाता है। परिवेश, स्थिति, भाव के अनुरूप लोक-वाद्यों का प्रयोग, लोकनाट्य, लोकनृत्य इत्यादि वहाँ की संस्कृति के परिचायक हैं।

इस अनुपम निधि पर दृष्टिपात करने से अनुभव होता है कि इनके प्रति किये गये संरक्षण के उपाय केवल मात्रा प्रसाद भर ही हैं। इस ओर केवल सरकार द्वारा ही नहीं बल्कि व्यक्तिगत भी प्रयास किये जाने चाहिए। यह एक दुर्लभ सम्पत्ति है, जो हमें विरासत में मिली है तथा जिसे हम खो रहे हैं। अतः हमारा कर्त्तव्य है कि हम इसका संरक्षण करें इसका ध्यान रखें।

संकेत शब्द :

ग्रामीण, जनमानस, लोकगीत, लोकवाद्य, लोकनृत्य, संस्कृति

राजस्थान की लोकसंस्कृति

भारतीय संस्कृति की अंतस्थली को संगीतामृत से सिंचित करने में लोकसंगीत की विशिष्ट उपादेयता है। लोकसंगीत जनमानस की सहज अभिव्यक्ति के साथ-साथ सामाजिक परिवेश का दर्पण भी हैं अतः कहा जा सकता है कि हमारा संगीत सामाजिक है तो समाज सांगीतिक है।

''लोक'' शब्द एक बहुत प्राचीन शब्द है। ''लोक'' शब्द का अर्थ उस जनसमाज से लगाया जा सकता है जो गहराई से पृथ्वी पर फैला रहता है। इस लोक शब्द में सभी जन समुदाय शामिल होते हैं। वर्तमान समय में जब हम ''लोक'' शब्द का प्रयोग करते हैं तो यह एक महत्वपूर्ण जन समुदाय की ओर संकेत करता है। ''लोकगीत'' शब्द का अर्थ वास्तव में उस कृति से है जो गाया जाए अथवा गेय हो।

इस प्रकार प्राचीन मानव सभ्यता एवं संस्कृति के साथ लोकगीत का सम्बन्ध सदियों से चला आ रहा है। ये लोकगीत व्यक्ति की सामूहिक अभिव्यक्ति को व्यक्त करते हैं। इन लोकगीतों में गेयता प्रधान तत्व होता है। लोकगीत ''लोक'' मानव के सभी प्रकार के भावों को अभिव्यक्त करती है और इसमें इनकी मौखिक परम्पराए भी जीवित रहती है।

जनसाधारण केजीवन का हर पहलू सांगीतिक स्वरबद्ध है। जीवन के विभिन्न पड़ावों के साथ-साथ उससे सम्बद्ध स्थान विशेष का प्रभाव भी लोक सांगीतिक धाराप्रवाह में स्पष्ट होता है। अतः उस स्थान विशेष की मिट्टी की सौंधी सुगन्ध अर्थात् लोकसंस्कृति की अमिट छाप उसमें अंकित रहती है। हमारे लोक संगीत में सामाजिक परिवेश लोक संस्कृति मुखरित होती है। जिसमें स्थान विशेष के रीति-रिवाज, पर्व-त्यौहार, मौसम, लोकाचार, लोक आराध्य आदि सभी पहलुओं का चित्रण होता है। समृद्धवान भारतीय संस्कृति में 'राजस्थान' का नाम सदैव से ही सर्वोच्च स्थान पर रहा है। जिसकी सांगीतिक परम्परा यहाँ की लोक संस्कृति की अग्रदूत कही जा सकती है। इस सांगीतिक, कलात्मक परम्परा का बहुत बड़ा अंश हमारे लोक गीतों में समाहित है। इनके विविध रूप आज भी लोक जीवन की परम्परा को विकसित एवं उल्लासित करने में सहायक होते हैं।

राजस्थान के लोकगीत लोकसंस्कृति के परिचायक हैं। ये लोकगीत तीज-त्यौहार से लेकर विभिन्न पारिवारिक संस्कारों, उत्सवों आदि अवसरों पर भाव विभोर होकर गाये जाते हैं। इन लोकगीतों में राजस्थान के रीति-रिवाज, वेशभूषा, खान-पान, मूल-विश्वास, पर्व-उत्सव, लोक दर्पण आदि को देखकर हमें यहाँ की पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

राजस्थान लोक संगीत के निम्नलिखित दो रूप प्रचार में है-प्रथम कोटि के लोकसंगीत में वे लोकगीत आते हैं जो जनसाधारण के द्वारा विभिन्न अवसरों पर गाये जाते हैं तथा दूसरी कोटि में वे लोकगीत आते हैं, जो व्यवसायिक जाति के द्वारा गाया जाता है।

इन लोकगीतों में हमें राजस्थान की लोकसंस्कृति के दर्शन होते हैं। उनका निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है-

संस्कार सम्बन्धी लोकगीत :-

बधावा, चाक, भात, रतजगा, हल्दी, घोड़ी आदि संस्कार सम्बन्धी प्रमुख लोकगीत राजस्थान में विवाह आदि के अवसरों पर गाये जाते हैं।

व्यवसायिक जातियों के लोकगीत :-

राजस्थान में अनेक जातियाँ अपनी जीविका चलाने के लिए इन लोकगीतों को गाती है। ये लोकगीत विवाह-त्यौहार आदि अवसरों पर गाये जाते हैं, जिसमें लोगों का मनोरंजन भी किया जा सके तथा व्यक्ति अपनी जीवन यापन के लिए धन भी अर्जित कर कसे। इन लोकगीतों में क्षेत्रीय परिवेश स्थिति व भावों के अनुरूप गीतों के साथ-साथ लोक वाद्यों का प्रयोग भी किया जाता है।

भील जाति के लोकगीत :-

भील जाति के लोगों का जीवन नृत्य, गीतों एवं हास्य विनोद से परिपूर्ण होता है। भीलों के लोकगीतों में उनकी जीवन की पद्धति एवं संस्कृति के पूर्णता के दर्शन होते हैं। राजस्थान के इन लोकगीतों को देखकर हम यह कह सकते हैं कि यहाँ के लोकगीतों में सभी प्रकार के रंगभरे हुए दिखाई देते हैं।[1]

इसी प्रकार राजस्थान के लोक नृत्य भी लोक संस्कृति के परिचायक हैं। इस प्रकार इन वाद्यों की गूंज हमें 'लोक संस्कृति के दर्शन होते हैं।

राजस्थानी लोकगीतों की चर्चा होते ही एक राजपूती शान-बान विरह गीत, चक्की पीसते हुए 'गृहणियों के हरजस', मेलों, ऋतुओं व त्यौहारों के अवसरों पर गाये जाने वाले गीत, जन्म व विवाह पर चाव भरे गीत संगीत इत्यादि का एक मधुर सिलसिला शुरू हो जाता है। लोक संगीत में शास्त्रीय नियमों का पालन नहीं किया जाता, लेकिन राजस्थानी

लोकगीतों को शास्त्रीय राग विधान की दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि बिलावल, काफी, देश खमाज, सारंग, पहाड़ी, सामेटी, मारू तथा सिन्धु, मांड इत्यादि राग मुख्यतः प्रयुक्त होते हैं। इन रागों के अत्यन्त शुद्ध रूप भी मिलते हैं और मिश्रित भी।

राजस्थानी लोकगीतों में मांड एक ऐसी पद्धति है जिसे शास्त्रीय संगीत को राजस्थान की विशेष देन के रूप में लिया जा सकताहै। माँड का एक बहुत प्रचलित गीत निम्न है-

केसरिया बालम आओनी, पधारो म्हारै देस
मारूँ थारै देस में निपजै तीन रतन
इक ढोलो, दूजी मरपण उनर तीजों कुसुमल रग
पधारो म्हारै देस

सिन्धु राग युद्ध के लिए गाया जाता रहा हैं एक दोहा देखिए जो नायिका को इंगित कर रहा है कि तेरे लिए युद्ध हो रहा है, सिन्धु राग में गाया जाता है-

बधनो रे केसर बटे गावे संघवा गीत
तुझ गोरी रे कारणे, बाज रहा रणजीत 2

स्वर और लय संगीत के प्रमुख तत्व हैं। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नगण्य है। ग्रामीण वतावरण में होने वाले अनुभवों को जब वे अपनी भाव उर्मियों द्वारा प्रकट करते हैं तो लय स्वतः ही आ मिलती है, उन्हें ताल का कोई अर्थ मालूम नहीं है। लोकगीतों में गति और यति का विशेष महत्व है।

राजस्थान के प्रमुख नृत्य -

1. नृत्यों का सिरमौर - घूमर
2. व्यावसायिक नृत्य - भवाई, तेरहताली, कच्छी घोड़ी
3. भीलों का नृत्य - गीर, गवरी (गौरी) घूमर, नेजा, हिचकी, युद्ध नृत्य
4. गिरानियों के नृत्य - गरबा, वालर, गौर, चंबा
5. कालबेलियों के नृत्य - शंकरिया, पणिहारी, इण्होणी, चकरी पूंगी
6. शेखावटी के नृत्य - गींदड़, कच्छी घोड़ी चंग
7. जोधपुर के नृत्य - डांडिया, घुड़ला
8. जालौर के नृत्य - ढोल-झालर
9. भरतपुर-अलवर के नृत्य - बमरसिया
10. गूजर जाति का नृत्य - चरी नृत्य[3]

ये सभी लोकनृत्य राजस्थान की लोक-संस्कृति को प्रदर्शित करते हैं। लोकनृत्य की तरह राजस्थान के लोक वाद्य भी लोक संगीत के महत्वपूर्ण अंग होते हैं। ये लोकवाद्य गीत व नृत्यों में माधुरी की वृद्धि के साथ-साथ वातावरण निर्माण एवं भावाभिव्यक्ति को आकर्षित बनाने में सहायक होते हैं। अतः राजस्थान के लोक संगीत में यहाँ के परिवेश मिट्टी, वातावरण एवं भावों के अनुरूप लोकवाद्यों का प्रचुर विकास हुआ है।

संक्षिप्त रूप में लोक वाद्यों का परिचय यहाँ पर दिया जा सकता है।

तत - इकतारा, दोतारा, चौतारा, जंतर, खाज, तन्दूरो
घन - डंडिया, घंटा, थाली, घंटी, झांझ आदि
सुषिर - अलगोजा, बंशी, मोर, चंग, पेली, तोटो आदि
अवनद्य - चंग, डफ, खंजरी, ढोलक, डमरू, ढोल आदि[4]

इसी प्रकार राजस्थान में लोकनाट्यों के जितने विभिन्न रूप में देखने को मिलते हैं उतने शायद ही कहीं देखने को मिले। ये नाट्य ख़्याल, स्वांग तथा लीलाओं के रूप में विशेष रूप में विशेष प्रसिद्ध हैं। ख़्यालों की यहाँ कई रंग शैलियां मिलती हैं। इनमें माच के ख्याल सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। इनमें भी तुर्रा कलंगी के ख़्यालों की बड़ी समृद्ध पम्परा पाई जाती है। अन्य ख़्यालों में मारवाड़ी, कुचामणी, शेखाकटी, चिड़ावी, हाथरसी, अलीबक्षी, किशनगढ़ी, नौटंकी तथा जयपुरी ख़्याल, बीकानेरी रम्मतें तथा

कठपुतलियों के खेल विशेष प्रचलित हैं। ये ख़्याल लिखित तथा मौखिक दोनों रूपों में मिलते हैं। भीलवाड़ा, जोधपुर, जैसलमेर, किशनगढ़, अजमेर, जयपुर आदि इनके प्रमुख प्रकाशन स्थल रहे हैं।

यहाँ के स्वांग भी कई रूपों में अभिनीत होते हैं। ब्याह-शादियों पर औरतों द्वारा प्रदर्शित ख्याल-झामटड़ों तथा खूंटियों-खोड़ियों में गृहस्थ जीवन की गई सुन्दर झांकियाँ देखी जाती हैं।

इस प्रकार राजस्थानी लोक संगीत जन समुदाय के सारे क्रियाकलापों तथा उनमें बसे संगीत, अभिनय, नृत्य तथा वाद्यों के द्वारा यहाँ की लोक संस्कृति का पूर्ण परिचय देता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. भट्नागर धर्मेन्द्र, सिंघल, पी.के. राजस्थान, 2004, वार्षिक सन्दर्भ ग्रन्थ, किरण प्रकाशन, जयपुर 2004, पृ.सं. 615
2. राजस्थानी लोकगीतों की एक परिक्रमा-प्रमोदशाह, संगीत नवम्बर 2005, पृ.सं. 52
3. भट्नागर धर्मेन्द्र, सिंघल, पी.के. राजस्थान, 2004, वार्षिक सन्दर्भ ग्रन्थ, किरण प्रकाशन, जयपुर 2004, पृ.सं. 609
4. भल्ला, एल.आर. सामयिक राजस्थान, कुलदीप पब्लिकेशन्स, जयपुर 1985, 2008, पृ.सं. 474

कोल जनजाति का लोक संगीत : मध्यप्रदेश के सन्दर्भ में

डॉ0 वेणु वनिता

सहायक आचार्या एवं
विभागाध्यक्षा, संगीत विभाग
कनोहरलाल स्नातकोत्तर महिला, महाविद्यालय, मेरठ

शोध सार :-

मानव मात्र लोक का अभिन्न अंग है। किसी भी सभ्यता से सम्बंधित मनुष्य में लोक की उपस्थिति सहज है। किसी भी समाज की लोक परम्पराएं सम्बन्धित समाज की अमूल्य धरोहर होती हैं। लोक परम्पराओं का आविर्भाव कहाँ से हुआ ये कह पाना अत्यंत दुस्तर है। लोक गीतों के सम्बन्ध में बात की जाय तो अन्य लोक परम्पराओं की ही भांति यहाँ भी इसके प्रणेता को जान पाना सुलभ नही है।

कोल जनजाति का लोक संगीत अत्यंत सरस है। इनके गीतों में इस समुदाय की अंतर्मन की भावनाओं को सहज ही देख सकते हैं। अनेक स्थान पर प्रयुक्त होने वाले गीतों तथा नृत्यों में मन की भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति मन मोहित कर लेती है। इन के गीतों तथा नृत्य में प्रयुक्त वाद्य भी अन्यन्त मनहर हैं। कोल समुदाय के लोक वाद्य की बनावट प्रकृति के अत्यंत निकट है।

सूचक शब्द

जनजाति, समुदाय, लोक, अवसर, पुरातन

प्रस्तावना :-

प्रस्तुत शोध-पत्र में मध्यप्रदेश में निवास करने वाले कोल समुदाय के लोक संगीत के विविध पक्ष पर प्रकाश डाला जाना प्रस्तावित है। कोल जनजाति के लोक संगीत में लोक गीत के अंतर्गत संस्कार गीत तथा अन्य अवसरों पर गाये जाने वाले अनेक गीतों का उल्लेख, कोल जनजाति के लोक वाद्यों का उल्लेख तथा कोल जनजाति के नृत्य तथा नृत्य में प्रयुक्त होने वाले गीतों का उल्लेख किया गया है।

उद्देश्य :-

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य कोल जनजाति के मनहर लोक संगीत के विविध पक्षों पर प्रकाश डालना है। इस शोध कार्य में कोल जनजाति के लोक संगीत के विविध पक्षों की सामग्री को लिखित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। यह कार्य भविष्य में किसी छात्रों, शोधर्थियों एवं जिज्ञासुओं के लिए सम्बन्धित विषय की तथ्य सामग्री के रूप में उपलब्ध हो सकेगी।

प्रस्तुत शोध-पत्र के लिए शोध सामग्री का संकलन पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं एवं साक्षात्कार के माध्यम से करने का प्रयास किया गया है।

विषय प्रवेश :-

लोक का अभिप्राय जन सामान्य से है। लोक का अस्तित्व अत्यंत प्राचीन समय से ही है। वेदों

को लोक का परिष्कृत स्वरूप कह सकते हैं। लोक में जन सामान्य की भावनाओं के अनुरूप सहज व्यवहार होता है। लोक की किसी भी परम्परा में शास्त्रीयता का बंधन नहीं होता है। लोक, जीवन की परिधि है। लोक में मनुष्य के सभी कृत्यों की सर्जना होती है। अतः कहा जा सकता है कि लोक का केंद्र मनुष्य है। लोक की धुरी के दो पहिये स्त्री तथा पुरुष हैं। श्री श्याम परमार जी के अनुसार 'लोक का उद्‌बोधन जन सामान्य के लिए है। लोक शब्द, विस्तृत भूभाग पर समस्त प्रकार के मानव के लिए अभिहित है। यह शब्द वर्ग भेद रहित व्यापक एवं प्राचीन परम्पराओं की श्रेष्ठ राशि सहित अर्वाचीन सभ्यता संस्कृति के कल्यानमय विकास का द्योतक है। समाज में प्रायः दो प्रकार की संस्कृतियों (ग्रामीण तथा नागरिक) का उल्लेख मिलता है किन्तु लोक दोनों में ही उपस्थित है।' लोक का विस्तार अत्यंत वृहद् है। लोक शब्द की प्रयुक्ति वैदिक काल से है इस सम्बन्ध में डॉ. रंजना त्रिपाठी जी लिखती है 'उपनिषदों में लोक शब्द का प्रयोग एकाधिक स्थानों पर देखने को मिलता है। ऋग्वेद में लोक के लिए 'जन' शब्द का प्रयोग दृष्टिगोचर होता हैं।'

लोक शब्द को जनसामन्य के लिए प्रयुक्त किया जाता है अतः लोक संगीत को जनसामान्य का संगीत कहा जाएगा। लोक संगीत जनसामान्य की अभिव्यक्ति का माध्यम है। इस माध्यम से जनसामान्य के अंतर्मन की भावनों को सहज अभिव्यक्ति होती है। लोक गीतों के सम्बन्ध में डॉ. निशात फात्मा जी कहती है 'लोक गीत को जन सामान्य की अभिव्यक्ति मानी जाती है। अतः इन गीतों में समाज के सुख-दुःख, आशा-निराशा, राग-बिराग, ईर्ष्या-द्वेष आदि मनोभावों का तथा रीति-रिवाज़, आचार-विचार, रहन-सहन, विश्वास, मान्यताओं एवं परम्पराओं आदि विभिन्न पहलुओं का सजीव चित्रण प्राप्त होता है।' लोक संगीत में जनसामान्य की भावनाएं तथा समस्याएं सहज ही दृष्टश्राव्य होती हैं। लोक संगीत में इस के रचनाकार का नाम सामान्यतः नहीं मिलता है। इस सम्बन्ध में डॉ. अरविन्द कुमार शर्मा जी कहते है 'लोक कवि गीतों का सृजन करते समय अपनी लेखनी से अधिक अपने कंठ और जीभ को प्रयुक्त करते है। फलस्वरूप मौखिक प्रक्रिया से ही गीत लोकप्रिय हो जाते हैं। ज्यों ही यह गीत दो-चार पीढ़ी तक आगे बढ़ते हैं, इसके मूल लेखक का नाम स्वतः ही धूमिल हो जाता है।'

जनजातियों के लोक गीत की ओर दृष्टिपात करने पर जनजातीय लोक परम्परा का उत्कर्ष सहज ही दृष्टश्राव्य होता है। जनजातियों द्वारा अपनी लोक परम्पराओं के निर्वहन में एक दृढ़ता दिखती है। अपनी लोक परम्पराओं के सशक्त निर्वहन के कारण जनजातियों की अपनी अलग पहचान है। जब आदि मानव अपनी सभ्यता के विकास के लिए क्रियाशील था ऐसे समय में आदि मानव का एक वर्ग विकास की इस दौड़ में पिछड़ गया। सभ्यता से दूर रहने वाले तथा अपनी पुरातन लोक परम्पराओं को समेटे हुए वर्ग को हम आज जनजाति अभिधान प्रदान करते हैं।

मध्य प्रदेश में निवास करने वाली कोल जनजातियों के लोक संगीत के सम्बन्ध में शोध के दौरान रेखांकित करने वाली बात है की कोल जनजाति हिन्दू संस्कृति के अत्यंत निकट है। इनके संस्कार तथा लोक परम्पराएं एवं मान्यताएं तथा दैवीय शक्ति के सम्बन्ध में मान्यताएं हिन्दू समुदाय से बहुत मिलता जुलता है। शोध पत्र का विषय कोल जनजाति के संगीत पर केन्द्रित है। अतः लेख के अग्र भाग में कोल जनजाति के लोक संगीत की चर्चा की जा रही है।

कोल जनजाति के संगीत सम्बंधित समुदाय की जनभावना का संगीत है। इनके गीतों में कोल समुदाय की दुःख, सुख, चुनौतियों तथा अनेक कठिनाइयों का चित्रण श्राव्य है। कोल जनजाति के लोग संस्कारों के अवसर पर गीत को विशेष महत्त्व देते हैं। सामान्यतः हिन्दू संस्कृति में किसी मांगलिक अवसर पर वैदिक मन्त्रों को जो आदरणीय स्थान प्राप्त है कोल जनजाति में यही स्थान गीतों को दिया गया है। कोल जनजाति में संस्कार गीत इस प्रकार हैं।

कोल जनजाति के लोक गीत

जन्म संस्कार गीत :-

पुत्र के जन्म के अवसर पर अति प्रसन्नता का वातावरण होता है कोल जनजाति के परिवार में पुरुष अधिक महत्त्व पाते हैं। इस के सन्दर्भ में मान्यता है कि वंश वृद्धि तथा परिवार का उत्कर्ष पुरुषों के पौरुष से ही सम्भव हो सकता है। पुत्र जन्म के समय सोहर के गायन का प्रचलन है। सोहर के गायन का समय पुत्र के जन्म के समय से आरम्भ होकर बरहवाँ के दिन तक रहता है। कोल जनजाति में प्रचलित सोहर की कुछ पंक्तियाँ अधोलिखित हैं -

कहाँ से आए शिव शंकर
कहाँ से आए शिव शंकर हो।
कहाँ से आए महरनिया कहाँ से आए भगवान।
मंडिला मोरा जगमग हो।
उत्तर दिशा से शिवशंकर,
पूरब दिशा से महरनिया।
मंडिला मोरा जगमग हो।
का लई के आए शिव शंकर,
का लई के आए महरनिया।
मंडिला मोरा जगमग हो।
नरियर लई के आए शिव शंकर,
बालक लेके महरनिया।
मंडिला मोरा जगमग हो।

भावार्थ :- सोहर की उक्त पंक्तियों में प्रश्नोत्तर है। प्रथम पंक्ति में प्रश्न है कि भगवान शंकर तथा माता पार्वती कहाँ से आए। इस प्रश्न के उत्तर में अगली पंक्ति का उद्धरण है। उत्तर है उत्तर दिशा से भगवान शंकर तथा पूर्व दिशा से माता पार्वती जी आयीं। पुनः प्रश्न है भगवान शंकर तथा माता पार्वती जी क्या ले के आये। इस प्रश्न का उत्तर है की भगवान शंकर नारियल ले के आये तथा माता पार्वती जी बालक ले के आयीं।

कोल जनजाति के सोहर में अलग अलग विषय वस्तु दृष्टश्राव्य होती है। इनकी विषय वस्तु मुख्यतः भगवान की कृपा जिसे पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई, अपनी सखियों से प्रसूता का सम्वाद, परिवार में प्रसन्नता का वर्णन इत्यादि होती है।

मानव मात्र में विवाह संस्कार अत्यंत महत्वपूर्ण है। सभी सभ्यता तथा संस्कृति के लोग इस संस्कार को सहर्ष स्वीकार करते हैं। कोल जनजाति में भी यह संस्कार अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्दू संस्कृति के समान ही कोल जनजाति में भी विवाह केवल एक संस्कार नहीं बल्कि अनेक प्रकार की पूजा-पाठ तथा अनेक परम्पराओं एवं विशेष उत्सव का एक मनमोहक संगम है। विवाह संस्कार में अलग अलग समय पर अनेक गीतों के गायन का प्रचलन है कुछ अवसर के नाम तथा उस अवसर पर गाये जाने वाले गीत की कुछ पंक्तियाँ अधोलिखित हैं।

तेल चढाव-मडवा गीत

कोल जनजाति में विवाह के समय दुल्हे-दुल्हन को तेल तथा हल्दी लगाने की प्रथा है इस अवसर पर महिलाओं द्वारा गाये जाने वाले गीत की कुछ पंक्तियाँ अधोलिखित हैं -

केखर सगरा खनाई है हो,
केखर भींट बंधाई है हो।
रामा का सगरा खनाई,
सीता का भींट बंधाई है हो।
तिलिया के तेल महंगा भे,
तिलिया घर जाई है हो।
तिलिया बिटउना है आडिल,
लेई कुलवा चढाई है हो।
कछिया का हरदी महंग भे,
कछिया घर जाई है हो।
कछिया बिटउना है आडिल,
लेई ठिकुरिया चढाई है हो।
ढ़ीकुआ से छिनरव गीरी उतायन,
पड़े-पड़े मिठुलानी है हो।
बधावा का दुबी है छ्छड़ी,
बधउना घर जाई है हो।
केखर सिरहा चढत है, हरदी और दूबी।
सीता के सिरहा चढत है, हरदी और दूबी।
राम के सिरहा चढत है, हरदी और दूबी।

उक्त गीत के माध्यम से स्त्रियों का भाव है कि, तालाब किसने खुदवाया और तालाब की दीवार किसने बंधवाई? राम जी ने तालाब खुदवाया और सीता जी ने दीवार बंधवाया। तेल महँगा है तेली के घर तेल लेने जाओगी तो वो कोल्हू चलाएगा। काछी की हल्दी भी महँगी है, यदि हल्दी लेने जाओगी तो वो ढेकी चलाएगा क्योंकि उसके बेटे अड़ियल हैं। जब वह ढेकुआ (कुंएं से पानी निकालने का साधन) चलाने लगी तो गिर गई और पड़ी-पड़ी ही मीठी बात करने लगी, दूब भी ले आना किसके सिर हल्दी और दूब चढ़ेगी ? राम और सीता के सिर हल्दी और दूब चढ़ेगी।

मांगर माटी का गीत :-

विवाह की तिथि निश्चित हो जाने पर चावल को हल्दी से रंग के देवी-देवताओं को आमंत्रित किया जाता है। मांगर माती की दिन से विवाह की रीतियाँ आरम्भ होती हैं। मांगर माटी में महिलाएं बांस की टोकरियाँ ले के मिट्टी लेने जाती हैं। इस मिटटी से मोगरोहन चौतरा तथा चार-पांच छोटे चूल्हे बनाए जाते हैं। मिट्टी के लिए आते हुए महिलाएं जिन गीतों का गायन करती हैं उनकी कुछ पंक्तियाँ अधोलिखित हैं।

निर्मल रात जुन्हैया आँगन मोरे।
ओई आए चन्दा रात जुन्हैया आँगन मोरे।
जेमय राम जुन्हैया आँगन मोरे।
घूंटय राम जुन्हैया आँगन मोरे।

प्रस्तुत पंक्तियों में स्त्रियाँ कहती हैं, आज सुहानी रात है, चांदनी मेरे आंगन में उतरी है। मेरे आंगन में राम जी भोजन कर रहे हैं।

मिट्टी ले के वापस आते हुए महिलाओं द्वारा गाये जाने वाले गीत की कुछ पंक्तियाँ अधोलिखित हैं-

माटी खानय बैठीं छोटी बहू हो,
उता हाय दइया हो दइया, बीछी मारय हो।
बीछी मारय मुड़े तकाय हो,

उक्त पंक्तियों के माध्यम से कोल महिलाएं कहती हैं कि छोटी बहू मिट्टी खोदने लगी उसी समय बिच्छू ने डंक मार दिया। इस डंक का असर ऐसा हुआ सर चकरा गया।

संस्कार गीतों के साथ ही कोल जनजाति के लोग अन्य अनेक अवसरों पर भी गीतों को विशेष महत्व देते है। चैत्र महीने में फसल कटते समय प्रसन्नता पूर्वक गाये जाने वाला चैता गीत की कुछ पंक्तियाँ अधोलिखित हैं -

चैता गीत -

इस गीत को चैत्र के महीने में गाया जाता है। इस महीने में फसल काटी जाती है तथा घर में नया अनाज आता है इसी खुशी में गायन व नृत्य होता है चैत्र के महीने में गायन किये जाने के कारण इस गीत का नाम चैता पड़ा। चैता गीत का गायन बघेलखंड की लगभग सभी जनजातियों में प्रचलित है। कोल जनजाति द्वारा गाया जाने वाला चैता गीत इस प्रकार है -

चैत दिना बैसाख दिना,
बैसाख मा सूखत सरीरी,
घर ना आए सांवरिया
सावन गरजै भादो लपकै,
पवन चलै पुरवाई
घर न आये सांवरिया,
अब तो जिया नहीं लागे,
घर ना आये सांवरिया।

प्रस्तुत पंक्तियों के भावार्थ कुछ इस प्रकार है कि जिस प्रका चैत्र और बैसाख में मौसम के कारण शरीर सुख जाता है उसी प्रकार मेरे प्रियतम के वियोग में शारीर सुखा जा रहा है। सावन आ गया फिर भादो भी आ गया पुरवाई पवन चल रही है लेकिन मेरे सावंरिया नहीं आये। मेरा मन इससे घबरा रहा है। इस पंक्ति को कोल जनजाति में समूह में गायन किया जाता है। इन पंक्तियों को चैत्र तथा बैसाख में गया जाता है।

कोल जनजाति के वाद्ययंत्र

मान्दल

कोल जनजाति में इस वाद्य यंत्र का प्रमुख स्थान है। कोल जनजाति के लोगों द्वारा गीत तथा नृत्य में इसे सम्मिलित किया जाता है। इस वाद्य की खोल सागौन तथा शीसम की लकड़ी का होता है। कुछ स्थानों पर इसे मिट्टी का भी बनाया जाता है। इस वाद्य का भार लगभग चार किलोग्राम होता है। मांदल की ध्वनी ढोलक की अपेक्षा गंभीर होती है।

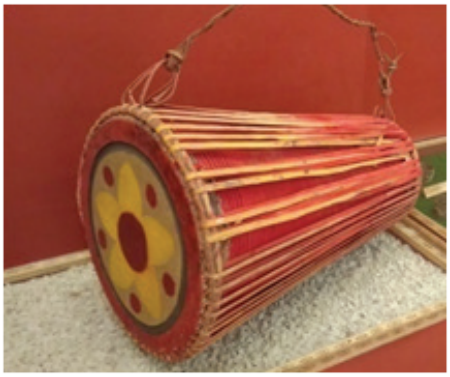

टिमकी

यह वाद्य कोल जनजाति में लोक गीत तथा नृत्य में शामिल किया जाता है। इस की ध्वनी में तारता अधिक होती है। इसकी तारता बनाए रखने के लिए समय समय पर इसके चमड़े को आग से सकते रहते हैं। यह क्रिया वाद्य के रखरखाव का अभिन्न अंग है। मिटटी के गहरे बर्तन पर बकरे की खाल को मढ़ कर इस वाद्य का अस्तित्व प्रस्तुत होता है। यह नगाड़े का लघु रूप है।

कोल जनजाति के लोक संगीत में अन्य वाद्य के रूप में थाली, चिमटा, झांझ, मंजीरा इत्यादि का भी उपयोग किया जाता है।

कोल जनजाति के लोक नृत्य :-

कोल दहका नृत्य कोल जनजाति के लोगों के मध्य अत्यंत प्रचलित नृत्य है। किसी शुभ अवसर पर अथवा प्रसन्नतापूर्ण वातावरण में इस नृत्य का आयोजन किया जाता है। कोल समुदाय द्वारा कोल्हाई नाच के नाम से प्रचलित इस नृत्य में स्त्री तथा पुरुष दोनों ही भाग लेते हैं। स्त्रियाँ पारम्परिक परिधान में पैर में घुंघरू तथा मुख को घुंघट में ढक कर नृत्य करती हैं तथा पुरुष पच्चीस से तीस की संख्या में ढोलक, मांदल, झांझ, मंजीरा, चिमटा, टिमकी इत्यादि वाद्य ले के बैठते हैं। इस नृत्य के गीत में जबाब-सवाल होता है। कोल जनजाति में कोल दहका नृत्य के साथ ही केहरा, भगत, सैला इत्यादि नृत्य भी प्रचलित हैं। कोल समुदाय अपने लोक शैली को अत्यंत संजीदगी से सहेजे हुए है।

निष्कर्ष :-

जनजातीय समुदाय अपनी लोक परम्पराओं के सशक्त समवाहक होते हैं। जनजातीय समुदाय के लोग अपनी लोक शैली तथा परम्पराओं को पूरी लगन से निर्वहन करते हैं तथा किसी नवीनता को अपनी लोक शैली में मिश्रण से सर्वथा बचते हैं। इसी कारण इनकी लोक परम्पराएं लम्बे समय से अपने मूल रूप में उपस्थित हैं। इनमें बहुत बदलाव नहीं आया है। मध्यप्रदेश के जनजातीय समुदाय में बड़ी संख्या कोल जनजाति की है। कोल जनजाति के लोग भी अपनी मूल परम्पराओं के पोषक तथा सम्वाहक हैं। कोल जनजाति के लोग स्वाभाव से ही अत्यंत निश्छल होते हैं इनका यह व्यवहार लोक संगीत में भी सहज ही दृष्टिगोचर होता है। संगीत तो मन का दर्पण है जो भी मन में होगा वही संगीत के माध्यम से बाहर आयेगा। कोल जनजाति की जीवन शैली प्रकृति के अत्यंत निकट होती है अतः इनके वाद्य भी इस प्रभाव से प्रभावित हैं। कोल जनजाति

के लोग शांत स्वाभाव के होते हैं छल प्रपंच उन्हें नहीं आता है। जब ये लोग उछाह में होते हैं तो नाचते गाते हैं। कुछ नृत्य तथा गीतों में पुरुष तथा महिलाएं समान रूप से भाग लेती हैं तथा कुछ में पुरुष तथा महिलाऐं अलग अलग नाचते गाते हैं।

पाद टिप्पड़ी :-

1. श्री श्याम परमार, भारतीय लोक साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1954 पृ. 10
2. डॉ. रंजना त्रिपाठी पूर्वी उत्तर प्रदेश के लोक गीतों में संगीत शास्त्रीयता, प्रकाशक- सचिव, हिन्दुस्तानी एकेडमी, 2009 पृ. 71
3. डॉ. निशात फात्मा, घोषी लोकगीत समाज, संस्कृति और साहित्य, कनिष्का पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्युटर्स नई दिल्ली 2002 पृ.सं.-23
4. डॉ. अरविन्द कुमार शर्मा, पंजाब का लोक-संगीत, संजय प्रकाशन, नई, दिल्ली 2011 पृ.सं.- 4
5. श्री राम आधार कोल जी से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त, ग्राम-पतौरा, जिला-सतना, मध्यप्रदेश दिनांक 16/10/2021 समय 2:00 अपराह्न
6. श्री राजाराम कोल जी से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त, ग्राम-बीरपुर, जिला-सतना, मध्यप्रदेश
7. श्री राम अवतार कोल जी से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त, ग्राम-पतौरा, जिला-सतना, मध्यप्रदेश दिनांक 15/10/2021 समय 2:00 अपराह्न
8. श्री राम अवतार कोल जी से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त, ग्राम-पतौरा, जिला-सतना, मध्यप्रदेश दिनांक 15/10/2021 समय 2:00 अपराह्न
9. श्री लाला कोल जी से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त, ग्राम-बीरपुर, जिला-सतना, मध्यप्रदेश दिनांक 19/10/2021 समय 2:00 अपराह्न

पूर्वांचल का लोकगीत "बिरहा"

कृतिका पाण्डेय

शोध छात्र

(दी. द. उ.गो. वि. गोरखपुर)

बिरहा लोकगायन की एक विधा है, जो पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बिहार के भोजपूरी भाषी क्षेत्र में प्रचलित हैं। बिरहा प्रायः विरह गीत के रूप में सामने आया। बिरहा 'विरह' से उत्पन्न हुई हैं, जिसमें लोग सामाजिक वेदना को आसानी से कह लेते हैं और श्रोता मनोरंजन के साथ- साथ छन्द, काव्य, गीत व अन्य रसों का आनन्द भी ले पाते हैं।

देहाती क्षेत्रों में मनोरंजन का सबसे सस्ता और सरल साधन बिरहा माना गया है। देहाती व्यक्ति जब विरहा गान करता है तो उसे न श्रोता की आवश्यकता होती है और ना ही प्रशंसा की। अपनी मौज मस्ती में गाता हुआ वह चलता हैं। वह अकेला व्यक्ति वास्तव में अपने मन के आनन्द के लिए 'बिरहा' गाता है। इसमें वाह-वाह के साथ अन्तिम शब्द की पूर्ती भी की जाती हैं। खेतो में काम करने वाला किसान, चौपाल में बैठे हुक्का पीते वृद्ध और कुएँ पर पानी भरती महिलाएँ भी बिरहा गायन का आनन्द लेती हैं। यह दृश्य बनारस तथा पूर्वांचल के अनेक क्षेत्रों में देखा जा सकता हैं।

बिरहा की उत्पत्ति के सूत्र 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में मिलतें है जब ब्रिटिश शासनकाल में ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन कर महानगरों में मजदूरी करने की प्रवत्ति बढ गई थी। ऐसे श्रमिकों की रोजी रोटी के लिए लम्बी अवधि तक अपने घर परिवार से दूर रहना पडता था। दिन भर के कठोर परिश्रम के बाद रात्रि में अपने विरह व्यथा को मिटाने के लिए छोटे - छोटे समूह में ये लोग 'बिरहा' का ऊँचे स्वरो में गायन किया करते थे।

बिरहा की उत्पत्ति 'विरह' गीतो से हुई हैं। इसलिए इसका नाम 'बिरहा' पडा। प्राचीन काल में बिरहा केवल महिलाएँ ही गाती थी। नैहर की याद और ससुराल के उत्पीडन की चर्चा होती थी। गाँव से नगर में काम करने के लिए आने वाले ग्रामीणों की बिरहिणी पत्नियों की विरह गाथा का अधिकतर बखान होता रहा हैं। आगे चलकर इस गीत को पुरूषों ने अपना लिया जिससे 'बिरहा' पुरूष प्रधान गीत हो गया। बिरहा गीत के स्थान पर महिलाएँ ग्राम प्रधान गीत 'कजली' गाने लगी। पुरूषों द्व ारा अपनाएँ जाने पर 'बिरहा' में कोमलता समाप्त होकर इसमें अश्लीलता आ गयी। क्रमशः यह गीत संभ्रांत परिवार से हटकर अशिक्षित परिवार में प्रवेश कर गया। यही कारण है कि 'बिरहा' पिछड़े वर्ग के लोग जैसे-अहीर, गोड, कुनबी, कोइरी, बेनिया, भर, पासी, कहार आदि जातियों का और ग्रामीण आँचल का गीत हो गया।

बिरहा की उत्पत्ति का कारण मात्र नायक - नायिका का वियोग ही नही था अपितु विरहा की उत्पत्ति के अन्य सामाजिक आर्थिक कारण भी रहे होंगें। किसी भी विधा के उत्पत्ति के कारण अवश्य होते हैं। बिरहा में 'विरह' गीतों का अर्थात विरह विषयक गीतों की अधिकता होना स्वयं ही उस समय की तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का बोध कराता हैं। समसामयिक घटनाओं को आधार बनाकर लिखे गये कुछ विरहां गीतों के उदाहरण प्रस्तुत हैं-

आजादी के बाद जब अभी नहरों का निर्माण नहीं हुआ था, लगभग अकाल जैसी स्थिति थी।

अनाज का आयात किया जाता था तब की एक रचना-

''सजनी ओही देसवां बजर परे राम
जौने देसवा में भूख महामारी बाड़े राम''

पटना में एक विवाह समारोह में दहेज माँगे जाने पर दुल्हन ने दुल्हे को गोली मार दिया था।

इस सामयिक घटना को भी विरहा गीत के माध्यम से प्रस्तुत किया गया हैं -

"हल्ला मचल पटना के टोला टोलिया
दुल्हा के दुल्हन मारे गोलियाँ"

फूलन देवी हत्याकाण्ड, वीर अब्दुल हमीद (परमवीर चक्र विजेता) आदि लोगो पर भी विरहा गीत लिखे गये जो बहुत प्रचलित भी हुए।

कालान्तर में लोकरंजक गीत के रूप में बिरहा का विकास हुआ पर्वों, त्योहारों अथवा मांगलिक अवसरों पर 'बिरहा' गायन की परम्परा रही हैं। किसी विशेष पर्व पर मन्दिर के परिसरों में 'बिरहा दंगल' का भी प्रचलन हैं।

बिरहा गायन के आज दो प्रकार सुनने को मिलते है। पहले प्रकार को "खडी बिरहा" कहा जाता है और दूसरा रूप है "मंचीय बिरहा"। खडी बिरहा में वाद्यो की संगति नही होती, परन्तु गायक की लय एकदम पक्की होती हैं। पहले मुख्य गायक तार सप्तक के स्वरों में गीत का मुखडा आरम्भ करता हैं और फिर गायक दल उसमें सम्मिलित हो जाता हैं।

4 से 5 लोंगों की संख्या में एक साथ मिलकर बिरहा गाने का परम्परा हैं। बिरहा के दंगली स्वरूप में गायकों की दैं टोलियाँ होती हैं जो बारी बारी से बिरहा गीतों का गायन करते है। ऐसी प्रस्तुतीयों में गायक दल परस्पर सवाल जवाब और एक दूसरे पर कटाक्ष भी करते हैं। जिसका उत्तर 'आशु कवि' की तरह तुरन्त देना पडता हैं। इस प्रकार के गायन में 'आशुसर्जक' लोक गीतकार को प्रमुख स्थान मिलता है। बिरहा गााने के लिए किसी प्रकार के वाद्य की आवश्यकता नहीं। केवल लोहें के दो सलाखों से जिसको 'कडताल' कहते हैं से काम चल जाता हैं। बिरहे दो - दो पंक्तियों के होते है जिनको 'पितमा' कहते हैं। इसका अंतिम शब्द प्रायः बहुत खींचकर कहा जाता हैं। जैसे -

"बेद, हकीम, बुलाओ कोई गोइयाँ कोई लेओ री खबरिया मोर।
खिरकी से खिरकी ज्यों फिरकी फिरति दुओ पिरकी उठल बड़ जोर।।

लम्बे बिरहो में वीर तथा श्रगांर रस प्रधान होता है। पौराणिक आख्यानों में वीर चरित्रों का चित्रण रहता हैं। इसको कुछ लोग, आल्हा ऊदल की वीर गाथाओं से जोडते थे। बिरहा एक दूसरे की परम्पराओ से जुडने में सक्षम हैं।

आजकल पारम्पिरिक गीतो के तर्ज और धुनो को आधार बनाकर बिरहा काव्य तैयार किया जाता हैं। पूर्वी, कहरवा, खेमटा, सोहर, पंचरा, जटावर, जटसार, तिलक गीत, बिरहा गीत, विदाई गीत, निर्गुण छपरंहिया, टेरी, उठान, टेक, गजल, शेर, पहपट, आल्हा और फिल्मी धुनों पर अन्य स्थानीय लोक गीतों का बिरहा में समावेश होता हैं।

कुछ प्रसिद्ध, बिरहा गायक-

बिहारी यादव (गाजीपुर), पन्तू यादव, छेदी, पंचम, करिया, गोगा, मोलवी, मुंशी, मिठाई, खटाई, खरपन्तू, लालमन, सहदेव, अक्षयबर, बरसाती, रामाधार, जयमंगल, पतिराम, महावीर, रामलोचन, मेवा, सोनकर, मुन्नीलाल, पलकधारी, बेचन सोनकर, रामसेवक सिंह, रामदुलार, रामाधार कहार, रामजतन, मास्टर, जगन्नाथ, बालेसर यादव (बालेश्वर यादव) आदि।

बिरहा के शुरूआती दौर के कवि जतिरा, अधर, हफते जुबान, शीसा पलट, कैदबन्द, चित्रकॉफ सारंगी, शब्द सोरबा, डमरू, छन्द और अनुप्रास अलंकार का प्रयोग करते थे।

बिरहा की अश्लीलता को दूर करने का श्रेय 'बिहारी' नामक जनकवि को है। बिहारी ने 'बिरहा' के क्षेत्र में नई क्रान्ति पैदा की और उसको संवार सुधारकर नया रूप प्रदान किया। इसके साथ - साथ बिहारी कवि ने बिरहा में निर्गुण भक्ति रसः देश और

समाज से सम्बन्धित पद तैयार कियें। इसमें बिरहा के प्रेंमिंयो के काव्य के प्रति नई चेतना जाग्रत हुई जिससे सभी वर्गों में उसका जोरदार स्वागत होने लगा। बिहारी कवि ने धार्मिक कथाओ के आधार पर 'निर्गुण' का निर्माण किया। बनारस में बरसात के दिनों में लौकिक देवताओ के 'सिंगार' के समय बिरहा गाने की प्रथा बहुत पुरानी है। इसी से आगे चलकर काशी में 'बिरहा दंगल' प्रारम्भ हुआ कजरी दंगल से प्रेरणा लेकर।

वर्तमान भारत में जहाँ भी हिन्दी भाषा - भाषी है वहाँ बिहारी के बिरहे प्रचलित है। बिहारी के प्रायः बारह हजार शिष्य हिन्दूस्तान भर में है जिसमें पन्तू गनेश, रम्मन, शिवचरन, सरजू, विश्राम, विश्वनाथ, अकलू महावीर और अलगू इत्यादि एक हजार शिष्य तो बिरहा के प्रमुख रचयिता हुए है। बिहारी ने चारलाख पद लिखे है जो कि चार लाइन से लेकर तीस - तीस लाइन तक के हैं। यह मानना पडेगा कि बिरहा लेखन की दिशा में, 'बिहारी कवि' का योगदान अतुलनीय एंव सराहनीय हैं।

पूर्वांचल की यह लोकगायकी मनोरंजन के अलावा थकावट मिटाने के साथ ही एकरसता और ऊब मिटाने का उत्तम साधन हैं। बिरहा गाने वालों में पुरूषों के साथ ही महिलाओं की दिनों दिन बढती संख्या इसकी लोकप्रियता और प्रसार का स्पष्ट प्रमाण हैं।

आजकल बनारसी बिरहा गायकों की सारे भारत वर्ष में पूछ हो रही है, जिनको लम्बी फीस देकर बुलाया जा रहा है। अब बिरहा सभी वर्ग के लोंगों ने अपना लिया है और इनके पेशेवर गायकों की बडी मांग है। सर्वसाधारण इसको मनोरंजन का सबसे प्रमुख साधन मानने लग गया हैं।

यह विधा भारत के बाहर देशों 'मॉरीशस' 'मेडागास्कर' और आस - पास के भोजपूरी क्षेत्रों की बोली वाले क्षेत्र में अपनी पैठ बढाकर दिनों दिन और लोकप्रिय हो रही है। अब जबकि संस्कृति भी एक उत्पाद है, लोक संगीत आधुनिक प्रसार तकनीकी जैसे सोशल मिडिया का सहारा लेकर अपने "लोक" को प्राप्त हो रही है। ऐसे में अपने क्षेत्रीय दायरे को त्याग कर बिरहा लोकतांत्रिक पूंजीवाद की सास्कृतिक मण्डी में अपने होने का जोरदार दावा प्रस्तुत कर रहा हैं।

सन्दर्भ सूची -

1. 'सोच विचार' साहित्यिक पत्रिका काशी अंक भाग - 4
2. लोक साहित्य का सिद्धान्त एंव भोजपूरी साहित्य - डॉ. आनन्द नारायण पाण्डेय
3. भोजपूरी लोक संस्कृति एंव हिन्दुस्तानी संगीत - संजय कुमार सिंह
4. विकिपिडिया

हरियाणवी गीतों में जीवन जगत

कांता देवी

शोधार्थी

चौधरी रणबीर सिहं विश्वविधालय, मेरठ

किसी भी देश की पहचान उसकी सभ्यता, संस्कृति और संस्कार से की जाती है इस पर भारत देश के प्रांत हरियाणा की अगर बात की जाए तो यह अपनी एक अलग पहचान रखता है, पूरे भारत वर्ष में हरियाणा का गठन 1 नवम्बर 1966 को हुआ। तब से ही हरियाणा के बुद्धिजीवी और राजनीतिज्ञ हरियाणा की पहचान ढूँढने की कवायद कर रहे है, लेकिन सर्वमान्य पहचान तो चिह्नित करने में असफल रहा है सर्वमान्य एव सर्व प्रदेशों में हरियाणा की पहचान एक वाक्य से हो जाती हैं-

''जहाँ दूध-दही का खाणा,
ऐसा म्हारा हरियाणा''

हरियाणा को श्वेत क्रांति और हरित क्रांति को बढ़ावा देने वाले राज्य के रूप में जाना जाता है। हरियाणा के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन की अगर शास्त्रोक्त आचार-संहिताओं की बात जाए तो यहाँ शास्त्र की बजाय लोक का ही प्राधान्य है। शास्त्र एक विशेष पद्धति व अनुशासन की अपेक्षा करता है, तो लोक में खुलापन एवं खुरदरापन होता है। अपने संकटकाल में लोकशास्त्र की बजाए जीवन की व्यवहारिकता से निर्णय करता है, इस प्रकार हरियाण ावी संस्कृति शास्त्र की बजाय 'लोक' मैं संचालित है। इसी लोक जीवन को हम हरियाणवी गीतों के माध्यम से समझ सकते है। ये हरियाणवी लोक गीत अपने माध्यम से हरियाणा के सारे रीति-रिवाजों को प्रकट करते है हरियाणवी गीतों में यहाँ के रीति-रिवाजों से सम्बन्धित गीत मिलते है चाहे वे गीत बच्चों के जन्म के बधाई गीत, सावन, कार्तिक, माघ, फसल कटाई, वीरता के, फाल्गुन के, शादी, घोड़ी के, भात के, बन्नी, साँझी के गीत, गूगा पीर, बाहरली माता, दादा खेड़ा, प्रकृति के सम्बन्धित गीत और तो और मृत्यु पर भी शोक गीत गाए जाते है। हरियाणा का कोई भी उत्सव या रीति रिवाज ऐसा नहीं है जिस पर हरियाणवी गीत न गाए जाते हो। हरियाणा के लोक गीतों में लोक जीवन साफ तौर पर झलकता है। ये गीत विशेष तौर पर महिलाओं द्वारा गाए जाते है। इन गीतों में महिलाएँ अपनी बात गीत गायन के माध्यम से कहती है। और किसी से मान-मनुहार, प्रेम खुलापन, चिंताएं, प्रकृति के माध्यम से मायकों वालों को संदेश भी गायन के माध्यम से ही देती हैं।

लोक गीत विभिन्न ऋतुओं में तथा विभिन्न संस्कारों के अवसर पर गाए जाते हैं। कुछ ऐसी जातियां भी हैं, जिनमें गीत विशेष को गाने का रिवाज है। विभिन्न कार्य करते समय परिश्रम जन्म थकावट दूर करने के लिए भी कुछ गीत गाए जाते हैं, इस प्रकार लोक गीतों का श्रेणी विभाजन पाँच प्रकार से किया जा सकता है।

क. सस्कारों की दृष्टि से
ख. रसानुभूति की प्रणाली से
ग. ऋतुओं तथा व्रतों के क्रम से
घ. विभिन्न जातियों के अनुसार
ड. श्रम के आधार पर

संस्कारों की दृष्टि सेः-

1. बच्चे के जन्म से सम्बन्धित बधाई गीत (छठी उत्सव)ः- जब घर में जचकी होती है तो बच्चे के जन्मदिन के छः दिन बाद घर में बधाई गीत गाए जाते है। जिसे छटी कहते है। इस अवसर पर गाए जाने वाले गीत इस प्रकार है।

मेरा परस चढ़नता सुसरा न्यँ कहव,
बहुवड़ एक लड्डुड़ा हम न भी दयों न लड्डुड़ा
चरचरी सूँठ का
ससुरा फोडू तो दुख मेरी ऑगली साबुत दैया
न जा, (प)
लड्डुड़ा चरचरी सूँठ का।

मेरा हलसी जौड़दा ज्येठा न्यू कहव,
बहुवड़ एक लड्डुड़ा हम न भी द्यों न,
लड्डुड़ा चरचरी सूँठ का
ज्येठां फोडू तो दुख मेरी ऑगली,
साबूत दिया न जा
लड्डुड़ा चर चरी सूँठ का।

यहाँ पर जचकी के समय जब प्रसूता के खाने के लिए सौंठ के लड्डू बनाए जाते है और उन लड्डओं में से एक लड्डू ससुर एवं ज्येष्ट के द्वारा जब माँगा जाता है तो प्रसुता कहती है मैं लड्डू अगर आप को तोड़ कर देती हूँ तो मेरी अगुँली में दर्द है इसलिए मैं लड्डू तोड़ नहीं सकती और पूरा लड्डू में नहीं दे सकती। वह ना नुकूर के शब्दों से किसी को भी लड्डू नहीं देती।

कुआं पूजन के गीतः- बच्चे जन्म के 21 या 31 दिन के पश्चात कुआं पूजन किया जाता है जिसमें जल देवता की पूजा की जाती है इस दिन के पश्चात प्रसूता घर के अन्दर-बाहर आ जा सकती है। जब तक यह पूजा नहीं हो जाती उसे अपनी प्रसूता वाली कोठरी में ही रहना होता है। कुआं पूजन से सम्बन्धित गीत इस प्रकार है।

जच्चा औढ़ पीलिया बैठी कि आज कुआं
पूजूँगी
राजा दाई मेरी आवैं,
वो तो बच्चा जणाई नेग माँग
राजा सास मैरी आवै,
वो तो चखा चलाई नेग माँग

इस प्रकार जब प्रसूता कुआं पूजन की रस्म करती है तो वह अपने से बड़ी और छोटी सभी घर की औरतों को उपहार देती है। तब प्रसूता अपनें पति को सम्बोधित करते हुए कहती है कि आज मेरा कुआं पूजन है और आज सभी मुझ से नेग (उपहार) माँगेगी। मैं सब को खुशी-खुशी उपहार देना चाहती हूँ।

भात के गीतः- जब बच्चा बड़ा हो जाता है और शादी होती है उस समय शादी से एक दिन पहले भात के गीत गाए जाते है। ये गीत लड़के की मां अपने भाई की तारीफ में गाती है।

'रे बीरा गुड़ की भेली ल्याई मैं भात न्योंतणे आई
हे जीजी इब क टाल कर नै आगै न ब्याह-सगाई
रे बीरा गुड़....
रे बीरा गुड़ की भेली नै देदे चाचे-ताऊआं क भात
न्योतदूँ
हे जीजी गुड़ की भेली ना मिलती चाहे बिक जाव
घर की हैली'

इसमें बहन अपने भाई के घर जाती है कि भाई मेरे बच्चे की शादी में गुड़ की भेली (गुड़ शगुन रूप में लाया जाता है) लेकर आई हूँ। भाई कहता है अब थोड़ा ठहर जा फिर शादी कर लेना अभी मेरी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है तब बहन कहती है कि भाई मैं तो अभी शादी करूँगी और चाचा-ताऊ मेरा भात भर देंगे। तब भाई कहता है नहीं बहन में आप का भात जरूर भरूँगा चाहे उसके लिए मुझे अपना घर बेचना पड़े तो मै बेच दूँगा मैं तेरा सम्मान जरूर करूँगा।

बन्ना-बन्नी के गीत- हरियाणा में जिस लड़का-लड़की की शादी होनी हो उसे बनड़ा-बनड़ी बोलते है रिवाज के अनुसार शादी से सात या नौ या ग्यारह दिन पहले जो गीत गाए जाते है उसे बन्ना-बन्नी के गीत कहते है।

बन्ना हो थारी हेली में 64 पैड़ी
बन्ना हो मैं तो चढ़ती-उतरदी हारी
बन्ना हो तेरी दादी लड़ौकड़ी बताई
बन्ना हो तेरी ताई लड़ौकड़ी बताई
बन्ना हो मैं तो उन उनतै भी चढ़दी आई।
बन्ना हो जिस दिन से होई थी सगाई
बन्ना हो उस दिन त शिखू थी लड़ाई
बन्ना हो मैं तो गैल घेसला लाई।
बन्ना हो थारी हैली में 64 पैड़ी

यह पर होने वाली दुल्हन-दुल्हे से वार्तालाप कर रही है कि आप के घर की सीढ़िया की संख्या बहुत ज्यादा है जिस कारण मैं ऊपर चढ़ते-उतरते वक्त थक जाती हूँ। फिर कहती है कि मैंने सुना है आपकी जो दादी है वह झगड़ाल है और आप के घर में जो अन्य चाची-ताई वो भी लड़ने में बड़ी तेज है, लेकिन मेरी बात भी आप सुन लो मैं तो लड़ने में उनसे भी ज्यादा तेजतरार हूँ। और वो तो सिर्फ लड़ती ही होंगी मैं तो अपने साथ लड़ने के लिए डंडा भी लेकर आई हूँ। इस प्रकार शादियों में हँसी-मजाक के गीत गाए जाते है।

तीज के गीतः-

तीज का त्योहार श्रावन मास में तीज तिथि को मनाया जाता है। इस दिन महिलाएं झूला-झूलती है और गीत-गाकर खुशी-खुशी त्योहार को मनाती है। सभी स्त्रियाँ सोलह शृंगार करती है। सभी और श्रावन की मस्ती में झूम उठती है।

मेरी बहना बोली कोयलियाँ काली आई स तीज हरयाली
झूला तो झूलै मिलकर बाग में।
सखियाँ संग सामण झूलै बहुत पुराणी प्रथा

झूल घाल दै डालै के माँ समय ना खौव वृथा

इस गीत में एक सखी-दूसरी सखी से कहती है कि काले रंग की कोयल बागों बोल रही है और श्रावन मास है इसलिए हम सब मिल कर झूला झूलेगें बाग में। कहती है कि सखियों के साथ झूला झूलणे की यह रिवाज बहुन पुरानी है।

इसलिए अब हम झूला डाल लो समय को बेकार मत करो।

कार्तिक मास के गीतः-

कार्तिक मास में हरियाणा की औरतों द्वारा सुबह चार बजे तालाब बावड़ियों में ठण्डे जल में स्नान किया जाता है। और सुबह तुलसी पूजन किया जाता है सभी मिलकर राम-नाम का सुमिरण करती है। पूरे कार्तिक मास में यह स्नान किया जाता है।

राम अर लक्षमण दसरथ के बेटे
दोनों वनखण्ड जाए हेरी कोई राम मिले भगवान
एक वण चालै दो वण चाले तीजे म लग आई प्यास
हेरी कोई राम मिले भगवान

छोटा सा लड़का गऊए चराव वो सीता का लाल, हेरी कोई राम मिले भगवान एक बार राम लक्ष्मण अपने यज्ञ के घोडे को ढूढ़ते हुए वन में जाते है लेकिन चलते-2 उन्हें प्यास लग जाती है तो उन्हें कहीं भी प्यास बुझाने के लिए पानी दिखाई नहीं देता तब छोटे-छोटे दो लड़के गाय को चरा रहे है तब राम जी उनसे पानी के विषय में पूछते हैं।

धोबी र धोबन कपड़े र धौव
रामचन्द्र घुड़सवार हो रामा
धोबी न रामचन्द्र न ताना हे मारा
रामचन्द्र से गोरी हम ना स
धोबी से धोबन बूझण लागी
रामचन्द्र में के खोट हे रामा
छ बहीने सीता रावण क रहगी,
महलों में ली बैठा।
धोबी का ताना सुण क हो रामा
उलटा हे घुड़सवार हो रामा
उठा र लक्षमण भाई जलदीर उठो
सीता न दओ बणो बास हो रामा
उठो री सीता माता जल्दी री उठो हो रामा
जाणा स बणों बीच हो रामा

यहाँ इस गीतग में श्रीराम जी नगर में घूम रहे है जनता के सुख-दुख जानने के हेतु तब एक धोबी राम जी को देखकर अपनी पत्नी पर तंज कसते है

कि में राजा रामचन्द्र नहीं जो एक बार तू घर से बाहर निकलेगी तो में तुझे रख लूँगा जैसे

सीता छः माह किसी (रावण) के घर रह कर आती है तो राम जी उसे वापिस महलों में ले आते है कहता में ऐसा नहीं करूगाँ। इस बात को सुनकर मर्यादावादी श्रीराम जी वापिस महल में आकर लक्ष्मण के साथ सीता को वन भेज देते है।

कोथली के गीतः-

श्रावन मास में लड़की के पीहर (मायके) की तरफ लड़कियों की ससुराल उपहार भेजे जाते है जिसे कोथली कहते है। इस कोथली में शगुन का सामान स्वाली (मीठी मठी) घेवर बताशा आदि चीजे माँ अपनी बेटी के लिए भेजती है।

लै क फोटू बैठ गई
मॉ जाई न भूल गया
मेरे लाडले भाई आरे बीरा
थोड़ा सा टैम लिये काढ़
सुख-दुख बतला जाईये रे भाई।
रे भाई लैक कोथली की
आड़ रे भाई बहना न फैटण आ जाइये
हे रे ना चाहना कांहे की
खुशी रे तेरे आणे की
आरे बीरा भाणा न हो
भाइया की ठाड बस मान बढ़ा जाइये।

यहाँ एक बहन भाई का इंतजार कर रही है कि वह कोथली के बहाने से उससे मिलने आ जाए। बहन अपने भाई का फोटू लेकर बैठ जाती है, और उस चित्र से बातचीत करती हुई कहती है कि हे भाई माँ-बाप तो अब है नहीं अब आप ही मेरी ससुराल आकर मेरे सुख-दुःख की बात पूछ जा। हे भाई मुझे किसी प्रकार की वस्तु की दरकार नहीं है मैं तो बस तेरे आने मात्र से ही खुश हो जाऊँगी। हे भाई मुझे किसी प्रकार की वस्तु की दरकार नहीं है मैं तो बस तेरे आने मात्र से ही खुश हो जाऊँगी। हे भाई मुझे तेरा बड़ा सहारा है अगर तू मेरी सुसराल आएगा तो मेरा मान-सम्मान पक्ष में बढ़ जाएगा।

गूगापीर के गीतः-

जवाहर गूगा पीर की मान्यता पूरे हरियाणा में है गूगा का मेला भाद्रपद महिने में लगता है। यह मेला सिरसा बागड़ में लगती है भाद्रपद की नौवीं से लेकर चौदस तिथि तक गुगा पीर की पूजा-अर्चना की जाती है।

नौवीं के दिन प्रसाद के रूप में गुड़ का प्रसाद बांटा जाता जिसे (सीरणी) कहते है।

गीत का एक उदहारणः-

''नौवीं बोली ऐ कती भूलगी तेरा ध्यान कड़।
हे तनै याद कर स गूगा मेड़ी आला
जब गूगा बागा म आया
मालण क मन माया
मेवा खा कै उलटा डिगर गा
मालण टौवनती फिर सै
हे तनै याद कर सै गूगा मेड़ी आला''
जब गूगा ए
कुएं पै आया पनिहारी के मन भाया
पानी पीकर उलटा डिगरगा,
हे तनै याद कैर स गूगा मेड़ी आला

इस प्रकार एक सखी-दूसरे सखी से कहती है कि हमें बागड़ की भूमि पर गूगा पीर की पूजा अर्चना करने के लिए जाना चाहिए। क्योकि वह हमारा मंगल करने वाला देवता है। इसलिए हम सब चलते है बागड़ धाम को। गूगा पीर आज बाग में आया था तो बाग की मालिन को वो बहुत अच्छे लगे लेकिन व चलै गए वहाँ के फल खाकर के।

सांझी के गीतः-

दशहरे से पहले अमावस्या के दिन घरों में दीवार पर गोबर से सांझीं बनाई जाती है फिर ग्रामीण औरते मिलकर हर रोज इस सांझी के गीत गाती है।

चलो सांझड़ी सांझ दादा घर चलौ
बालक झूलै ए वरणौ पालणौं
एक-दूजे की भर काणज राखियो
खाट-उतर पीढ़ा बैठियों
चलो सांझड़ी ताऊ घर चालौ।

यहाँ पर सांझी को निमन्त्रण दिया जाता है कि वह हम सभी के घरों में आए और हमारे लिए मंगल करें।

<u>सती पूजाः-</u>

हरियाणा के कई गाँवों में सती पूजा की जाती है, जिस स्थान पर कई स्त्री अपने पति के साथ सती हुई हो अथवा पति के युद्ध में मारे जाने पर किसी स्त्री ने पीला रंग के कपड़े पहन कर अग्नि प्रवेश किया हो, वहाँ सती की मंढी स्थापित है।

''चूदड़ी फूला की सती माता न चड़ावन जा
सास मेरी यूँ बोली की लोग तेरी कर तकरार
भगतणी का कै बिगड़ ए सती माता मेरे साथ''

यहाँ पर भक्तिन औरत के द्वारा माता पर चुन्नी(दूपट्टा) ओढ़ाया जाता है तो उसकी सास इस बात को देखकर खुश नहीं होती तो वह भक्तिन कहती है कि मुझे दूसरों से कोई मतलब नहीं हैं क्योंकि सती माता पर मुझे अटूट विश्वास है और वह मेरे साथ है।

<u>खेड़ा पूजनः-</u>

खेड़ा (दादा खेड़ा) हरियाणवी गाँव के देवी-देवताओं में सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। रविवार के दिन दादा खेड़े का पूजन किया जाता है। गाँव की स्त्रियां सांय काल में दादा खेड़े की पूजा करने जाती है।

पाँच पतासे पान्नाहं का जोड़ा,
ले खेड़े पै जाइयों जी।
जिस डाली म्हारा खेड़ा बैठया,
वाह डाली झुक जाइयों जी।।

प्रकृति पूजनः-

प्राचीन आर्य लोगों की तरह ही हरियाणा में सूर्य और चन्द्र की भी पूजा की जाती है, सुबह स्नान-ध्यान के पश्चात् सूर्य को पानी दिया जाता है। स्त्रियां कई व्रतों में 'चन्द्रमा' को पानी देती है। गंगा-युमना में भी हरियाणवी लोगों की गहरी धार्मिक आस्था है। नदियों के स्नान का बहुत महात्म्य माना जाता है। प. माँगेंराम द्वारा रचित एक भजन जो लोक प्रचलित है।

गंगा जी तेरे खेत म्हं माई गडे हरी हंडोले चार
कन्हैया झूलते श्री रूकमण झूला रही''

संक्षेप में कहा जा सकता है कि हरियाणा क्षात्र-धर्म प्रधान, वैदिक संस्कृति का उपासक है। आर्यो की संस्कृति हरियाणा के जनमानस में घर किए है। हरियाणा में जो रीति-रिवाज है उन रीति-रिवाजों को हम हरियाणवी संस्कृति की सभ्यता और संसार को दर्शाते है। गीतों के मध्य से हम अपने रिश्तों के में मान-मनुहार को समझ सकते है। तीज-त्योहार, शादी-विवाह, प्रकृति, पूजा-अर्चना, धार्मिक आयोजन आादि में एक भी कार्यक्रम ऐसा नहीं होता जिसमें लोकगीतों की भागीदारी न होती हो, अगर हरियाण ावी संस्कृति से रूबरू होने के लिए और हरियाणवी जीवन जगत् को जानने के लिए हरियाणवी लोकगीतों का अध्यनन बहुत ही जरूरी है।

संदर्भ-सूचीः-

1. डा. रघुबीर सिंह मथाना, हरियाणवी साहित्य का इतिहास, लक्ष्मण साहित्य प्रकाशन, रोहतक
2. के. सी यादव, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति, मनोहर पब्लिशर्जस एंड डिस्ट्रिब्यूटर्श दरियागंज, नई दिल्ली-110002
3. देस हरियाणा(पत्रिका) संयुक्तांकः नवम्बर 2016 ये फरवरी 2017, करूक्षेत्र, हरियाणा-136118
4. देस हरियाणा पत्रिका जनवरी फरवरी 2016, करूक्षेत्र हरियाणा-136118
5. सम्पादक- डॉ. राजेन्द्र गौतम कविता यात्रा छः, हरियाण ाा साहित्य अकादमी, पंचकूला
6. सम्पदक माधव कौशिक, हरियाणा की प्रतिनिधि कविता, साहित्य अकदमी, पंचकूला
7. https://youtu.be/6gxkcn10awm
   https://youtu.be/hrg-rd-otws
   https://youtu.be/h8g6hitkys

लोकनाट्य नौटंकी की समकालीनता

सुनील कुमार
शोधार्थी
हिन्दी विभाग जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

शोध सार

भारत के लोकनाट्यों में यद्यपि नौटंकी की बात की जाए तो इसका थिएट्रिकल होना इसकी सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है। हिन्दुस्तानी जुबान और गायकी में लोकधर्मिता आदि के कारण इसका सम्प्रेषण सशक्त होता है। आधुनिक नृत्य गीति नाट्यों में जितनी सफ़लता नौटंकी को मिली है उतनी किसी और लोकनाट्य को नहीं मिली है। यही कारण है कि अभिजात्य रंगमंच में इसे स्वीकृति भी मिली है और अपनी ज़मीन के निकट आने पर इसमें नये द्वार खुलने की संभावना भी है। समकालीन रंगकर्मी नौटंकी की क्षमता को पहचान रहे हैं तथा इसे इसकी पारम्परिक ऊंचाई में पुनर्गठित करने का संघर्ष भी कर रहे हैं। हिन्दी नाटकों में इसके वैविध्यमयी प्रयोगों ने इस बात को सिद्ध किया है।

मूलशब्दः-

लोकनाट्य, नौटंकी, रंगमंचीयता, अभिनय, संगीतात्मकता और समकालीनता।

हम कितने ही आधुनिक क्यों न हो जाएं, नाटक गीत और नृत्य का मिला-जुला स्वरूप हमारे स्वभाव और धरोहर का ही एक अंग बना हुआ है। यद्यपि लोकनाट्यों की बात की जाए तो लोक नाट्य एक ऐसी विधा है जिसे ग्रामवासियों द्वारा विशेष अवसरों पर प्रस्तुत किया लाता है। लोक जीवन से जुड़े होने के कारण लोक भावनाओं को सहज रूप में प्रस्तुत करता है। इसमें लोक मानस का सुख दुख, उसकी आशा निराशा, हर्ष उल्लास उसका विषाद और संघर्ष आदि के साथ साथ लोक जीवन के वैविध्यमयी चित्र देखने को मिलते हैं। इसमें अभिनय के साथ साथ संगीत और नृत्य का पूरी उन्मुक्तता के साथ समावेश होता है यह मूलतः संगीत प्रधान लोक नाट्य है जो भारत के लगभग समस्त उत्तरी भाग में खेली जाती है। चूंकि इसकी भाषा भी लोक जीवन को लेकर चलती है अतः अपनी बात दर्शकों तक पहुंचाने में भी सफल हेतु बनकर सामने आता है इसलिए आज भी लोकनाट्य लोकमानस के आर्कषण बने हुए हैं। ''लोक रंग शैली में उनमुक्तता, तनावहीनता प्रमुख रूप से देखने को मिलती है उसमें कोई निशिचित स्क्रिप्ट नहीं होती। बस एक कथा होती है उस कथा को कहने के लिए सब कुछ होता है। वे अपने भावों को प्रकट करने के लिए अपने दिल में जो कुछ है उसका इज़हार करने के लिए नाच गाने और संवाद का इस्तेमाल करते हैं,,[1]।

लोक जगत ही भारतीयता की असल पहचान है। आदिम सुग में मनुष्य ने अपने मनोरंजन की तलाश करते हुए इसे विकसित किया होगा। ''देश की असंख्य जनता के अत्याधिक करीब होने के कारण श्री माथुर इसे पंचम वेद की संज्ञा की वास्तविक अधिकारिणी मानते हैं।[2] भारतीय रंगमंच साहित्यक व लोक साहित्य की द्रष्टि से सबसे प्राचीन

मंच है। लोक नाट्य भी कई स्तरों तक नाट्यशास्त्र का अनुमोदन करता है। दोनों ही विधायें अरस्तु की तीन एकता समय, स्थान व कार्य को अस्वीकार करता हुआ रस निष्पति का अनुकरण का अनुसरण करता है। नैमिचन्द्र जैन के अनुसार-'' कई द्रष्टियों से उसमें संस्कृत रंगमंच से कहीं अधिक विविधता है सबसे बड़ी बात है कि वह आज भी जीवित है। कोई गंभीर गहरा रंगकर्मी बहुत दिनों तक लोकनाटय की उपेक्षा नही ंकर सकता और कभी न कभी उसे रंगकार्य के इस पक्ष के साथ अपना कोई न कोई संबंध बनाना पड़ता है[3]। यही कारण है कि लोक नाटक आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं। इतना ही नहीं थिएटर आफ रूट्स की जब हम बरत करते हैं तो हमें क्लासिक के साथ साथ लोकनाट्यों की समृद्ध विरासत को भी देखना होगा क्योंकि लोकनाट्य ही भारतीय रंगमंच के पुराने अवशेष हैं जो भारतीय रंगमंच के अनवेषण में हमारी सहायता कर सकता है और यह कोई विलुप्त हुआ रंगमंच नहीं है यह आज भी भारत में विद्यमान है और अपनी समृद्ध विरासत लिये।

नौटंकी उत्तर भारत की सबसे लोकप्रिय नाट्य है। स्वांग, भगत, ख्याल, सांगीत, गम्मत आदि शब्द इसके प्र्याय के रूप में प्रचलित हैं। इसके उद्भव और विकास के संदर्भ में विद्वानों में मतभेद रहा है। कुछ विद्वानो के अनुसार नौटंकी एक पंजाब की कुलीन महिला थीं जो फूलों से तौली जरती थी। नाथूराम गौड़ ने उस पर नौटंकी भी बनाई थी। कुछ विद्वानों के अनुसार ''नौटंकी का नाम इसमें प्रयुक्त 9 प्रकार के वाद्यों तथा 9 प्रकार के नगाड़ों के कारण पड़ा[4]। प्रसाद नौटंकी को नाटकी का अपभ्रशं मानते हैं। कई विद्वान इसका विकास काल 11वीं-12वीं शताब्दी मानते हैं। डा रामनारायण अग्रवाल नौटंकी के मूल में ख्याल गायकी को मानते हैं उनके मतानुसार'' उत्तर मध्ययुग में उत्तरी भारत में ख्याल परंपरा ने स्वांग या संगीत के रूप में जब जब अपने को चौबोला गायकी के साथ जोड़ा तो वह भगत, स्वांग या नौटंकी के नाम से विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित हुई,,[5]। इसके संदर्भ में यह भी कहा जाता है कि संगीत की इस विधा को 1919 के आसपास कानपुर मे नौटंकी का नाम मिला था। संस्कृत परंपरा का सांगीत रूप इसका जनक रहा है। यह भी माना जाता है कि ख्यालों के साथ जो नौ प्रकार के नक्कारे बजाये जाते थे उसी कारण से नौटंकी का नाम प्रचलन में आया। आज भी ख्यालों के साथ नक्कारों की परंपरा है राजस्थान में इन्हें नक्कारे ख्याल कहा जाता है। नौटंकी की शुरूआत लोगों के मनोरंजन करने के लिए हुई विषेशकर उन लोगों के लिए जिनके पास मनोरंजन का कोई साधन नहीं था। राजा महाराजाओं के पास अलग अलग लोग थे जो उनका मनोरंजन किया करते थे लेकिन आम लोग व गरीब किसान जो अपनी मुफलिसी में जीवन व्यतीत किया करता था मनोरंजन के किंचित साधनों से वंचित था। जिसे स्वांग शैली कहते हैं वही आगे चलकर नौटंकी के रूप में विकसित हुई। स्वांग मे अधिकतर मिथकीय रूप को अपनाया जाता था किन्तु जब वह स्वांग से नौटंकी के रूप में स्थापित हुई तो उसका कलेवर आम लोगों के नाना रूपों को लेकर चला। उसका कथ्य कुछ भी हो सकता है किसी न किसी रूप में आम जन को प्रभावित कर सके। ''the stories may comes from mythology, history, romance, folklore and times from contemporary themes,[6] इसके मंचन के लिए किसी विषेश ताम झाम अथवा किसी विशिष्ट स्टेज की ज़रूरत नहीं होती जहां भीड़ होती है लोगों को इकट्ठा कर दो और नौटंकी शुरू कर दो और जो भी बात कहनी है नौटंकी के माध्यम से कह दो। पहले की अपेक्षा नौटंकी का रूप आज बदल गया है वह अब केवल मनोरंजन का साधन नहीं बल्कि लोगों को शिक्षित कराने या उन्हें जागरूक करने के लिए भी इस्तेमाल होती है। नौटंकी के जन्मदाताओं में मल्ल, रावत और रंगा के नाम लिए जाते हैं। मल्ल जाट, रावत राजपूत और रंगा जुलाहा था। यह लोग ढोलक बजाकर नौटंकी का अभिनय करते थे। अब ढोलक का स्थान नगाड़े ने ले लिया है परन्तु रंगा का नाम आज भी नौटंकी के साथ जुड़ा हुआ है।

नौटंकी का रंगमंच आडंबरहीन होता है। प्रारम्भ में शामियाने के नीचे फर्श बिछाकर नौटंकी खेली जाती है। दर्शक चारों ओर बैठते है। परदों का प्रयोग प्रायः नहीं होता है। इसका आरम्भ मंगलाचरण से होता है। रंगा पात्र सूत्राधार की भांति नौटंकी की कथा, समय, स्थान आदि का परिचय गाकर ही करता है। इसका दृश्य परिवर्तन भी रंगा की वार्ता द्वारा ही होता है। रंगा को प्रांतीय भाषा में मसखरा कहते हैं और इसे नौटंकी का मुंशी भी कहा जाता है। यह नौटंकी मंडल का गुरू होता है। वह सारे खेल की गतिविधियों का संचालन करता है और मंच पर प्रवेश करने वाले पात्रों के प्रवेश व प्रस्थान की सूचना देता है। गायन पद्वति व इसकी भाषा में आंचलिकता की विशिष्ट छाप होती है। बहर, लावणी, दोहा, चौपाई, सोरठा, चौबोला, ग़ज़ल, शेर, दादरा आदि छंदों का प्रयोग होता है। संगीत बाहुल्य व इसकी गायन पद्वति के कारण इसे गीतिनाट्य भी कहा जाता है। नेमिचन्द्र जैन के अनुसार ''नौटंकी संगीत मूलक नाटक है, एक प्रकार का म्यूज़िकल ओपेरा।''[7] टोटल थियेटर बनाने की संभावना इसी नाट्य में है। इसके वाद्यों में नगाड़ा, ढोलक, हारमोनियम आदि प्रमुख हैं। इसका दर्शक वर्ग प्रायः निम्मनवर्गीय होते हैं गीत गज़ल आदि में रूचि रखने वाले दर्शक इसमें अधिक पाये जाते हैं। इसके कलाकार भोडल, काला, लाल, पीला रंग आदि प्रयोग में लाते हैं। कलाकारों के लिए प्रयुक्त वेश विन्यास अत्यंत भड़कीला होता है प्रायः बहुत ही कीमती वस्त्रों का प्रयोग किया जाता है। इसका खेल रात्रि के 9-10 बजे आरम्भ होकर पूरी रात चलता है। एक गांव में हो रही नौटंकी को आसपास के गांव के सभी लोग शामिल होते हैं। परिवार की द्रष्टि में ये लोग मुजरे में या शराबखाने में गए हुए जैसे माने जाते हैं। इसका कारण है कि कुछ मंडलियां जो धन कमाने के लिए इसमें विकृति करते हुए इसमें फूहड़पन को भर देते हैं।

लोकनाट्य और नोटंकी के संबंध में एक विशेष बात यह है कि लोकनाट्य में नृत्य और गायन के माध्यम से होने वाला अभिनय यथार्थवादी न होकर स्टाइलाइज़्ड होता है ''जबकि नौटंकी में और तमाशा तथा माच में भी अभिनय, अच्छा अभिनय अशिल्पित नहीं यथार्थवादी होता है,,[8]। इस विधा पर यह आरोप लगाया जाता है कि यह अत्यंत विकृत हो चुकी है। नौटंकी पार्टी को अकसर लोग किसी की शादी या किसी महोत्सव में बुलाया जाता है। अच्छी मंडलियां महंगी होती हैं। इसलिए आम आदमी तक उसकी पहुंच नहीं है। अतः ऐसी धारणा बनाई गई हैं। अच्छी नौटंकी पहले भी अच्छी थी और आज भी अच्छी हैं। समकालीन हिन्दी नाटक परंपरा में नौटंकी शैली को लेकर कई सफल नाटक भी लिखे और लोकनाट्यों की और हमारा ध्यान आकर्षित कर समकालीन हिन्दी नाट्य परंपरा में रंगमंच के नये मुहावरे की नींव रखी जिनमें हबीब तनवीर का नाम अग्रणी है। मुद्राराक्षस का आलाअफसर तथा सर्वेश्वरदयाल सक्सैना का बकरी नाटक नौटंकी शैली के सशक्त उदाहरण हैं। इन प्रयोगों के कारण नौटंकी एक संभावनापूर्ण रंगमंच के रूप में सामने आ रही है। हिन्दी रंगकर्मी भी इसकी रंगक्षमता को पहचान रहे है और आशा है कि ये लोक शैलियां टोटल थिएटर की परिकल्पना में नाटककारों व निर्देशकों का संबल बनकर पूरी तरह से खरी उतरें।

संदर्भ

1. कमला प्रसाद, कलावार्ता, सुशील त्रिवेदी, मैंने विदेश में अपने देश को पहचाना, फरवरी, 1984, भोपाल, पृ 7
2. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, पृ 686
3. नैमिचन्द्र जैन, रंगदर्शन, पृ 80
4. डा विशवनाथ शर्मा, हिन्दी रंगमंच का उदभव और विकास, पृ 121
5. छायानट, अंक 14, पृ 23
6. Youtube .com nautanki
7. नेमिचन्द्र जैन, रंगदर्शन, पृ 210
8. मुद्राराक्षस, आला अफसर, पृ 14

सौन्दर्य

Antiquity of Sārdā Temple at Maihar

Dr Sanju Mishra
Allahabad Museum
Ministry of Culture, Government of India, Prayagraj

Maihar ($24^0$16' N and $80^0$46' E) is a tahsil headquarters of SATNA District, Madhya Pradesh (fig-1). The place is accessible from road and from train both. Maihar railway station is nearby this place. As the history of this place goes back to the prehistoric times with the discovery of prehistoric sites on the lower part of Sharda temple hill by V.D. Mishra 1977.[1] Maihar is famous for its Śārdā temple which stands on the summit of a hill. According to folklore Ālhā, the famous hero of the court of Chandela king Parmardi (C. 1163-1202 C.E.) used to worship the goddess at this place. This area was a buffer zone between the Chandellas of Jejākabhukti and Kalchuris of Tripurī and it might have exchanged hands.

The first authentic account of Śārdā temple we have from two inscriptions at Maihar. These records have been marked as A and B for the sake of convenience. Inscription No. B was noticed by J.D. Beglar (an assistant of Alexander Cunningham) who in 1871-72 visited Maihar (Spelt by him as Mahiyar) in the following words "… to the right of the steps leading up to the chief statue (in the shrine of Devi Śārdā) is a large slab, now cracked, which contains an inscription perfectly illegible from the effect of weather.[2]"

This description of the record in question with reference to the state of its preservation is not quite correct. It is true that some parts of the inscription (B) here and there are rubbed off, but the number of passages, in which the letters are completely lost, are not too many.

As a matter of fact, the image of the goddess Śārdā is under worship and the priests allowed Dr. B.Ch. Chhabra to copy the epigraph on the front side of the pedestal of her image after considerable persuasion in 1940 and Dr. Chhabra prepared their transcripts. Sircar and Subrahmanyam have expressed their indebtedness to him for preparing transcripts and the reading of some words. The texts of the two inscriptions from Maihar have been published in the volume XXXV of *Epigraphica Indica* by D.C. Sircar and V.S. Subrahmanyam in 1959 [3]. The language of the inscriptions is Sanskrit and they are written in verse. The inscriptions are neither dated, nor mentioned the name of reigning king. On paleographic grounds the epigraphs have been assigned to the middle of the tenth century C.E. as the characters of both the

records belong to the Early *Nāgarī* of the tenth century [4].

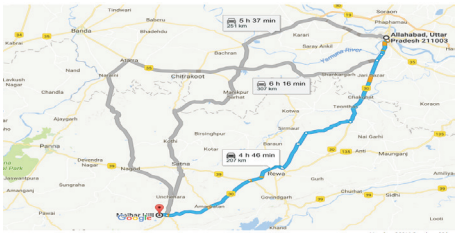

(Fig.1)

Inscription 'A' is engraved on the pedestal of goddess Śārdā. The inscription 'A' contains a single stanza in ***Sardulavikridita*** metre in four lines, and mentions a great scholar who was the very ***Vyāsa*** of the ***Kaliyuga*** in poetic skill and became an expert in sciences like ***Veda***, ***Nyāya***, ***Sāmkhya***, ***Nīti*** and ***Mīmansā*** even when he was a mere boy.[5] This seems to refer to a young Brāhmana scholar Dāmōdara, son of Dēvadhara whose career is described at some length in inscription B and in whose memory the image of goddess Śārdā was apparently installed in a temple at Maihar. Inscriptions on pedestal of images generally speak of the installation or dedication of deities in question but it is quite strange that Maihar inscription No. A merely refers to Dāmōdara son of Dēvadhara in whose memory the image was installed. Moreover inscription No. A does not appear to be the concluding part of a record. It is possible to think that inscription A, though it is followed by marks of punctuation indicating the end of a work or a section, was continued and concluded on the left side.[6]

Inscription No. B has been fixed on the north-eastern corner of the platform on which stands modern 'Śārdā temple.' It is engraved on a well-dressed slab of fine grained sandstone having raised border (about 5 cm wide), on all four sides. The space within the borders which is 86.25 cm high and 77.30 cm broad was originally meant for engraving the epigraph. Since the space was later found inadequate to incise the whole record, the last two lines were engraved, respectively, on the upper and lower borders. These two lines are no longer visible as the record has been fixed on the platform. The inscription (B) a fairly big ***praśasti*** contains 39 lines and 51 stanzas, composed in various meters: ***Sārdūlavikrīdita***, ***Anushtubha***, ***Vasantatilakā***, ***Vamsastha*** and Śragdharā.[7] Inscription B contains a ***mangala*** in prose at the beginning and two passages in prose referring to writer and engraver at the end.[8]

Verses 1-2 of the *praśasti* describe goddess (Sarasvati) as identical with *Brāhmī*, *Kamlā* and *Gāurī* and also as the daughter of Lord *Brahmā*, as installed on this peak of the hill. We know that the goddess of learning is variously represented in Puranic literature as the daughter or wife of *Brahmā* and sometimes also as identical with *Durgā*, the wife of Lord Śiva, as the wife of *Vishnu* or *Manu*, and also as the daughter of *Dakshā*[9].

Inscription (B) gives complete genealogy of the family of Dāmōdara belonging to the *Vatsagotra* of the *Brāhmanas*[10]. It records the names of seven forefathers of Dāmōdara beginning with Sōnabhadra and ending with Dēvadhara father of Dāmōdara. The name of the *Vishaya* or district where Brāhmana family flourished is not clear, though it may be *Govana*. The following stanzas (6-12) mention the descendants of

the said Brāhmanas (1) learned Vūpati was son Sōnabhadra (2) Bhrigudeva, son of Vūpati (3) Gangādhara born in the family of Vūpati (4) Śivadēvabhatta whose relationship with Gangādhara is not stated though he may have been a younger brother of the latter (5) Trivikram, son of Śivadēvabhatta (6) Dēvaprasāda,son of Trivikram(7) Dēvadhara was probably the younger brother of Dēvaprasāda and Dāmōdara son of Dēvadhara.

Verses 24-35 narrate a story relating to the antecedents of Dāmōdara. It is said that he was really the son of the goddess Sarasvati and was living in *Brāhma-Loka*, along with the preceptor of the gods (*Brahaspati*) and that once there was a seven day long *sāstric* dispute between the two in which Brahaspati was defeated by the young boy. Being angry at his defeat, the preceptor of the god's cursed the boy to be born on the earth. The boy's mother Sarasvati then appeased Brahaspati who consoled the daughter of *Brahmā* by predicting that young son would be born in a family of pious Brāhmanas and would become a great scholar [11].

The inscription seems to indicate the popularity of the works of *Bāna-Bhatta* in the area. The story of Sarasvati's son having been cursed by Brahaspati in *Brāhma-Loka* and born on the earth reminds us of a similar story told in the first chapter of Bāna's *Harshcharita*,how Sarasvati herself was cursed by Durvasas in *Brāhma-Loka* and was compelled to live on the earth (on the bank of the river Sōna) where she was married to a mortal and gave birth to a great scholar[12].

The last stanza (verse 35) puts the following words in Brahaspati's mouth: "Verily this child will again come back to you as a result of being drowned in (the waters of) the sea after having seen *Purushōttama in the Odra* [13] country." The reference here is to Lord *Purushōttama-Jagannātha* of Puri in Oddissa.

Verses 35-40 describe Dāmōdara's career on the earth, the first two stanzas (Verses 35-36) stating that, at the time Brahaspati was consoling Sarasvati in heaven, Dāmōdara was the son of Dēvadhara was born on the earth. It is further stated that as predicted by the preceptor of the gods, he stayed in his father's house till he became sixteen years old. The following two stanzas (verses 37-38) state how then Dāmōdara left his parents, friends and relations and resolving to set out on pilgrimage, reached in due course the seashore where he saw the God *Purushōttama*. Verse 40 states that Dāmōdara went back to the *Brāhma-Loka*. It appears that he must have lost his life while bathing in the waters of the sea (Bay of Bengal) near the temple of *Purushōttama-Jagannātha* in Oddissa [14].

The reference to Dāmōdara's pilgrimage to Puri is very interesting. There is evidence to show that the Lord *Purushōttama-Jagannātha* of Puri in Oddissa was a celebrated deity in the latter part of the eleventh century C.E., when Krishnamiśra composed *Prabodhachandrodaya* Nataka[15] at the court of Chandella king Kirtivarman (C. 1070-1100 C.E.). This drama was performed at Kalinjara at *Sabhāmandapa* of Nīlakantha Temple, the presiding deity of the fort. It is now clear from the present record that Lord *Jagannātha* was enjoying the same celebrity as early as the middle of the tenth century and probably even some time earlier.

Verse 41 says now Dāmōdara's father Dēvadhara became greatly mortified at

the news of his son's death. Verses 45-46 states how Dēvadhara built a temple for the goddess Sarasvati in his son's memory[16]. It seems that Dēvadhara received help in that connection from his friend Madhūsudana, a banker, who is described as responsible for the building of many temples and other charitable institutions (verses 42-43).

The temple referred to is no doubt the one in which the goddess Śārdā of the Maihar was originally installed on the hill[17]. Verse 51, with which the eulogy ends, contains the prayer that the goddess (i.e. the image of Sarasvati or Śārdā now worshipped on the hill at Maihar) may lost forever [18].

Maihar *praśasti* was composed by a Saiva ascetic named Sāmba [19] Śāmbhū who was a terror to the *Chārvāka* school of philosophers and a great exponent of the Buddhist and Jaina doctrines as well as the *agamas* of the Saivas. The eulogy was written by Bhāva and it was engraved by Nāgadēva [20].

References

1. Mishra, V.D. 1977. *Some Aspects of Indian Archaeology*, Prabhat Prakashan, Allahabad: pp. 1-21.
2. Beglar, J.D. and Alexander Cunningham 1878. *Report of a tour in Bundelkhand and Malwa 1871-72 and in the Central Provinces 1873-74*, *Archaeological Survey of India Report, Vol. VII.* Office of the Superintendent of Government Printing, Calcutta: p. 51.
3. Sircar, D.C. and V.S. Subrahmanyam. Inscriptions from Maihar, *Epigraphica Indica XXXV*: pp. 171-178.
4. *Ibid*, p. 171.
5. *Ibid*, p. 172.
6. *Ibid*, p. 172.
7. *Ibid*, p. 174.
8. *Ibid*, p. 171.
9. *Ibid*, p. 174.
10. *Ibid*, p. 172.
11. *Ibid*, p. 173.
12. Cowell, E.B. and F.W. Thomas. 1969. *The Harsh Charita of Bāna* (2nd Edition), Motilal Banarasidas, Delhi/Varanasi (Reprint): pp. 1-30.
13. Sircar, D.C. 1990. *Studies in the Geography of Ancient and Medieval India*, Motilal Banarasidas, Delhi: p. 134ff.
14. Sircar, D.C. and V.S. Subrahmanyam. *op. cit*.: p. 173.
15. Krishanamisra 1968. *Prabodhachandrodaya* (2nd Edition) ACT II, Chaukhambha Vidya Bhawan, Varanasi: pp. 75-76.
16. Sircar, D.C. and V.S. Subrahmanyam. *op. cit*.: p. 173.
17. *Ibid*, p. 173.
18. *Ibid*, p. 173.
19. *Ibid*, p. 178.
20. *Ibid*, p. 178.

Plate-

Inscription A

Inscription B

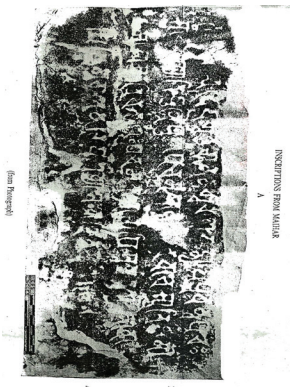

संगीत कला में भाव, रस एवं ध्वन्याभिव्यक्ति

कामाक्षी यादव

शोध छात्र
गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ. रामशंकर

सहायक आचार्य
गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

शोध सार

''संगीत एक ऐसी कला है जिसका अपना निश्चित शास्त्र है। यह मौखिक एवं प्रदर्शनात्मक होते हुए भी एक विद्या की तरह प्राचीन समय से ही अध्ययन और अद्ध्यापन का विषय रहा है। संगीत में भाव का होना संगीत को जीवंत बनाता है और भावों की रसानुभूति मधुर संगीत का सृजन करता है। यह प्रकृति विभिन्न अलंकरणों से सुशोभित होते हुए समस्त जीवों को वह स्त्रोत प्रदान करती है जिनसे जीव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ती करता है। मानव का धर्म है कार्य करना और की गयी क्रिया उसका समुचित रूप बनकर पुनः मानव को ही प्राप्त होती है। कार्य करने हेतु मानव अपने भीतर बसे भावों से प्रेरित होता है और उन भावों की अभिव्यक्ति को विभिन्न प्रकार से प्रदर्शित कर कार्य करता है। नाद ब्रह्म का स्वीकारते हुए उसमें विलीन ओमकार की ध्वनि का उच्चारण मानव के भाव प्रदर्शन का प्रथम चरण होता है। यह भाव ध्वनि परिवर्तित होकर जिस माधुरी को प्रदत्त होती है वह कला संगीत है और संगीत में भाव एवं रस का होना उतना ही आवश्यक है जितना शरीर में आत्मा एवं श्वास का होना।''

बीज शब्द

भाव, रस, अभिव्यक्ति, सौन्दर्य, ध्वनि, काकु

भूमिका-

मानव अपने हर्ष, विषाद, सुख-दुःख आदि भावों को गायन, वादन, नृत्य व नाटक इत्यादि माध्यमों से व्यक्त करता आ रहा है, प्रारम्भ से ही संगीत मनोरंजन का साधन मात्र ही नहीं अपितु ईश्वर की आराधना का सशक्त माध्यम भी रहा है। संगीत ध्यान केन्द्रित करने की प्रेरणा और अभ्यास करने में सदैव ही सहायक रहा है। सभी कलाएं मानव के भावों की अभिव्यक्ति होती हैं। अतः जो कला अधिक भावों की अभिव्यक्ति करने में सझम है वही कला श्रेष्ठ है। संगीत की सौन्दर्य शक्ति के द्वारा प्राणी के स्थायी भावों को जगाकर उसे रसमग्न कर देना कलाकार का लक्ष्य होता है। रस का सही-सही परिपाक सिद्ध कलाकार की प्रवीणता का परिचायक होता है। सौन्दर्यबोध की दृष्टि से किसी श्रोता का संगीत मर्मग्य होना आवश्यक नहीं, क्योंकि संगीत समझने की नहीं अपितु अनुभव करने की वस्तु है। संगीत का सौन्दर्य राग, लय और गीत पर तो निर्भर होता ही है, काकु-भेद भी उसका मुख्य अंग है। स्वरों को विशिष्ट गति देकर समुचित प्रभाव उत्पन्न करने की दृष्टि से उन्हें उच्च-नीचता के साथ प्रदर्शित करना काकु-भेद कहलाता है। इसलिए किसी एक

ही स्वर समुदाय अथवा एक ही शब्द के उच्चारण द्वारा संगीतकार श्रोता के मन में भिन्न-भिन्न भाव उत्पन्न करने में सफल रहता है।

नाट्शास्त्र में भरतमुनि ने लिखा है कि, ''स्थायी भाव ही विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव में संयोग से रस बनते हैं- ''विभावानुभवव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्ति।''[1] इस सूत्र की व्याख्या में चार सिद्धान्तों को महत्वपूर्ण स्थान है- भट्टलोल्लट का 'अत्पत्तिवाद', शंकुक का 'अनुमीतिवाद', भट्टनायक का 'भक्तिवाद' और अभिनवगुप्त का 'अभिव्यक्तिवाद'। पूर्ववर्ती तीनों आचार्यों के मतों की विशेषताओं को लेकर पहले से चले आ रहे अभिव्यक्ति सिद्धांत को अभिनवगुप्त ने पूर्णता प्रदान की, जिसके फलस्वरूप रसानुभूति की दृष्टि से यही सिद्धांत सर्वाधिक मान्य हुआ।[2]

स्थायी भाव 9 प्रकार के माने गये हैं- (नाट्यशास्त्र के टीकाकार अभिनवगुप्त के अनुसार)[3]-

1. रति (जो अंततोगत्वा 'श्रृंगार' रस में परिणाम हो सकता है।)
2. हास (जो अंततोगत्वा 'हास्य' रस में परिणत हो सकता है)
3. शोक (जो अतंतोगत्वा 'करूण' रस में परिणत हो सकता है।)
4. क्रोध (जो अंततोगत्वा 'रौद्र' रस में परिणत हो सकता है।)
5. उत्साह (जो अतंतोगत्वा 'वीर' रस में परिणत हो सकता है।)
6. भय (जो अन्तातोगात्वा 'भयानक' रस में परिणत हो सकता है।)
7. ग्लानि (घृणा) (जुगुप्सा) (जो अंततोगत्वा 'वीभत्स' रस में परिणत हो सकता है।)
8. आश्चर्य (विस्मय) (जो अंततोगत्वा 'अभदुत' रस में परिणत हो सकता है।)
9. निर्वेद (शम) (जो अंततोगत्वा 'शांत' रस में परिणत हो सकता है।)

इन स्थायी भावों के सहायक भावों का भी संगीत में सहज ही प्रयोग देखने को मिलता है। रस-भाव का समागत संगीत भावों के सहायक भावों का भी संगीत में सहज ही प्रयोग देखने को मिलता है। रस-भाव का समागम संगीत के प्रत्येक अंग में निहित है। ललित कलाओं में चाहे वह संगीत हो या चित्रकला, धातु हो या काष्ठ कला सभी में रस एवं भाव की अभिव्यक्ति की पराकाष्ठा का ही वर्णन होता है।

संगीत में रसानुभूति के तत्त्व

एक सुन्दर संगीत के निर्माण हेतु उत्पन्न भावों की निष्पत्ति करना भी एक कला है। संगीत कला एकाग्रता के लिये एक सिद्धहस्थ कला है जिसके माध्यम से नाट्य में नाटककार अथवा कलाकार अपने भावों की अभिव्यक्ति उत्तम प्रकार से प्रस्तुत करता है। प्रत्येक ललित कला के प्रमुख उद्देश्य परम रस के अनुभूति ही हैं। रस एक काव्य कला का विषय है परन्तु उसका उपयोग प्राचीनकाल से ही ललित कलाओं में प्रधान तत्त्व माना गया है। संगीत में रस की प्राप्ति उसमें प्रयुक्त स्वरों के लगाव तथा लय के सुमेल से होती है। इसके अतिरिक्त सभी प्रकार के काव्य प्रमुख भावों, विभावों, संचारी भावों के कुशल प्रयोग से जिस रससिद्धि की प्राप्ति होती है। उन तत्त्वों से ही संगीत की भावात्मक सृजनता निरूपित होती है।

राग, सौंदर्य एवं रस तत्त्वों में स्वर एवं भाव का सम्बन्ध

किसी ललित कला का मूलाधार भाव ही है जिन्हें शास्त्रों में 'स्थायी भाव' की संज्ञा दी गई है। यह परम भाव मनुष्य को जन्म से ही मिली वह चेतना होती है जो उसके अचेतन मन में उठने वाले प्रश्नों से प्रेरित होकर स्वतः ही जागृत होती है। इसे किसी उदाहरण के रूप में यदि समझें तो व्यक्ति जब संगीत को समझना प्रारम्भ करता है तो वह मुख्य रूप से कुछ विशेष तत्वों के प्रति ही आकर्षित हो पाता है जैसे -वाद्यों के प्रति, मधुर ध्वनियों के प्रति अथवा भाव के प्रति इत्यादि। इन तत्त्वों से प्रभावित होकर वह संगीत को ग्रहण करना प्रारम्भ करता है तथा धीरे-धीरे अपनी बुद्धि क्षमतानुसार वह संगीत

के प्राण तत्त्व भाव को समझने लगता है। यह भाव उसे ध्वनि के प्रति, स्वरों के प्रति अथवा काव्य के प्रति किसी भी रूप में परिलक्षित होने लगते हैं।

इसी प्रकार एक कलाकार के हृदय में किसी राग को प्रस्तुत करते समय जिस भाव का निरूपण होता है उसे वह विभिन्न रूपों में प्राप्त करता है जैसे-किसी आराध्य के रूप में, अपने राग में निहित स्वरों के प्रति समर्पण के रूप में, बंदिश की चलन अथवा भाषा में निहित किसी अदृश्य दृश्य के रूप में इत्यादि।

जब स्वर उत्पन्न होते हैं तो उनसे कलाकार के मन में संबंधित भावों का भी जन्म स्वतः ही होता है, क्योंकि स्वरों का सौन्दर्य राग को निर्मित करता है और भाव उस राग का प्रधान तत्त्व बन जाता है। संगीत की आत्मा रस ही तो है। यह सभी भाव तभी सार्थक हैं जब नाद-प्रकम्पनों के प्रयोजन को समझा जाये। नाद ही तो वह तत्त्व है जो स्वरों के आघात को कलाकार के मस्तिष्क के कोषों तक पहुँचाता है जिससे झंकृत होकर मस्तिष्क समस्त ज्ञानेन्द्रियों तक एक चरमावस्था तक पहुँचाता है। परिणामतः उस रस अथवा भाव की निष्पत्ति होती है जो इन्हीं ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से हृदयालंकारों को सज्ज करते हुए उसमें निहित विभिन्न स्थितियों से परम आनंदित संगीत को जन्म देती है।

रस संगीत की आत्मा है। उस रस के परिपाक में संगीत के अनेक प्रकार के घटक सहयोगी होते हैं। संगीत में नाद, श्रुति, राग, स्वर, रचना, ताल, वाद्य आदि ऐसे साधन अथवा तत्त्व हैं जिसके माध्यम से रसों की सृष्टि संभव होती है।

इन सभी बातों के अतिरिक्त एक बात ध्यान देने योग्य है कि इन भावों को प्रकट करने का मुख्य बिंदु क्या है? कदाचित एक ध्वनि ध्वनि के बिना भाव प्रकट तो किया जा सकता है परन्तु उन भावों में स्पर्शता का भाव ध्वनि से उत्पन्न होता है। भाव एवं रस की अभिव्यक्ति में ध्वनि के महत्त्व को भी जानना आवश्यक है।

ध्वनि सिद्धांत की स्थापना से साहित्य जगत में एक क्रांति सी आ गयी, जिसके कारण वह सिद्धांत आज तक अबाधित रूप से प्रायः सर्वमान्य रहा है, किन्तु यह सिद्धांत साहित्य तक ही सीमित नहीं, अपितु संगीत के लिए भी उसका विशेष महत्त्व है।4 ध्वनिवादी आचार्यों से रस के आधार पर ध्वनि के तीन भेद किये हैं- वास्तु ध्वनि, अकार ध्वनि तथा रस ध्वनि। इन तीनों में उन्होंने रस ध्वनि को ही श्रेष्ठ माना है।5 संगीत का मुख्य आधार भी यही ध्वनि अथवा नाद ही है। वास्तव में सगीतोपयोगी ध्वनि को नाद कहते हैं अथवा जो ध्वनि मुख्य आधार भी यही ध्वनि अथवा नाद ही है। वास्तव में सगीतोपयोगी ध्वनि को नाद कहते हैं अथवा जो ध्वनि मधुर है तथा संगीत के लिए उपयोगी है उसे नाद कहा जाता है। संगीत वह कला है जिसके माध्यम से मनुष्य अपने मन के विभिन्न भावों को प्रकट करने का प्रयास करता है। जब ध्वनि के माध्यम से अपने भावों को व्यक्त करने के लिए रसों को ग्रहण करने का प्रयास करते हैं तो हम यह अनुभव कर पाते हैं की रसों का अस्तित्व ध्वनि तरंगों में भी एक निश्चित रूप में विद्यमान है किन्तु उसको प्रत्यक्ष रूप प्रदान करना अथवा उसकी व्याख्या कर पाना असंभव होता है। ध्वनि आचार्यों ने काव्य में रस तत्व की ही महत्व प्रदान किया है। काव्य का उपकरण 'शब्द' और संगीत का 'स्वर' है। इन दोनों का मूल तत्त्व ध्वनि ही है। काकूभेद या कंठ ध्वनि में परिर्वतन करके ही शब्द के द्वारा अनेक भावों को व्यंजित किया जा सकता है, उसी प्रकार काकूभेद के प्रयोग से किसी स्वरावली के द्व ारा अनेक भाव व्यंजित हो सकते हैं। यहाँ सुनते समय स्वरों पर दृष्टि गये बिना श्रवण के साथ ही अनुभूति होती है, वही सच्चा संगीत है।[6]

उद्देश्य

संगीत में 'वाचिक' अनुभव तो स्वतः ही स्पष्ट है। देखा जाए तो संगीत का मूल स्वरूप वाचिक ही तो है। सार्थक और निरर्थक शब्दों के आघात-प्रत्याघात द्वारा ही बंदिश का निर्माण होता है। इसके अतिरिक्त आलाप-तान, गमक-मींड, विभिन्न वाद्यों का वादन इत्यादि सभी कुछ जिस प्रकार में

प्रकट होता है वह नादात्मक और ध्वन्यात्मक तथा वर्णात्मक होता है। ऐसा कहा भी गया है। कि जहाँ आकर मौन भी संगीत बन गए जाए परन्तु जब तक उसमें स्वरों का प्रयोग है तभी तक। संगीत कला में भाव, रस एवं ध्वन्याभिव्यक्ति कला के उस गुण को प्रदर्शित करता है जहाँ आकर एक अचेतन मन भी अपने भावों को पहचान कर चेतना के मार्ग को प्रशस्त करता है। संगीत कला ललित कलाओं में सर्वोत्तम कला है। व्यक्ति अथवा कलाकार जहाँ अपनी अदृश्य कल्पनाओं को आकार प्रदान करता है और उन कल्पनाओं को प्रत्यक्ष प्रमाणित करने वाला श्रोता अथवा दृष्टा उसकी इस साधना को अपने अचेतन ज्ञान में वर्धित करता है। यह ऐसी कला है जिसका प्रयोगात्मक पक्ष, साहित्य पक्ष, भावात्मक पक्ष, कलात्मक पक्ष एक वर्णित एवं विश्लेषित रूप में समस्त जगत में प्रदर्शित होता है। संगीत कहीं का भी हो अथवा कैसा भी हो, उसकी अभिव्यक्ति को दर्शाने वाले घटक अथवा तत्त्व उसे सार्थक बनाते हैं तथा प्रयोग में सदैव यह सतत् एवं क्रियाशील रूप में विद्यमान है।

निष्कर्ष

रस को धारण करने वाला भाव जब विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों से सिक्त होकर उन हृद्यालान्कारों को पोषित करता है जिससे मानव जाति के अस्तित्व की अभिव्यक्ति सुनिश्चित होती है जब एक ध्वनि जो स्वरों में पिरोये आभूषण के समान होती है, उस अभिव्यक्ति को पुनः धारण करने के लिए सज्ज करती है। भारतीय संगीत की अनुपम विशेषता उसमें प्रकट होने वाले राग रहे हैं। इसलिए यह विषय एक सतत प्रकरण के रूप में विद्यमान है। संगीत में भाव से आशय उस मनोदशा से है जो मनुष्य जन्म के साथ ही ग्रहण करता है। इन भावों को प्रकट करने के दौरान वह उन स्थायी भावों का निरूपण करता है जिसका ज्ञान वह आयु की विशेष सीमा पर आकार प्राप्त करता है। परन्तु इन सबसे पहले जिस तत्त्व के साथ मनुष्य इस संसार में अपने अस्तित्व को पाता है वह है लय और ध्वनि। इस लय और ध्वनि के परस्पर मधुर संयोग से ही संगीत का जन्म होता है। संगीत में यदि साहित्य न हो तो भी केवल स्तर के बल से आनंद विशेष की अनुभूति की जा सकती है। इस भावाभिव्यक्ति की शक्ति का स्त्रोत मुख्य रूप से ध्वनि ही है तथा रस एवं भाव के समग्र संयोग से इसे सम्पूर्णता प्राप्त होती है।

सन्दर्भ सूची-

1. भरत, नाट्य शास्त्र अध्याय- 6/31 वें सूत्र के बाद (पुनः प्राप्त) 'नेहरंग' दीक्षित प्रदीप कुमार (2005) 'स-रस' संगीत, द्वितीय संस्करण, किशोर विद्या निकेतन, भदैनी, वाराणसी उ.प्र.
2. चतुर्वेदी, पं. सीताराम, भारतीय एवं पाश्चात्य रंगमंच, पृ. 749-760, (पुनः प्राप्त) 'यमन' (2005) संगीत रत्नावली, प्रथम संस्करण, अभिषेक पब्लिकेशन्स, चंडीगढ़
3. नेहरंग, दीक्षित प्रदीप कुमार (2005) 'स-रस' संगीत, द्वितीय संस्करण, किशोर विद्या निकेतन, भदैनी, वाराण ासी उ.प्र.
4. ठाकुर, पं. ओंकारनाथ पंडित, प्रणव-भारती, पृ. 19, (पुनः प्राप्त) 'यमन' कुमार अशोक (2015) संगीत रत्नाली, प्रथम संस्करण, अभिषेक पब्लिकेशन्स, चंडीगढ़
5. चतुर्वेदी, पं. सीताराम, भारतीय एवं पाश्चात्य रंगमंच, पृ. 766 (पुनः प्राप्त) 'यमन' कुमार अशोक (2015) संगीत रत्नावली, प्रथम संस्करण, अभिषेक पब्लिकेशन्स, चंडीगढ़
6. चौधरी, डॉ. सुभद्रा, संगीत-संचयन, पृ. 79, (पुनः प्राप्त) 'यमन' कुमार अशोक (2015) संगीत रत्नावली, प्रथम संस्करण, अभिषेक पब्लिकेशन्स, चंडीगढ़

ABC of Kalpana Swaram Singing Aesthetics Brilliance Creativity

NJ Nandini

Research Scholar,
Dept of Music, University of Kerala

Abstract

South Indian music gives more importance to one's creativity or Manodharmam when compared to other genres of music in the world. Carnatic music has a very extensive and disciplined raga and tala system. Even though it is adhered to the strictly laid grammar, Carnatic music still provides wide scope for one's imagination. This article discusses about one of the beautiful elements of Manodharmam- Kalpana Swaram. The aim of this article is to ignite the thoughts of music aspirants on singing kalpana swaram without fear, but with ideas. Various phases of singing Kalpana swaram and keys to confident and successful execution are also assimilated.

Keywords:

Manodharmam, Tala, Kalpana swaram, Laya, Korappu

Introduction

Creativity is the ability to create something. It is a quality essential for creation. Creativeness or the state of being creative is a natural phenomenon. The result obtained from the execution of a thought triggered by the nature, which is definite, is called creation. Such a creation is a result of one's urge to satisfy need.

This phenomenon pertains with everything, be it an action or thought. Manodharmam is the cause of anything and everything that is in existence. It is an exquisite phenomenon that lies in day to day routine.

Manodharmam or creativity is present ever since the nature existed**. The word Manodharma explains itself as- "Order of mind, referring to scope of improvisation**. It is an intra-personal process. Variety is always something that is different from the existing. Simply it is improvisation. The quintessential factor to produce variety is sense of creativeness or Manodharmam. This requisite element to produce variety is later a necessity for survival.

As far as Carnatic music is considered, there are five branches of Manodharmam viz Raga Alapana, Thanam, Niraval, Kalpana Swaram and Pallavi. Among these except Pallavi, all others are a musician's

decorative creativity around already composed musical forms, especially Krithis. Pallavi itself is one's creation and all the other elements are attached to it, making the Ragam Tanam Pallavi the most complex of all the elements of Manodharmam in Carnatic music. As far as krithis are concerned a musician can choose to sing alapana, tanam, nirval or swaram. There are even circumstances where krithis are just rendered simply, without any of these elements of manodharmam, in concerts. However, for Pallavi exposition the elaboration of all these becomes mandatory in order to bring it a completeness.

Each one of the branches are challenging in their own way, and requires years of training and rigorous practice in order to achieve mastery over them. To elaborate a Raga as alapana one needs profound knowledge about the nuances of the raga, the grammar, the possibilities and restrictions. Whereas the same knowledge along with mastery over laya is required for all other branches.

Kalpana swaram singing has always been a challenge for Carnatic music students in their beginning stage. Since it requires various abilities like, layam, the knowledge about raga, understanding of the commencing place and how the ending phrase should be, this element of Manodharma Sangeetham is very important. One's ability in execution of effective kalpana swaram is regarded as benchmark of the total talent of the musician. It requires a lot of practice and listening equally. Swaram singing is a Creative Expression of raga, or ornamentation of raga with swaras which adds more flavor.

Unlike Raga alapana, Niraval and Kalpanaswaram require an additional knowledge and control over Laya or Tala. A sound understanding of the ragabhava and the idea to produce variety of phrases profusely is the key to a successful execution of kalpanaswaram. Typically it is a musician's choice to select the point where kalpana swarams are added extempore. The choice of eduppu is very important. Generally we can find them in one or two speeds. Technical interpretations in Tisram or Khandam usually succeed a pallavi exposition. Kalpanaswaram is an ideal portion to exhibit the musician's balance over raga and laya. Various phases and methods of singing kalpanaswaram are as discussed below.

1. Simple Phrases and Progression :

Swara singing usually starts in simple and short set of swaras which then progresses to longer and complex patterns. Each round of swaras ends at a particular point chosen by the musician in the lyric of the composition.

2. Significance of the commencement or Eduppu:

Eduppu is the starting place of the chosen lyric in the composition where a musician intends to sing kalpanaswaram. Mostly seen are *samam* (music and talam starting right on the beat), *atheetham* (the music precedes talam) and *anagatham* (the talam precedes music). It is not mandatory that only a particular line has to be chosen in a composition for rendering kalpanaswaram. It

is the creativity of a musician to experiment any line of any eduppu in a composition. There is also trend of singing swaras to different places in the same line of lyrics.

3. Ending Phrases and Connections to Eduppu:

This is another important element in swara singing. One requires tremendous amount practice and command to execute swaras in an impactful manner. It is often not predetermined but spontaneous in nature. The ending note or phrase should be very appropriate to the opening lyric. There is also a fashion and advanced level of technique by adding new sangathis to the eduppu and bring in the ending phrase with different notes and blending aptly with the eduppu. Interestingly, ending with an odd number pattern to an even number eduppu and vice versa add more flavor to the rendition.

4. Speed of singing the swaras:

Often, kalpana swarams are sung in slow tempo first and fast tempo subsequently. The slow tempo swaras provide ample scope for gamaka (microtones) based exploration of the raga, while the fast tempo swarams gives more energy and vibrancy to the performance which always climaxes in a beautiful pattern and attractive calculation bringing an exciting crescendo effect.

5. Sarvalaghu swaram

The style of singing swaras free as desired, compounding the musical and rhythmical aspects often bringing delightful experiences. The focus will be mainly on the ragabhava and the variety of patterns possible in the raga. It includes employing, janta, dhatu and also other combination phrases that is symmetric. Fully adhering to the grammar Sarvalaghu singing is the most preferred and appealing method of singing.

6. Kanakku and Korvai

Incorporation of arithmatic calculations in swara usually termed as singing kanakku enhances the total presentation. It is a thrilling experience to the listeners. Inclusion of kanakku depends upon the proficiency of the musician in mathematical aspects. Singing standard and simple calculations or combinations like three 5s (5*3) or similar calculations at the end of sarvalaghu swaras are usually seen in every concert.

Korvais are repeated thrice at the end of sarvalaghu swaras. Either the same pattern of rhythmic structure is repeated thrice (but choosing different swaras to highlight the effect) or there can be a variety in the structure in all three rounds by making visible and beautiful changes.

There is also a beautiful trend of singing customized patterns or Poruthams (sounds similar to the eduppu) which requires high creativity. The rhythmic pattern in this style seamlessly merges with the eduppu bringing element of surprise

and excitement in the listeners.

7. Korappu /Kuraippu

It is a phenomenon that appears before the rendition of the korvai in the manodharma swara, mostly suffixed to the main krithi. A korappu has, a Karvai and Thathikitathom or its alternate expressions. Korappu means reduction. The initial rounds of koraippu will be longer and it veins down fractionally before connecting to the korvai. It is usually executed in a question answer format between the vocalist and violinist.

Mishra korappu in Adi talam will be as follows

Karvai	Expression	No of Times	Total value	fraction	Tala cycle
16 mathra	Misra jathi tha-thikitathom (7)	16	16+(16*7)=128	2	2
8 mathra	7	8	8+(8*7) =64	1	1
4 mathra	7	4	4+(4*7) =32	½	½
2 mathra	7	2	2+(2*7) =16	¼	¼
1 mathra	7	1	1+(1*7) = 7	1/8	1/8

8. Advanced techniques

Various advanced techniques such as bringing gathi bedham (ie, the tala remains the same but syllables over each beat changes) by singing in Tisram, khandam or mishra gathis , or singing grahabedham in korvais etc reveals the vidwath (genius) of a musician.

Various ideas of singing Kalpanaswaram adhering to aesthetics

1. To decide the suitable ending note or phrase according to the graham/ eduppu of the chosen line in the krithi or the place in pallavi.
   Example:
   Janakipathe in kharaharapriya (Adi talam) begins in the note "n" (nishadam). So it is suitable to end the swaram like follows:

(a) |,,,, ,,,,|,,,r gmpd|| janakipathe

Another approach can be

(b) |,,,, ,,,,|,,,p dṅṙs|| janakipathe

The variety we can bring in is

(c) |,,,, ,,,,|,,, p dnsṙ|| or |,,,d nṡṙg|| janakipathe (adding an allowable crisp brigha to the eduppu)

2. Varieties that can be brought if the eduppu shows a sudha swaraksharam/ or an important note of the ragam. This is also an area to show how a particular not can be arrived at, from different places.
   Example: In the thodi composition Thamadamen swami (Adi talam) the eduppu starts in the note D (Dhaivatham)

(a) |,,,, ,,,,| ,,g, ,,m|| Thamadamen
(b) |,,,, ,,,,| ,,g, m , n, || Thamadamen
(c) |,,,, ,,,, |n,g, r,s,|| Thamadamen
(d) |,,,, ,,m,|d, n,s, r,|| Thamadamen

3. Making small changes in the eduppu, to make it more attractive and challenging.
   Example : To sing kalpanaswaram to the charanam of Thodi varnam- Dani mataluvini- one mathra after the beat.
   |,,, ,,,ṡ|d,ṙs d,gṙ || s – danimataluvini
4. Singing kalpana swarams to various sangathis or varieties of the line already in the krithi adopting the idea from the krithi itself. (yarukku than, dinamanivamsha, deva deva)
   Yarukku than theriyum – Devamanohari- Adi talam

(a) |,,,, ,,,, |,,, m rsrm|| yarukku (the first sangathi commencing in panchamam)
(b) |,,,, ,,,,| ,,, r mpdn|| yarukku (the first sangathi commencing in

panchamam)

(c) |,,,, ,,,,| ,,sr mpdn|| Yarukku (the second sangathi commencing from Thara shadjam)

(d) |,,,, ,,,,|,,,p dnsṙ|| Yarukku (sangathi commencing from thara shadjam)

(e) |,,,, ,,,,|,,pd nsṙṁ|| Yarukku (the final sangathi)

Possible of singing this way in krithis like Dinamanivamsha and krithis that possess multiple and variety sangathis

5. Adding attractive sangathis to the eduppu and match them with suitable swarams samodam chinthayami-sudhdhanyasi (Misrachappu). Singing kalpanaswaram to Charanam, Syananduranagari that begins at panchamam

(a) ||,,,, ,, ,,,, pmgs||gm- syanandura (the normal expected execution)

(b) || , , *mgpm npsn p,,, p,,,*
|| ,,,, ,, ,,,,, snn || pm- *sya-- nan—du-ra*

(c) || , , *nsgm pnsn p,,, p,,,*
||,,,, ,, ,,,,sn pm|| gs- *Sya—nan- du ra*

9. Ragamalika Kalpana swaram

This idea of singing Kalpana swaram in different ragas are usually heard in the exposition of Ragam Tanam Pallavi. Ragamalika swara prasthara is implemented both in simple pallavis that is set in single ragam, as well as ragamalika pallavis.

Indian music gives much importance to uniqueness. Uniqueness is measured by the creativity and innovation of musicians. Bani is an Indian music terminology as both south and north Indian music systems have a significant amount of adherence to it. Bani in South Indian music is called gharana in north. Bani is nothing but a specific style of singing or interpretation with expertise in various elements of manodharmam and musical forms. It is to be noted that, musicians carry their signature considering the ability of their voice and its production. Those aspirants who get attracted to a specific style adopt the same and become a part of that particular Bani.

Assimilating the art of singing Kalpana swaram, it is undoubtedly the most attractive and vibrant element among all the 5 branches of manodharmam. It is the factor that creates much enthusiasm for both the artists as well as the connoisseurs. It is very interesting to note how each iconic musicians of the previous generation have interpreted it uniquely. As mentioned earlier, the approach of each musician, carries different charm, according to their ability of voice.

There are many ways to approach singing Kalpana swaram. Some are very genius in forming beautiful ideas that perfectly gel with the natural layam. Flow of such ideas can be called Sarvalaghu. Sarva- Laghu as it says, laghu in carnatic music is always ascertained as 4. The universal layam of 1234…1234…1234 or thakadhimi…thakadhimi..thakadhimi and Sarva denotes – All.

A few musicians are very keen in taking up challenging talas, unique edam (the place of commencement of the song) and also make it rhythmically brilliant adhering more to arithmetic beauty.

Yet some people showcase vividness by choosing rare ragas or ekaika krithis (ragas in which only one krithi is composed) and singing swaras that introduce very wide scope. Simple swaras

and easy combinations is another style. Weaving out phrases from just three or four notes is another luster.

Considering all the above different fashion of singing Kalpana swaram Discussing a few enthralling signature styles here

- Semmangudi Srinivasa Iyer – The King of Sarvalaghu
  Semmangudi Srinivasa Iyer, the doyen of carnatic music is well known for his Krithi padantharam, which is been carried down over generations now, the kalapramanam (the gait) in his renditions and also for the rich sarvalaghu fashion of singing Kalpanaswaram. His style of singing swaras without much karvais or pauses that goes upon umpteen tala avarthanas has created goose bumps to the connoisseurs of those days. Literally the Ragachaya takes up in full form in his swara passages.
- Alathur Brothers- The Maths Masters
  The brother duo is known for their brilliance in constructing swaras which are arithmetically rich. They are the musicians who propagated challenging talams and unique edams in various krithis like Dasukovalena in Misra Jhampa. Their style is highly competent, brisk and nail-biting. The trend of singing korappu to edam much different from the conventional style of singing to samam, and complex korvais were set by Alathur Brothers.
- GN Balasubramaniam- The Sensational Prince
  GNB was literally a prince of his times. People just rush in large numbers not only to get a glimpse of him, but also to smack the musical savory he offers. With the voice that traverses in three octaves at ease, gave innumerable moments in a single concert that always created chills, thrills and that the audience was in the edge of their seats. GNB always created curiosity and a 'what next' feeling in his fans. He always chose a unique note for the elaborated swaram much to the awe of fellow musicians and listeners. He was musican of class, who always showcased the scope in ragas like Kapinarayani, Malavi, etc which wasn't that much attempted those days.
- KV Narayanaswamy – The Melody Monarch
  The music that comes from KVN is honey-dipped. Adorned with a silky voice, his renditions are always musically melodious. He is known for his signature style of singing kalpana swaram, which is not set, but falls as a beautiful pattern naturally befitting the edam. The rendition is very chirpy and in perfect kalapramanam.
- Madurai Mani Iyer- The Innocent Core
  When we listen to Madurai Mani Iyer, we feel that singing kalpanaswaram is a very easy activity. His patterns are very simple in the 1234 .. 1234 style on the beat, most of the time, yet sounds aesthetically very beautiful. His child-like pronunciation of syllables and the gamakas makes us feel the innocence in it.
- DK Jayaraman- The Grammar Genius

The method of DKJ is always phrase by phrase, note by note. We can rarely find long phrases in his elaboration. The phrase by phrase progressions are always grammatically pure and strict. His style makes us thorough with the dos and donts of a raga. DKJ is also known for his approach to ragas like Jayatasena, Gurjari besides the conventional thodi sankarabharanam.

- Chembai Vaidyanatha Bhagavathar – The Mass Magician

  Chembai has the inimitable style of weaving patterns revolving in just three or four notes. He creates a vibrant ambience around with his own method of singing. He is the one who uses Kathrika swaram (Scissor like phrases) like m,pd p,dn d,ns in Kalpana swaram. He renders only simple poruthams after elaborated swaras and not big korvais.

To sum up, Kalpana swaram singing is complex activity of generating ideas, framing the phrases, adhering to grammar, sticking to layam and executing the same without any hindrance in flow of singing all the same time. We also should understand that all the above musicians created their own signature styles according to the nature of their voice which was well received by the listeners. It is doubtless that effective Kalpana swaram creates an overall impact in the concert.

Reference:

1. Sambamoorthy, P Prof, *South Indian Music* ,Vol III, The Indian Music Publishing House, Royapettah, Chennai, 2008
2. Raveendranath AK, *Dakshinendian Sangeetham* (Malayalam), DC Books, Kottayam, 2012

व्यक्तित्व

हरियाणा के लोक नाट्यकवि - मुंशीराम जांडली

डॉ कामराज सिंधु

विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग दुरस्त शिक्षा निदेशालय, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र

भूमिका

देश के मानचित्र पर हरियाणा एक समृद्ध राज्य के रूप में पहचाना जाता है। इस प्रदेश के अस्तित्व कि अगर घटनाक्रम की बात कर तो यह एक ऐतिहासिक और देश कि आजादी मे बड़ी भूमिका एव घटनाक्रम वाला प्रदेश दिखाई देता है। आज भी भारतीय सेना मे 17% हरियाणा प्रदेश के जवानों की भूमिका है। भारतीय वाड्मय में तो यह शताब्दियों पहले ही यह प्रदेश छाया रहा। महाभारत से लेकर आज तक इस प्रदेश का नाम आदर के साथ लिया जाता रहा है। इस प्रदेश का खान पान आज भी भारत के अन्य प्रान्तों से भिन्न दिखाई देता है। हरियाणा प्रदेश का साहित्य और संस्कृति आज पूरे विश्व मे जानी जाती है, इसकी भाषा सहज एव मज़ाकिया किस्म की दिखाई देती है। मनोरन्जन के साथ साथ यहा के लोग हाजिर जबाबी भी होते है। इसके इतिहास ने बहुत करवट व बदलाव भी देख ह। हरियाणा प्रदेश कि मिट्टी पर अनेक उतार-चढ़ाव सुख-दुख परिवर्तन होते दिखाई दिए हैं। हरियाणा प्रदेश की मिट्टी में भगवान कृष्ण की कीड़ा स्नेह भी दिखाई देता है। हरियाणा प्रदेश की संस्कृति इतनी समृद्ध है कि दुनिया भर के लोग यहां की संस्कृति को समझने पढ़ने और जानने की इच्छा रखते हैं और यहाँ पीआर यात्रा करते है।

भारत के मानचित्र पर हरियाणा एक समृद्ध राज्य के रूप में जाना जाता है। इस प्रदेश के अस्तित्व कि अगर घटनाक्रम की बात कर तो यह एक ऐतिहासिक घटनाक्रम दिखाई देता है। भारतीय वाड्मय में तो यह शताब्दियों पहले ही छाया रहा। इसके इतिहास ने बहुत करवट ली ह। इसकी मिट्टी पर अनेक उतार-चढ़ाव सुख-दुख परिवर्तन होते दिखाई दिए हैं। इस प्रदेश की मिट्टी में कहीं भगवान कृष्ण की कीड़ा भी दिखाई देती है। हरियाणा प्रदेश की संस्कृति इतनी समृद्ध है कि दुनिया भर के लोग यहां की संस्कृति को समझने पढ़ने और जानने की इच्छा रखते हैं।[1] एक प्रचलित किवदंती है कि जब कृष्ण भगवान ब्रज से द्वारका गए यही मार्ग निर्दिष्ट हुआ है। अतएव यह भू-भाग हरियाणा कहलाया। महाभारत युद्ध के दौरान कौरव और पांडवों की सेना भी यहीं पर सम्मिलित हुई। और सर्वप्रथम कृष्ण भगवान भी इसी हरियाणा की धरा पर ठहरे थे।सन 1863-64 की हिसार जिले की बंदोबस्त रिपोर्ट के पृष्ठ संख्या 15 पर कहा गयाह कि "हरि" परशुराम सूचक शब्द है।अर्थात हरित प्राण नितिहरि : और यान का अर्थ है स्थान का एकत्रित करना। अतः परशुराम द्वारा क्षत्रियसंहारका स्थल होने के कारण इसे हरियाणा की संज्ञा दी गई है।[2] हरियाणा के लोक साहित्य में विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। जिसम समय-समय पर विभिन्न साहित्यकारों, लेखकों ने लोकनाट्य कवियों ने कहानीकारों में स्वतंत्र रूप से हरियाणवी लोक नाट्य विधा को लेखन के रूप में लोक कथा के रूप में रागनीयों के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया। बीसवीं सदी के आरंभ में लोककथाओं व रागनियों के माध्यम से हरियाणवी लोक संस्कृति, लोक साहित्य में प्रसिद्ध प्राप्त करने वालों में मुंशी राम जांडली का नाम बड़े आदर के साथ है लिया जाता है। हरियाणा लोक साहित्य परंपरा को आगे बढ़ाते हुए महाशय दयाचंद मायना,

पंडित लख्मीचंद, मांगेराम, धनपत सिंह निंदना, हरिकेश पटवारी और हरियाणा के लोक कवि चंद्र लाल बादी, सेवाराम बखेता, देईचंद, दयाचंद आजाद सिंघाना, और कृष्ण चंद्र रोहणा ऐसे हरियाणा लोक साहित्य के प्रबुद्ध नाटककार हुए हैं जिन्होंने हरियाणा की लोक परंपरा संस्कृति आदि को और अधिक मजबूती देने का प्रयास किया। मुंशी राम जांडली की कविताओं में स्वतंत्रता आंदोलन के प्रति गहरी रूचि दिखाई देती है। स्वतंत्र देश की कल्पना करते हुए मुंशीराम जांडली कहते हैं।

थोड़े दिन की थ्यावसराखो,
आजादी रंगचा कर देगी।
घी खांड अनाज कपड़ा,
सोना चांदी सस्ते भा कर देगी।(3)

स्वतंत्रता प्राप्ति पर खुशी प्रकट करते हुए कवि लिखते हैं-

सन सैंतालिस पन्द्रह
तारीख अगस्त महीना आग्या।

तीन रंगों का महंगा आसमान में छा गया।[4]

मुंशीराम जांडली हरियाणा के लोक साहित्य के एक जाने-माने लोक कवि के रूप में जाने जाते हैं। इनका लोक साहित्य इतना विपुल है और सार्थक भी है जिससे हरियाणा की संस्कृति और साहित्य को मजबूती प्रदान होती है। इस बात की पुष्टि उन्होंने अपनी एक रागिनी में की है।

सब देसांनौ देखी हिंद महँ आजादी आंदी।
अफसोस घणा बुरी बात महात्मा मार दिए गांधी।
जांदी दफा आण की ओछी,
जिला हिसार जांडली छोटी॥[5]

मुंशी राम जांडली रागनी का पुरोधा कहा जाता है। हरियाणा में लोक साहित्य से जुड़े तमाम लोग उनके नाम को बड़े आदर के साथ लेते हैं। उनके साहित्य का सबसे मजबूत पक्ष है उनकी प्रबंध शैली। एक पौराणिक कथा के अनुसार राजा हरिश्चंद्र नामक कथा की उन्होंने रचना की-

अयोध्यापुरी के बीच में हुए त्रिंकुश महाराजा।
उसका सूत हरिश्चंद्र था, करे थे धर्म के काज॥6

कवि समाज की सबसे बड़ी धरोहर होती है। इतिहास को जानने का भी एक बड़ा माध्यम कवि के साहित्य का सृजन है, कवि के सृजन में से ही इतिहास की घटनाएं ताक, झांक करती हुई विद्व तजन की पकड़ में दिखाई देती है और उसी के आधार पर उस समय की समीक्षा करता है। जहां कवि के सृजन में उसका समयझाँकता है। वही से कवि के व्यक्तित्व एवं जीवन की अनेक बातों का पता चलता है। जिस प्रकार से मुंशी राम जांडली के व्यक्तित्व को लेकर अनेक तथ्यों को देखा और समझा गया है। मुंशी राम जांडली हरियाणवी लोक नाट्य परंपरा के संवाहक के रूप में देखे गए। उनके व्यक्तिगत साहित्य की अगर पहचान देखी जाए तो उनकी मन स्थिति से उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता दिखाई देता है। यह व्यक्तित्व ही उसका समाज और उसके कार्यक्षेत्र में उसका स्थान निर्धारित करता है। जांडली के विषय में अगर गहरही से अध्ययन करते हैं तो उसके साहित्य को और अधिक सार्थक पते है। उनके गुरु उनके व्यक्तित्व के कारण ही उन से सबसे अधिक प्रभावित दिखाई पड़ते थे। उनके जीवन में अनेकों ऐसी घटनाओं का जिक्र है जिसका उन्होंने अपने हरियाणवी लोकनाट्य में प्रस्तुत किया। मुंशीराम जांडली ने अपने जीवन में अनेक सॉन्ग तथा फुटकल रागनी की रचना कीपरंतु संभालने होने के कारण उनकी अधिकांश कथाएं काल के गाल में समा गई।

राजा हरिश्चंद्र की भांति ही मुंशी राम जांडली जी ने पूरणमल भगत नामक ग्रंथ की रचना की। पूर्णमल के रूप में उन्होंने एक धर्म निष्ठ एवं सदाचारी व्यक्तित्व को दर्शाया है। सियालकोट के राजा सालेवाहन की दो पत्नियां इच्छरादे और नूनादे।इच्छरादे के पुत्र पूरणमल का पंडित के कहने से घर से दूर पालन- पोषण किया जाता है। जब वह अपनी दूसरी माता नूनादे से मिलने जाता है, तो नूनादे भगत पूर्णमल को देखते ही उसके सौंदर्य पर आसक्त हो जाती हैं। लेकिन सदाचारी भक्त पूरणमल इस प्रस्ताव को ठुकरा देता है। जिसके कारण उसे कई यातनाओं को सहना पड़ता है। इस तरह पूरणमल भक्त धर्मनिष्ठा का पालन करता है, और यही मुंशी राम जंडली जी का संदेश है।

मुंशीराम जांडली द्वारा संगों कि एक परंपरा का निर्वहन करते हुए राजा हरिश्चंद्र ,जयमल फत्ता, पूर्ण भगत, पृथ्वीराज चौहान, अमर सिंह राठौड़, चंद्रकलाशी, महाभारत मीराबाई और गजनादे आदि सांगों की रचना करके हरियाणा की लोक संस्कृति और साहित्य को एक नया आयाम स्थापित किया है।इन संगों से हरियाणा के जनजीवन पर ही नहीं बल्कि साहित्य और अन्य विधाओं पर भी इसका असर देखने को मिला। यह परंपरा बहुत पहले से चली आ रही थी और मुंशी राम जांडली ने इस का निर्वहन अच्छी तरीके से किया।

सहज -सहज रंग देख लियो म्हारी भारत की आजादी का। सब राजे सम्मान कर म्हारी चक्रवती गद्दी का। वेद पढ़ो विधा सीखो कम खर्च करो ब्याह शादी का। साचे दिल से ख्याल करो तुम आदि और अनादि का। गुरु हरिश्चंद्र पै विधा सीखो अच्छी तरह पढ़ावेगे। मुंशीराम आजाद जांडली छंद पिंगल के गवेगे।[7]

मुंशी राम जी का साहित्य और संस्कृति के साथ है गहरा संबंध था। वे एक कआदर्श समाज सुधार और वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखते थे। उन्होंने अपने समय में अन्य कवियों द्वारा निर्धारित कर दी गई सांगों की विषय-वस्तु और शैली में भारी फेरबदल करते हुए रागनी और सांग विधा को देश और समाज समाज के लिए बनाया। इस आशय को लेकर उनकी एक फुटकर रागनी भी है, जिसम वे उद्देश्य विहींन सॉन्ग रागनी नक्काल और रंडियों की नाच तक की संज्ञा देते हैं। असल में मुंशीराम के समकालीन कवियों ने सांग और रागनीयों के माध्यम से समाज में अवैज्ञानिकता परोसी। पूरे समाज में भाग्य किस्मत, स्वर्ग-नरक आडंबर जार कर्म, लंपट्टा, व्यभिचार आदि की भावनाएं परोसी। मुंशी राम जी इस बात से आहत थे कि भारतीय समाज में जरूरत किस बात की है और साँगी संगों के मध्यम से परोस क्या रहे है। कई सांग तो जारकर्म और कामुकता को बढ़ावा देने वाले थे।[8] हरियाणा लोकसंस्कृति के तत्व जन- जन एवं जनभूमि के कण-कण में व्याप्त है। इन्ह सुरक्षित रखने के लिए किसी विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं रहती। यह तो पैतृक संपदा की तरह पीढ़ी दर पीढ़ी आते रहते हैं। इसलिए हरियाण ावी लोक संस्कृति के प्रमुख उपादान को भी किसी विशेष शास्त्री ढांचे में डालना उपयुक्त नहीं होगा। हरियाणवी लोकसंस्कृति में अध्यात्मिकता संस्कृति और साहित्य का त्रिगुणात्मक संबंध मिलता है। और जीवन मूल्यों को और अधिक संरक्षित करने के लिए हरियाणा का लोक साहित्य मजबूती के साथ खड़ा है। लोकनाटक कवि अपनी कला के माध्यम से प्रचार- प्रसार कर रहे।और यही हरियाणा के लोक साहित्य की पहचान है। आओ मिलकर हरियाण ा लोक साहित्य को और समृद्ध और शक्तिशाली बनाएं।[9] इस प्रदेश की संस्कृति में भजन, पूजा पाठ का बड़ा दौर है नाथ सूफियों ,संतो तथा आर्यसमाज का यहां अमिट प्रभाव देखने को मिलता है। इनके मठ, मंदिर ,गद्दी, आश्रमसर्वत्रदिखाई देते हैं। इस प्रदेश के लोकगीतों में राम भजनिया का देश तथा कहावतों में "देशा में देश हरियाणा जित दूध दही का खाना" कहकर इसकी वैष्णव धर्म भावना पर प्रकाश डाला गया है। यह गंगा सरस्वती तथा यमुना का प्राचीन महाजनपद है। इसका द्वार हरिद्वार है, इसका हृदय कुरुक्षेत्र साक्षात धर्म क्षेत्र तथा ग्रामों नगरों में शिवालयों के गगनचुंबी स्वर्णिम कलशमंडित शिखर इसकी विशिष्ट वस्तु कला के मेरुदंड हैं। कार्तिक स्नान यहां की कुमारियों का महाव्रत है। प्रतिदिन जब कन्याओं इस मास में प्रभात बेला के समय सर सरिताओं के स्नानाथी मंगल गान गाती हुई जाती हैं तो दूध बिलोने और चककियों की झंकार के साथ इस प्रभाती गीतों की गूंज गांव को गुंजा देती।[10]

राम और लक्ष्मण दशरथ के बेटे
दोनुं बन खंड में जां,
हेरी मन्ने राम मिले भगवान।
एक बन चाले रामा दो बन चाले रामा,
तीजे में लगाई प्यास हेरी मैंने राम मिले भगवान।
जोहड़ भी रीते रामा कुए भी रीटे,
रीता सारा बनवास,
हेरी मैंने राम मिले भगवान।
छोटा-सा छोरा गौये चरावे
एक घूंट पानीडा पिला,
हेरी मैने राम मिले भगवान।[11]

मुंशीराम जांडली एक नवीन चेतना के कवि थे। उनका उद्देश्य सांग परंपरा में जो अनर्थ हो रहा था जो बदमाशों की टोली की संज्ञा के रूप में स्थापित हो रही थी। मुंशीराम जांडली की तरह ही महाशय दयाचंद मायना भी कला के प्रेमी थे। उन्होंने भी नेताजी सुभाष चंद्र बोस किस्से में बाकायदा कवियों का नाम लेकर बताया कि ऐसे लोगों से देश समाज हरियाणा की लोकसंस्कृति, साहित्य का भला होने वाला नहीं है। एक रागिनी के माध्यम से उनकी सुन सुन ताने भारत मां की नाड़ तले नै होगी , और इस रागनी की अंतिम कली में वह कहते हैं-

लख्मीचंद नै सांग कारया नौटंकी लकड़हारा।
मांगेराम हीर पीर की जोड़ रागनी गारा।
धनपत सिंह निदाने
आला लीलो चम्मण ने ठा रहा।
सुण सुण कै नै बात उघाड़ी
यो भारत ड्यूबा जारा।
करो दयाचंद प्रचार धर्म के
या दुनिया थूक बिलोगी।
चड़्गी शर्म ल्हाज आज आज
कोन्या बोल्ण जोगी।[12]

मुंशीराम जांडली के साहित्य में लोक नाट्य परंपरा हरियाणा की लोकसंस्कृति औरउसमे नैतिक मूल्य भावना भरपूर मात्रा में दिखाई देते हैं। प्राचीन काल से ही साहित्यकार समाज में नैतिक मूल्यों की स्थापना करते दिखाई देते हैं। भारतीय संदर्भ में यह और भी जरूरी है क्योंकि भारत में धर्म जाति, संप्रदाय, लिंगभेद, उच्च-नीचछोट-बड़ेइर्ष्या, द्वेष प्रारंभ काल से ही प्रचुर मात्रा में स्थापित हुए दिखाई दे रहे हैं। यहां महिलाओं पर जो अत्याचार दिन प्रतिदिन बढ़ते दिखाई देते हैंजिसमे सती प्रथा, बाल विवाह जाति प्रथा कहानीकारों ने अपने साहित्य में इनको बखूबी नाटक के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया। मुंशी राम जांडली नैतिकता के कवि है। जनता में दया करुणा परोपकारीलोग होगतो भाईचारा और प्रेमस्थापित होगा। जिस समाज में जितने दयालु और परोपकारी लोग होंगे वह समाज उतना ही तरक्की शील होगा। जो लगातार दूसरों की चुगली में व्यस्त रहते हैं कवि उन्ह कभी मनुष्य ही नहीं मानता ऐसी निकृष्ट तो मनुष्य समाज के लिए घातक सिद्ध होते हैं। ऐसे लोग एक दूसरे के बीच वैमनस्य पैदा करते हैंऔर अपना उल्लू सीधा करते हैं तथा समाज में कठिनाई पैदा करते हैं। हरियाणा में लोक गायकों को रचनाकारों, कलाकारों की विशेष परंपरा रही है। पिछले कई वर्षों में इन लोकगीतों को नए किसम की अश्लीलता से सरोबार करके पैसा कमाने का जरिया बनाने का चलन बढ़ गया है। इस तरह के और भी कारणों से रागनी कंपटीशन एक दौर के बाद असफल होने प्रारंभ हुए।मगर इनको अश्लीलता के सहारे बनाए रखने की कोशिश अभी भी जारी है। इसम चाहे ऑडियो कैसेट हो या विडियों हो उनका प्रचलन आज भी बसतूर जारी है, मगर कई तकनीकी और बाजारवाद के बाजारीकरण ने इन सबको खत्म कर दिया है। आज चुनौती है नए दृष्टिकोण और नई विषय वस्तु के साथ लोकगीतों की परंपरा को आगे बढ़ाने की ताकि साहित्य संस्कृति का माहौल बनाया जा सके इस सामाजिक माहौल में हरियाणा के लोककवि माननीय मुंशीराम जांडली जी के सांगों व उसकी फुटकर रागनियां का संकलन जो हो रहा है वह एक सराहनीय कदम है।मुंशी राम जी की रचना धर्मिता को दो हिस्सों में बांट कर देखा जाए तो बेहतर है। एक पंडित लख्मीचंद के वक्त का दौर और उसके बाद उसका रचनाकाल समाज सुधार पर अपनी रचनाधर्मिता को समर्पित करने का ज्यादातर रचनाकारों ने प्रचलित सांग पर ही अपने-अपने ढंग से रचना की है। कुछ सागों की पेट कथा उनकी अपनी ही दिखाई देती है। पिछले 50 -60 वर्षों में हरियाणा में कुछ प्रमुख लोक प्रतिभाओं ने सांग रागिनी के क्षेत्र के विकास में विशेष भूमिका निभाई है, और उसम से एक नाम है मुंशी राम जांडली इसके चलते अलग-अलग पड़ाव पार करके तथा भिन्न-भिन्न गायकों के सहयोग से रागिनी आज हरियाणा में लोक साहित्य के किसी भी अन्य रूप की तुलना में अधिक जीवंत और प्रचलित विधा बन गई है। हालांकि सांग अपने अस्तित्व को बचाने में विभिन्न कारणों से चलते कामयाब नहीं हो पाए हैं, परंतु यह प्रयास जारी है और एक दिन इसम सफलता जरूर मिलेगी। ज्यादातर सांगा में ब्राह्मण

ावाद की मूल विचारधारा दान महिमा, स्वामी भक्ति और वर्ण व्यवस्था के आदर्शों का ही निरवा नजर आता दिखाई देता है। रागिनी की परंपरा में काफी कुछऐसा भी है जो लोक चेतना और लोक संवेदना की रूढ़ियाँ को ही व्यक्त करता है। पारिवारिक संबंधों की पवित्रता तथा परंपरागत मूल्यों को बचाने रखने के लिए दी जाने वाली कुर्बानियां तो इन संगों की रागनियों में विशेष रुप से प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत हो रही है। परंतु स्त्री-पुरुष संबंधों की उचित कल्पना के अभाव में इन रागनियां में व्यस्त होने वाली प्रेम संबंधी भावनाएं अक्सर श्थुल शारीरिक आकर्षण और ललचाई वासना की सतह से ऊपर नहीं उठ पाती। मुंशी राम जांडली ने इन जगहों पर एहतिआत और सावधानी बरतने की कोशिश की लगती नजर आ रही है। मगर रागिनी की ताकत को भी पहचानने की जरूरत है। आज के रचनाकारों के लिए जोकि मुंशी राम जांडली जैसे रचनाकारों की रागनियां लक्षित हुई है कई जगह। मुंशीराम जांडली जी की सॉन्ग की रागिनियों में भी गीतात्मकता, सुगमता और नाट्य आत्मक्ता के साथ-साथ सारगर्भित आ भी नजर आती दिखाई देती है। अतः समाज की सामान्य भावनाएं और सांझी समझदारी भी अच्छी प्रकार अभिव्यक्त हुई है। उनकी रागनियां में भावनाओं की सार्वजनिकता और अभिव्यक्ति की सुगमता मुख्य ताकत के रूप में कईसांगों में नजर आती।[13]

भारत लंबे समय तक गुलाम रहा इसका सबसे बड़ा कारण था भारतीयों की आपसी इर्ष्या, द्वेष जलन और अकर्मण्यता चोरी, ठगी, चुगलखोरी ने इस देश को डुबो दिया है। जिसम जाति, धर्म, मजहब, ऊंच-नीच छोट- बड़ा यह सब चीज किसी न किसी रूप में भारत की संस्कृति भारत के साहित्य को गुलामी की और ले जाने का प्रयत्न कर किया जा रहा है। जिसमें समाज और देश के लिए उत्तरदायित्व की भावना का अभाव दिखाई देता है।कवि मूर्तिपूजा करने वालों और भूत प्रेत के माध्यम से अपना रोजगार चलाने वालों को भी पाप की संज्ञा देते हैं। कवि ने समय में अनेक संगीत पार्टियां प्रचलित थी जो नीरा अश्लील और अवैज्ञानिक गाते थे और समाज में दुष्प्रचार करते थे। मुंशी राम जांडली ने समाज को ऐसे लोगों से बचकर नैतिकता के रास्ते पर चलने का उपदेश दिया।[14]

निष्कर्ष-मुझे मुंशीराम जांडली जी की रचनाओं पर कुछ विचार व्यक्त करने का अवसर मुझे मिला है। आज के रचनाकारों को एक समीक्षात्मक दृष्टि के साथ मुंशीराम जांडली जी की रचना कर्म से सीख लेकर आज के दौर के यथार्थ का और उसके प्रति पैदा हो रहे जनाआक्रोश का सटीक चित्रण करना जरूरी है। इस प्रकारकहा जा सकता है कि मुंशीराम जांडली की दृष्टि वीर रस पर अधिक जमीन है। समय विशेष को देखते हुए इस प्रकार के उत्साह वीरता और बहादुरी की उस वक्त महती आवश्यकता भी थी। भारत देश अंग्रेजों से स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहा था। उसम प्रत्येक युवा मुंशीराम जी की वीर रस पूर्ण कविता को सुनकर पढ़कर जोश व उत्साह से भर कर अंग्रेजों को ललकार रहा था। अतः कहा जा सकता है कि वीर रस की दृष्टि से मुंशीराम जांडली की कविता बेजोड़ ,अतुलनीयस और सराहनीय है।

संदर्भ सूची-

1. हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, श्री राहुल जी - पृष्ठ स॰67
2. हरियाणा के संगों मसौंदर्य निरूपण, डॉ विजेन्द्र सिंह पृष्ठ स 4-5
3. मुंशीराम जांडली ग्रंथावली, डॉ राजेन्द्र बडगुजर पृष्ठ स॰ 30
4. मुंशीराम जांडली ग्रंथावली, डॉ राजेन्द्र बडगुजर पृष्ठ स 31
5. मुंशीराम जांडली ग्रंथावली,डॉ राजेन्द्र बडगुजर पृष्ठ स 32
6. वहीं पृष्ठ 32
7. मुंशीराम जांडली ग्रंथावली, डॉ राजेन्द्र बडगुजर पृष्ठ स 80
8. मुंशीराम जांडली ग्रंथावली, डॉ राजेन्द्र बडगुजर पृष्ठ स 83
9. हरियाणा के संगों मसौंदर्य निरूपण, दर विजेन्द्र सिंह पृष्ठ 16
10. हरियाणा लोकसाहित्य ,सांस्कृतिक संदर्भ-डॉ भीम सिंह मालिक पृष्ठ 21-22
11. हरियाणा के लोक गीत, डॉ साधु राम शारदा-पृष्ठ 239
12. मुंशीराम जांडली ग्रंथावली, डॉ राजेन्द्र बडगुजर पृष्ठ 84
13. वही पृष्ठ 20-21
14. वही पृष्ठ 70-71

यादों के झरोखे से- 'स्मरण मन्नू भण्डारी'

डॉ. कल्पना दुबे

एसोसिएट प्रोफेसर,

एम. एम. एच कालेज, गाजियाबाद

साहित्य जगत की नामचीन हस्ती मन्नू भण्डारी से मिलने का सौभाग्य मुझे मिराण्डा हाउस में अध्यापन के दौरान मिला। उन दिनों मैं और अनुभा गेस्ट लेक्चरर के रूप में फंक्शनल हिन्दी कोर्स पढ़ाने हेतु नियुक्त हुए थे। महाविद्यालय की ही प्राध्यापक के घर हम सभी इकट्ठे हुए थे। वहाँ उन्हें भी आना था। उस समय वो वहाँ से सेवा निवृत्त हो चुकी थीं। मैं उन्हें उनकी कहानियों से जानती थी।उनके प्रबुद्ध, प्रखर प्रगतिशील सोच से उनके व्यक्तित्व का एक खाका मेरे मन में था। मैं उन्हें बहुत सरल , सहज रुप में नहीं देख पा रही थी। लेकिन उनके आने के बाद मेरी उनके विषय बनी अवधारणा तब बदल गई जब वो हर किसी से बड़े स्नेह से उनके और परिवार के कुशलक्षेम को जानने की आत्मीयता में हाथ पकड़ कर थोड़ा सहला देती, तो कभी मुस्कुराकर कुछ समझा देतीं। यह सिलसिला तब तक चलता रहा जब तक वो अपने सभी साथियों से नहीं मिल चुकीं। कुछ लोग उन्हें दीदी सम्बोधन से मिल रहे थे। मन्नू भण्डारी बहुत सरल, सौम्य, और सामान्य कद काठी की थीं। किन्तु आकर्षक व्यक्तित्व की धनी थीं। स्वभावतः संकोची मैं अभिभूत सी कभी उन्हें तो कभी उनके आत्मीय प्रेम मिलन को देखती निहाल हुए जा रही रही थी। हमारे उनके पास तक पहुंचे से पहले डा. प्रोमिल सिंह जो वहाँ प्राध्यापक थीं ने, हमारा परिचय कराया। हमारा कोई बड़ा कद और पद नहीं था। बस हफ्ते में कुछ क्लास पढ़ाने को मिला था। लेकिन हिन्दी विभाग के सभी लोग हमें स्नेह करते थे। हम बड़े सम्मान के साथ वहाँ विभाग की सभी गतिविधियों में शामिल किए जाते थे। वहाँ पढ़ाने का भी बहुत सुखद अनुभव रहा है। मन्नू भण्डारी जैसी बड़ी रचनाकार को सामने पाकर मैं थोड़ा असहज हो रही थी। बहुत नामचीन रचनाकार के नजदीक होने की उत्सुकता के बाद भी बड़े संकोच के साथ मैने उनका पैर छुआ उनका स्नेही हाथ मैने अपने सिर पर महसूस किया साथ ही बड़ा प्रिय स्वर कल्पना तुम कहाँ से होघ् और फिर उनके पास की कुर्सी पर बैठने का उनका संकेत पाकर उनके निकट ही बैठ गई। मेरे लिए वह बहुत बड़ा दिन था। लगभग तीन चार घण्टे तक सबका संग-साथ और सभी उनके साथ बात.चीत और कहानियों पर उनकी राय सुनते जानते रहे। और सभी गीत, गजल, कविता सुनते सुनाते आनन्दित हो रहे थे। यह कोई खास अवसर नहीं था बल्कि सबका एक साथ मिलना-जुलना ही था। मन्नू भण्डारी की एक खासियत यह थी कि वह जहाँ भी होतीं थीं सेंटर आफ अट्रैक्शन हो जाती थीं। उनका प्रभाव मेरे दिलो दिमाग पर छाया रहा। बाद में मैने उनकी और भी रचनाओं को पढ़ा। उन्होंने बहुत महत्वपूर्ण रचा है।और समय के सच को लिखा है। उन्हें पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है कि हम सब कुछ अपने सामने घटित देख रहे हैं। उनके लेखन की और भी बहुत खासियत है कि जिसने भी उन्हें पढ़ा उसमें उन्हें पूरा पढ़ने की ललक जगी। इन्होंने अपनी रचनाओं में पढ़ा लिखा मध्यवर्गीय परिवार और उसकी दोहरी मानसिकता विवशता को बहुत अच्छी तरह उभारा है। स्त्री पुरूष

के मनोविज्ञान को बड़ी बारीकी से समझा है।और पुरुष के अहं के बीच टूटती स्त्री की उपेक्षित आवाज को बल दिया है।सच है कितना भी पढ़ा लिखा समाज हो जाजे वह आधुनिक सोच का हो जाय और प्रगतिशील होने का दम्भ भरे लेकिन स्त्री की आजादी और आइडेंटिटी उसके गले नहीं उतरती है। वह उसके रास्ते को सुगम नहीं रहने देता है। मन्नू भण्डारी इन स्थितियों के प्रति विद्रोह जताती हैं। लेकिन इनका विद्रोह बहुत शान्त तरीके का रहा है और अस्वीकार बहुत विवेकपूर्ण। कठिन जीवन संघर्ष में भी स्त्री के मानसिक भावनात्मक बदलाव को उजागर करती हैं। यही बड़ी वजह है कि इनकी कहानियां लोगों की समझ में जल्दी उतर गईं और सबको वह अपनी सी लगीं।इनका अनुभव रचना को एक विवेकपूर्ण विस्तार देता है।इनकी कहानियों की लोकप्रियता का यह आयाम रहा कि केवल घरों में पढ़ी ही नहीं गईं वह विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए सिलेबस में शामिल की गईं तथा उस पर फिल्म भी बनी है। कथ्य और शिल्प इनकी प्रतिभा के कायल हैं। भाषा बिल्कुल सहज और छोटे-छोटे वाक्यों में जीवन्त संवाद सीधे अन्तर में उतर जाते हैं। यह सहज ही बहुत बड़ी बात कह जाती हैं। वह बड़ी रचनाकार हैं बांधती है पाठक को। वस्तुतः मन्नू भण्डारी हिंदी की सिद्धहस्त कथाकार हैं। नई कहानी आन्दोलन में इनकी भागीदारी महत्वपूर्ण है। रचना का संस्कार उन्हें उनके परिवार से मिला है। उनके पिता श्री सुख सम्पतराय भी लेखक थे। मध्यप्रदेश से कोलकाता और फिर दिल्ली तक के सफर में अध्ययन, अध्यापन, लेखन, पुरस्कार, सम्मान आदि से उनके व्यक्तित्व को गरिमामय प्रतिष्ठा मिलती रही। महेन्द्र कुमारी का मन्नू भण्डारीनाम हिन्दी जगत में जाना पहेचाना नाम रहेगा।

3 अप्रैल सन् 1931 को मध्यप्रदेश के मंदसौर जिले के मानपुरा गांव में जन्मी महेन्द्र कुमारी को मन्नू भण्डारी नाम से ख्याति मिली। यह नाम इन्होंने स्वयं ही रखा था। जो लेखन के क्षेत्र में बहुत जाना पहेचाना नाम है। आपने स्नातकोत्तर की शिक्षा लेने के बाद कोलकाता से अपने कर्मक्षेत्र की शुरुआत की फिर दिल्ली के नामी कालेज मिराण्डा हाउस से सेवा निवृत्ति ली। प्राध्यापक के रुप में बहुत यश, मान और स्नेह पाने वाली मन्नू भण्डारी ने साहित्य जगत में अपनी अमिट पहेचान बनाई है। आपने कहानी, उपन्यास, नाटक पटकथा आदि विभिन्न विधाओं में लेखन किया है। आपकी रचनाएँ बौद्धिक और सलीके मंद लेखिका के रुप में आपको पहेचान देती हैं। एक से बढ़कर एक कहानियां जिनका प्लाट हमारे बीच से मिला वह उनके जीवन संघर्ष की भी गाथा है। आपको याद करते हुए आपके साहित्यिक अवदान को नहीं भुलाया जा सकता है आपका कहानी संग्रह—मैं हार गई, एक प्लेट सैलाब, यही सच है, तीन निगाहों की एक तस्वीर, त्रिशंकु, आंखों देखा झूठ, नायक खलनायक विदूषक और रानी माँ का चबूतरा। यह आपके कथाकार रुप को अमर करता है। आपने आपका बंटी, महाभोज, स्वामी, एक इंच मुस्कान, और कलवा जैसी औपन्यासिक रचनाओं में जीवन जगत को साकार कर दिया। यह सच को उघाड़ती हैं लेकिन जीवन मूल्यों को संरक्षित करती चलती हैं। इनको एक ही नाटक ने बहुत ख्याति दी है - बिना दीवारों का घर। यह नाटक बहुत बार मंचित भी हुआ है।अ ापकी भाषा रंगमंच और सिनेमा के अनुकूल सहज ही ढ़ल गई ।आपने पटकथाएं भी लिखी हैं--रजनीगंधा, निर्मला, स्वामी, दर्पण। आपके अन्तर की आग ने आत्मकथा लिख डाली 'एक कहानी यह भी' जिसका शीर्षक ही कौतूहल वर्धक है। पाठक जानने को उत्सुक होता है कि कैसी कहानी है। एक कहानी यह भी लोगों के बीच बहुत चर्चित हुई। इस पुस्तक ने इनके असफल दाम्पत्य और कठिन जीवन संघर्ष को उजागर कर दिया। वे स्वयं लिखती हैं कि--''वे नसों को चटका दिन ने वाले आघात थे।'' यह मानवमूल्यों को प्रतिष्ठा देने वाली कोमल संवेदनशील रचनाकार थीं।घर और बाहर जो भी कटु और तिक्त लगा बेबाक होकर लिख दिया। लेकिन कटु और तिक्त को चखकर भी अमृत निकाल लिया।

आपका लिखा हुआ सभी कुछ बहुत पढ़ा और सराहा गया है। लेकिन आपका बंटी (1971) में

लिखे गये उपन्यास को और उपन्यास लेखिका के रुप में आपको बहुत अधिक लोकप्रियता मिलीहै।यह धर्मयुग में धारावाहिक रुप से छपा और इसे पाठकीय स्वागत का बड़ा संदर्भ मिला। इसके दर्जनों संस्करण और अनुवाद हुए हैं। यह न केवल बहुत पढ़ा लिखा गया बल्कि यह हिन्दी के सर्वाधिक सफल उपन्यासों की लिस्ट में शामिल हो गया। आपका दाम्पत्य जीवन सुखद और सफल नहीं रहा। आप असहज और बोझिल होते रिश्तों को ढ़ोते रहने की बेबसी में जीने की प्रकृति के विपरीत थीं। वस्तुतः स्त्री की आजादी उसकी आत्मनिर्भर सोच और महत्वाकांक्षा पुरुष को असहज कर देती है। परिणाम स्वरुप रिश्तों में तल्खी आ जाती है और तनाव का चरम संबंध विच्छेद तक पहुंच जाता है। इनके रिश्ते में भी ऐसा ही हुआ। यह स्त्री की आजादी की पक्षधर थीं। और रिश्ते को ढ़ोने की मजबूरी में कभी नहीं रहीं इसीलिए अपने साहित्यकार पति से अलग हो गईं। अपनी वैवाहिक जिन्दगी की त्रासद स्थितियों को उजागर करते हुए इन्होंने एक उपन्यास लिखा 'आपका बंटी' इसमें विवाह विच्छेद की त्रासदी झेलता और घुटते हुए जीने को विवश एक बच्चा इसके केन्द्र में है। यह बच्चा पाठक को अपने बीच आस-पास मिल जाता है। बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है कि माँ बाप के अहं की भेट चढ़ते हैं बच्चे। इस उपन्यास में भी कभी जीने मरने की कसम खाने वाले प्रेमियों की अहं की भेंट चढ़ते बच्चे की बहुत मार्मिक पीड़ा अभिव्यक्त हुई है। अपने उपन्यासमें मन्नू भण्डारी एक ओर पुरुष वर्चस्व को चुनौती देती हैं तो दूसरी तरफ बालमन को सहलाती भी हैं। मध्यवर्गीय समाज में संबध विच्छेद की स्थिति भयावह है। और अब यह आम बात हो गई है। बिगड़ते संबंध विच्छेद पर ही विराम लेते हैं। जब रचनाकार डूब कर लिखता है और सहा हुआ बांटता है तो वह बहुत मार्मिक और अपना सा लगने लगता है।

इन्होंने जब भोगा हुआ सच लिखा तो कहानी के चरित्रों में और मजबूती आती गई। इसीलिए इनकी रचनाओं में स्त्री पात्र कभी भुला नहीं पाते।यह स्त्री को उसकी जटिल सामाजिक संरचना में देखती हैं। यह स्त्री विमर्श का शोर नहीं मचाती हैं पर उसके स्वाभिमान और सम्मान के पक्ष में खड़ी होती हैं। यह मध्यवर्गीय स्त्री को घर की चहारदीवारी के बाहर भी झांक लेने की सीख देती हैं। इनकी पकड़ बहुत सूक्ष्म है यह स्त्री के अन्तर बाह्य सबको टटोल लेती हैं। इनकी यह सूक्ष्म पकड़ इनकी रचना की बहुत बड़ी ताकत है। इन पर बहुत कुछ लिखा गया है और लिखा जायेगा। मन्नू भण्डारी को उनकी योग्यतानुरुप बहुत सम्मान और पुरस्कार भी मिला है। किन्तु इनका सबसे बड़ा सम्मान है सबकी प्रिय रचनाकार बन कर सबके दिलों में रहना। इधर इनकी लेखनी मौन रही। इन्होंने नया कुछ नहीं लिखा।

संभवतः स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं की वजह से ही इनका लेखन बहुत समय से बंद रहा हो। लेकिन इनका लिखा हमेशा मुखर रहेगा। उनका दिया जीवन मूल्य आने वाली पीढ़ी का पाथेय बनेगी। आज उनका पार्थिव शरीर नहीं है लेकिन उनकी यशरूकाया अमर रहेगी। यह कालजयी रचना कार हैं इन्हें पीढ़ियां याद करती रहेंगी। एक बहुत संवेदनशील रचनाकार की स्मृति को नमन है। समर्पित करती हूँ श्रद्धासुमन।

'कुमार गंधर्व' गायकी एवं दृष्टिकोण

डॉ. अनुभव पाण्डेय

संगीत शिक्षक केन्द्रीय विद्यालय, हट्टी गोल्ड माइंस रायचूर कर्नाटक

भूमिका

पण्डित कुमार गन्धर्व भारतीय शास्त्रीय गायन के क्षेत्र में अपना एक विशिष्ठ स्थान रखते हैं। वो एक ऐसे कलाकार थे जो सीमाओं में बंध कर कार्य करने के बजाय सीमाओं से परे कार्य करने में यकीन रखते थे। यह बहुमुखी व्यक्तित्व बालपन से ही संगीत व राग रागनियों को एक अलग .ष्टि से देखने लगे थे। इन्होंने स्वरों तथा रागों को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया जिसकी वजह से इन्हें अनेक संगीतकारों के विरोध तथा आलोचना का सामना भी करना पड़ा परन्तु ऐसे संगीतकारों की आज भी कोई कमी नहीं जो पण्डित कुमार गन्धर्व की शैली का अनुसरण व समर्थन करते हैं। अनेक विद्वानों का मानना है कि कुमार जी के विचारों से एक नए सौंदर्यशास्त्र की रचना सम्भव है। संगीत के घरानों को ले कर भी कुमार जी की सोच पूर्णतः अलग थी। वो एक ही परिवार तक किसी विद्या को सीमित रखने के धुर विरोधी थे। जीवन के अन्तिम समय तक उन्होंने इस विचार का विरोध किया।

कुमार जी का विश्वास था कि शास्त्रीय संगीत की जड़ों में लोक संगीत बहुत गहराई तक समाया है। शायद इसलिए उन्हें रागों में ऐसे स्वरुप दिखाई देते थे जो पारम्परिक तथा रटे रटाये स्वरूपों से पूर्णतः भिन्न हुआ करते थे। वो रागों को मनुष्यों के स्वरुप से अलग नहीं देखते थे। कुमार जी के भजन श्रोताओं को आज भी किसी और लोक में ले जाते हैं। यही विशेषता कुमार गन्धर्व की शैली को अन्य से अलग स्थान पर स्थापित करती है।

संकेत शब्द

कुमार गंधर्व, हंस अकेला, निर्गुण, अभंग, नवीन बन्दिश

विराट सांगीतिक प्रतिभा के धनी कुमार गंधर्व का गायन हमारे दैनिक जीवन के तमाम भले बुरे अनुभवों के बीच बहुत सहजता के साथ लौकिकता की सीमा लॉघ हमें एक खास तरह का अलौकिक अनुभव कराने वाला गायन रहा है। वे अपने गायन में जहाँ एक ओर स्थान, समय और संस्कृति से बहुत गहराई से जुड़े रहे हैं, वहीं दूसरी ओर ऐसा करते हुए इन सब के पार भी चले जाते हैं। सामान्यतः ऐसी अनुभूति कम कलाकारों के साथ हो पाती है। परम्परा और नवाचार का प्रश्न भी कमोबेश कई बड़े कला साधकों के सामने मौजूद रहा है। कुमार जी यश अपयश की परवाह किए बिना परम्परा को पूरी तरह से आत्मसात कर नया रचने के आकांक्षी रहे है। उन्होंने अपनी कला को उन कला साधकों को समर्पित किया है जो परम्परा एवं नवाचार दोनों के निर्वाह के लिए प्रयत्नशील रहते हुए 'स्वत्व एवं सत्व' की खोज को समर्पित रहे हैं।

कला साधक दो चीजों का आकांक्षी रहता है। एक, उसे उसकी कला के आस्वादक या कला रसिक द्वारा गहरी समझ से की गयी सच्ची सराहना

प्राप्त हो और दो, निर्धारित कला मानकों पर उसकी कला खरी प्रमाणित हो। इन दोनों चीजों से जहाँ उसका आत्मविश्वास बढ़ता है वहीं उसकी कला की सार्वजनिक स्वीकृति में भी वृद्धि होती है। 'कुमार गंधर्व' भारतीय संगीत इतिहास के उत्क्रान्ति से जुड़ा हुआ तथा रूढ़ियों में अटकते हुए चिरन्तन पारम्परिक कला मूल्यों पर पुनर्विचार करने वाला एक नाम रहा है। इन कलामूल्यों को समकालीनता का संदर्भ दे कर एक नया सौन्दर्य शास्त्र बन सकता है। यह अपने गायन से पं. कुमार गंधर्व ने प्रत्यक्ष प्रमाणित किया है।

कुमार गंधर्व बचपन से ही विलक्षण प्रतिभा के धनी बालक रहे पक्का सुर प्रारम्भ से ही कुमार जी के गाने में आ गया, श्री शांताराम कशालकर जी के अनुसार ''मुझे रिइनकारनेशन जैसी चीजों पर ज्यादा विश्वास नहीं है, पर जब मैंने देखा कि एक ग्याहर बरस का लड़का इस तरह का गाना गा रहा है कि फैयाज़ ख़ाँ साहब भी मगन हो रहे हैं। यह गाना इस जनम का नही है इसके लिए तपस्या जन्म से पहले से ही की गई है।''

कुमार जी के जीवन में अनेक उतार चढ़ाव आये तरुणावस्था में जब उनका विवाह भानुमती से तय हुआ तो उनकी गायकी अपने चरमोत्कर्ष पर थी। कहा जाता है कि उस समय कुमार जी का गाना तेजस्वी, तड़पदार लेकिन पारम्परिक था।

कुमार जी ने संगीत में एक नयी विचारधारा का निर्माण किया। संगीत विषयक एक पारम्परिक विचारधारा यह है कि बुजुर्गों से जो तालीम या शिक्षा मिलती है, उसको तथा उसके द्वारा घराने की गायकी को सुरक्षित रखना और परम्परा का पालन करना, यही संगीत का विशेषकर राग-संगीत का लक्ष्य है। कुमार जी के पूर्व के संगीत कलाकार अपनी श्रेष्ठता किसी घराने से सम्बन्ध जोड़कर प्रस्थापित करना चाहते थे। अगर गायक के प्रस्तुतिकरण में विविधता है, रंग है, तो भी उसका श्रेय उसकी सच्ची तालीम को, अलग-अलग गुणिजनों से प्राप्त संस्कार को तथा किसी भी प्रकार से परम्परा से अपना सम्बन्ध जोड़कर अपने ख़ानदान को दिया जाता था। कुमार जी ने इस विचार को पर्याप्त धक्का दिया। उनके सौन्दर्य विचार का सूत्र यह था कि 'मुझे अपना गाना प्रस्तुत करना है, मुझे किसी का अनुकरण नहीं करना है जो कुछ सुन्दर या असुन्दर हो, वह मेरा अपना विचार है। मुझे जो सौन्दर्य का अनुभव होता है उसी को राग संगीत के माध्यम से प्रस्तुत करना मेरा लक्ष्य है। कुमार जी की इस प्रकार की विचारधारा का निर्देश उनकी पुस्तक 'अनूप राग विलास' की प्रस्तावना में समुचित रूप से किया गया है। यद्यपि कुमार जी में अद्‌भुत अनुकरण शक्ति थी फिर भी उन्होंने संगीत के प्रस्तुतिकरण में अनुकरण को अस्वीकार्य माना है। पारम्परिक विचार से यह भिन्न विचारधारा है। हिन्दुस्तानी संगीत के लिए कुमार जी की यही सबसे बड़ी देन है। इसका अर्थ यह नहीं कि कुमार जी का पारम्परिक तालीम पर विश्वास नहीं था, अथवा ऐसी शिक्षा परम्परा को वो तोड़ना चाहते थे। उनका विचार यह था कि शिक्षा या तालीम एक विधा है, और प्रस्तुतीकरण या मंच प्रदर्शन दूसरी विधा है। प्रदर्शन में शिक्षा को प्रस्तुत करना संगीत नही है। शिक्षा को प्राप्त कर उसके द्वारा राग संगीत में जो सौन्दर्य का अनुभव होता है, संगीत के अतिरिक्त अन्य कलाओं में भी सौन्दर्य की जो अनुभूति होती है, जीवन के अनुभवों द्वारा जो संवेदनायें उठती हैं, उनको संगीत के द्व ारा प्रस्तुत करना यही सच्चा संगीत है। अलग और वैशिष्ट्यपूर्ण विचारधारा के कारण कुमार जी ने राग संगीत में विविध अंगों को स्पर्श कर अपनी एक अनोखी शैली का निर्माण किया। आवाज साधने का प्रश्न हो या राग स्वरूपों का विचार हो, बन्दिशों का अविष्कार हो या ख्याल गायन की शैली हो, संगीत के प्रस्तुतीकरण के नये प्रयोग हो, या भजन गायन शैली हो, इस सब में कुमार जी की अपनी एक स्वतंत्र विशेषता दिखाई देती है। पारम्परिक विचारों से भिन्न यह विचार और शैली यही कुमार जी का योगदान है।

राग स्वरूपों को समझने और देखने के सम्बन्ध में भी कुमार जी की एक स्वतंत्र दृष्टि थी। प्रायः पारम्परिक कलाकार तालीम के आधार पर, गुरु के मार्ग दर्शन पर राग के स्वरूप को समझते हैं कुमार जी के विचार से जिस प्रकार कोई वस्तु अलग-अलग

कोने से या दिशा से देखने पर अलग-अलग दिखाई देती है, ठीक उसी प्रकार राग स्वरूप का दर्शन अलग-अलग होना संभव है। राग का एक विशिष्ट रूप है यह मान्यता प्रचलित है। कुमार जी की दृष्टि में राग के विविध रूप हैं और उनकों देख कर उनका कलात्मक अविष्कार करना कला है। रागों के बारे में प्रमाणीकरण की कल्पना रागों के सौन्दर्य को हानि पहुँचाती है। इस मान्यता के कारण कुमार जी के गायन में एक ही राग के विविध स्वरूप दिखाई देते थे। शायद यही कारण रहा होगा कि कुमार जी के सम्बन्ध में अनेक आक्षेपों का निर्माण हुआ किन्तु स्वयं कुमार जी अपने विचार में स्थिर थे कि राग के विविध पहलू होते हैं। उनकी संगीत की शिक्षा मान्यवर तथा विविध गुरुजनों के पास हुई थी। इसलिए उनके पास विविध स्वरूपों की पारम्परिक बंदिशों का भंडार था। इन बन्दिशों के आधार पर उनको अनेक रागों के रूप अलग-अलग दिखाई देते थे। इस सौन्दर्य की अनुभूति को वे अपने रागों के प्रदर्शन में अभिव्यक्त करते थे। पारम्परिक दृष्टि से रागों के स्वरूप को समझने या देखने के स्थान पर, स्वतंत्र रूप से रागों को अलग-अलग दिशा से देखकर उनके सौन्दर्य को परख कर गायन में उसका अविष्कार करना, कुमार जी का यह विचार, यह दृष्टिकोण राग हिन्दुस्तानी संगीत में एक अद्‌भुत योगदान है।

कुमार जी के शब्दों मे ''स्वर और ताल के परे कुछ भी नही। हाँ जिसको स्वर, लय ताल कहते हैं उसको सचमुच सब जानते नहीं, ऐसा कहना पड़ेगा। सच्चा गाना वही गा सकते हैं जो स्वर, लय, ताल शास्त्र को पी के आनन्द में मस्त हैं (मद से मस्त नहीं)। ऐसे योग्य मनुष्य क्यों गा सकते हैं, इसका कारण यानि ऐसे व्यक्ति शास्त्र रूप-संगीत बन जाते हैं। उनके पीछे-पीछे शास्त्र चलता रहता है। वह शास्त्र के आगे रहते है जो कुछ भी कर बैठते हैं वह शास्त्र प्रमाण बन जाता है। ऐसे व्यक्तियों के सामने स्वर-लय आज्ञा पाने के लिए प्रेम से नाचते रहते हैं। इस आनन्द को प्राप्त करने का जो मार्ग है, वह दुःख और कष्ट साध्य है, मगर साध्य होने के बाद दुःख और कष्ट दोनों नष्ट हो जाते हैं।''

कुमार जी के निर्गुण भजनों पर संगीत न समझने वाले भी आकर्षित थे, स्पष्ट है कि कुमार जी वह शृंखला थे जिसने लोकसंगीत से राग-निर्मिति होने की बात प्रमाणित कर दी थी। यद्यपि यह विभिन्न विद्वानों तथा ग्रन्थों द्वारा सदैव कहा जाता रहा है परन्तु इसे प्रमाणित करने का श्रेय कुमार जी को जाता है। अपने ग्रन्थ 'अनूपरागविलास' में उन्होंने इसका वर्णन किया है।

महत्व की बात यह है कि कुमार गंधर्व जी ने संगीत के सम्बन्ध में विचार करने के लिए एक नयी दृष्टि दी, प्रेरणा दी। संगीत जीवन से सम्बन्धित है, जहाँ सौन्दर्य का अनुभव होता है। वहाँ से संस्कार लेकर अपने संगीत द्वारा उसकी अभिव्यक्ति करना यही संगीत है। साहित्य, चित्र, नृत्य, नाट्य आदि कलाओं से प्राप्त सौन्दर्यानुभव, संगीत द्वारा प्रकट करना संगीतकारों का कार्य है। उनका यह विचार संगीत के सन्दर्भ में सर्वस्पर्श है। इस प्रकार के विचारों का संकेत उनसे किये गये साक्षात्कारों में तथा उनके संबंध में लिखित साहित्य में भी मिलता है। संगीत के क्षेत्र में पारम्परिक कल्पनाओं से भिन्न जो विचार उन्होंने प्रस्तुत किये हैं उससे यह अनुभव होता है कि इस कलाकार की कितनी वैचारिक गहराई है। कुमार जी का संगीत की दृष्टि से यही सबसे बड़ा योगदान है। परम्परा की श्रृंखला को तोड़कर संगीत में नये विचार का उन्होंने निर्माण किया संगीत क्षेत्र के हर अंग का विचार कर उसको 'कुमार' स्पर्श दिया। हिन्दुस्तानी संगीत को कुमार जी का यह योगदान सदैव प्रेरणादायी सिद्ध होगा। संगीत के प्रयोग तथा संगीत के सम्बन्ध में विचार, इन दोनों में कुमार जी का योगदान अनुपम और विस्मयकारी है।

संदर्भ

1. फिल्म डिविजन द्वारा निर्मित हंस अकेला
2. वही
3. कालजयी कुमार गंधर्व, (हिन्दुस्तानी संगीत में पं. कुमार गंधर्व का योगदान), पृ0 24-25
4. वही
5. कालजयी कुमार गंधर्व, परिशिष्ट, पृ. 177

विदुषी प्रेमलता शर्मा : सांगीतिक यात्रा

कुमारी बन्दना
शोध छात्रा
गायन विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रो. के.शशि कुमार
संकाय प्रमुख
संगीत एवं मंच कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

सारांशिका

सुप्रसिद्ध संगीतशास्त्र प्रो. प्रेमलता शर्मा जी की प्रेरणास्त्रोत जीवनावली एवं अविस्मरणीय सांगीतिक योगदान का संक्षिप्त रूप इस शोध-पत्र में प्रस्तुत किया है।

शब्द सूचक :

प्रेमलता शर्मा जी, पं. ओमकार नाथ ठाकुर, संगीतशास्त्र, संगीतशास्त्रज्ञा, वाराणसी

भारतीय शास्त्रीय संगीत जगत में प्रो. प्रेमलता शर्मा का नाम संगीतशास्त्रवेत्ता के रूप में विश्व प्रतिष्ठित है जिन्होंने सम्पूर्ण जीवन काल संगीत एवं संगीतशास्त्र की निष्ठापूर्वक सेवा की तथा विलुप्त हो रहे भारतीय शास्त्रीय संगीत शास्त्राध्ययन को पुनः प्रकाशित किया। गीता में वर्णित तीन योगों (कर्म, ज्ञान तथा भक्ति योग) को उन्होंने अपने जीवन में चरितार्थ किया तथा जीवन पर्यन्त सीखने-सीखाने की प्रवृत्ति का आदर्श प्रस्तुत किया।

जीवनावली :

प्रेमलता शर्मा जी सादा जीवन, उच्च विचार तथा हमेशा अनुशासित एवं कार्यरत रहने में विश्वास रखती थीं। प्रेमलता जी का जन्म 10 मई 1927 ई. में पंजाब के जालंधर जिले के माँझापट्टी गाँव में हुआ था। इनके पिता श्री लालचन्द्र शर्मा अंग्रेजी शासन काल में रेलवे विभाग सरकारी ऑडिटर के उच्च पद पर कार्यरत थे तथा नौकरी के स्थानांतरण के साथ परिवार भी उनके साथ दूसरे शहर (दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई, लखनऊ) में रहने जाता था। उनकी माता का नाम श्रीमती मायादेवी शर्मा था। बहन जी अपने माता-पिता की इकलौती जीवित संतान थी क्योंकि इनसे छोटा एक भाई ढाई वर्ष की अल्पायु में चल बसा।

आपका अधिक समय दिल्ली में व्यतीत हुआ जहाँ से विद्यालयी स्कूली शिक्षा के साथ-साथ आपने वाद्य तथा नृत्य संगीत की शिक्षा भी प्राप्त की। बचपन से ही संगीत के प्रति बहुत रुचि था जिसके कारण आपने विभिन्न वाद्यों (सितार, तंजोरी वीणा, वायलिन, तबला आदि) वाद्य यन्त्रों की शिक्षा प्राप्त की। आप दिलरूबा वाद्य की सिद्धहस्त वादिका भी बनी। अतः बाल्यकाल के संगीत संस्कार के बीज क्रमशः अंकुरित होकर विशाल वृक्ष स्वरूप धारण कर लिया जिसकी छत्र-छाया में संगीत के अनेक विद्यार्थियों ने विद्या ग्रहण किया।

पिता श्री लालचंद शर्मा ने नौकरी से त्याग दे दिया और मथुरा आकर बस गये और वहाँ के वैष्ण व परंपरा से अत्यधिक प्रभावित हुये। प्रेमलता जी वाद्यों का अभ्यास करती थीं लेकिन मथुरा आने के बाद स्त्रोत, भजन आदि रागों में गाने लगी तथा

साथ ही उनकी औपचारिक शिक्षा (शास्त्रीय गायन, ध्रुपद) एवं संस्कृत भाषा की शिक्षा चलती रही। बहन जी ने बी.ए. की परीक्षा 15 वर्ष की आयु में ही उत्तीर्ण कर ली थी।

उनकी माता अपने मेधावी पुत्री को विद्वान बनाना चाहती थीं अतः उन्होंने शर्मा जी से आग्रह कर पुत्री को वाराणसी ले आयीं वहाँ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से आपने एम.ए. (हिन्दी) से उत्तीर्ण करने के पश्चात् एम.ए. (संस्कृत) सं भी पास किया तथा एम.ए. की दो-दो उपाधियों के बाद आपने संस्कृत विषय से शोध किया।

शोध करते हुये ही आपके पिता के विनती पर पं. ओमकारनाथ ठाकुर जी आपके स्थानीय अभिभावक बनने को तैयार हो गये तथा उनकी नवीन स्थापित शैक्षणिक संस्था 'श्री कला संगीत भारती' में डिप्लोमा में प्रवेश मिला।

इस प्रकार संस्कृत भाषा से शोध और संगीत में डिप्लोमा की शिक्षा प्रारम्भ हो गई। आपकी बुद्धि-विवेक को देखकर पं. जी प्रभावित थे और उन्हें ऐसे किसी मेहनती व्यक्ति की खोज थी जो उनके लेखन कार्य में सहायता करे।

अतः यहीं से आपके जीवन में संगीत शास्त्र परम्परा को पल्लवित और प्रसारित करने का शुभ समय प्रारम्भ हुआ। आठ-नव वर्षों तक संगीत मार्तण्ड पं. ओमकार नाथ ठाकुर जी बनारस में रहे, तब तक प्रेमलता जी नियमित रूप से उनके पुस्तकों का लेखन कार्य करती रहीं। जिससे संगीतशास्त्र के प्रति रूचि, ज्ञान, समझ की दृष्टि विकसित हुई।

कहा जाता है कि व्यास जी और गणेश जी के जोड़ी के कारण ही संगीत जगत् को संगीतांजलि (भाग 6) और प्रणव भारती जैसा महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्राप्त हो पाया। गुरु जी का लेखन कार्य करते-करते बहन जी को संगीतशास्त्र में विशिष्ट दृष्टि एवं दिशा मिला। शोध कार्य सम्पूर्ण करने के पश्चात् आप संस्कृत महाविद्यालय से साहित्यशास्त्र में आचार्य की उपाधि प्राप्त कीं तथा साथ ही संगीत में संगीतालंकार (बी.म्यूज. के समकक्ष) की भी डिग्री प्राप्त किया।

सांगीतिक योगदान

इतनी मेघाशक्ति और अत्यन्त परिश्रम के साथ विद्याध्ययन करने के पश्चात् आपको नौकरी की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। आपको 1955 ई. में एक साथ दो-दो नौकरी का अवसर प्राप्त हुआ-

1. अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रवक्ता पद के लिये
2. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की 'श्री कला संगीत भारती' (वर्तमान में संगीत एवं मंच कला संकाय) में संगीत के प्रवक्ता पद हेतु। किन्तु विचार करने के पश्चात् काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में ही शिक्षण कार्य देना निश्चय किया।

प्रो. प्रेमलता शर्मा जी के विषय में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति जाकिर हुसैन जी ने कहा था कि ''We are the loosers, B.H.U. has gained''

तथ्यों से ज्ञात होता है कि बहन जी कितनी योग्य शिक्षिका थीं आपने 1955 से 1984 तक पूरे तीस वर्षों तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत संकाय में पूर्ण निष्ठा के साथ अविस्मरणीय एवं अमूल्य योगदान दिया। 1955 से 1957 तक प्रवक्ता पद, 1957 में ही रीडर पद तथा बहुत वर्षों तक संगीतशास्त्र विभाग की विभागाध्यक्षा एवं संकायाध्यक्षा भी रहीं।

1984 से 1988 तक इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (मध्य प्रदेश) की कुलपति पद पर रहीं। अतः जब आप दोनों विश्वविद्यालयों की सेवाओं से निवृत्ति के पश्चात् अनेक पुस्तकों का प्रकाशन, सेमिनार तथा संस्कृत नाटकों का मंचन सम्बन्धित कार्यक्रम का आयोजन किया। खैरागढ़ से निवृत्ति के बाद आप बनारस आकर अपने करौंदी स्थित मकान (आम्नाय) में रहने लगीं।

वर्तमान में आपकी छोटी बहन डॉ. उर्मिला शर्मा आपके मकान में आपके विशाल भण्डार पुस्तकों के साथ रह रही हैं।

1993 ई. में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने आपको एमेरिटस प्रोफेसर बनाया तथा 21 अप्रैल

1994 में संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली में उपाध्यक्षा पद पर रहीं।

इसके पूर्व 1983 से, 1986 ई. तक उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी की अध्यक्षा भी रह चुकी थीं। बहुत ही संक्षिप्त रूप में बहन जी के बृहद जीवन परिचय को समेटने की कोशिश की है अब उनके संगीतशास्त्रवेत्ता के रूप में भूमिका जो सर्वविदित है, अमूल्य है। राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक आपकी पहचान पठनशील, चिन्तनशील समर्पित एवं विदुषी भारतीय संगीतशास्त्रवेत्ता के रूप में ही अधिक प्रसिद्ध है।

पण्डित जी के पुस्तकों के प्रकाशन में बहन जी की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण है उसका प्रमाण उन पुस्तकों के आमुख, प्रस्तावना में द्रष्टव्य है जिसमें पण्डित जी ने बहन जी प्रशंसा की है कि मेरे लेखन के प्रति आलस्य को दूर कर निरन्तर प्रेरणाशक्ति के रूप में जिसने उत्तेजित किया, खुद जागकर और मुझे भी जगाकर इन ग्रन्थों को अक्षरदेह रूप में अवतरित किया।

मेरे कई शिष्य-शिष्याएं आए सीखे और अपनी शक्ति अनुसार पाए और विदा हुए किन्तु प्रेमलता शर्मा जैसा निःस्वार्थ शिष्या प्रभु ने मुझे दी, जिसने मुझमें निहित शक्तियों को पहचाना और उसे प्रकाशित करने में अथक सहयोग दिया।

पं. जी के पुस्तकों में प्रेमलता शर्मा जी का अमूल्य योगदान रहा-

1. संगीतांजलि (6 भाग)
2. प्रणवभारती

पं. जी को बहन जी पर इतना विश्वास था कि वह कहते थे अब मैं अपने सारे अनुसंधान कार्यों की विरासत उनको सौंप रहा हुँ, क्योंकि यह इतने दीर्घकाल से सहकार है कि मुझमें और प्रेमलता शर्मा के सोच-विचार और वाणी में, भाव और भाषा में सम्पूर्ण अभिन्नता आ गई है अतः तदात्म्य भाव स्थापित हो गया है। पं. जी का मानना था कि मेरे जीवन कार्य को व्यापक तथा समृद्ध रूप प्रेमलता शर्मा प्रदान करेंगी ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है, भविष्य के प्रकाशन केवल मेरे नाम से ना होकर युग्म नाम से होंगे, यह बताते हुये मैं अपार आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ।

उपर्युक्त पं. ओमकर नाथ ठाकुर जी कि व्यक्तव्यों से प्रतीत होता है कि बहन जी एक सुयोग्य शिष्या थी। पं. जी 'श्री कला संगीत भारती' के प्राचार्य पद से निवृत्ति पश्चात् प्रो. प्रेमलता शर्मा जी को संस्था की स्थानापन्न प्राचार्य नियुक्त कर दिया।

संस्था का तथा शोध प्रभाग के उत्तरदायित्वों का बोझ डॉ. प्रेमलता शर्मा जी पर क्रमशः बढ़ता गया और व्यस्त रहने लगीं जिसके कारण नवीन पुस्तकों के लेखन कार्य अवरूद्ध हो गये। पं. जी गुजरात के भरूच में वाराणसी छोड़कर रहने चले गये वहाँ उनके लेखन कार्य को आगे बढ़ाने हेतु कोई योग्य व्यक्ति नहीं मिला। गुजरात जाने के बाद पं. जी बीमार रहने लगे तथा 1967 में उनका देहांत हो गया।

बहन जी, पं. जी के मृत्यु के पश्चात् भी उनकी पुस्तकों के नवीन संस्करण में अपना योगदान देती रहीं। प्राचीन काल से वर्तमान समय तक संगीत की मौखिक शिक्षा पद्धति चली आ रही है। संगीत के क्रियात्मक पक्ष की तरह ही संगीत के शास्त्र पक्ष पर विशेष अध्ययन, पठन-पाठन, गुरु शिष्य परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही थी किन्तु मध्यकाल के बाद संगीत के शास्त्र पक्ष पर अध्ययन लुप्त होने लगा क्योंकि संगीतज्ञ क्रियात्मक पक्ष को ही अपना लक्ष्य समझते रहे शास्त्र पक्ष के प्रति उपेक्षात्मक दृष्टि रखी। इसका मुख्य कारण यह भी था कि अधिकतर प्राचीन ग्रन्थ संस्कृत भाषा में थे जिससे संगीतज्ञ भाषा की जानकारी के अभाव में भी संगीत के शास्त्र पक्ष को समझने में असमर्थता थी इसलिए संगीत जैसे गहन एवं प्रयोग प्रधान विषय को समझना कठिन था। धीरे-धीरे प्राचीन काल में शास्त्र की महत्ता की कड़ी टूट रही थी क्योंकि मध्यकाल में भी जो संगीत क्रिया पक्ष में कुशल थे वे शास्त्र से परे तथा जो शास्त्र में कुशल थे वे क्रिया पक्ष से रहित।

20वीं शताब्दी में भारतीय संगीत के पुनरूत्थान में विष्णुद्वय (पं. विष्णु नारायण भातखण्डे तथा पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर) का प्रमुख योगदान रहा।

दोनों विद्वानों ने संगीतज्ञों का ध्यान संगीतशास्त्र पर भी आकृष्ट कराया। पं. भातखण्डे जी ने प्राचीन एवं मध्यकालीन ग्रन्थों का अध्ययन कर स्वयं शास्त्र सम्बन्धित पुस्तकों का लेखन किया। तत्पश्चात् पं. ओमकारनाथ ठाकुर जी ने भी नाट्यशास्त्र ग्रंथ का अध्ययन कर प्रणव भारती नामक पुस्तक लिखा महत्वपूर्ण बात यह है कि 'प्रणव भारती' के प्रकाशन के बाद अभिवन गुप्त की 'अभिनव भारती' आया किन्तु अभिनव भारती के सहायता बिना नाट्यशास्त्र समझना बहुत योग्यता की बात है। यही सारे गुण प्रेमलता शर्मा जी में विरासत रूप में मिले।

आधुनिक काल में विभिन्न ग्रंथकारों ने अनेकों संगीतशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों का अध्ययन किया तथा प्राचीन अवधारणाओं के सांगीतिक सिद्धान्तों को स्पष्ट करने का प्रयास किया। इसी क्रम में प्रो. प्रेमलता शर्मा जी भी अपना नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित कराया।

श्री कला संगीत भारती की स्थापना (1950) के समय ही उसमें शोध प्रभाग चल रहा था जिसका नेतृत्व फ्रांसीसी विद्वान श्री एलन डेलन्यू कर रहे थे, लेकिन 1953 में उनको वापस अपने देशकाल जाना पड़ा जिससे उनके कुछ शोध कार्य अधुरे रह गये। कुछ वर्षों तक यह प्रभाग बंद पड़ा था जब प्रेमलता जी 1955 में नियुक्त हुईं तब इसमें प्राण संचार शुरू हुआ और आपने अनेक ग्रंथों की पाण्डुलिपियाँ प्राप्त की तथा अनेक ग्रंथों का पाठ संशोधन किया।

आपको विभिन्न भाषाओं का ज्ञान था जैसे-संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, गुजराती, मराठी, बांग्ला, पंजाबी आदि।

संस्कृत ग्रन्थों की पाठ संशोधन की विधि संस्कृत के गुरु डॉ. परशुराम लक्ष्मण वैद्य जी से ग्रहण की थी। जैसे महाराणा कुंभा कृत संगीत राज, श्रीकण्ठ की रस कौमुदी, अभिनव भारती के 29-30-31वें अध्याय, शुभंकर कृत संगीत दामोदर, गंगाराम द्वारा ब्रजभाषा में लिखी संगीत रत्नाकर की टीका 'संगीत सेतु, नन्दिकेश्वर का 'भरताण्व' आदि की पाण्डुलिपियाँ प्राप्त की तथा इनकी दो-दो, तीन-तीन प्रतियाँ तैयार करवाई। आपने इस कालक्रम में संगीतशास्त्र विभाग को अधिक पुष्टि एवं सुदृढ़ बनाया। पं. ओमकारनाथ जी द्वारा एकत्रित अनेक पुस्तकों का दान तथा यूनिवर्सिटी ग्रांट से प्रो. प्रेमलता शर्मा जी ने अनेक हिन्दी, अंग्रेजी और संस्कृत की दुलर्भ पुस्तकों को मंगवाकर इस प्रभाग में एक बहुमूल्य पुस्तकालय भी बनाया। 1962 के बाद अनेक विद्यार्थियों ने बहन जी के पास शोधकार्य किया।

सर्वप्रथम आपके निर्देशन में श्री चित्तरंजन ज्योतिषी जी तथा श्री प्रदीप कुमार दीक्षित ने (डी. म्यूज) शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया। इनके अतिरिक्त एन. राजम, सुभद्रा चौधरी, इंद्राणी चक्रवर्ती, तेज सिंह टाक, ऋत्विक सान्याल, श्रीमती विमला मुसलगांवकर, कमलादेवी नौटियाल, रमकान्त द्विवेदी, अनिल व्योहार, नीरज कुमार, सुधाकर भट्ट, एलिन, सेलिना थेलमन, नीरज कुमार आदि शोधकर्ताओं ने बहन जी के परामर्श एवं मार्गदर्शन से अपना शोधकार्य पूरा किया। भारत में यह प्रथम विभाग था जहाँ प्राचीन संगीतशास्त्रीय ग्रन्थों का विधिवत ढंग से अध्यापन कराया जाता था। बहन जी नाट्यशास्त्र, बृहद्देशी तथा संगीतरत्नाकर के अध्यायों के एक-एक श्लोकों को समझाती एवं पढ़ाती थी। प्रेमलता शर्मा जी के जीवन का परम लक्ष्य संगीतशास्त्र के क्षेत्र में अच्छे विद्यार्थी का निर्माण हो जो इस परम्परा को आगे बढ़ाये। बहन जी के पास अनेक देश-विदेशों से छात्र-छात्राएँ तथा विद्वान चर्चा करने आते रहते थे। आपने विशिष्ट व्याख्यान हेतु रूस, अमेरिका, मॉरिशस, हालैण्ड आदि विदेशों में यात्रायें भी किये।

प्रेमलता शर्मा जी ने संस्कृत से अंग्रेजी भाषा में 'संगीत रत्नाकर' वृहद्देशी ग्रन्थों का अनुवाद तथा सम्पादन किया। बंगला से हिन्दी भाषा में जपसूत्रम् (1,2 भाग), साधुदर्शन व सत्प्रसंग तथा अमरवाणी का अनुवाद तथा संपादन किया। ध्रुपद पर केन्द्रित 'ध्रुपद वार्षिकी' पत्रिका का संपादन दस अंकों में प्रकाशित कराया।

आपका विशिष्ट लेख रस सिद्धान्त तथा 100 से अधिक लेखन विभिन्न पत्रिकाओं (देश-विदेश) में प्रकाशित किये। आप इंदिरा कला संगीत

विश्वविद्यालय, खैरागढ़ में शिक्षा स्तर में गुणात्मक सुधार करने के ध्येय से गयी थी और ऐसा हुआ भी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सेमिनार का आयोजन किया जिसका विषय छत्तीसगढ़ की लोककलाओं पर आधारित था। तत्पश्चात् पं. भातखण्डे जी लिखित 'माझी दक्षिण भारतची संगीत यात्रा' मराठी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कराया।

आपने 1994 से 1996 तीन वर्षों तक भ्रमरगीत, श्रीकृष्ण प्रसंग श्री गोविन्द विरूदावलि, वेणुगीत और युग्मगीत आदि को कई राग-ताल में निबद्ध किया तथा उन रचनाओं पर नृत्य का कार्यक्रम भी विभिन्न शहरों में करवाया। प्रबन्ध, स्थाय, इतिहास पर भारतीय दृष्टिकोण का विशेष गहनता से अध्ययन किया।

दर्शनशास्त्र तथा साहित्यशास्त्र की अच्छी विदुषी होने के कारण 'रस' विषय पर विशेष अध्ययन किया तथा सौन्दर्यशास्त्र आपका प्रिय विषय रहा, संगीत जैसी अमूर्त कला में रससिद्धि के लिये आपने जो त्रिगुण सिद्धांत (माधुर्य, ओज एवं प्रसाद) बताया जो आपके दीर्घकालीन चिन्तन, मनन का प्रमाण है।

प्रो. प्रेमलता शर्मा के द्वारा लिखित, अनुदित संपादित पुस्तकों, आयोजित विचार गोष्ठियों, शैक्षणिक सांस्कृतिक विदेश यात्राओं आदि के बाद उनके विदुषी शास्त्रवेत्ता रूप का दर्शन एवं संगीत जगत में आपके अमूल्य योगदान अविस्मरणीय है। इसमें आपका परिश्रम, विलक्षण बुद्धि तथा गुरु पण्डित ओमकार नाथ ठाकुर जैसे महान विभूति के सानिध्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका है जिसके कारण संगीत धरा आपके वृहद कार्यों से लाभान्वित हो रहा है।

1995 ई. से आपकी शारीरिक स्थिति क्रमशः बिगड़ती रही तेज ज्वर, डायरिया आदि रहने लगा जिससे आप शारीरिक रूप से कमजोर हो गईं। 1996 में आपकी आंखों में मोतियाबिन्द की शिकायत होने के कारण ऑपरेशन हुआ। इसी बीच हृदयरोग का प्रथम आघात हुआ उसके बाद भी उनको काम से विश्राम लेना स्वीकार्य नहीं था तुरन्त पढ़ाई-लिखाई में लग जाना ही ठीक लगता था। 1998 ई. में पुनः हृदयाघात हुआ और बहन जी पंचतत्व में विलीन हो गयीं।

सन्दर्भ सूची

1. दीक्षित, डॉ. अर्चना, विविध विषय विदुषी, प्रो. प्रेमलता शर्मा व्यक्तित्व एवं कृतित्व, महावीर प्रेस वाराणसी, प्रथम संस्करण 2002
2. चौधरी, डॉ. सुभद्रा, संगीतरत्नाकर, खण्ड-1, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2000
3. संवाद पत्रिका, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
4. नादरूप भाग-1,2 (1961, 1962), श्री कला संगीत भारती द्वारा प्रकाशित
5. नादार्चन (वार्षिक पत्रिका), संपादक-डॉ. आदिनाथ उपाध्याय (1990-1994)
6. संगीतांजलि (भाग 1-6), पं. ओमकारनाथ ठाकुर

Contribution of Violin Vidwan V.V. Srinivasa Rao to Karnatic Music

Devu Treesa Mathew
Research Scholar
(Autonomous), Chennai

Dr. Shanti Mahesh
Department of Music Queen Mary's College

Prologue

Legends take birth only once in a blue moon. Music as well as musical legends have no boundaries. Likewise musical instruments also have no boundaries and limits like Eastern Western and the like. Though the musical instrument violin has a western origin it is adapted to Indian music especially to Carnatic music in the seventeenth century. Thenceforth there emerged numerous violin experts. Sri V. V. S. Rao is one among them and is a living legend among the violin vidwans.

Keywords

V.V. Srinivasa Rao, Karnatik, Violin, Instrumental Music

LIFE OF V.V. SRINIVASA RAO

Sri. V.V. Srinivasa Rao's induction into carnatic music was from his father, Harikatha exponent, Sri V.S.R.Anjaneya bhagavatar. Sri. V.V. Srinivasa rao had his initial training from violin maestro's Sri. Dwaram satyanarayana and Vidwan Sri. V.V. subramanyam.

V.V. Srinivasa Rao born on 13 December 1964. His father's name is Sri V.S.R Anjaneya bhagavathar and mother Vijaya Lakshmi. He is having 3 elder sisters, one of them plays violin as well as vocal and both other sisters arevocal artists. His father is a harikatha exponent, poet and school teacher. His first guru is his father. His father was a harmonium player and he learned harmonium as well as Carnatic music from his father and his first performance was harikatha on harmonium. SP Balasubrahmanyam and his father were friends and harikatha exponents. He supported him to play harmonium and performed a lot of stages with them.

EARLY LIFE

In his native every year Tyagaraja utsava will takes place and uncha vrithi bhajana also takes place and he participated in it. During that time his interest increased a lot. One day his father's friends suggested that why don't you train your son to violin, so that he can play more gamakas and sangathis. He started to learn violin under Pandian

subramanyam of nellor. He picked up so fastly because of his father's early guidance in harmonium. He started to play varnams and kritis so fastly. During that time period harikatha katcheris were highlight telecasts in televisions and temple festivals and he used to perform in various concerts.

EDUCATION

One day he noticed an Ad in newspaper T.T.D. Devasthanam is starting a new college called Sri Venkateswara Kalapadam and starting a new course for the advanced level of music with popular faculty members in the field. Course name is VADYA PRAVENA, which is equivalent to PG Diploma. He applied for it and attended interview and he got selected for violin course the duration of the course is 2 years and his awareness to music increased due to T.T. Devasthanam. In those days the college faculties used to conduct Kutcher is in college and they will select students to perform in various temple festivals. He completed the course as an outstanding student with distinction and gold medal. After completing his PG diploma, he joined and completed Teachers Training Course (TTC) successfully. And also had advanced training from violin maestro Sri. V.V.Subramanyam. That helped him to secure a government job in kendriya vidyalaya in 1987.In that mean time he went through audition process in AIR and secured B Grade in 1987 and later upgraded to B high. Then he got posting to Kerala, Ottapalam. He worked there for 2 years and got transfer to tirupati. During that time he went for training under Dwaram satyanarayana, son of famous venkataswamy Naidu in 1989. In 1988, got married to Lalitha and in 1994 blessed with son, Surya andin 1996 Swathi. His son is a mandolin player and daughter is a vocalist. During his teaching period he got tasks to prepare students for group singing, composed poems in different languages, patriotic songs for the school annual events.

PERFORMANCE

During a performance in a temple he got a task to play along with gottuvadyam. During college time, first year annual function carnatic music orchestral symphony takes place, it is known as vadya vrinda and that was a different experience for him. In 1992,attended interview and got appointed as violinist in AIR Vadya Vrinda (National Orchestra). He worked till 1996 July and during that period he got many opportunities to play several vadya vrinda compositions in Hindustani music and Carnatic music. Had opportunity to play in Rashtrapati bhavan twice in front of foreign delegates. Thereafter in 1996 august, he joined AIR Chennai, which is a mecca of carnatic music.

He got a lot of opportunities to accompany with veterans in the field like M. Balamuralikrishna (vocalist), Dr. N. Ramani (flutist), Mandolin Srinivas (mandolin), Ravikiran (chitraveena), Sikkil Sisters (flutists),T.V. Sankaranarayanan (vocalist), Thrissur. V. Ramachandran (vocalist), Unnikrishnan (vocalist), Bombay Jayashree(vocalist). More than 30 years he has been playing with these kinds of famous legends.

AWARDS

Prizes:- State first prizes twice.

Best violinist from the Indian fine arts society chennai, Music academy ‘madras, krishna Gana sabha

Sri.kanchi kama koti peeta asthana vidwan award.

vayuleena- gandharva award.

A top-grade artist in AIR award in the year 2012.

CONTRIBUTIONS

As an accompanist

He got familiarity with different schools of music like GNB School of music (famous in fast sangathis), Bala murali sirs music (has his own mixing style of carnatic and Hindustani music),musiri school of music(mixture of ragam tanam pallavi),Brinda & Muktha school(famous for padam and javali),Madurai mani iyers school of music(famous for sarva laghu swaras).

As a teacher

He has been inculcating the nuances of the Carnatic music to his students, which is the greatest positive point of V.V.Srinivasa Rao. He has a lotof patients and calm nature while teaching. His approach to teaching style is differnt. In the beginning he teaches the song and the notation and the student has to learn it and sing it perfectly then only he will teach them to play in violin. He will repeat the students doubtful part again and again and make sure that they are throve with that portion then move to next step. He not only teach how to play violin he teaches the value of punctuality, obedience and different valuable things which is necessary for a good person. He and his family treat each and every student as a member of their family and serve food, love and care without any partialities. He takes his students to listen his concerts and give opportunities to perform with him. He gives good guidance as a guru and good support like a parent. The students who get opportunities to learn under his trainings are really blessed.

As a composer

Vadya vrinda compositions in rare ragas like oormika. All India Radio has been playing a very important role in the propagation & preservation of Music in General and the rich Classical Music and Folk Music Traditions in particular. In a pioneering effort as an experimentation to harmonize the rich and beautiful Indian melodies and present them as orchestral compositions, Vadya Vrinda Unit was started in 1952. The Vadya Vrinda Units had a numberof artists playing on different instruments which not only was an effort towards keeping alive and showcasing many rare instruments for posterity but also to provide job opportunities to many artists. It is again a matter of pride that many eminent artists have been part of the Vadya Vrinda Units at Delhi and Chennai and Vadya Vrinda compositions of Pt. Ravi Shankar, Pt. Panna Lal Ghosh, T.K. Jayaram Iyer, Anil Biswas, Emani Shankar Shastri, H.L. Sehgal, M.Y. Kamasastry and others have been preserved in the archives of All India Radio which stand as testimony to their creative excellence and mastery.

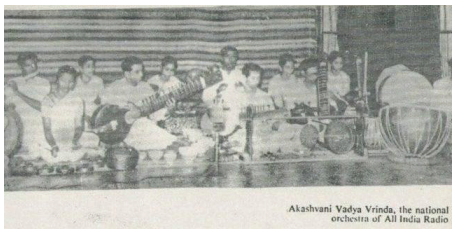

Akashvani Vadya Vrinda, the national orchestra of All India Radio

As a solo artist

Played many concerts, instrumental jugal bandi like veena, mandolin, flute etc.

As a group performer

Vadya vrinda Violin styles and techniques of V.V.S Rao - He adopted Gayaki style and uses western bowing techniques.

Contribution to ALL INDIA RADIO

Composed musical features, titled LAYA TARANG

While working in AIR learned how to record Carnatic concerts, OB (invited audience bg program), concerts edited and produced many musical features for day to day broadcast in AIR

Epilogue

By trailing clouds of glory legends come to earth. They leave behind their footprints for generations to come on the shore of life and time. We step on them with glory, reverence and adoration. Violin legends leave behinds are their everlasting violin swaras, which vibrate in our ears. Among these swaras some are notified as of Sri V.V.S..RAOS, indeed a living legend in Carnatic violin.

From his earlier age he has been into the music world. Through his learningand performances, he has evolved himself as a senior performer of the classical music category. He has also been into the ALL INDIA RADIO, which has been also an important reason for being a soloist and composer. Naturally he is gifted with a composing ability. He was able to do a very good justice to that area and at the same time it was very much appreciated by the audience side. So the are always on a commanding style and as a teacher he has been teaching to students and he has been in inculcating the nuances of the Carnatic music to his students, which is the greatest positive point of V.V. Srinivasa Rao and so his contributions to music and teaching fraternity is ever memorable.

APPENDIX [photos, notations] Compositions published on CDs

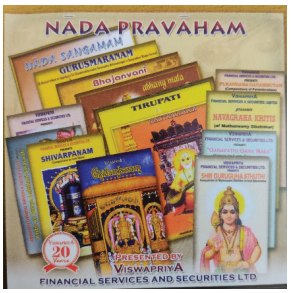

NOTATIONS

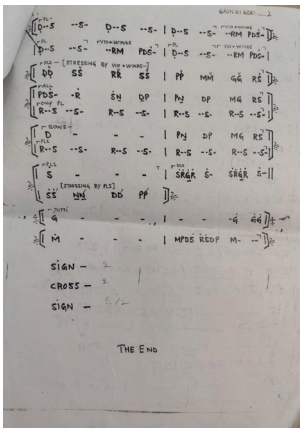

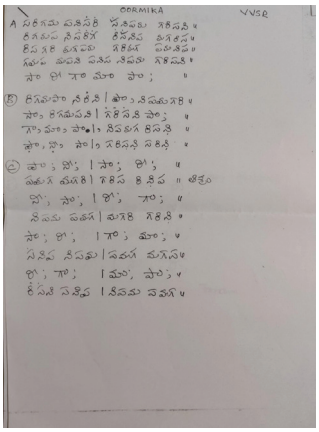

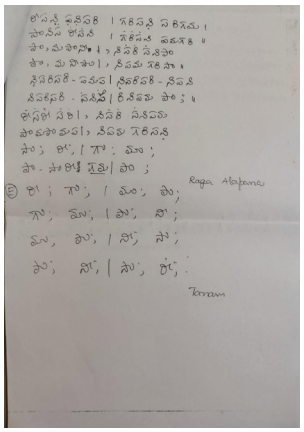

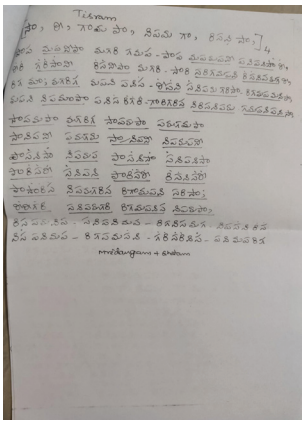

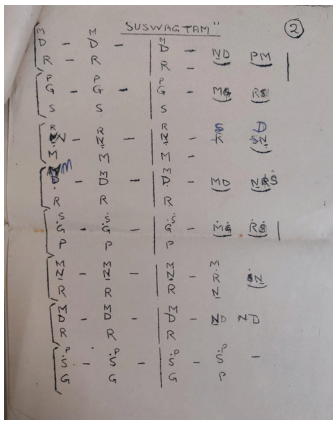

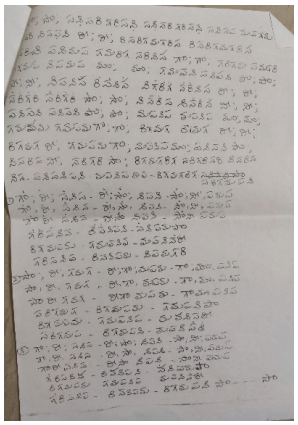

Concert Pictures of V.V. Srinivasa Rao

Chaste rendition

VOCAL The relevant technique in raga delineation by Kasturi Rangan indicated the lines of his grooming.

SVK May 7th 2010

Kasturi Rangan's forceful and deep voice with waves of rolling akara conferred classical weight on his exposition in Sri Thyagaraja Seva Samiti's Bahula Panchami concert. Raga alapanas provided solid experience occasionally with excess vocalisation. Sancharas, deeply reflective, focussed on highlighting the radiance of the ragas, Sankarabharanam and earlier Pantuvarali.

He freely let his voice unfold his manodharma and formulated its progress in vidwat idiom. With spells of inspiration, his talent combined smoothness of music's flow with the chaste characteristics of classicism.

This lofty approach and relevant technique indicated the lines of his grooming.

Melodic majesty was his prized performing base. This could be sensed in the many variations in negotiating the tara sthayi segment. This to a great extent explained the pulsating pleasantness.

Impressive and creative

Sankarabharanam ('Vadiuta Nilachitte') provided the core of the recital. Kasturi Rangan's creativity couched in elegant twists and turns counted for its impressiveness. Vocal immensity exerted its influence on providing Sankarabharanam's panoramic edifice. A major part of development explored many levels of the raga's reach. The phrasings documented the moorchana boundaries and the akara-packed raga complex was gradually presented.

The interpretative method well communicated the loveliness of the kirtana. The flow of the sangatis was set against the grandeur of the piece. It hit the right aesthetic areas, a method imbibed from his guru Seshagopalan's style. It would do him much good to convert imitation to emulation and observe restraint for artistic effect. The first taste of the concert at the start, the Asrabhi Panchratnam 'Saalinchana' whetted the appetite for the rest of the songs – 'Sangita Gananamur (Dhanyasi), 'Entarika' (Devamanohari) and 'Dandmarga' (Ranjani). The rendering of the kirtanas in general drew strength from exuberance packed in them.

Kasturi Rangan.

While overall the singing represented Carnatic flavour, Kasturi Rangan's Pantuvarali alapana was in the ustad mode. The kirtana was Appa Rama Bhakti. It was not a single factor that ensured the brilliance of the programme. Voice, talent, guru's influence and cheerfulness combined to project Carnatic solidarity.

As against the forceful approach of the vocalist, V.V. Srinivasa Rao, on the violin, softly textured the raga Sankarabharanam and Pantuvarali in his solo sessions. His play incorporated gentle touches to the sancharas and the economy in building Sankarabharanam was noteworthy, stressing the essence converted more than elaboration. It was a very respectable face of Sankarabharanam that he delineated.

Mannarkoil Balaji's mridangam revealed a style of play wedded to lays substance. There was, good balance between expertise and efficiency, in his thani

साहित्यिकी

चंद्रलाल बादी के संगों में लोकधर्मिता : एक विवेचन

डॉ कामराज सिन्धु

विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग दुरस्त शिक्षा निदेशालय, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र

भूमिका

संगीत की दृष्टि से सांग या स्वांग को हरियाणा का कोमी नाट्य कहा जा सकता है। यह विधा हरियाणा के लोकमानस पर जादू का प्रभाव डालती है। इसके मंच के चारों ओर बैठे दर्शक रागनियों की स्वर-लहरियों में एवं वाद्य संगीत कथा को देखसुन कर मंत्रमुग्ध हो जाते हैं यदि हम इसके नाम के ऊपर चर्चा करें तो हमें विभिन्न विद्वानों के द्वारा उनके अनेक नाम प्राप्त होते हैं। डॉ शंकर लाल यादव सांग या सांगीत को संगीत का ही फूहड़ रूप मानते हैं।

हरियाणा लोक साहित्य अपने समाज का प्राण होता है। हरियाणा लोक साहित्य अत्यंत विशाल और समृद्ध है, और उसमें स्वांग लोक साहित्य प्रमुख विधा के रूप में जाना जाता है। हरियाणा का लोक साहित्य एक प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत हुआ है, जिसमें लोकनाट्य कलाकारों की अहम भूमिका होती है। हरियाणवी लोक साहित्य में आप भारतीय संस्कृति की झलक स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। हरियाणा के लोक साहित्य में विभिन्न विधाओं को लेकर अनेकों हरियाणा के विश्वविद्यालयों में शोध कार्य भी हुआ है, और इसमें एक महत्वपूर्ण कड़ी है सांग। सांग के दर्पण में समाज की समस्त रुचियां, भावनाएं, कल्पनाएं और समाज का प्रतिबिंब स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। सांग मे मेरी रुचि इसलिए भी अधिक थी क्योंकि मे ग्रामीण परिवेश से संबंध रखता हूँ। बल्यकाल अवस्था से मैंने सांगो को अपने गांव या पड़ोस के गांव में जरूर देखाहै। सांग एक ऐसी विधा है जिसका प्रचलन हरियाणा के लोक साहित्य में 100 साल से अधिक का देखा गया है। यह एक मनोरंजन का साधन तो है ही परंतु यह आय का साधन भी है, जिस प्रकार चौपाल बनाना, पाठशाला, गरीब लड़कियो की शादी के लिए पैसा इकठ्ठा करना आदि। हरियाणवी सांगों में विभिन्न प्रकार की सौंदर्य, विभिन्न प्रकार के साहित्य से जुड़े आयाम देखने को मिलते हैं। हरियाणवी सांग परंपरा में जहां पुरुष और नारी पात्रों के अतिरिक्त कुछ ऐसे पात्र भी सांग में आपको देखने को मिलेंगे जिसमें देवी देवता आदि का वर्णन एक सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया जाता है।[1]

हरियाणा सॉन्ग विधा एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में हरियाणा में प्रस्तुत हुई है। इस मिट्टी ने बड़े-बड़े संगियों को जन्म दिया है कुछ समय बाद उनका पूरा परिवार मेरठ के गाँव दतनगर, उत्तर प्रदेश मे जाकर बस गया। जिसमें एक नाम चंद्रलालबादी सांगी हुए हैं। उनका जन्म भिवानी जिले के चरखी दादरी में हुआ, और बचपन से ही उनका लगाव गायन में देखने को मिला। लगभग 13 वर्ष की आयु में ही उन्होंने मंचों पर सॉन्ग कला का प्रदर्शन करना आरंभ किया, इसके बाद हरियाणा की माटी से निकलकर सांग विधा संपूर्ण भारत में देखने को मिली। मुंबई बॉलीवुड में काम करने वाले इकलौते संगी चंद्रलालबादी के रूप में जाने जाते हैं।सन 1960

में इन्होंने अपने संगों का सामाजिक संदेश लोगों तक पहुंचाने के लिए भारत सरकार द्वारा सम्मानित भी किया गया। 1944-45 में भारत के पश्चिमी भाग जो संयुक्त पंजाब के रूप में जाना जाता है लाहौर मुख्य शहर आज पाकिस्तान का हिस्सा है, के सौ की घड़ी, गुजरमल किला, खजिया वाला फतेहपुर, मियां मीर छावनी, अनरकली बाजार, की रचना करके अपनी अमित छाप छोडी।हीर रांझा, अंजना पवन कुमार, नल राजा और दमयंती का स्वयंवर, सत्यवान सावित्री आदि सांगों की तैयारी करके उनका मंचन किया, और आजादी से पूर्व चंद्रलाल बादी की पूरी पार्टी भारत में आ गई और यहां सॉन्ग मंचन करने लगे।[2]

ज्ञान विज्ञान की तमाम विधाएं मानव जीवन को सुखद और समाज को परिष्कृत करने के लिए होती हैं। यही आदर्श साहित्य और लोक कलाओं का संबंध में होता है। लोक साहित्य में वृहद लोग की कामनाएं जीवन शैली और सांसारिक उत्थान पतन दिखाई देता है। क्योंकि लोग की परिभाषा में संपूर्ण मानव समाज आता है। जिसमें शिक्षित, अशिक्षित, गरीब, अमीर, छुआ-छूत स्त्री-पुरुष बालवीर बाल वृद्ध, सभी कुछ लोक में समाहित है। प्रारंभ काल से ही लोक के जीवन में अनुशासन के लिए सिविल कोड बनाएं। घर परिवार और समाज में स्त्री पुरुषों को व्यावहारिक नियमों में बांधा। संबंधों को नाम दिया माता-पिता, बेटा-बेटी, भाई-बहन, पति-पत्नी आदि यह सब पारिवारिक रिश्ते तय किए। चंद्रलाल बादी संगों में एक विशेष बात यह है कि स्त्री-पुरुष संबंध के धरातलीय रूप दिखाई देते हैं। इस मायने में भी एक माहिर लोक कवि के रूप में जाने जाते हैं। वह किसी आदर्श के चक्कर में लौकिक व्यवहार में प्रचलित संबंधों को नहीं भूलते और इसी लौकिक व्यवहार के बीच ही वे नैतिकता का पाठ पढ़ाते हैं। उनकी रागनियों में अनेक ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है जो समाज विरोधी शब्दों के रूप में जाने जाते हैं जैसे चोर-जार ठग आदि जिनको हम समाज के लिए एक घातक और अपशब्द मानते है।

यह मेरे बस का ना काम तू है तो माणस बदकार।
चोर-जार-ठग जगत म्न नहीं किसी के यार।।[3]

पृथ्वी सिंह किरणमई सॉन्ग स्त्री के जार -परीक्षा का सॉन्ग है। शेरखान पृथ्वी सिंह की पत्नी की परीक्षा लेने उनके घर आता है। उससे पहले महाराजा अकबर के दरबार में शेरखान और पृथ्वी सिंह की जार कर्म के ऊपर तीखी नोक-झोंक होती है। शेरखान कहता है कि जिस मूल्यों की बात पृथ्वी सिंह अपनी पत्नी के लिए कह रहा है, उस तरह का संस्कार हिंदू महिलाओं में नहीं है। उनकी शर्त लगती है और शेरखान उसकी पत्नी के सत की परीक्षा के लिए उसके नगर में जाता है और छल से उसकी पत्नी को जारिणी साबित करने की कोशिश करता है। पृथ्वी सिंह चोर- जार के स्वभाव पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं-

हो यारी घर के घर दूर भेद कोई सहल यार जाणे सौ
हो जैसा आदमी उसी ही सब की तार-सार जाणे सौ
साहूकार मानस औराँ नौ भी साहूकार जाणे सौ
जोर-जार अपने कैसा सबनौ जार जाणे सौ।।[4]

चंद्रलाल बादी ने अपने सांगों में समाज में क्या घट रहा है कैसी परिस्थितियों है उन सब का निरूपण अपने सांसों के द्वारा व्यक्त किया है। चाहे वह पौराणि ाक संदर्भों पर ही आधारित क्यों न हो, फिर भी कवि कहीं न- कहीं अपने समय की अच्छाइयां बुराइयों का वर्णन कर ही देता है, और यदि वह युगबोध से नहीं जुड़ा हुआ हो तो लोग उसे जल्दी ही भूल जाते हैं। चंद्रलाल बादी ने अपने-अपने संगों के पात्रों के माध्यम से अपने दर्शकों को सुखद उपदेश देना का काम भी किया है। वे लोगों को लताड़ते हुये कहते हैं कि जो मित्र बनने का बहाना करके अपने स्वार्थ सिद्ध करने के लिए प्रयास मे लगे रहते हैं। इसके विपरीत दोस्ती का प्रण निभाने वालों को भी एक सच्चा आदमी मानते हैं।कमला -मदन सांग में जब निठल्ली सास-ननंद के कारण लक्ष्मी और उसका परिवार उजड़ जाता है, तो लक्ष्मी और उसका पुत्र भीख मांगने के लिए मजबूर हो जाता है।उस समय दोनों में वार्तालाप होती है।

लक्ष्मी : धोरे बैठके प्रण निभाणा यो छोटा काम नहीं सै।
लक्कड़हारी : जो धोरे बैठ के दगा करे वो असल का जाम नहीं सै।[6]

चंद्रलाल बादी के अनुसार जब तक भारत का एक एक नागरिक परिश्रम नहीं करता तो भारत को 21वीं सदी के अनुरूप कैसे बना जा सकता है। भारत भी तो अपने नागरिकों पर गर्व करें! कोई भी देश अपने श्रमशील नागरिकों के बूते जीवित और स्वतंत्र रहता है।

हमारा प्यारा हिंदुस्तान,
सुर्ग सम्मान हरेक इंसान
करो श्रमदान जाणा शुभ काम
देश को जब होगा आराम।।

सभी धर्मों, जातियों, संप्रदायों और मतों के लोगों को भारत को अपना देश समझ कर इसे महान बनाने के लिए कठिन शर्मदान करना चाहिए। परिश्रमी लोगों के सहारे ही देश को मजबूत बनाया जा सकता है। चंद्रलाल बादी का कहना है, कि सरकारों को देश के एक-एक नागरिक के लिए रोजगार के अवसर प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध होना चाहिए। स्कूल और कॉलेजों में विद्यार्थियों को स्वालंबन का पाठ पढ़ाना चाहिए। चंद्रलाल बादी तकनीकी शिक्षा की ओर इशारा करते हुए लड़कों के साथ -साथ लड़कियों की शिक्षा पर भी पूरा ध्यान देने की बात करते हैं। वे यही नहीं रुकते बल्की किसान साक्षरता की बात भी करते हैं। वे खेती के प्रकारों तथा रूपों में भी फेरबदल की बात करते हैं। जैसे ग्रामीण इलाकों में शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु इंटर कॉलेजों की स्थापना करना।

योजना से देश की बेरोजगारी मिटाई जा
कॉलेज के म्हा हर बच्चे को दस्तकारी सिखाई जा
बेटों के सम्मान बेटी बाहण भी पढ़ाई जा
खेती भी तो जमीदारों कि नए ढाल से कराई जा
ना रहै चोर और जार,
ठग बदकार, पापी विचार, रिश्वती
करै ना जो भारत को बदनाम
देश को जब हो आराम॥

चंद्रलाल बादी देश की सरकारों को भी आह्वान करते हैं कि देश के लोगों का जीवन स्तर सुधारने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं को सही तरीके से लागू किया जा सके।सबसे निम्न स्तर के व्यक्ति को ध्यान में रखकर योजनाओं का निर्माण किया जाए, और उन पर अमल किया जाए। लोगों में संविधान के प्रति विश्वास जागे सरकार लोगों को बिजली, सड़क और पानी के लिए अथक परिश्रम करें। और पंचायती राज व्यवस्था को सबसे श्रेष्ठ विकल्प के रूप में देखा जाए।

पंचवर्षीय योजना का पूरा-पूरा ध्यान हो
श्रमदान और विधाट्न से देश का कल्याण हो।
बिजली के कुएं और सड़क,
चलै बेधड़क, लगै सही फड़क
मिटे जब रड़क बनै पंचायती बीज गोदान
देश को जब हो आराम।।[7]

हर व्यक्ति के जीवन का सच्चा गहना उसका परिश्रम है अप्रत्यक्ष रूप में उसके स्वाभिमान में दिखाई पड़ता है। परिश्रम प्राकृतिक जीवन का सबसे महत्वपूर्ण आयाम है। जो प्रत्येक मनुष्य अपना काम करके जीवन यापन करने के लिए ही पैदा होता है। आत्मनिर्भरता व्यक्ति को संपूर्णता प्रदान करती है। परिश्रमी व्यक्ति स्वयं तो स्वाभिमानी और सर्जनात्मक परवर्ती का होता ही है इसके साथ साथ हुआ है, कोम, समाज देश का भी अनमोल नागरिक होता है। किसी भी देश की सभ्यता, संस्कृति में उस देश के वासिनदों के परिश्रम की सबसे अधिक भूमिका होती है, और उसी परिश्रम का नतीजा सन 1947 में देश की आजादी का का जश्न। चंद्रलाल बादी परिश्रमी और मेहनती तो थे ही लेकिन उनके व्यवहार में हमेशा दिखाई देती थी, और कवि के संस्कार उसकी मेहनत उनके संग में झलकती थी। चंद्रलाल बादी ने अपने संगों के माध्यम से अपने दर्शकों में परिश्रम की जीवन शैली का बीज बोया। चाहे वह धन्नाभगत सांग हो या कमला-मदन या फिर गुलशन-गुलबहार और सत्यवान सावित्री हो सबमें श्रम को महत्व देते हुए दिखाई देते है। असल में

भारतीय जाति व्यवस्था में वे स्वयं भी एक ऐसी जाति से संबंध रखते थे जो परिश्रमी तो है ही और मेहनत करके खाने में विश्वास रखती है।

सब कुछ कर सकता है
माणस नहीं हिम्मत हारे तो।
गर्भ गीता का लेख आदमी सही विचार है तो।
बाप कर्ज मारे तो भार संतान पर पड़े।[7]

धन्ना भगत सॉन्ग परिश्रम की महिमा का ही सॉन्ग है। इस सॉन्ग के माध्यम से लोक कवि यह महती संदेश भी देते हैं, कि परिश्रमी व्यक्ति का साथ स्वयं ईश्वर भी देते हैं। सत्यवान सावित्री सॉन्ग भी परिश्रम का ही महिमा-मंडित करता है। सत्यवान एक राजा का लड़का था परंतु उसे जंगल में जाकर लकड़हारा बनने के लिए मजबूर होना पड़ा।वह लकड़ी काटने के तमाम औजारों को निर्जीव नहीं मानता अपितु अपना साथी अथवा दोस्त मानकर उनका सम्मान करता है। उनसे बातें करता है उनसे आदर पूर्वक काम लेता है लोक कवि चंद्रलाल बादी का यह वार्तालाप विलक्षण है जिसमें सत्यवान औजारों से बात करता है।

आज्या री डोरी बंद कमर पै तेरे तै रहेगा प्यार।
आज्या कुल्हाड़ी तू भी हाथा महँ में
मित्र मेरा तेरे तै चलेगा रुजगार।।[8]

कर्मशील और परिश्रमी व्यक्ति विभिन्न अवसरों पर अपने औजारों से स्नेह करते देखे गए हैं। औजारों को अपनी आजीविका का सबसे बड़ा माध्यम मानते हैं। सत्यवान अपने वस्त्र आदि गिरवी रखकर औजार लाता है। उसने अल्पायु में ही अपने वृद्ध मां बाप के भरण-पोषण की जिम्मेदारी अपने कंधों पर उठा ली थी। लोक कवि इस जिम्मेवारी का वर्णन एक रागनी के माध्यम से करते हैं।

सत्यवान मां-बापा के दुख बांट्न आले होंगे।
राज करनि, बालक लकड़ी काटन आले होंगे॥

भारतीय धर्म तथा दर्शन के इतिहास में हरियाणा का अर्थ पूर्ण विशिष्ट तथा महत्वपूर्ण स्थान है। वैदिक ऋचाओं, श्रुति- स्मृतियों की रचना यही हुई है। गीता, महाभारत तथा रामायण की कथा भूमि भी हरियाणा ही है, तथा आस्तिक एवं नास्तिक दर्शनों का निर्माण भी यही हुआ है।लेकिन फिर भी आज तक हरियाणावासी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सनातन वैदिक धर्मावलंबी ही रहे। वैदिक धर्म के हाश और सिकुड़न के युग में यहां की बहादुर जनता ने किसी अन्य धर्म को नहीं अपनाया बल्कि शिवालयों तथा राम कृष्ण के जीवन मूल्यों के सहारे जीवन यापन किया। वैसे तो शैवमत का प्रचार समस्त भारत में हुआ है किंतु हरियाणा के प्रत्येक बड़े गांव व कस्बों में तो शिवालय अवश्य देखने को मिलेंगे शिवाय नमः, नमः शिवाय यहां जनजीवन के मृदुल कंठ से निकलने वाला मुख्य स्वर है। प्रातः काल जब ग्राम बालाएं शिवालयों में पूजा हेतु जाती हैं तो अनायास से गूंज उठता है यह गीत—

शिव शंकर तेरी आरती,
मैं बार-बार गुण गावन्ती,
ताता पाणी तेल उबलता,
हर मैं मसल न्हानती॥[9]

हरियाणा के लोकधर्म में देवी-देवताओं में सीता-राम, राधा-कृष्ण, हनुमान, दुर्गा, भवानी, काली, ब्रह्मा-विष्णु तथा गणेश आदि के प्रति उनकी आस्था दिखाई देती है। इन सभी माध्यमों से पूजा वास्तव में शक्ति की ही होती है। क्योंकि भूमि तो अंततोगत्वा क्षत्रियों की है। अतः आयुद्ध जीवी अपनी जन्म घुटी को कैसे भूल सकते हैं। इसके साथ-साथ हम बौद्धों और जैनियों के प्रभाव को भी अपने साहित्य में रखते हैं। किंतु बौद्ध मत का प्रभाव नाथ और सिद्ध के द्वारा या बहुत व्यापक में दिखाई दिया। नाथों के अनेक डेरे हैं लेकिन इनकी पूजा में आरती उतारने की प्रथा नहीं है। मथुरा, वृंदावन, काशी, हरिद्वार तथा कुरुक्षेत्र आदि तीर्थ स्थान पापमोचक एवं मोक्ष-प्राप्ति हेतु माने जाते हैं। इन सब में कुरुक्षेत्र का महत्व सर्वाधिक बताया गया।[10]

निष्कर्ष-

कवि की मंशा उसके संगों में कहीं ना कहीं अनायास रूप में प्रकट हो ही जाती है। यह कवि के कविकर्म के साथ शत-प्रतिशत सच्चाई से जुड़ी बातें है। कवि चंद्रलाल बादी के उपर्युक्त रागनी, संगों से यह स्पष्ट होता है कि वह परिश्रम को अधिक महत्व देते थे। उनके सांगों में कई बार ऐसी परिस्थितियां बनती हैं, जहां राजा राजकुमार या धनाढ्य को भी मजदूरी करके जीवनयापन करते हुए दिखाई है। इस काम को भी उसी तल्लीनता से करते हैं। स्पष्ट बात है कि कवि चंद्र लाल बादी परिश्रम की जीवन शैली के संवाहक और भारतीय लोकधर्मी कवि भी।[11]

संदर्भ

1 पंडित मांगेराम ग्रंथावली—डॉ पूर्ण चन्द शर्मा, हरियाणा ग्रंथ अकदामी, पंचकूला, पृ 98

2 सॉन्ग सम्राट चंद्र लाल बादी ग्रंथावली—डॉ राजेंद्र बडगूजर, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला, पृ 16

3 सॉन्ग सम्राट चंद्र लाल बादी ग्रंथावली—डॉ राजेंद्र बडगूजर, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला, पृ. 62

4 सॉन्ग सम्राट चंद्र लाल बादी ग्रंथावली- डॉ राजेंद्र बडगूजर, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला, पृ 63

5 सॉन्ग सम्राट चंद्र लाल बादी ग्रंथावली -डॉ राजेंद्र बडगूजर, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला, पृ 66

6 सॉन्ग सम्राट चंद्र लाल बादी ग्रंथावली- डॉ राजेंद्र बडगूजर, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला, पृ 96

7 सॉन्ग सम्राट चंद्र लाल बादी ग्रंथावली -डॉ राजेंद्र बडगूजर, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला, पृ 106

8 वही - पृ 107

9 हरियाणवी लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन- डॉ गुणपाल, पृ 5

10 हरियाणा के सांगों में सौंदर्य निर्गुण- विजेंदर सिंह, हरियाणा साहित्य अकादमी चंडीगढ़ 1988

11 वही- पृ 110

राग बहार में निर्मित रचनाओं का साहित्यिक अवलोकन

श्यामा कुमारी
असिस्टेंट प्रोफेसर
संगीत एवं मंच कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

सार संक्षेप

संगीत और साहित्य का संबंध उतना ही उपयोगी है और आनंददायी है जितना धरातल के लिये सुननावली और गगन तल के लिये आलोक-माला। काव्य यदि दीपक है तो संगीत उसकी प्रज्जवलित ज्योति। काव्य यदि देह है तो संगीत उस देह में चेतना का संचार करने वाली आत्मा अर्थात् संगीत और काव्य एक ही प्रवाह से बहने वाले दो स्त्रोत हैं जो अलग-अलग बहते है, किन्तु उनका मूल रूप एक ही है। रागों की बंदिशों में प्रयुक्त काव्य राग के भाव को स्पष्ट करने के लिये समर्थय रखता है। विभिन्न साहित्यिक अलंकरणों द्वारा इसका राग भाव को प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार हम इस शोध प्रपत्र में राग बहार की विभिन्न साहित्यिक रचनाओं तथा उनकी विशेषताओं की चर्चा कर रहे हैं।

मुख्य शब्द

बहार, साहित्य, रचना, काव्य, छन्द

साहित्य और संगीत का संबंध सुदीर्घ और अविछिन्न है। साहित्य की परिभाषा अत्यंत व्यापक है। शब्द और अर्थ का मनोहर विन्यास ही 'साहित्य' है। शब्द और अर्थ इस विन्यास की स्थिति में परस्पर संतुलित रहते हैं। **"साहित्यतुल्यकक्षत्वेनान्युनानतिरिक्तित्वम्"**[1]

साहित्य में काव्य का संबंध तो और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। 'काव्य' के अन्तर्गत कृतिकार अपने मनोगत भावों तथा जीवन की अनुभूतियों को शब्द और अर्थ के माध्यम से व्यक्त करता है। संगीत एक कला है, जिसमें संगीतज्ञ अपने मनोगत भावों तथा रागात्मक अनुभूतियों को शब्द और स्वर के माध्यम से व्यक्त करता है। काव्य का साधन शब्द और अर्थ है और संगीत के स्वर, लय और ताल। संगीत काव्य को अधिक प्रभावशाली बनाने में सहायक होता है और काव्य संगीत के रूप को व्यक्त करने में। **'आचार्य भरत'** के अनुसार-

"वाङ्मयानीह शास्त्रादि वाङ्गनिष्ठानि तथैव च।
तस्माद्वाच परं नास्ति वाग्धि सर्वस्य कारणम्।।"[2]

'आचार्य मतंग' के अनुसार- **"नादादुत्पद्यते बिन्दुनादात् सर्व च वाङ्मयम्"**[3]—अर्थात् नाद से बिन्दु उत्पन्न है। नाद से ही समस्त वाङ्मय सम्भव होता है। संगीत और साहित्य दोनों का मूल नाद में ही है। साहित्य वर्णनात्मक तथा संगीत स्वरात्मक होता है परन्तु नाद दोनों में प्राणस्वरूप है। शब्दोच्चारण अथवा स्वरोच्चारण के लिये नाद का होना अपरिहार्य है। स्वरोच्चारण के लिये शब्द तथा शब्दोच्चारण के बिना स्वरोच्चारण संभव नहीं है। इस प्रकार दोनों का शाश्वत् संबंध सिद्ध होता है। यही शब्द और

स्वर विकसित होकर साहित्य शास्त्र और संगीत शास्त्र कहलाये।

संगीत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर दृष्टि डालें तो हमें ज्ञात होता है कि सामगान प्राचीनतम गायन था जिसमें 'सा' अर्थात् ऋचा तथा 'अम्' अर्थात् स्वर का समवेत गायन होता था। इस प्रकार सामगान के अन्तर्गत शब्द तथा स्वर का प्रथम ज्ञात समन्वय प्राप्त होता है। **'श्री शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे'** के अनुसार- "भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि विद्वान साहित्यकार संगीत के प्रकांड विद्वान रहे हैं और उनका यह विश्वास रहा है कि आदिम संगीतज्ञ 'नटराज' के ताल-लय समन्वित ताण्डव से साहित्य व संगीत के तत्वों का एक साथ ही सूत्रपात हुआ। आज भी यह परम्परा किसी न किसी रूप में विद्यमान है। संगीत का आदिम राग भैरव भगवान शिव के अघोर मुख से उत्पन्न हुआ है और साहित्य की आदिम वर्णमाला महादेव के पदचाप से उद्भूत हुई।"[4] **'एडवर एलेन पा'** का कथन है- 'Music when combined with a pleasurable idea is poetry, music without the idea, is simply music, the idea without the music is prose form its very definiteness.[5]

पाश्चात्य विद्वान **'कारलाईल'** के अनुसार- "संगीतमय विचारों को ही काव्य कहा जाता है। उनके शब्दों में कविता मनोवेगमय और संगीतमय भाषा में मानव अन्तःकरण की मूर्त और कलात्मक व्यंजना करता है।"[6] **'पं॰ विष्णु दिगम्बर पलुस्कर'** के मतानुसार- "काव्य और संगीत में उतना ही अन्तर है जितना सगुण और निगुर्ण में। काव्य सगुण और संगीत निर्गुण। काव्य केवल चेतन पर प्रभाव डाल सकता है। भाषा भेद का इसमें भी प्रतिबंध है। इसके विपरीत संगीत कला का प्रभाव सम्पूर्ण चेतन प्राणियों के साथ जड़ पदार्थ पर भी पड़ता है।"[7]

शास्त्रीय संगीत की परम्परा में सर्वप्रथम पदयुक्त गीत के रूप में गीतकों का उल्लेख किया जा सकता है जो सभी चतुः मात्रिक गुणों से युक्त हैं। स्वर, विरूद्ध, पद, तेनक, पाट, ताल प्रबन्ध के यह छः अंग कहे गये हैं। इसमें विरूद्ध, पद, तेनक 'पद' से ही संबंधित हैं, ताल तथा पाट दोनों सह संबंधित हैं। स्वर तो आधारभूत अंग है ही। गुणनाम अथवा गुणसूचक शब्द विरूद्ध है, मंगलार्थक शब्द तेनक है तथा इनसे भिन्न अन्य शब्द पद है। इस प्रकार इन तीनों अंगों का मुख्य तत्व शब्द अर्थात् 'पद' ही सिद्ध होता है।

ऋतु कालीन राग 'बहार' काफी मेल जन्य एक आधुनिक राग है। राग बहार नवीनता के साथ मधुरता का गुण भी स्वयं में संजोये हुये है। इसी मधुरता के गुण के कारण राग बहार विभिन्न रागों से भली-भाँति मिश्रित होकर बहार के नवीन प्रकारों का सृजन करता है। यह ऋतुकालीन राग माना जाता है परन्तु इस राग के साहित्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत रूप ले चुका है। यद्यपि यह एक नवीन राग है तथापि इसमें विभिन्न साहित्यिक विषयों से संबंधित रचनायें प्राप्त होती हैं। जैसे-विभिन्न रसों से संबंधित, देशभक्ति, विभिन्न भाषायें, समय पर आधारित आदि। ख़्याल गायकों की विशेष रूचि इस राग के प्रति देखी जाती है। जिसका कारण है इसका-'स्वरूप तथा मधुरता'। राग बहार में म, सा स्वर वादी सम्वादी, शाडव जाति, कोमल गंधार तथा दोनों निषाद का प्रयोग इसे और अधिक कर्णप्रिय, मधुर व रंजक बनाता है।

राग बहार के साहित्य की ओर यदि विचार किया जाये तो राग बहार में साहित्य के सभी पहलुओं पर दृष्टि डाली गयी है जो कि इस राग की सम्पूर्णता को प्रकट करता है।

राग बहार में प्रस्तुत **'ऋतु पर आधारित रचना'** जो कि 'द्रुत एकताल' में निबद्ध है-

स्थाई- *बन बन बेलरी फूली अमरइया,*
फूली जूही फूली चम्पा,
बेला गुलाब फूली,
नवल हरित वसन धार, आयी बहारवा...

अन्तरा- *भँवर करत गुँज गान,*
रसिकन मन हरित भान,
कूक कूक कोयलिया, मोरे जियरवा[8]

'होरी संबंधी रचना' - राग-बहार (विलम्बित तीनताल) जो **'आचार्य बृहस्पति'** द्वारा निर्मित है-

स्थाई- *राधे तुम नीकी फंसी वृज गैल,*
उतै नँद नँद भरै पिचकारी,
हंसे संग ग्वाल बाल सब आय।
अन्तरा- *रंग अबीर की धूम मची री,*
होरी के रंग सबै मतवारे
'अनंगरंग' कौन बचै तहँ जाय[9]

'देशभक्ति संबंधी रचना' - राग बहार (ध्रुवताल खंड जाति)

स्थाई- *जय हिंद जय हिंद जय हे,*
तुम्हरो नाम उज्वल भयो है,
जय कीरत अखिल संसार में आदर्श,
देशन को...
अन्तरा- *अहिंसा सत्य शांति ध्वज*
तिरंगी गगन में बिराजे
दीन दुर्बल दुखी जन को है
भरोसो एक जो अखिल संसार में
आदर्श देशन को[10]

'विभिन्न भाषा संबंधी रचनायें' - 'बृज भाषा' - राग बहार त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई- *करत केली कुंजन में कन्हैया,*
ग्वाल बाल अत हरख भरे सब
हांसत गावत नाचत तारी दै दै
अन्तरा- *बांसुरी की धुन सुन उठ धाये धाये,*
नर नारी जन ब्रिज के वासी,
देखत सुनत बलैया लै लै।[11]

'पंजाबी भाषा' की रचना - **राग भैरव बहार,** एकताल, जिसकी निर्मिति **'सदारंग'** के द्वारा की गई है-

स्थाई- *ए मांडे महमद नू आई*
बहार रबी नवी
अन्तरा- *आशिक मौला माशुक अंबिया*
'सदारंग' राख ले नबी नबी।[12]

'फारसी भाषा' की रचना - **राग सूहा बहार**, आड़ा चौताल जिसकी निर्मिति **'अमीर खुसरो'** के द्वारा की गई है-

स्थाई- *अश्क रेज़ आमदाअबरे बहार*
अन्तरा- *साक़िया गुल बरेजोह बियार*[13]

'मराठी भाषा' की रचना - **राग बहार** - तीनताल

स्थाई- *एकांती सगुन भजनी आलस करूं नको,*
नको बुडसी का संसारी भारी ग्रह सुत,
घन हित न करूनी स्त्री तथा समजा
अन्तरा- *मी मी मे मे जनन मरण पण कठिण,*
असुनि मनि का हा भ्रमरे समज उमज
सच्चिदानंदघन श्री रामे गुणधाम राम
निष्काम भज शिवराम।।[14]

'विभिन्न रसों' पर आधारित रचनायें-

'भक्ति रस' संबंधित रचना - **राग जौनपुरी बहार** - त्रिताल, जो कि **'पं॰ रामाश्रय झा 'रामरंग''** द्वारा निर्मित है-

स्थाई- *माला फेरत जुग बीते तोहे*
अजहु न तृष्णा छूटी साधो
अन्तरा- *करका मन का डार दे 'रामरंग'*
मनका मनका फेर रे साधो[15]

साहित्य के संदर्भ में भक्ति के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख मिलता है जैसे-सगुण भक्ति, निर्गुण भक्ति, राम भक्ति, कृष्ण भक्ति। इसी प्रकार कृष्ण भक्ति के अन्तर्गत भगवान कृष्ण से संबंधित लीलाओं पर आधारित ख्याल रचनाओं की प्राप्ति होती है जो कि इस प्रकार हैं-

सगुण भक्ति- सगुण भक्ति के अन्तर्गत ईश्वर के सगुण रूप की आराधना की जाती है।

'राग बहार', त्रिताल, में निबद्ध एक रचना -

स्थाई- *भज रघुवर श्याम जुगल चरना*
अन्तरा- *इतहि अजोध्या निर्मल सरजू,*
उत गोकुल सीतल जमुना[16]

निर्गुण भक्ति-निर्गुण भक्ति के अन्तर्गत ईश्वर के निराकार स्वरूप की आराधना भक्त द्वारा की जाती है। **'राग बहार',** त्रिताल में निबद्ध एक रचना-

स्थाई- *महूँमद यार बीया नबी जग में,*
रब रपठायो है करन दीन मोसलाम
अन्तरा- *जिन पढ़ो कलमा वे मुसलमान,*
जाको जानत होवे ध्यान हो[17]

'कृष्ण भक्ति'-भगवान कृष्ण से संबंधित रचनायें जिनमें उनके विभिन्न नाम रूपों का आधार लेकर अपनी भावना साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत की जाती है। कृष्ण भक्ति के अन्तर्गत उनकी बाल

लीलाओं, राधा-कृष्ण की लीलायें, कृष्ण-कंस संवाद, गोकुल-ग्वाल संवाद आदि ये सभी विषय सम्मिलित होते हैं। राग 'कान्हड़ा बहार' में झपताल में निबद्ध निम्न रचना में भगवान कृष्ण से संबंधित नामों, उनकी लीला आदि का बहुत ही संक्षिप्त परन्तु सुन्दर वर्णन किया गया है-

स्थाई- *राधिका रमण गिरि रण गोपीनाथ,*
मदनमोहन कृष्ण नटवर बिहारी
अन्तरा- *रासलीला रसिक ब्रज युवति प्राणपति,*
सकल दुखहरण गो गुणनचारी[18]

'श्रृंगार रस' पर आधारित रचना - राग **'हिंडोल बहार'** में द्रुत तीनताल में निबद्ध है। जिसमें श्रृंगारिक भावों का समावेश किया गया है-

स्थाई- *पिया पिया करे जिया मोरा,*
ना जानूँ कब घर आए।
अन्तरा- *उनके दरस बिन अँखियाँ तरस रहीं,*
ना जानू कब घर आए[19]

'वात्सल्य रस' पर आधारित रचना जिसे **'कै॰ श्री रामकृष्ण वझे बुवा'** द्वारा राग **'परज बहार'** में एकताल में निबद्ध कर इस रचना को सजाया गया है-

स्थाई- *पालना झूले कान्ह सजकर सब,*
आई हैं, आई हैं ब्रिज ललना।
अन्तरा- *हाँसत-हाँसत फूल झरत कोई,*
देखत मुसकावत कोई तो हिले,
कोई तो मिले।[20]

इस रचना में वात्सल्य रस के भावों को साहित्यिक काव्य के अन्तर्गत पिरोया गया है। भगवान कृष्ण को पालने में झूलाने के लिये बृज की गोपियां सज धज कर आयी हैं। **'दिन के प्रहरों पर आधारित'** रचना-**'राग बहार',** तीन-ताल में निबद्ध रचना को रात्रि के समय के आधार पर बनाया गया है। इसमें शरद मास की रात्रि का वर्णन किया गया है जिसमें नायिका विरह में नायक को याद कर अपने मन की पीड़ा को व्यक्त कर रही है-

स्थाई- *कैसी निकसी चांदनी,*
शरद रात मदमात विकल भयी,
पियु पियु टेरत भामिनी
अन्तरा- *छिन आंगन छिन जात भवन में,*
छिन बैठत छिन बारि हूँ दौरत,
कल ना पड़त तड़पत बिरहा कुल,
चमकत ज्यों द्युति दामिनी।[21]

'संगीत संबंधी साहित्य' पर आधारित रचना-जिसकी निर्मिति **'सुमति मुटाटकर'** द्वारा राग **'हिंडोल बहार'** में 'धमार ताल' में निबद्ध की गई है-

स्थाई- *बाजत मृदंग बीन करताल,*
और मुरली धुन डफ चंग
अन्तरा- *नवल बसंत नव नवल लाडली,*
सखियन संग करत केली नवल रंग
तरंग[22]

इस रचना में सांगीतिक वाद्यों के नामों जैसे-मृदंग, बीन, करताल, मुरली, डफ तथा चंग आदि के नामों को सम्मिलित करके धमार ताल में निबद्ध किया गया है।

'विभिन्न साहित्यिक अलंकारों पर आधारित रचनायें'-

'राग बहार' में प्रस्तुत काव्य तथा साहित्य बहुत ही सुन्दर साहित्यिक अलंकरणों का उदाहरण प्रस्तुत करता है-**'सदारंग'** द्वारा निर्मित इस रचना को एकताल में निबद्ध किया गया है जिसमें अनुप्रास तथा पुनरूक्ति प्रकाश अलंकारों का बहुत ही सुन्दर प्रयोग दर्शाया गया है-

स्थाई- *कूक कूक कोयलिया बोलन लागीरे,*
कंथ ऋतु आइलो वा
अन्तरा- *सब बन बन कई फूली रंगीली*
तैसी फूली बहारिया, 'सदारंग'
ते ऋतु आये पात झर ये बहार[23]

'रूपक अलंकार' - 'राग केदार बहार', एकताल में निबद्ध एक रचना-

स्थाई- *मुकुट माथे धरे खोर चंदन करे,*
माल मुक्ता गले कृष्ण हेरे
अन्तरा- *पीत पट कटि कसे कर्ण कुंडल लसे,*
निशि दिना उस बसे प्राण मेरे[24]

'उपमा अलंकार' - 'राग बहार', चौताल में निबद्ध एक रचना-

स्थाई- *बरसत घनश्याम मोर पहुंच जटा तिलक,*
बीच भ्रममरोर यदुवर तब देखी जात
सुखद नेत्र कमल युगुल चहूँ ओर
अन्तरा- *बंसी धुन गरजत घन पीतांबर पवन*
फेर, गोपी ग्वाल साथ जल छतरात[25]

अतः राग बहार ऋतुकालीन राग होते हुये भी विभिन्न साहित्यिक विषयों पर आधारित रचनाओं को स्वयं में समेटे हुये सम्पूर्ण राग की श्रेणी में आ चुका है। किसी भी राग का साहित्य उस राग के प्रस्तुतिकरण, भावाभिव्यक्ति का माध्यम होता है। संगीत और काव्य भिन्न-भिन्न रूप में आह्लादकारी हैं परन्तु इन दोनों का मणिकंचन संयोग विलक्षण तथा अनिर्वचनीय आनंदानुभूति प्रदान करता है। उत्तम गीत काव्य तथा संगीत, दोनों ही दृष्टिकोणों से उत्तम होता है। श्रेष्ठ काव्य उचित स्वर संयोजन के अभाव में तथा उत्कृष्ट स्वर-रचना तदनुकूल समस्तरीय काव्य के अभाव में सफल गीत नहीं बन पाते। 'संगीत रत्नाकर' में 'वाग्गेयकार' में धातु रचना एवं मातु रचना, दोनों के ही श्रेष्ठ गुणों की आवश्यकता के समन्वय से उद्भूत रसात्मकता उचित ही नही प्रयुक्त अत्यंत आवश्यक भी है।

संदर्भ सूची

1. हिन्दी वक्रोक्तिजीवित्, प्रथमोन्मेष, करिका 17 पृ.-60
2. नाट्यशास्त्र, अध्याय-15, पृ.-201
3. बृहद्देशी, प्रथम अध्याय, श्लोक-19
4. भारतीय संगीत का इतिहास, परांजपे, चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2010
5. काव्य संगीत अंक, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ.प्र.), 1961, पृ.-7
6. काव्य संगीत अंक, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ.प्र.), 1961, पृ.-39
7. संगीत कला विहार, फरवरी-1955, पृ.-24
8. राग-विज्ञान, पं॰ विनायक राव पटवर्धन, भाग-1, डॉ. मधुसूदन पटवर्धन, पूणे, ग्यारहवां संस्करण, 2002, पृ.-75
9. राग रहस्य, आचार्य वृहस्पति, भाग-1, बृहस्पति पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1986, पृ. -146
10. अभिनव गीत मंजरी, कृष्ण नारायण रातंजनकर, भाग-1, आचार्य एस.एन. रातंजनकर फाउंडेशन, दादर, बम्बई, 1990, पृ-191
11. अभिनव गीत मंजरी, कृष्ण नारायण रातंजनकर, भाग-2, आचार्य एस.एन. रातंजनकर फाउंडेशन, दादर, बम्बई, 1990, पृ-186
12. राग-विज्ञान, पं॰ विनायक राव पटवर्धन, भाग-1, डॉ. मधुसूदन पटवर्धन, पूणे, ग्यारहवां संस्करण, 2002, पृ.-120
13. दिल्ली घराने का संगीत में योगदान, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2001, पृ-235
14. राग विज्ञान, पं॰ विनायक राव पटवर्धन, भाग-1, डॉ. मधुसूदन पटवर्धन, पूणे, ग्यारहवां संस्करण, 2002, पृ.-79
15. अभिनव गीतांजली, रामाश्रय झा, भाग-5, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007, पृ.-312
16. क्रमिक पुस्तक मालिका, पं॰ विष्णु नारायण भातखंडे, भाग-4, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ.प्र.), पृ.-606
17. वही, पृ.-626
18. राग-विज्ञान, पं॰ विनायक राव पटवर्धन, भाग-7, डॉ. मधुसूदन पटवर्धन, पूणे, ग्यारहवां संस्करण, तृतीय संस्करण-1990, पृ.-96
19. रागरचनांजलि, अश्विनी भिड़े देशपांडे, राजहंस प्रकाशन, 2004, पृ.-38
20. संगीत पूर्वी अंक, कै. श्री रामकृष्ण वझे बुआ, जनवरी-1957, पृ.-143
21. राग-विज्ञान, पं॰ विनायक राव पटवर्धन, भाग-7, डॉ. मधुसूदन पटवर्धन, पूणे, ग्यारहवां संस्करण, तृतीय संस्करण-1990, पृ.-97
22. गीत निर्झरी, सुमति मुटाटकर, कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2002, पृ.-96
23. राग-विज्ञान, पं॰ विनायक राव पटवर्धन, भाग-1, डॉ. मधुसूदन पटवर्धन, पूणे, ग्यारहवां संस्करण, 2002, पृ.-65
24. राग-विज्ञान, पं॰ विनायक राव पटवर्धन, भाग-7, डॉ. मधुसूदन पटवर्धन, पूणे, ग्यारहवां संस्करण, तृतीय संस्करण-1990, पृ.-103
25. राग-विज्ञान, पं॰ विनायक राव पटवर्धन, भाग-1, डॉ. मधुसूदन पटवर्धन, पूणे, ग्यारहवां संस्करण, 2002, पृ.-67

अमृतलाल मदान व धर्मपाल साहिल के उपन्यासों म सांस्कृतिक मूल्य एक विवेचन

सोनिया
शोधार्थिनी, हिंदी विभाग,
लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, जालन्धर पंजाब

डॉ. रीता सिंह
हिंदी विभाग
लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, जालन्धर पंजाब

शोध सारांश

किसी भी राष्ट्र की संस्कृति वहाँ के लोगों के जीवन मूल्यों के अनुकूल होती है। लोगों की जीवन शैली जिसम रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा तीज, त्यौहार आदि वहाँ की संस्कृति को दर्शाते हैं।लोगों के उदात्त जीवन मूल्यों का प्रभाव संस्कृति पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। एक देश विशेष के लोगों के जीवन मूल्य जितने उदात्त होंगे उतनी ही श्रेष्ठ उनकी संस्कृति भी होगी। पुरातन काल से जितनी सामाजिक लोक परंपराएं, मान्यताएं, प्रथाएं व व्यवहार चले आ रहे हैं जिन से मनुष्य का मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक स्तर पर विकास हुआ वही संस्कृति कहलाई। जैसे-जैसे मानव लगातार विकास की ओर उन्मुख होता गया उसकी लोक परंपराएं, मान्यताएं, प्रथाएं, व्यवहार और जीवनशैली परिवर्तित होती गई उसी से उसकी विचारधारा तथा बाहरी संस्कृति के प्रभाव के कारण संस्कृति को विकसित होने म हजारों वर्ष लग जाते हैं।

बीजशब्द

संस्कृति, सामाजिक, भौतिकतावाद, सांस्कृतिक मूल्य, पर्यावरण, पाश्चात्य, वैवाहिक।

संस्कृति का शाब्दिक अर्थः

'संस्कृति' शब्द संस्कृत की 'कृ' धातु के साथ सम् उपसर्ग जोड़कर सूट् का आगमन व क्तिन् प्रत्यय लगने से बना है। जिसका अर्थ है समयक् कृति, दूसरे शब्दों म संस्कृति का अर्थ है संस्करण, परिमार्जन या शोधन।कल्टीवेशन भी कल्ट से ही बना है जिसका अर्थ होता है - भूमि को जोतकर सुधारना जिससे उपज की मात्रा गुणावस्था म वृद्धि हो। एग्रीकल्चर म सुधार और विकास की सही भावना निहित है। बैजनाथ सिंहल के अनुसार "इस प्रकार 'संस्कृति' शब्द समाज सुधार को व्यंजित करता है। अपनी दैनिक आवश्यकताओं से बाहर मनुष्य जिस रूप म वैचारिक स्तर पर जीवन को संस्कृत करता है उसका वह रूप संस्कृति युक्त होता है।"[1] संस्कृति के विषय म भारतीय विद्वानों का मत :- धीरद्र वर्मा का मानना है "देश की संस्कृति से हम मानव जीवन तथा व्यक्तित्व के उन रूपों को समझ सकते हैं, जिन्ह देश विशेष के लिए महत्वपूर्ण अर्थात मूल्यों का अधिष्ठान समझा जाता है।"[2]

संतोष कुमार चतुर्वेदी कहते हैं "संस्कृति वह सामाजिक विरासत है जिससे कला-कौशल, विचार व्यवहार, आदत, नैतिक मूल्य आदि समावेशित हो जाते हैं।"[3]

रामधारी सिंह दिनकर के मतानुसार "संस्कृति एक ऐसा गुण है जो हमारे जीवन म छाया हुआ है। यह एक आत्मिक गुण है, जो मनुष्य स्वभाव म उसी प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार फूलों म सुगंध और दूध म मक्खन इसका निर्माण एक या दो दिन म नहीं बल्कि युग-युगांतर म होता है। जिस प्रकार संस्कृति जन्य गुणों का निर्माण कठिन है। उसी प्रकार इन का नष्ट होना भी।"[4]

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार -

एफ.जे. ब्राउन के अनुसार :-"संस्कृति मानव के संपूर्ण व्यवहार का ढांचा है जो अंशतः भौतिक पर्यावरण से प्रभावित होता है। यह पर्यावरण प्राकृतिक एवं मानव निर्मित दोनों प्रकार का हो सकता है।किंतु प्रमुख रूप से यह ढांचा सुनिश्चित विचारधाराओं, प्रवृत्तियों, मूल्यों तथा आदतों द्व ारा प्रभावित होता है जिसका विकास समूह द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जा सकता है।"[5]

भारतीय व पाश्चात्य दृष्टिकोण के मूल्यांकन के उपरांत हम यह स्पष्ट होता है कि संस्कृति मानव जन्म के साथ प्राप्त होने वाली वह धरोहर है जो जीवन भर मानव मात्र का मार्गदर्शन करती है मानव द्वारा अपने समाज से प्राप्त संस्कार जो समाज म बेहतर जीवन यापन और समाज के साथ सामंजस्य बनाने म प्रभावी होते हैं वह संस्कृति के आधार हैं। रहन-सहन, खान-पान सम्बन्धी संस्कृतिक मूल्यः-शब्दकोश के अनुसार अर्थ :- रहन शब्द का अर्थ है,"रहने की क्रिया या भाव, आचार, व्यवहार" और रहन-सहन का अर्थ है "जीवन बिताने और काम करने का ढंग।"[6]

मेले व त्यौहार विषयक संस्कृतिक मूल्य :-त्योहार और मेले भारतीय संस्कृति के मुख्य तत्व हैं। वर्ष भर कोई न कोई पर्व या मेला कहीं न कहीं आयोजित हो रहा होता है। इन्ह बड़े उत्साह से मनाया जाता है। भौतिकतावाद और वैश्वीकरण की आपाधापी भरे युग म बड़ी संख्या म लोगों का इन त्योहारों म शामिल होना आश्चर्य पैदा करने वाला है। राष्ट्रीय व स्थानीय स्तर पर मनाए जाने वाले इन पर्वों की प्रतीक्षा की जाती है और पूरी तैयारी के साथ इन्ह मनाया जाता है। संसार के अन्य देशों म भी ऐसे आयोजन होते रहते हैं, किंतु भारतीय आयोजनों का अंतर समझने से भारतीय संस्कृति की विशिष्टता उभर कर सामने आती है। यह विशिष्टता देश की एकता और भाईचारे की भावना को दृढ आधार प्रदान करने वाली और मूल्यों को संरक्षित करने वाली है। प्रमुख बात है कि मेलों, त्योहारों को व्यक्तिगत रूप से नहीं पारिवारिक स्तर पर मनाया जाता है। मुख्य त्योहारों पर दूर-दराज रहने वाले परिवार के सदस्य भी घर आने को उत्सुक रहते हैं ताकि एक साथ पर्व का आनंद ले सक। यह भावना जिस आनंद की जननी है, वह पाश्चात्य देशों की आनंद की अवधारणा से मूलतः भिन्न है। त्योहारों म पारिवारिक सहभागिता जहां इन्ह मर्यादा और गरिमा प्रदान करती है, वहीं सहयोग की भावना को भी बढ़ाती है? दशहरा, दीपावली, होली और ईद आदि को मनाने के लिये मोहल्ला, नगर स्तर पर समितियां बनाकर सहयोग और आनंद को विस्तार दे दिया जाता है। आलोच्य उपन्यासों म भी इस प्रकार के मेले और त्यौहार एक साझी संस्कृति के परिचायक हैं। धर्मपाल साहिल के उपन्यास मचान म भी हिमाचल म आयोजित किया जाने वाले एक छिंज मेले का अपना संस्कृतिक महत्त्व है। "हिमाचल की सीमा के निकट होने के कारण स्थिति मेले म पंजाब के साथ-साथ बहुत बड़ी संख्या म हिमाचल वासी भी बड़े उत्साह से पहुंचते निरंतर चार दिन तक चलने वाले इस मेले म भाग लेने के लिए भी दूर-दूर से नामी पहलवान अपनी किस्मत आजमाने आते वास्तव म ऐसा मेला पंजाब हिमाचल विभाजन से पहले सदियों से आयोजित होता आ रहा था बेशक प्रशासनिक तौर पर दो राज्यों के बीच बंटवारे की लकीर खींच दी गई थी लेकिन इस लकीर के आर पार बसे लोगों के रीति रिवाज परंपराएं मान्यताएं त्योहार मेले से देवी देवता थे अभी पंजाब की तरफ से गांव के लोग अपने बेटे बेटियों के रिश्ते हिमाचल की ओर कर देते थे।"[10]

ये मेले और त्यौहार मात्र मनोरंजन का साधन ही नही होते अपितु समाज व संस्कृति को जोड़ने का कार्य भी करते हैं। अमृतलाल मदान के उपन्यास समझौता एक्सप्रेस म भारत पाक विभाजन के समय अपनी पत्नी बीबी मोहमद से बिछुड़ा शिकोह मालिक पंजाब म आयोजित सभ्याचारक मेले म 55 वर्ष बाद अपनी पत्नी को खोज निकलता है। इस घटना से स्पष्ट है कि मेले जोड़ने का कार्य करते हैं न कि तोड़ने का। प्रोफेसर नंदा कहते हैं। "जनाब शिकोह मलिक और बीबी मोहमद पाकिस्तान म हिंदुस्तान के प्रतीक बन गए हैं, इन्ह मिलाना दो मुल्कों, दो संस्कृतियों का फिर से मिल जाना है। दोस्तों, सियासत तोड़ती है। संस्कृति जोड़ती है। हमारे सभ्याचारक मेलों का उद्देश्य भी यही है, जो आज सार्थक हो गया। इसलिए हमने आज के इस कार्यक्रम का नाम भी समझौता एक्सप्रेस समाचार मेला रखा है।"[11]

वैवाहिक संस्कृतिक मूल्य :- भारतीय समाज और संस्कृति म विवाह को पवित्र बंधन माना जाता है। विवाह को दांपत्य जीवन का आधार माना गया है। विवाहित पति-पत्नी द्वारा एक दूसरे के प्रति एक निष्ठा की अपेक्षा की जाती है। पति-पत्नी के बीच म आत्मीयता, त्याग, लगाव, समर्पण की भावना, परस्पर सम्मान, आदर, कर्तव्य परायणता संतानोत्पत्ति, पारिवारिक संबंधों का सम्मान आदि विवाह से संबंधित मूल्य माने जाते हैं। भारतीय संस्कृति के अंतर्गत माता-पिता की पसंद और अनुमति से लड़का लड़की की शादी की जाती थी वर्तमान समय म विवाह के अनेक रूप दिखाई देते हैं। ऐसे आयोजित विवाह प्रेम-विवाह, अंतरजातीय विवाह, बाल विवाह और विवाह आदि भारत म विवाह पद्धति के भी अनेक रूप हैं जैसे अग्नि परिक्रमा, वचन संकल्प, देव साक्षी, कोर्ट मैरिज, लिव इन रिलेशनशिप आदि। प्राचीन भारत म विवाह परंपरा धर्म का भाग्य से जुड़ा हुआ था परन्तु अब उस दृष्टिकोण म बदलाव आने लगे हैं।

डॉक्टर हेमद्र पानेरी के अनुसार "वैवाहिक जीवन की रूढिगत मान्यताएं बदल चुकी हैं। विवाह के परंपरागत बंधन शिथिल हो गए हैं। अब विवाह को आत्माओं का पुनीत मिलन या जन्म जन्मांतर का संबंध स्वीकार ना किया जाकर मात्र समझौता या मैत्री संबंध माना जाने लगा है। वैवाहिक जीवन म तलाक की स्वीकृति से परंपरागत गृहस्थय जीवन संबंधी मूल्यों को आघात लगा है। प्रेम-विवाह, अंतर जाति-विवाह, विधवा-विवाह आदि को स्वीकृति मिलने लगी है। आज जब बिना विवाह किए ही वैवाहिक जीवन की स्वछन्द्ताओं का उपभोग किया जा सकता है। तो फिर विवाह की आवश्यकता ही क्या है? यह विचारणा तीव्र गति से बढ़ती जा रही है।"[12]

अपने-अपने अंधेरे उपन्यास म राजेश का मित्र प्रदीप भी विवाहित होते हुए भी अपनी सहयोगिनी मोहिनी से अनैतिक संबंध स्थापित रखता है। प्रदीप राजेश को बताता है मोहिनी के पति जयप्रकाश को मोहिनी और उसके अनैतिक संबंधों के विषय म पता चल गया है उसने तो "गुस्से म आग बबूला होकर मोहिनी की खूब पिटाई की उस जालिम ने और उसे धमकी दी कि अगर मैं फिर कभी उसके दरवाजे पर नजर आया तो वह मेरी टांगे तोड़ कर रख देगा और स्कूल की प्रबंधक समिति को भी शिकायत कर देगा। अब तुम ही बताओ अपनी टांगे तुड़वा लूं या मोहिनी से अपना संबंध तोड़ दूं। कुछ समझ नहीं आता क्या करूं तुम ही कोई रास्ता सुनाओ सुझावो मित्र।"[13] इस उपन्यास म दांपत्य जीवन सम्बन्धित मूल्यों के संक्रमण तथा विघटन को दर्शाया गया है। धर्मपाल साहिल के उपन्यास 'खिलने से पहले' म पति-पत्नी के अनेक जोड़े हैं जो पारिवारिक मूल्य संक्रमण एवं विघटन को दर्शाते हैं। वर्तमान म शिक्षा एवं पाश्चात्य प्रभाव के कारण भारतीय नारी के बर्ताव म परिवर्तन आए हैं। जिस से मूल्यों म संक्रमण हुआ। इस उपन्यास म 'मैडम कुमार, और मैडम हर्षिता लिव इन रिलेशन और होमो रिश्तो को अपनाती हैं जो पाश्चात्य संस्कृति से उन्होंने अपनाया है। कुमार मैडम कहती है—

"ऑल राइट मैडम अब अपने ट्रेडिशनल मैरिज सिस्टम को ही लो बोर हो गए हैं लोग इस सिस्टम

से। आप जो मजी कह- बट आई बिलीव इन 'लिव इन रिलेशनशिप'। मुझे तो यह ट्रड बहुत जचा है। बिन फेरे हम तेरे बनकर जब तक जी चाहे रहो, जब मन भर जाए, उकता गए... ओके बाय बाय टाटा-टाटा..."[14]

सुमित्रा मैडम के इस बारे म और पूछने पर वह कहती है "इसम मैडम एकदम बराबरी का दर्जा है औरत-मर्द को। एक दूसरे की रिस्पेक्ट है। एक दूसरे को खोने का डर भी है, इसलिए कोई एक दूसरे को नाराज करने का रिस्क नहीं लेता। अपनी कमाई पर अपना हक कोई दहेज नहीं, कोई लड़की लड़के की समस्या नहीं। अगर बाई चांस अलग होना भी पड़ जाए तो कोई कोर्ट कचहरी का झंझट नहीं। एक दूसरे को आराम से कहो-भई, जितनी निभ गई ठीक, बाकी मेरा रास्ता इधर तुम्हारा उधर। तुम फ्री, आजाद जियो-आजाद मरो।"[15]

मैडम कुमार अपने और हर्षिता मैडम के होमो रिश्ते को स्वीकार करते हुए कहती हैं "हम क्या जरूरत है धमाका करने कि मैंम, वी आर ऑलरेडी इन 'लिव इन रिलेशनशिप' हम उनकी तरह मूर्ख नहीं हैं। मैडम कुमार ने हर्षिता के साथ अपनी होमो-रिश्ते स्वीकारते हुए स्थिति ही स्पष्ट कर दी और अपने बारे म चल रही अटकल-बाजियों को यकीन म बदल दिया था। मैडम कुमार नहीं रुकी- अब तो मैडम इंडिया म भी कानून मान्यता मिल गई है। हाईकोर्ट के एक फैसले ने धारा 377 को नकार दिया है। कितना हो हल्ला मचा था पिछले दिनों मिडिया म...मेरी समझ म नहीं आता कि जब दुनिया भर के एक सताईस कंट्री इस रिलेशन को स्वीकार कर चुके हैं तो फिर हमारे इण्डिया म क्या प्रॉब्लम है? यहाँ सभी को अपने ढंग से जीने की आजादी होनी चाहिए।"[16] यहाँ भारतीय पारम्परिक दाम्पत्य सम्बन्धित मूल्यों का संक्रमण व विघटन हुआ है।

निष्कर्षः-भारतीय संस्कृति स्थिर एवं अद्वितीय है जिसके संरक्षण की जिम्मेदारों वर्तमान पीढ़ी पर हैं। इसकी उदारता तथा समन्वयवादी गुणों ने अन्य संस्कृतियों को समाहित तो किया है, किन्तु अपने अस्तित्व के मूल को सुरक्षित रखा है। एक राष्ट्र की संस्कृति उसके लोगों के दिल और आत्मा म बसती है। सर्वांगीणता, विशालता, उदारता और सहिष्णुता की दृष्टि से अन्य संस्कृतियों की अपेक्षा भारतीय संस्कृति अग्रणी है।भारतीय संस्कृति म निहित मूल्यों को व्यवाहरिक रूप देने का परामर्श दोनों ही उपन्यासकारों ने दिया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः

1. बैजनाथ सिंहल, नई कविताः मूल्य मीमांसा पृष्ठ 108
2. धीरद्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश पृष्ठ 802
3. संतोष कुमार चतुर्वेदी, भारतीय संस्कृति पृष्ठ 7
4. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय पृष्ठ 545
5. एजुकेशन सोसियोलोजी पृष्ठ 63
6. नवल, नालंदा विशाल शब्द सागर
7. अमृतलाल मदान, बंद होते दरवाजे पृष्ठ 69
8. बंद होते दरवाजे पृष्ठ 69
9. अमृतलाल मदान, दूसरा अरुण पृष्ठ 79
10. धर्मपाल साहिल, मचान पृष्ठ 15
11. धर्मपाल साहिल, समझौता एक्सप्रेस पृष्ठ 142
12. स्वाधीनता कालीन हिंदी साहित्य म जीवन मूल्य पृष्ठ 56
13. अमृतलाल मदान, अपने-अपने अंधेरे पृष्ठ 51
14. धर्मपाल साहिल, खिलने से पहले, पृष्ठ 111
15. खिलने से पहले पृष्ठ 112
16. खिलने से पहले पृष्ठ 114

प्रकीर्णक

खेल के सौन्दर्य बोध में उपभोक्तावाद का प्रभाव

डॉ. आलोक मिश्र

एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष,
शारीरिक शिक्षा विभाग, बरकत उल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल, मध्य प्रदेश

मनुष्य के स्वाभाविक विकास में खेल अनिवार्य अंग है। खेल के द्वारा मनुष्य का विकास मानव मूल्यों को प्राप्त करना होता है। यह लक्ष्य चरम सत्य अथवा मानवीय आदर्शों की प्राप्ति है, जिसमें खेल सक्रिय भूमिका निभाता है। यह सत्य की अनुभूति कराता है और अन्तिम लक्ष्य अर्थात सत्य की अनुभूति में ही हमें आनन्द मिल सकता है।

यद्यपि खेल का उद्देश्य जीवन के उत्तर मानवीय मूल्यों को प्राप्त करना है तथापि भूमण्डलीकरण के प्रभाव से जीवन में आए उपभोक्तावाद ने खेल से जुड़े सौन्दर्य बोध को परिवर्तित कर दिया है। अब खेल का लक्ष्य एवं आयोजन बाजार केन्द्रित होता जा रहा है।

सौन्दर्यशास्त्र मानव की कला चेतना और उससे सम्बन्धित आनन्दानुभूति का विवेचन एवं विश्लेषण प्रस्तुत करता है। 'स्थेटिक्स' या सौन्दर्यशास्त्र से तात्पर्य सुन्दर के विषय में विचार या सौन्दर्य दर्शन से है जो कि सौन्दर्यचेतना की उपज है। सौन्दर्यचेतना मनुष्य की वह भावनात्मक अवस्था है जिसे सौन्दर्यबोध कहते हैं। जब कोई वस्तु अथवा कला भौतिक एवं मानसिक रूप से हमें इन्द्रिय आनन्द का अनुभव कराती है तो वह सौन्दर्य की वस्तु या कला कहलाती है। और किसी कलाकृति अथवा वस्तु को देखकर आनन्द की सृष्टि होने को सौन्दर्यबोध कहते हैं। इस सौन्दर्यबोध को वाह्य एवं आन्तरिक स्वरूपों में स्पष्ट कर सकते हैं। वाह्य स्वरूप जिससे हमारी इन्द्रियों को सुख मिलता है और आन्तरिक स्वरूप ऊपरी सतह पर क्षण भर के सौन्दर्य से मोहित नहीं होता क्योंकि कि उसका अनुभव आत्मा होता है।

भारतीय सौन्दर्य शास्त्र के अन्तर्गत जब सौन्दर्य शब्द की चर्चा की जाए तो सत्यं शिवम् सुन्दरम एवं सच्चिदानंद शब्द स्मरण में आते हैं। सौन्दर्य की मीमांसा अत्यंत प्राचीन काल से होती आई है तथा भारतीयों की सौन्दर्य दृष्टि एवं सौन्दर्य मीमांसा संभवतः पाश्चात्यों से अधिक प्राचीन हैं किन्तु भारतीय विद्वानों ने सौन्दर्य दर्शन की चर्चा रसानुभूति से की हैं यदि सौन्दर्य शास्त्र को सौन्दर्य मूल्य एवं सौन्दर्य बोध का ही दर्शन तथा विज्ञान माना जाये तो भी भारतीय परम्परा में इसकी पूर्ण समृद्धि प्राप्त होगी। समस्त कलाओं काव्य, नाटक आदि के सिद्धान्त निरूपण में सौन्दर्य को सर्वोपरि स्थान दिया गया है, पश्चिम में सौन्दर्य शास्त्र को दर्शन के एक अंग के रूप में स्वीकार किया गया है। अतः वहां दार्शनिक चिंतन के अन्तर्गत सौन्दर्य चितं न की परम्परा आरम्भ से रही है।

भारतीयों की दृष्टि में सौन्दर्य का बहुत मूल्य था और उन्होंने सौन्दर्य के विविध रूपों और छबियों को अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ देखा था। ऋग्वेद में सौन्दर्य को 'श्री' नाम से संबोधित किया गया है। ऋग्वेद में 'चारू' शब्द का प्रयोग भी सुंदर के अभिप्राय से हुआ है। ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर उसका अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन है। वैदिक ऋषि सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् का समन्वय सौन्दर्य

में मानते हुए सौन्दर्य को परम सत्ता के गुणों के रूप में देखते हैं। वे ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि हम उन वस्तुओं को प्राप्त कर सकें जो सुंदर हैं।

नाट्शास्त्र में सभी के सौन्दर्य गुणों के सन्दर्भ में ललित, विद्वत, शोभा, दीप्ति, माधुर्य, धैर्य, लावण्य आदि का विवेचन मिलता है। नाट्यशास्त्र में सभी के गुणों के संदर्भ में ललित, विद्वत, शोभा, दीप्ति, माधुर्य, धैर्य, लावण्य आदि का विवेचन मिलता है। नाट्यशास्त्र में गायन, वादन, नृत्य के सौन्दर्य विधान का वर्णन किया गया है और कलाओं के सौन्दर्य विधान पर सूक्ष्मता से विचार किया गया है। ऋषियों ने जिस सौन्दर्य का वर्णन किया है, वह परम तत्व का सौन्दर्य है उन्होंने उसे प्रकृति और मानव ने भी देखने की चेष्टा की है।

भारतीय साहित्य, संगीत, चित्र, मूर्ति कला एवं खेलों का सम्बन्ध मौलिक सौन्दर्य से रहा है, और उसमें विविधरूपों में सौन्दर्य की अभिव्यजंना हाती रही है। भारतीय काव्यशास्त्र को विशेषरूप से सौन्दर्य से सम्बद्ध रहा है। रस सम्प्रदाय में तो रस और सौन्दर्य पर विस्तृत विचार किया गया है। भरत मुनि से लके र पंडित राज जगन्नाथ तक सभी रसवादी आचार्यों ने रास और व्यापक समीकरण को पूरी विद्वता के साथ दिखाया है। संस्कृत के पहले आचार्य पंडितराज जगन्नाथ हैं, जिन्होंने अत्यंत स्पष्ट शब्दों में रमणीय का उल्लेख किया है पंडित जगन्नाथ ने ''रमणीयता'' को ही सौन्दर्य माना है। उन्होंने रमणीयता को ही काव्य का सौन्दर्य माना है जिसके ज्ञान से लोकोत्तर आनंद प्राप्त हो वह अर्थ रमणीय है।

आधुनिक विचारकों व भारतीय सौन्दर्यशास्त्रियों में डा. रमेश कुन्तल मेघ का सौन्दर्य शास्त्रीय दृष्टिकोण अत्यन्त महत्वपूर्ण व व्यापक है। अपनी पुस्तक ''अथातो सौन्दर्य जिज्ञासा'' में कला एवं सौन्दर्य बोध, कलाकार, कलाकृति, कलाओं का वर्गीकरण, सृजन प्रक्रिया, सौन्दर्य की तात्विक प्रकृति आदि पर उन्होंने गंभीरता से विचार किया है। सौन्दर्य चिन्तक श्री के.सी. पाण्डेय के अनुसार, ''सौन्दर्य वे कलाएं हैं जिनकी कृतियां परम ब्रह्म को इन्द्रिय ग्राह्य रूप में इसप्रकार से उपस्थित करती हैं कि वे आवश्यक मानसिक दशाओं से युक्त सहृदय कला-रसिकों के लिए ब्रह्मानन्द प्राप्ति का समुचित साधन बन जाती हैं।''

इस प्रकार ब्रह्मानन्द सहोदर अर्थात परम सत्य को मानव जीवन में अवतरित करने के लिए ही कलाओं की रचना हुई अर्थात, 'सुन्दरम' की अभिव्यक्ति किए जाने के लिए जो माध्यम बना, उसे कला का नाम दिया गया। इन्हीं कलाओं के द्व ारा उस परम सत्य को रूपाकृति दी गई, जिसे हम सुन्दर, चिन्मय, रहस्यमय मानते हैं, भारतीय दर्शन में परम सत्य को सच्चिदानंद रूप और सौन्दर्य को उस परम सत्ता का प्रतिबिम्ब माना गया है।

वर्तमान में सौन्दर्य के वाह्यपक्ष पर अधिक बल दिया जा रहा है जिससे खेल भी अछूता नहीं रहा है। इसका प्रमुख कारण उपभोक्तावाद है जिसने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है और हमारे सौन्दर्य बोध को भी परिवर्तित कर रहा है। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में पूरी दुनिया में महत्वपूर्ण बदलाव हो रहे थे जिसे 'विश्व की अर्थ व्यवस्था का वैश्वीकरण' कहा जाने लगा। जो कि सम्पूर्ण विश्व को समाहित या एकीकरण करने की प्रक्रिया है इसमें विश्व को एक समग्र इकाई एवं बाजार को एक उपकरण के रूप में स्वीकार किया जाता है। यद्यपि इसका स्वरूप आर्थिक रहा है तथापि राजनीतिक, सांस्कृतिक सामाजिक प्रक्रियायें भी इसमें सम्मिलित हो गयी है। साथ ही इसके तीव्र विकास में सूचना क्रान्ति जैसी नयी प्रौद्योगिकी का योगदान है। चूंकि इसका स्वरूप बाजार आधारित है जिससे स्वाभाविक रूप में उपभोक्तावाद का प्रसार तेजी से हो रहा है। आल्डस हक्सले ने ब्रेव न्यू वर्ल्ड में अपनी भविष्य कल्पना में दिखाया था कि भावी विश्व में उपभोग न करने को एक गंभीर रोग माना जाएगा। जिसका आदर्श होगा 'लिविंग इज बाईंग' अर्थात् जीने का मतलब खरीदना है।

आज उपभोक्तावाद के प्रवाह ने एक आदर्श जीवन शैली के अर्थ, परिभाषा एवं अवधारणा को पूरी तरह बदल कर रख दिया है। आवश्यकता

ही आविष्कार की जननी है। इस पुरातन सिद्धांत को भूमण्डलीकरण ने तकनीक के सहारे उलट दिया है और *अब आविष्कार ही आवश्यकता की जननी हो गया है।* अब माल पहले बनता है और फिर उसकी आवश्यकता महसूस करायी जाती है। जिसके परिणामस्वरूप गैरजरूरी वस्तुओं को भी दैनिक जीवन में शामिल करा दिया जाता है। इस तरह पहले का ग्राहक अब उपभोक्ता बन गया है। इसी को उपभोक्तावादी संस्कृति के नाम से भी जाना जाता है।

जब हम उपभोक्तावादी संस्कृति की बात करते हैं तो उपभोग तथा उपभोक्तावादी में फर्क करते हैं। उपभोग-जीवन की बुनियादी जरूरत है। इसके बगैर न जीवन संभव है और न वह सब जिससे हम जीवन में आनन्द का अनुभव करते हैं। इस तरह के उपभोग में हमारा भोजन शामिल है जिसके बिना हम जी नहीं सकते या कपड़े शामिल है, जो शरीर ढकने के लिए और हमें गर्मी, सर्दी और बरसात आदि से बचाने के लिए जरूरी है। इसी तरह जीवन की रक्षा करने वाली या शरीर की तकलीफों को दूर करने वाली दवाएं, ऋतुओं के प्रकोपसे बचाने के लिए घर, ये सब उपभोग की वस्तुएं हैं।

अपने परिवेश को नृत्य, संगीत, खेल आदि से सजाना या साहित्य और विज्ञान के जरिये अपने वातावरण का प्रतीकात्मक अनुभव करना, मनुष्य को सबसे ऊँचे दर्जे का आनन्द देता है। इस प्रक्रिया में निर्मित कला वस्तु, पुस्तक आदि सब मनुष्य के स्वाभाविक उपभोग के क्षेत्र में आते हैं। संक्षेप में उपभोग की वस्तुएं वे हैं, जिनके अभाव में हम स्वाभाविक रूप से अप्रीतिकर तनाव का अनुभव करते हैं- चाहे वह भोजन के अभाव में भूख की पीड़ा से उत्पन्न हो, अथवा संगीत एवं कलाओं के अभाव में नीरसता की पीड़ा से उत्पन्न तनाव हो।

इसके विपरीत ऐसी वस्तुएं, जो वास्तव में मनुष्य की किसी मूल जरूरत या कला और ज्ञान की वृत्तियों की दृष्टि से उपयोगी नहीं हैं लेकिन व्यावसायिक दृष्टि से प्रचार के द्वारा जरूरी बना दी गयी हैं, वे सब उपभोक्तावादी संस्कृति की देन है। लेकिन उपभोक्तावादी संस्कृति ऐसी वस्तुओं को शुद्ध व्यावसायिकता के कारण योजनाबद्ध रूप से लोगों पर आरोपित करती है और तकनीक की आधुनिकतम खोजों का, इसके लिए प्रयोग करती हैं कि इन वस्तुओं की माया लोगों पर इस हद तक छा जाये कि वे इनके लिए लालायित बने रहें।

भारतीय चिन्तन में उपभोक्तावाद या भोगवाद की सराहना नहीं मिलती और न ही इसे नैतिकता की दृष्टि से ठीक माना जाता है। प्राचीन मूल्यों में अर्थ एवं काम को धर्म एवं मोक्ष से बांधा गया है। पाश्चात्य चिन्तन में भी उपभोक्तावादी प्रवृत्ति को मानवीय मूल्य के लिए उचित नहीं माना गया है।

वर्तमान के खेल के आयोजन बाजार के अनुरूप परिवर्तित किए जा रहे हैं पहले खेलों का आयोजन सामाजिक विकास आपसी सामंजस्य एवं शारीरिक व मानसिक मजबूती से सम्बन्धित रहता था अब इसमें आर्थिक पक्ष महत्वपूर्ण हो गया है। जिन खेलों में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की रुचि होती है उन्हीं खेलों को अधिक प्रोत्साहित किया जा रहा है। इस प्रक्रिया में इन कम्पनियों के मुनाफे और प्रचार के अनुरूप ही खेल आयोजन हो रहे हैं। आईपीएल इसका ज्वलंत उदाहरण है जिसमें बाजार के अनुरूप खेल के स्वरूप को ही बदल दिया गया है। इस उपभोक्तावादी प्रवृत्ति का प्रभाव खिलाड़ी के मन मष्तिस्क पर गहराई से पड़ता है।

इस उपभोक्तावाद के प्रभाव से खेल भी बाजार केन्द्रित हो रहा है जबकि हर खेल की अपनी विशिष्टता है। उपभोक्तावाद सांस्कृतिक विशिष्टता के बजाए बाजार के मूल्यों को अभिव्यक्त कर रहा है और खेल भी बाजार को बढ़ावा देने में योगदान कर रहा है। पहले खेल लोक जीवन से जुड़ कर विकसित होता रहा अब वह उद्योग से जुड़ गया। इसलिए खेल में दर्शन या चिन्तन पक्ष द्वितीयक होता जा रहा है जो मानसिक शान्ति एवं कल्याण के लिए आवश्यक था। एरिकफ्राम ''बीइंग एण्ड हैविंग'' में कहते हैं कि आज के दौर में मनुष्य बीइंग अर्थात वह क्या है? के बजाए हैविंग अर्थात् मेरे पास क्या हो? इसके लिए प्रयासरत हैं जो कि वस्तुओं को

एकत्र करने की लत की तरह है। इसका प्रभाव खेल में भी दिखता है।

वस्तुतः उपभोक्तावादी संस्कृति के दुष्परिणाम स्वरूप खेल के सौन्दर्यबोध में परिवर्तन हो रहा है, जिससे खेल को मात्र बाजार की वस्तु के तौर पर देखा जा रहा है परिणामस्वरूप शान्ति, सत्य की खोज, आत्मानुभूति आदि सौन्दर्यशास्त्र के तत्व खेल से लुप्त होते जा रहे हैं जिससे खेल मानव जीवन के गुणात्मक विकास में अपेक्षित योगदान नहीं कर पा रहा है। देखा जाए तो खेल मानव के सामाजिक जीवन के सामंजस्य को बनाए रखने के साथ व्यक्तित्व निर्माण में केन्द्रीय भूमिका निभाता रहा है। इसलिए बाजार आधारित खेलों के विकास के बजाए मूल्य आधारित खेल भावना का विकास समाज के हित में है। इस दृष्टि से उपभोक्तावाद खेल के भविष्य की प्रमुख चनु ौती बन गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. कुलकर्णी वसुधा : भारतीय संगीत एवं मनोविज्ञान, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2012।
2. गुप्ता श्यामलाल : सौन्दर्य तत्वमीमांसा, सीमा साहित्य भवन, दिल्ली प्रथम संस्करण, 1992।
3. जैन विजय लक्ष्मी : संगीत दर्शन, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1989।
4. झा चिरंजीलाल : कला के दार्शनिकतत्व, लक्ष्मी कला कुटीर, गाजियाबाद द्वितीय संस्करण, 1964।
5. देवराज : दर्शन धर्म अध्यात्मक और संस्कृति, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2005।
6. ढुल दवेन्द्र सिंह, शारीरिक शिक्षा तत्व एवं इतिहास, फ्रेन्डस पब्लिकशेन्स (इण्डिया) 5-6 बी मुखर्जी टावर, कामर्शियल काम्पलेक्स, डॉ. मुखर्जी नगर, नई दिल्ली, 1980।
7. लामा दलाई, जीवन जीने की कला, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2006।
8. लाल बी.के., समकालीन पाश्चात्य दर्शन, मोतीलाल बनारसी दास, जवाहर भवन, दिल्ली, 1991।
9. सक्सेना लक्ष्मी, डॉ. सभाजीत मिश्र : अस्तित्व वाद के प्रमुख विचारक, मध्य प्रदेश हिन्दीग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2002
10. सिंह दिनकर रामधारी, संस्कृति के चार अध्याय, लोक भारती प्रकाशन, महात्मागांधी मार्ग, इलाहाबाद, 2000
11. शर्मा स्वतंत्र, : सौन्दर्य, रस एवं संगीत, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद। 2010
12. शर्मा हरद्वारी लाल : कला में संगीत साहित्य और उदात्त के तथ्य। मानसी प्रकाशन, मेरठ, 1994
13. शर्मा सत्यवती : संगीत का समाजशास्त्र, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1995।
14. Pradhan R.C. (Editor), Philosophy Culture and Value, Indian Council for Philosophical Research, New Delhi, 2008
15. Friedman Thomas L., The Lexus and the Olive Tree, Anchor Book, A division of Random House, Inc. New York.2000.

हिंदी सिनेमा और मेरा भारत देश : एक सांस्कृतिक अध्ययन

डॉ. दादासाहेब नारायण डांगे

सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, राहाता

भूमिका :

देश एक व्यापक संकल्पना है। विश्व म विभिन्न देश है, जिन्ह हम राष्ट्र, वतन, मुल्क आदि कई नामों से परिभाषित करते हैं। परंतु असल म देश यह संकल्पना है क्या, यह समझना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। अपने देश के प्रति हर व्यक्ति के मन म प्रेम की भावना निहित होती है। परंतु केवल मन म प्रेम की भावना होने से कुछ नहीं हो सकता। उसके लिये देश को व्यापक रूप से समझने की जरूरत है। उसका सांस्कृतिक अध्ययन करने की आवश्यकता है। मेरे खयाल से हिंदी सिनेमा के माध्यम से हम देश नामक संकल्पना को अत्यंत सूक्ष्मता के साथ समझ सकते हैं। भारतीय सिनेमा ने हम ऐसी अनेक फिल्म दी है, जो देश को परिभाषित करने म सार्थक सिद्ध हुई है। उनम से कुछ प्रमुख फिल्मों के द्वारा हम देश का सांस्कृतिक अध्ययन करने का इस शोध आलेख म प्रयास कर रह हैं। जिससे हिंदी शोधार्थियों को निश्चित लाभ मिल सकता है।

संकेत शब्द :

हिंदी सिनेमा, मराठी फिल्म, भारत, सांस्कृतिक अध्ययन, मनोज कुमार

देश, वतन, राष्ट्र आदि कई नाम हैं, जिन्ह, हम बचपन से सुनते आए हैं; परंतु पहली बार हम सही मायने म अपने देश की पहचान तब होती है, जब हम स्कूल म प्रतिज्ञा लेते हैं कि, भारत मेरा देश है। उसके बाद इतिहास के पन्नों से तथा भौगोलिक अभ्यास से अपने देश की संस्कृति, उसका सांस्कृतिक वैभव, उसका वैविध्य धीरे-धीरे हमारे सम्मुख आने लगता है। तब हम समझ म आता है कि, ऐसा है अपना भारत देश, जो सांस्कृतिक दृष्टि से विश्व म सबसे महान देश है। देश की संकल्पना को जानते समय वहां के लोग, उनकी प्रवृत्तियां, परंपराएं, वेशभूषा, भाषा तथा भौगोलिक विविधता को जानना आवश्यक है। देश का अर्थ केवल किसी एक भूखंड पर अथवा भू-भाग पर रहनेवाले लोग नहीं हैं। लोगों के साथ-साथ उस भू-भाग पर स्थित पेड़-पौध, नदियां, पर्वत, ऐतिहासिक स्थल, पशु-पक्षी, उनके संबंध म सुनाई जानेवाली अच्छी- बुरी कथाएं, मिथक तथा अन्य विशेषताओं का समावेश होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने तरीके से देश को परिभाषित करने का प्रयास करता है। देश नामक संकल्पना को अपने लेखों, कविताओं तथा अन्य साहित्य प्रकारों के माध्यम से स्पष्ट करने का प्रयास करता है। परंतु आज इस लेख के माध्यम से सभी के सामने हिंदी तथा मराठी फिल्मों ने देश की संकल्पना को गीतों के माध्यम से किस प्रकार स्पष्ट किया है, उसका जिक्र कर रहा हूं। हिंदी फिल्मों म चित्रित कुछ गीतों

के माध्यम से सही अर्थ म देश नामक संकल्पना स्पष्ट हुई है। ऐसे मुझे लगता है। फिल्मों ने और उनम प्रस्तुत गीतो ने देश को व्यक्ति के हृदय तक पहुंचाने का महत्वपूर्ण काम किया है।

हिंदी मराठी फिल्मों से हम हमेशा प्रभावित होते रह हैं। फिल्म हमारा मनोरंजन करती हैं। जब हम निराश होते हैं, तब कुछ समय के लिए फिल्म हम हमारी निराशा से दूर करती हैं। हम अपना दुख थोडे समय के लिए ही क्यों न हो, भूल जाते हैं। फिल्मों ने हमेशा समाज जागृती का काम किया है। फिल्म केवल मनोरंजन ही करती बल्कि समाज को सचेत करने का महत्त्वपूर्ण काम भी करती है। समाज म घटित हर उस समस्या को, जो सामान्य व्यक्ति भुगतता है, उसे समाज के सामने उजागर करने का कार्य करती है। देश के प्रत्येक व्यक्ति को देश क्या है यह समझाने का कार्य फिल्मों ने ही किया है। फिल्मों को देखकर तथा गीतों को सुनकर ही मनुष्य के मन म देश प्रेम की भावना का संचार हुआ है। जिस देश को हमने पहली बार स्कूल म प्रतिज्ञा म सुना था कि, भारत मेरा देश है, उसे हमने सही अर्थ म फिल्मों के द्वारा ही जाना है।

अपनी प्रत्येक फिल्म म अपना नाम भारत रखा ऐसे देश प्रेमी अभिनेता मनोज कुमार ने भारत देश की प्रतिमा को विश्व स्तर पर स्थापित किया है। उनकी 'पूरब और पश्चिम' नामक फिल्म के शीर्षक से ही पूर्व अर्थात् पूरब का देश और पश्चिम अर्थात पश्चिम की ओर का देश स्पष्ट हुआ है। साथ ही पलभर म उस भूभाग का, उसकी संस्कृति का हम अनुमान हुआ। इतनी आसानी से अपने देश की पहचान कराना अब तक किसी से नहीं हो सका, वह काम मनोज कुमार ने फिल्म के माध्यम से कर दिखाया है। जब हम किसी देश के भूभाग, स्थान विशेष के बारे म पूर्ण रूप से जान जाते हैं, तब हम उसपर गर्व करने लगते हैं। इसी गर्व का रूपांतरण बाद म प्रेम म हो जाता है। उसे ही हम देश प्रेम या राष्ट्र प्रेम कहते हैं। मनोज कुमार के श्पूरब और पश्चिमश फिल्म म 'देश' यह संकल्पना स्वतंत्रता पूर्व ही सभी देशवासियों के मन म उभरी है। यह फिल्म प्रतीकात्मक है। इस फिल्म म ब्लॅक अंड व्हाईट अर्थात् काला और सफेद रंग गुलामी के प्रतीक के रूप म दिखाया गया है। मनोज कुमार ने वर्तमान को ध्यान म रखते हुए इस फिल्म म समय-समय पर परिवर्तन किये हैं। 1947 के पूर्व जब भारत अंग्रेजों के शासन म है, तब मनोज कुमार ने उस परिवेश को स्पष्टता से उभारने के लिए फिल्म म काला और सफेद रंग का आभास निर्माण किया है, जो गुलामी का प्रतिक है। शुरुआत म पूरब और पश्चिम फिल्म ब्लॅक अँड व्हाईट म दिखायी गयी है, क्योंकि तब पुरा देश अँग्रेजों का गुलाम था। यह अँग्रेजों के खिलाफ भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का अंतिम पाडाव था। अत्यंत कलात्मकता के साथ मनोज कुमार ने इस फिल्म म हम सभी को स्वतंत्रता का आभास दिखाया है। अर्थात् अंग्रेजों की गुलामी से भारत को मुक्त होते दिखाया है।

14 अगस्त 1947 की रात जब पंडित जवाहरलाल नेहरू जी लाल किले पर भारत का तिरंगा लहराते है, तब तिरंगा नीचे से ऊपर जाते-जाते ब्लॅक अँड व्हाईट से रंगीन बन जाता है। अर्थात् यह प्रयोग मनोज कुमार ने भारतीय स्वतंत्रता का परचम लहराने के लिए किया है, जो अत्यंत सुंदर बन पडा है। इस फिल्म का यह अंतिम दृश्य देखकर हम यह स्पष्ट हो जाता है कि, देश क्या है। तब हमारे मन म देश के प्रति अभिमान तथा प्रेम और अधिक बढ जाता है। यह संपूर्ण फिल्म देश प्रेम की भावना से ओतप्रोत है। फिल्म का एक प्रसंग बहुत ही मार्मिक है, जो हम सभी को भारतीय संस्कृति की पहचान कराता है। फिल्म म भारत अर्थात् अभिनेता मनोज कुमार और मदनपुरी ब्रिटन म इंडिया क्लब की इमारत म एक स्थान पर बैठकर अपने देश के विषय मे वार्तालाप कर रह हैं। वहां उनकी बात प्राण सुन रहा है। फिल्म म प्राण एक ऐसे व्यक्ति का प्रतिनिधी है, जो निरंतर अपने देश की बुराई

करता रहता है। उसे अपने देश के प्रति बिलकुल ही आदर और सम्मान नही है। मनोज कुमार और मदन पुरी से कहता है कि, तुम्हारा देश दुनिया के नक्शे पर झिरो है। तब प्राण की यह बात सुनकर मनोज कुमार उसे एक गीत के माध्यम से भारत की संस्कृति का परिचय कराते हैं। इस गीत को सुनकर संपूर्ण भारत देश का चित्र हमारी आखों के सामने अंकित हो जाता है। अपने देश का सौंदर्य, कला-संस्कृति, देश का वैविध्य तथा एकता, इतिहास- पुराण आदि को गीत के द्वारा सुनकर हम सभी का सीना गर्व से फूल हो जाता है। वह गीत भारतीय सौंदर्य का विराट सांस्कृतिक रूप हमारे मन पर अंकित कर देता है। गीत मशहूर गायक महद्र कपूर ने गाया है। महद्र कपूर की आवाज ही देशभक्ती से ओतप्रोत है, यह हम सभी जानते हैं। उनका लोकप्रिय गीत है- 'जब जिरो दिया मेरे भारत ने, भारत ने... मेरे भारत ने, दुनिया को तक गिनती आयी' अर्थात् प्राण जिस देश को झिरो कहता है, उसी देश ने दुनिया को झिरो दिया है। जिसके आधार से सारी दुनिया गिनती कर सकती है। परंतु प्रस्तुत गीत म मेरे देश ने दुनिया को झिरो दिया, यह कहते समय भी उसम कहीं अहंकार नहीं है, बल्कि नम्रता ही है। आगे गीत म वे कहते हैं, मेरे देश ने आपको झिरो दिया तब जाकर आप किसी भी वस्तु का नाप ले सक हैं। मेरे देश ने तुम्ह दशमलव अर्थात पूर्णांक और अपूर्णांक का ज्ञान दिया, तब तुम चांद तक का अंतर नापने लगे। तब जाकर आपका यान चाँद तक पहुंचा। आपका यह वैज्ञानिक विकास मेरे देश के कारण ही है। उदाहरण के लिए इस गीत की दो पंक्तियां यहाँ प्रस्तुत हैं- ''यू चाँद पे जाना मुश्किल था, धरती और चाँद की दूरी का अन्दाज लगाना मुश्किल था।'' मनोज कुमार कहते हैं, हमारे कारण आप चांद पर जा सक। हम तो चांद पर कभी गए नहीं परंतु फिर भी जो चांद पर गए, उनको हम सलाम करते हैं, क्योंकि बडा काम करने वाला चाहे किसी भी देश का हो, उसका सम्मान करना, उसके कार्य को सलाम करना हमारी संस्कृति है। इसम अपनी भारतीय संस्कृति के प्रति मनोज कुमार का प्रेम स्पष्ट झलकता है। मनोज कुमार गीत की निम्न पंक्ति के माध्यम से अपनी संस्कृति की महत्ता का गान करते हैं– ''सभ्यता जहाँ पहले आयी, पहले जन्मी जहाँ पे कला, अपना भारत, ओ भारत है, जिस के पीछे संसार चला।'' अर्थात् अपने देश की सभ्यता का सभी अनुकरण करते हैं। हमारे देश की संस्कृति दुनिया म श्रेष्ठ है। यहाँ की नगर रचना विश्वविख्यात हैं। यही सर्वप्रथम नृत्यकला का जन्म हुआ है। इस देश म जितने राज्य हैं, उतने ही नृत्य के प्रकार हैं। सभी राज्यों की नृत्य शैली अलग-अलग है। इतनी विविधता होकर भी हमारा भारत देश एक है। शिल्पकला म भी हम सब से ऊपर हैं। यहाँ लगभग 2500 वर्ष पूर्व अजंठा वेरूल की लेणियां निर्मित हुई हैं। इस देश ने दुनिया को नृत्य के सात प्रकार दिए हैं। भरतनाट्यम, भांगडा, कथ्थक, कथक्कली, रोहिणी अट्टम, कुचीपुरी, ओड़िसी नृत्य और इसके साथ ही अनेक आदिवासी नृत्य प्रकार भी हैं। इस देश म दुनिया की सबसे सुंदर वास्तु ताजमहल है, जो प्रेम का प्रतीक माना जाती है। जीवन का तत्वज्ञान जग को बांटनेवाला बुद्ध इसी मिट्टी म पैदा हुआ है। यह हमारा देश है, जिसका नाम भारत है। हमारे पास जो भी जानकारी थी, वह सभी हमने आपको दी है। जिस पर आप का विकास संभव हो पाया है और आगे भी आपका निरंतर विकास होता रहे, यही हमारी कामना रहेगी।

मनोज कुमार आगे प्राण के सामने यह गीत गाता है, जो हर भारतवासी के मन म देश प्रेम की भावना का संचार कराने म सक्षम है। वह गीत है- ''हे प्रीत जहाँ की रीत सदा, मैं गीत वहां के गाता हूं, भारत का रहनेवाला हूं, भारत की बात सुनाता हूं।''

प्रेम ही जिस मिट्टी की परंपरा है, जिस देश म नदी को भी मां कहा जाता है, जिस देश म पत्थर को भी भगवान मानकर पूजा जाता है, वह हमारा भारत देश है।

'नया दौर' फिल्म के इस गीत म भारतीय लोगों के प्रेम का तथा भारतीय सुंदरता का वर्णन हुआ है। उस दौर म यह गीत बहुत ही लोकप्रिय हुआ था, जिसम देशप्रेम की भावना निहित है। एक और हिंदी फिल्म शजिगरी दोस्तश म चित्रित एक गीत म भारत देश की महिमा का अत्यंत सुंदर वर्णन किया गया है। वह गीत है- ''मेरे देश म, ओ मेरे देश म, पवन चले पुर्वाई, मेरे देश को देखने, सारी दुनिया आयी....ओ मेरे देश म।'' अर्थात् जिस देश म पूरब से पश्चिम की ओर अत्यंत मधुर एवं शितल पवन बहती है, वह मेरा देश है, जिसे देखने सारी दुनिया आती है। यह मेरे देश का गौरव है। भारत के व्यक्ति का हृदय दुनिया की सभी अच्छी चीजों का तथा तत्वज्ञान का स्वीकार करता है। हर भारतवासी मनसे अत्यंत स्वच्छ व पवित्र है। वह चाहे कोई भी भाषा बोले, उसकी वेशभूषा चाहे कैसी भी हो और चाहे वह कही भी रहे, पर उसका दिल हमेशा हिंदुस्तानी ही रहेगा। इस बात को स्पष्ट करनेवाला अत्यंत लोकप्रिय और प्रसिद्ध गाना है- ''मेरा जूता है जापानी, ए पतलून इंग्लिस्तानी, सर पे लाल टोपी रुसी, फिर भी दिल है हिंदुस्तानी।''

जिस भारतीय संस्कृति का सभी को अभिमान है, जिसकी सुंदरता एवं विविधता पर सभी को नाज है, उसकी सुंदरता का वर्णन 'परदेस' फिल्म के इस गीत म हम देख सकते हैं। वह सुंदर गीत है- ''जहाँ पांव म पायल, हाथ म कंगन, हो माथे पे बिंदिया, इट्स हॅपन ओन्ली इन इंडिया'।

एक और फिल्म गदर म अभिनेता सनी देओल का संवाद सभी हिंदुस्तानियों के रोंगटे खडे कर देता है। वह कहता है, ''हिंदुस्तान जिंदाबाद था, जिंदाबाद है और जिंदाबाद रहेगाष। प्रस्तुत संवाद सभी के मन म देश प्रेम की भावना को उपजाता है। साथ ही सारे भारतवासियों को अपने देश के लिए कुछ कर गुजरने की प्रेरणा भी देता है। इसी प्रकार एक और फिल्म 'दिलजले' का बहुत ही सुंदर और देशभक्तिपरक गीत है- ''मेरा मुल्क मेरा देश मेरा ये वतन, शांति का, उन्नति का, प्यार का चमन। इसके वास्ते निसार है, मेरा मन, मेरा तन, ए वतन, ए वतन, ए वतन, जानेमन, जानेमन, जानेमन।'' यह गीत देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत है। यह युवकों को राष्ट्रप्रेम की भावना से भर देता है। इस गीत को सुनकर युवक देश के लिए मर मिटने को तैयार हो जाते हैं। यह हिंदी सिनेमा की ताकत है।

देश प्रेम तथा देश अभिमान का और एक उदाहरण हम शहरुख खान पर फिल्मायी गयी 'चक दे इंडिया' फिल्म म देख सकते हैं। फिल्म म अभिनेता शाहरुख खान का एक वाक्य है, ''ना मुझे स्टेट के नाम दिखाई देते हैं, ना सुनाई देते हैं। मुझे केवल एक ही नाम सुनाई देता है- इंडिया।'' फिल्म अभिनेता का यह संदेश हम सभी के मन म अखंड भारत का एक विशाल चित्र अंकित कर देता है और सभी के मन म देश प्रेम की भावना का संचार भी कराता है।

इसी प्रकार एक स्थान पर भारतीय क्रिकेटर गौतम गंभीर ने भी कहा था कि, मैं अपने लिए नहीं 137 करोड भारतियों के लिए खेलता हूं। यह भावना मन म निर्माण होना ही देशप्रेम या देशभक्ति है। इससे देश क्या है और देश प्रेम क्या है यह समझना बहुत आसान होगा, यह मेरा विचार है।

मराठी म राकट देशा, कणखर देशा, दगडांच्या देशा ऐसे कहा गया है। अंत म मराठी फिल्म के एक गीत से मैं मेरे लेख का समापन करता हूं। वह गीत इस प्रकार है–

''हा देश माझा, याचे भान जरासे राहू द्या रे... जरासे राहू द्या'' प्रस्तुत गीत के माध्यम से गीतकार ने अपने देशवासियों को देश के प्रति संवेदनशील एवं सचेत रहने का आव्हान किया है। फिल्म केवल मनोरंजन ही नहीं करती, बल्कि ऐसी बहुत सारी फिल्म हैं, जो अपने देश की महिमा का बखान करती हैं। युवकों के मन म देश प्रेम की भावना का संचार करती हैं। अपने देश का नाम विश्वस्तर पर ऊंचा कराने म हिंदी सिनेमा का काफी योगदान रहा है।

हिंदी सिनेमा हमेशा से सामाजिक जागृती का काम करते आया है। सिनेमा ने ही सही अर्थ म भारतियों के मन म देश प्रेम की भावना का संचार करने का महत्त्वपूर्ण काम किया है। अपने देश की संस्कृति को विश्व स्तर पर पहचान दिलाने म सिनेमा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

आज हम देश और धर्म को एक कर रह हैं। धर्म के नाम पर एक-दूसरे के साथ लड रह हैं। जिससे समाज म अराजकता फैली हुई है। समुचे देश म विषमता की स्थिति निर्माण हुई है। इस से अपने देश को खतरा है। इसीलिए यह स्थिती हम सभी को मिलकर बदलनी होगी और हमारे देश को फिर एक बार एकता का वैभव प्राप्त कराकर देना होगा। यह हम सभी की जिम्मेदारी है। अगर फिल्म इस प्रकार भारतीय संस्कृति के विकास म योगदान दे सकती हैं, तो हम क्यों नहीं। हम सभी को एक बात अवश्य ध्यान म रखनी होगी कि, यह देश हम सभी का है और हम सभी एक हैं। इसीलिए हम सभी हमेशा कहते हैं- ''भारत मेरा देश है, सभी भारतीय मेरे भाई-बहन हैं।'' इस प्रकार की भावना हम सभी के मन म जब निर्माण होगी, तब हमारा भारत देश सही अर्थ म दुनिया म सबसे अधिक गौरवशाली और महान देश साबित होगा।

संदर्भ-

इस शोध आलेख म मैंने मेरी स्वयं की अनुभूति को अभिव्यक्ती दी है।

इस आलेख म जिन फिल्मों का जिक्र हुआ है, उन फिल्मों को मैंने देखा है, यही संदर्भ हो सकता है।

कथक नृत्य शिक्षण में ई. लर्निंग : एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ. रंजना उपाध्याय

सहायक आचार्या
नृत्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सारांश

विगत दशकों में सूचना एवं संचार क्रांति के क्षेत्र में हुयी अभूतपूर्व प्रगति ने शिक्षा के क्षेत्र में अनेक नव-प्रवर्तनों को दिशा दी है, इन्हीं में से एक है ई. लर्निंग जिसे इलेक्ट्रॉनिक लर्निंग अथवा ऑनलाइन लर्निंग कहा जाता है। शिक्षण का यह माध्यम दूरस्थ शिक्षा का ही एक रूप है जिसमें डिजिटल माध्यमों की प्रमुख भूमिका है। इस माध्यम द्वारा प्रसारित विषयों में आज भारतीय शास्त्रीय नृत्य कथक का भी प्रमुख स्थान है। कथक नृत्य की विद्यार्थी, अध्येता तथा प्रयोक्ता होने के नाते मेरे द्वारा प्रस्तुत शोध पत्र में कथक नृत्य की परम्परागत शिक्षण प्रविधि के इतर इस नृत्य शैली में ई. लर्निंग की अवधारणा, विषयवस्तु तथा प्रायोगिक पक्ष पर एक समालोचनात्मक दृष्टि डालने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द

कथक नृत्य, ई. लर्निंग, डिजिटल, तकनीक

'शिक्षा' मानव के सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकास का एक आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य अंग भी है, शिक्षा से संस्कारित होकर ही मानव सामाजिक उत्थान के विविध उपक्रमों में अपनी सार्थक भूमिका निभा सकता है, वस्तुतः शिक्षण की इसी परिकल्पना को आधार मानकर हमारे प्राचीन ग्रन्थों, मनीषियों, शिक्षाविदों, अध्येताओं तथा तत्कालीन समाजिक व्यवस्था द्वारा शिक्षा व शिक्षण प्रविधि में कालक्रमानुसार अनेक सार्थक परिवर्तन होते गये। प्राचीन भारतीय ऋग्वैदिक परम्परा से लेकर रामायण तथा महाभारत काल से समुन्नत होते हुए आधुनिक भारतीय शिक्षण परम्परा नव-प्रवर्तनों को आत्मसात कर वैश्विक, सामाजिक व सांस्कृतिक उत्थान में सार्थक योगदान दे रही है।

प्राचीन काल से ही संगीत एवं नृत्यकला शिक्षण के प्रमुख विषय के रूप में मान्य हैं। वैदिक कालीन संगीत व नृत्य महोत्सव हों या रामायण व महाभारत कालीन नृत्यशालाएँ, तक्षशिला व नालन्दा जैसे शिक्षा के स्वर्णिम केन्द्रों में भी नृत्य व संगीत शिक्षण की समुचित व्यवस्थाओं के पुष्ट प्रमाण प्राप्त होते हैं, इस सन्दर्भ में कौटिल्य का अर्थशास्त्र एक प्रमुख ग्रन्थ है जिससे यह प्रमाणित होता है कि तत्कालीन समाज में संगीत व नृत्य शिक्षण परम्परा को राज्याश्रय प्राप्त था, जो भी गायन, वादन, नृत्य की शिक्षा देता था उसे राज्य की ओर से द्रव्य (धन) दिया जाता था।

अर्थात् संगीत एवं नृत्य कला का शिक्षा के साथ व्यावसायिक स्वरूप भी तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में प्रचलित था।

कालान्तर में धीरे-धीरे इस व्यवस्था ने गुरु-शिष्य परम्परा से अनुप्राणित होकर विद्यालयीन शिक्षण के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त की तथा 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में अनेक निजी व शासकीय सहयोग प्राप्त संस्थानों की स्थापना द्वारा नृत्य व संगीत शिक्षण को एक सुव्यवस्थित पाठ्यक्रम प्रदान कर शिक्षण के अन्य विषयों के साथ एक विषय के रूप में स्वीकृति मिली।

वर्तमान समय में इस विषय की उपयोगिता व प्रसिद्धि का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि भारतीय शास्त्रीय नृत्य कलाओं को न केवल भारत में अपितु पश्चिमी देशों के विश्वविद्यालयों में भी पाठ्यक्रम के एक अंग के रूप में सम्मिलित किया गया है तथा इसकी शिक्षण प्रविधि में भी युगानुकूल अपेक्षित परिवर्तन किये गये हैं। वर्तमान समय में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी में हुयी अभूतपूर्व प्रगति का प्रभाव नृत्य शिक्षण की परम्परागत प्रविधि पर भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। आज नृत्य के प्रयोगात्मक तथा सैद्धान्तिक शिक्षण को डिजीटल माध्यमों द्वारा सुगमतापूर्वक सम्पूर्ण विश्व में प्रचारित व प्रसारित किया जा रहा है।

नृत्य जैसे पूर्ण क्रियात्मक विषय का इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से प्रशिक्षण देना आज के युग में एक सामान्य शिक्षण प्रक्रिया है। यद्यपि इण्टरनेट के आगमन से पूर्व इसकी कल्पना भी असंभव थी।

उत्तर भारतीय शास्त्रीय नृत्य 'कथक' की विद्यार्थी, अध्येता तथा प्रयोक्ता होने के नाते मेरे द्वारा इस शोधपरक लेख में कथक नृत्य शिक्षण की ऑनलाइन प्रविधि को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। इस हेतु सर्वप्रथम यह समझना अपेक्षित है कि ई. लर्निंग/ऑनलाइन लर्निंग क्या है तथा नृत्य शिक्षण की इस प्रविधि के उपकरण क्या हैं?

ई. लर्निंग (Electronic Leaning)**/ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली :-**

ई-लर्निंग दूरस्थ शिक्षा प्रणाली का एक प्रकार है। ई. लर्निंग को सामान्यतः Online Learning भी कहा जाता है जिसमें डिजिटल माध्यमों का प्रयोग कर शिक्षण को अधिक ग्राह्य, लोकप्रिय व सुगम बनाया जाता है। सूचना तथा संचार प्रणाली इस प्रक्रिया में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है।

ई. लर्निंग के विभिन्न रूप हैं जिनमें बेब आधारित लर्निंग, मोबाइल आधारित लर्निंग, वर्चुअल क्लासरूम, वेबिनार इत्यादि प्रमुख हैं। शिक्षण से सम्बन्धित पाठ्य सामग्रियों का वितरण इण्टरनेट, इण्ट्रानेट/एक्स्ट्रानेट, ऑडियो या वीडियो टेप, सेटेलाइट टी.वी. तथा सी.डी. रोम के माध्यम से किया जाता है।

ई. लर्निंग के प्रचार-प्रसार का सीधा सम्बन्ध तकनीकी विकास तथा कम्प्यूटर की सर्वसुलभता से है। 1980 से 1990 के मध्य ई. लर्निंग के प्रथम चरण सी.बी.टी. (कम्प्यूटर बेस्ड लर्निंग) का आरम्भ हुआ तथा वर्ष 1999 में इस शिक्षण प्रविधि को ई. लर्निंग के रूप में मान्यता मिली इण्टरनेट के आगमन से वेब आधारित शिक्षण के क्षेत्र में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन आए।

1990 के दशक के अंत में लर्निंग मैनेजमेन्ट सिस्टम (स्डै) का व्यापक उपयोग हुआ तथा अमेरिकन कम्पनी ब्लैकबोर्ड शिक्षण सम्बन्धी संस्थानों के लिए ई. लर्निंग सम्बन्धित प्रमुख सेवा प्रदाता कम्पनी बनी। 2014 तक इसके सॉटवेयर व सेवाओं का उपयोग लगभग 17000 स्कूलों व संगठनों द्वारा 100 देशों में किया जाने लगा केवल यू. एस.ए. में 75% कॉलेज व विश्वविद्यालय ब्लैकबोर्ड एल.एम.एस. का प्रयोग कर रहे थे।

वर्ष 2010 से ई. लर्निंग व्यावसायिक रूप अपनाकर सोशल मीडिया, यू-ट्यूब, ट्विटर, स्काइप, गूगल डुओ, वाइबर, गूगल क्लासरूम, जूम आदि का सफलतापूर्वक प्रयोग कर रही हैं तथा इस क्षेत्र में नवाचार को बढ़ाकर शिक्षा के नवीन भविष्य की परिकल्पना को भी साकार कर रहा है।

ई. लर्निंग का विकास :-

वर्तमान समय में भारत ऑनलाइन शिक्षण के एक हब के रूप में उभर रहा है। वर्ष 2016 में भारत में ऑनलाइन शिक्षा का व्यापार 247 मिलियन

डॉलर था, जो कि वर्ष 2021 तक 1.96 बिलियन डॉलर अपेक्षित है।

एक अन्य आंकड़े के अनुसार वर्ष 2016 में विभिन्न ऑनलाइन पाठ्यक्रमों में पंजीकृत विद्यार्थियों की संख्या 1.6 मिलियन से बढ़कर वर्ष 2021 तक 96 मिलियन हो जायेगी।

ये सभी आंकड़े इस तथ्य को स्पष्ट कर देते हैं कि भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में ऑनलाइन शिक्षण ने भविष्य की एक प्रमुख शिक्षण व्यवस्था के रूप में आकार लेना प्रारम्भ कर दिया है। सन् 1982 में बी.आर. अम्बेडकर ओपन यूनिवर्सिटी भारत की प्रथम ओपन यूनिवर्सिटी के रूप में स्थापित हुई। इसके पश्चात् 1885 में इन्दिरा गाँधी ओपन यूनिवर्सिटी (इग्नू) ने विभिन्न सामान्य तथा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से उपलब्ध कराया आज यू.जी.सी. द्वारा मान्यता प्राप्त अनेक विश्वविद्यालय असंख्य पाठ्यक्रमों के शिक्षण-प्रशिक्षण का कार्य दूरस्थ शिक्षा के क्षेत्र में ई. लर्निंग प्रविधि को सफलतापूर्वक अपनाकर सम्पन्न कर रहे हैं।

यू.जी.सी., मानव संसाधन विकास मंत्रलय तथा शिक्षा से सम्बन्धित अन्य महत्वपूर्ण घटक इकाईयाँ ई. लर्निंग के क्षेत्र में अनेक नवीन परियोजनाओं से छात्र-छात्राओं को गुणवत्तापूर्ण प्रशिक्षण उपलब्ध करा रही हैं, इसी क्रम में MOOC (मैसिव ओपन ऑनलाइन कोर्स) का महत्वपूर्ण योगदान है। ये पाठ्यक्रम न केवल भारत अपितु एम.आई.टी., हावर्ड, कैम्ब्रिज आदि विश्व प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों द्वारा भी चलाये जा रहे हैं। इन पाठ्यक्रमों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह पाठ्यक्रम विश्व भर के समस्त विद्यार्थियों के लिए सुलभ हैं। इनमें से अधिकांश पाठ्यक्रम निःशुल्क हैं तथा अवधी पूर्ण होने पर इन पाठ्यक्रमों में न्यूनतम शुल्क देकर प्रमाण पत्र भी प्राप्त किया जा सकता है। शिक्षण के क्षेत्र में इसका सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसमें सम्मिलित पाठ्य सामग्री विश्व के बेहतरीन शिक्षाविदों द्वारा तैयार की जाती है, जो कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का अत्यंत आवश्यक अंग है।

मानव संसाधन विकास मंत्रलय द्वारा 9 July 2017 को 'Study Webs of Active Learning for Young Aspiring Minds* ¼SWAYAM½ नामक MOOC प्लेटफार्म की स्थापना की गयी है जिसमें हाईस्कूल स्तर से लेकर परास्नातक स्तर तक 2000 पाठ्यक्रमों को सम्मिलित किया गया है जिसमें 1,2541992 विद्यार्थी पंजीकृत है।

इसके अतिरिक्त इस मंत्रलय द्वारा ई. लर्निंग के अन्य प्रमुख स्रोत निम्न हैं -

- SWAYAMPRABHA(https://www.swayamprabha.gov.in/)
- National Digital Library (NDL) (https://ndl.iitkgp.ac.inè)
- e-Yantra (https://www.e-yantra.org/)
- Virtual Labs (http://www.vlab.co.in/)
- e-gyankosh (http://egyankosh.ac.in/)
- Gyan Darshan (http://www.ignouonline.ac.in/gyandarshan/)
- Gyan Vani (105.6 FM Radio) & Gyandhara (web radio) (http://ignouonline.ac.in/Gyandharaè)
- DIKSHA (https://diksha.gov.in/)
- Epathshala (http://epathshala.gov.in/)
- e-PG Pathshala (https://epgp.inflibnet.ac.in/)
- e-ShodhSindhu (https://ess.inflibnet.ac.in/)
- Shodhganga (https://shodhganga.inflibnet.ac.in/)
- Shodh Shudhhi (PDS)(https://pds.inflibnet.ac.in/)
- VIDWAN(https://vidwan.inflibnet.ac.in/)
- Spoken Tutorial (https://spoken-tutorial.org/)

- NEAT (https://neat.aicte-india.org/)
- SAKSHAT (https://sakshat.ac.in/)

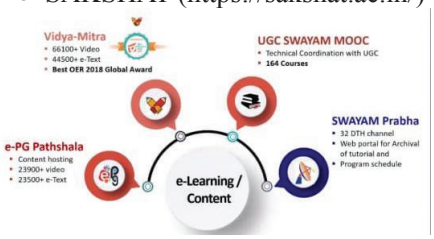

चित्र सं. 1

उपरोक्त सभी माध्यम ई. लर्निंग के क्षेत्र में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

भारतीय शास्त्रीय नृत्य कथक में ई. लर्निंग का स्वरूप :-

ई. लर्निंग द्वारा समर्थित सभी पाठ्यक्रमों में तेजी से प्रसिद्धि प्राप्त करने वाला एक पाठ्यक्रम कथक नृत्य भी है। यद्यपि शिक्षा के परम्परागत स्वरूप का पक्षधर यह पूर्णतः एक प्रयोग प्रधान विषय है, तथापि वैश्विक स्तर पर एक लोकप्रिय नृत्य शैली के रूप में संवर्धित यह नृत्य आज बड़े पैमाने पर ऑनलाइन माध्यमों द्वारा विश्व के कोने-कोने तक पहुँच चुका है। आज माउस के एक क्लिक पर हमारे समक्ष कथक नृत्य की ऑनलाइन शिक्षा प्रदान करने वाली असंख्य वेबसाइटों के लिंक प्रस्तुत हो जाते हैं, जिनमें अपनी रूचि तथा सुविधानुसार विद्यार्थी एक निर्धारित शुल्क द्वारा पंजीकृत होकर निर्बाधित होकर इस नृत्य का प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते हैं। इस विषय की वैश्विक लोकप्रियता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि वर्तमान समय में अनेक ऑनलाइन शिक्षण मंचों (Platforms) पर लाखों की संख्या में विद्यार्थी पंजीकृत हैं।

भारत में इण्टरनेट क्रांति से पूर्व नृत्य के व्यवसायपरक आयाम से अत्यन्त सीमित मात्र में जनसमुदाय परिचित था परन्तु विगत दो दशकों में इण्टरनेट के व्यापक प्रयोग से कथक नृत्य में भी व्यावसायिकता का समावेश हुआ है। आज लगभग सभी कथक कलाकारों की निजी वेबसाइट हैं। यू-ट्यूब, फेसबुक, ट्वीटर, ब्लॉग आदि के माध्यम से न केवल भारत बल्कि सम्पूर्ण विश्व में हो रही कथक सम्बन्धी गतिविधियों से जिज्ञासु छात्र-छात्राएँ परिचित हैं। इस क्षेत्र में आधुनिक युग की आवश्यकताओं के अनुरूप विश्व के एक कोने में बैठा विद्यार्थी विश्व के दूसरे कोने में उपलब्ध अपने ग्लोबल नृत्य शिक्षक अथवा गुरु से नृत्य का ऑनलाइन प्रशिक्षण प्राप्त कर रहा है।

वर्तमान समय में अनेक यू-ट्यूब चैनलों, व्यक्तिगत वेबसाइटों, गूगल डुओ, स्काईप प्रीमियम, क्लासरूम डांट लाइव आदि डिजीटल स्रोतों की सहायता से कथक नृत्य का ऑनलाइन प्रशिक्षण प्रदान किया जा रहा है। इन सभी उपक्रमों की सहायता से कथक नृत्य शिक्षण सामग्री को विद्यार्थियों के साथ साझा किया जाता है, इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से कथक प्रशिक्षण प्रदान करने वाली लोकप्रिय वेबसाइटें निम्न है-

- kathaklessonsonline.com - by GAALC (Global Academy of Arts Language and Culture)
- www.dancelessonsonline.in
- www.sangeetamazumdar.com
- www.learnkathakonline
- natyasutra.com
- teacheron.com
- wwwdivyamusic.com
- kathakdance.org

इसके अतिरिक्त अनेक कथक प्रशिक्षक अपने निजी यू-ट्यूब चैनल के माध्यम से भी कथक प्रशिक्षण दे रहे हैं। इन सभी उपक्रमों द्वारा न केवल कथक के प्रारंभिक स्तर के विद्यार्थियों को कथक प्रशिक्षण दिया जा रहा है, बल्कि कथक नृत्य के उच्च शिक्षण में भी इन उपक्रमों का हस्तक्षेप है। गुरु संध्या पुरेचा द्वारा बॉम्बे में स्थापित 'भरत कॉलेज ऑफ फाइन आर्ट्स एण्ड कल्चर' नाट्यशास्त्र से सम्बन्धित अनेक विषयों पर ऑनलाइन पाठ्यक्रम का सफलतापूर्वक

संचालन कर रहा है। इसके अतिरिक्त 'स्वयम्' में भी रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय की भूतपूर्व आचार्य, कथक नृत्य डॉ. अमिता दत्ता द्वारा कथक नृत्य में स्नातक स्तर पर फाउण्डेशन कोर्स को सम्मिलित किया गया है। इस पाठ्यक्रम की अवधि डेढ़ माह (6 हते) की जिसमें यू.जी.सी. द्वारा स्वीकृत स्नातक स्तर के पाठ्यक्रम को रूपांकित किया गया है तथा इसमें 1300 विद्यार्थी पंजीकृत है। इस फाउण्डेशन कोर्स की समाप्ति पर ऑनलाइन परीक्षा का प्रावधान भी है।

www.dancewithmadhuri.com द्वारा प्रसिद्ध अभिनेत्री माधुरी दीक्षित पद्मविभूषण पं. बिरजू महाराज के साथ कथक प्रशिक्षण दे रही हैं। यद्यपि ऑनलाइन शिक्षण के सम्बन्ध में स्वयं पं. बिरजू महाराज के विचार इस प्रकार है—''A Guru correcting you, teaching you, refining you and your mudras (hand gesture) ..... it is very important. You can't compare the two (Online and Live Classes). Online is good for an idea of the dane, but to learn it actually a classroom and your guru are important.''

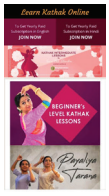

चित्र सं. 2

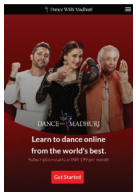

चित्र सं. 3

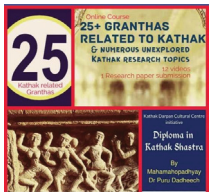

चित्र सं. 4

संस्थाओं से इस विषय में सर्टिफिकेट कोर्स संचालन हेतु मान्यता प्राप्त है।

इन प्रमाण-पत्र आधारित पाठ्यक्रमों में सम्पूर्ण पाठ्यक्रम के दोनों पक्षों सैद्धान्तिक तथा क्रियात्मक की शिक्षण प्रविधि का एक सुनियोजित प्रारूप तैयार किया गया है, जिसमें ऑडियो, वीडियो रिकार्डिंग तथा लाइव कक्षा द्वारा पाठ्य सामग्री को पंजीकृत विद्यार्थियों से साझा किया जाता है। इसके अतिरिक्त ग्रीष्म तथा शीत ऋतु में विशेष प्रशिक्षण कार्यशालाओं का आयोजन भी किया जाता है, जिनमें उच्च स्तरीय कथक प्रशिक्षकों व गुरुओं द्वारा मास्टरक्लास ली जाती है। इस प्रकार निर्धारित अवधि में पाठ्यक्रम पूर्ण कर ऑनलाइन परीक्षा द्वारा विद्यार्थी को अग्रिम कक्षा के लिये प्रोन्नत किया जाता है, इसी तरह से इस शिक्षण पद्धति के अधिकाधिक वैश्विक प्रचार-प्रसार हेतु कुछ संस्थाएँ ऑनलाइन नृत्य महोत्सवों (online dance festivals) का भी आयोजन कराती रहती है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कथक नृत्य की ऑनलाइन शिक्षण प्रविधि एक तरह से वर्तमान युग में कथक नृत्य शिक्षा की परम्परागत शिक्षण परम्परा का ही अनुगमन कर रही है। जहाँ ऑनलाइन शिक्षण का यह क्रमबद्ध तथा सुनियोजित तरीका विश्व भर के कथक जिज्ञासुओं को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। वही नृत्य जैसी प्रयोगप्रधान तथा सूक्ष्म कला के ऑनलाइन अध्ययन-अध्यापन के अनेक लाभ व हानि युक्त पक्ष भी है।

कथक नृत्य शिक्षण के क्षेत्र में ई. लर्निंग के प्रमुख लाभ :-

नृत्य जैसे व्याकरण सम्मत विषय में ई. लर्निंग एक नवोदित व नवाचार युक्त शिक्षण व्यवस्था है। परम्परागत विषयों में ई. लर्निंग के सभी लाभ कथक नृत्य शिक्षा की ई. लर्निंग प्रणाली में भी प्रमुखता से लागू होते हैं, जिनमें सर्वप्रमुख है इस नृत्य शैली के क्रमबद्ध शिक्षण की सर्वसुलभता। यदि नृत्य के परम्परागत शिक्षण-व्यवस्था की बात करें तो यह व्यवस्था स्थान विशेष तक ही सीमित है। इसका मुख्य कारण यह है कि आज भी कथक नृत्य को अनेक विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में अन्य विषयों के समान समावेशित नहीं किया गया है, जिसके कारण भारत में कुछ राज्यों के विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों तथा निजी संस्थानों को छोड़कर इस नृत्य शैली के व्यापक स्तर पर शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था न के बराबर ही है इस स्थिति में नवीन संचार व तकनीक की सहायता से इस क्षेत्र में रूचि रखने वाली शिक्षार्थी यू-ट्यूब, फेसबुक आदि के

वीडियो को देखकर आधी-अधूरी जानकारी प्राप्त करते हैं, परन्तु इस विषय की ई. लर्निंग के माध्यम से न केवल भारत अपितु वैश्विक स्तर पर इस नृत्य का चरणबद्ध शिक्षण प्रारम्भ हो पाया।

- समय, स्थान तथा धन की बचत भी ई. लर्निंग की एक प्रमुख विशेषता है, जिज्ञासु व्यक्ति विश्व के किसी भी कोने से अपनी सुविधानुसार समय पर बिना यात्र किये न्यूनतम लागत पर सीख सकता है।
- कथक नृत्य में ई. लर्निंग प्रदान करने वाली अनेक संस्थाओं द्वारा पाठ्यक्रम के पाठ्य को बोधगम्य सरल बनाने हेतु भी सार्थक प्रयास किये जा रहे हैं।
- नृत्य शिक्षण की यह प्रविधि न केवल कथक के प्रारम्भिक स्तर की शिक्षा दे रही है, बल्कि इस क्षेत्र में आने वाली युवा पीढ़ी के लिये भी दिशा निर्देशन का कार्य कर रही है। कोराना काल में लॉकडाउन के कारण जब एक स्थान से दूसरे से दूसरे स्थान पर जाना सम्भव नहीं है, ऐसे समय में नृत्य के विद्यार्थियों के लिए ऑनलाइन शिक्षा अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हो रही है। अभी हाल में ही 'दीक्षा' (https://diksha.gov.in) प्लेटफॉर्म की सहायता से पं. राजेन्द्र गंगानी तथा विदुषी मालती श्याम जी ने 5 दिवसीय ऑनलाइन कथक कक्षाओं में कथक नृत्य का सफलतापूर्वक प्रशिक्षण दिया है।

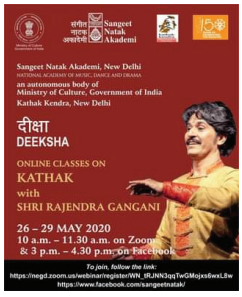

चित्र सं. 5

चित्र सं. 6

- कथक नृत्य शिक्षण की इस प्रविधि के कारण विश्व भर में कथक नृत्य के शिक्षार्थियों की संख्या में व्यापक रूप से बढ़ोत्तरी हो रही है, साथ ही प्रशिक्षकों को भी अपनी कला से व्यावसायिक लाभ प्राप्त करने के स्वर्णिम अवसर प्राप्त हो रहे हैं।
- संचार क्रांति में आये नव-प्रवर्तनों की व्यापक जानकारी (जिसे सरल भाषा में टेक्नोफ्रेंडली कह सकते हैं) ऑनलाइन शिक्षण देने वाले प्रशिक्षकों के लिये वरदान है। इन सभी तकनीकों का प्रयोग ऑनलाइन शिक्षण देने वाले प्रशिक्षक अपनी रचनात्मक क्षमता के अनुसार पर कर सकते हैं।
- ई. लर्निंग प्रविधि का एक अन्य लाभ यह भी है कि इसे विद्यार्थी शिक्षा के परम्परागत प्रारूप के साथ-साथ जारी रख सकते हैं, जैसे यदि कोई विद्यार्थी विश्वविद्यालय में स्नातक पाठ्यक्रम में पंजीकृत है तो वह ऑनलाइन डिप्लोमा कोर्स भी आसानी से कर सकता है।

वर्ष 2020 के प्रारंभिक चरण से ही सम्पूर्ण विश्व कोविड-19 जैसी वैश्विक महामारी से ग्रसित है। इस भयावक स्थिति से जीवन का प्रत्येक पक्ष बुरी तरह प्रभावित हो रहा है। तमाम सामाजिक व्यवस्थाएँ व कार्यप्रणालियों में आवश्यक व मूलभूत परिवर्तन किये जा रहे हैं।

कथक नृत्य में ऑनलाइन शिक्षा जहाँ एक ओर वर्तमान की प्रमुख आवश्यकताओं है वहीं दूसरी ओर इसमें कुछ क्रियात्मक त्रुटियाँ भी है, जिन्हें दूर कर निश्चित ही कथक नृत्य शिक्षा को ई. लर्निंग प्रारूप इस विधा के परम्परागत शिक्षण के समकक्ष सभी मानदण्डों में खरा उतर सकता है।

यह निर्विवाद सत्य है कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को देखते हुए आनलाइन शिक्षण का एकमात्र विकल्प हमारे समक्ष है परन्तु क्या वास्तव में कथक नृत्य शैली, जो कि प्रयोगप्रधान विषय है। कथक नृत्य के परम्परागत शिक्षण का समुचित विकल्प है? साथ ही यह प्रश्न भी विचारणीय है कि शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य चरित्र निर्माण, सामाजिक कल्याण व ज्ञान का उत्तवेत्तर विकास ई. लर्निंग द्वारा सम्भव है।

कथक नृत्य के सैद्धान्तिक पक्ष को तो ई. लर्निंग के माध्यम से पढ़ाने के अनेक रोचक विकल्प हमारे पास है परन्तु क्रियात्मक पक्ष का सूक्ष्म व सटीक प्रशिक्षण वास्तव में कठिन कार्य है। यदि हम मूलभूत क्रियात्मक अंगों जैसे तत्कार में पैर का रखाव, पदाघात का सही रूप, दृष्टि प्रयोग का सही ज्ञान, हस्तकों में अंगशुद्धि, रेखाओं व बनने वाले कोणों का समुचित ज्ञान, चक्करों के सही अभ्यास की विधि इत्यादि को देखें तो ई. लर्निंग के माध्यम से इनका सुस्पष्ट व सही ज्ञान देना एक कठिन प्रक्रिया है। यद्यपि यदि प्रशिक्षक पूर्ण रूप से नवीन तकनीक से परिचित हो तो यह संभव हो सकता है। यदि उच्च प्रशिक्षण की बात करें तो अभिनय पक्ष की तकनीकी दक्षता के लिये भी प्रशिक्षित गुरु का सान्निध्य आवश्यक है। इसके अतिरिक्त पारम्परिक रूप से कथक प्रशिक्षण में क्रियात्मक पक्ष के साथ-साथ व्यावहारिक पक्ष का भी गुरु के मार्गदर्शन में सतत् विकास होता है। कक्षा में सहभागिता व अन्य विद्यार्थियों के साथ प्रतिस्पर्धा का वातावरण एक विद्यार्थी के लिये अत्यन्त आवश्यक है, जो कि भविष्य में एक कलाकार के सम्पूर्ण व्यक्तित्व निर्माण की अहम कड़ी है, ई. लर्निंग व्यवस्था में यह भी एक महत्वपूर्ण चुनौती है। स्वयंप्रभा, ई-पाठशाला, स्वयम्, विद्यामित्र आदि पर उपलब्ध कथक नृत्य से सम्बन्धित प्रयोगात्मक तथा शास्त्र सम्बन्धी ई-सामग्री के अतिरिक्त अनेक पुस्तकें, लेख, शोधपत्र, शोध प्रबन्ध को भी डिजिटल माध्यम से जोड़ने की आवश्यकता है, जिससे विद्यार्थियों को अधिकाधिक विषय से सम्बन्धित प्रमाणित जानकारी प्राप्त हो सके।

भारतीय परिवेश में इण्टरनेट कनेक्टिविटी, कम्प्यूटर व अन्य डिजिटल माध्यमों की समुचित उपलब्धता भी एक प्रमुख समस्या है। इसके अतिरिक्त डिजिटल माध्यमों द्वारा शिक्षा प्राप्त करना स्वास्थ्य की दृष्टि से भी एक उत्तम विकल्प नहीं माना जा सकता, विशेष रूप से मंचीय कलाओं के क्षेत्र में जहाँ एक नर्तक या नर्तकी के लिये शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य अत्यन्त महत्वपूर्ण कारक है।

अनेक उच्च कोटि के गुरु-शिक्षण की इस डिजिटल व्यवस्था में स्वयं को असहज पाते हैं। इस दृष्टि से भी तकनीक के साथ सामंजस्य अपेक्षित है।

वर्तमान समय की आवश्यकता को ध्यान में रखकर आज अनेक कथक प्रशिक्षक ऑनलाइन कक्षाओं का संचालन कर रहे हैं, जिनमें से कुछ अल्पावधि को ऑनलाइन पाठ्यक्रम भी संचालित करा रहे हैं। ई. कक्षाओं की अधिकता भी कभी-कभी विद्यार्थियों को भ्रमित कर सकती है। साथ ही गुणवत्तापूर्ण कथक शिक्षा का ज्वलंत प्रश्न तो हमारे समक्ष है ही।

यह वास्तव में भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में चमत्कार से कम नहीं है कि अभी हाल ही में 29 जुलाई 2020 को केन्द्रीय मंत्रिमण्डल द्वारा नवीन शिक्षा नीति को स्वीकृत किया गया है, जिसका प्रमुख उद्देश्य स्कूली तथा उच्च शिक्षण प्रणाली में व्यापक परिवर्तन कर तकनीकी समावेश द्वारा एक श्रेष्ठ भारत का निर्माण है। इस शिक्षा नीति के अनुसार उच्च शिक्षण संस्थानों के पाठ्यक्रत में संगीत, दर्शन, कला, नृत्य व रंगमंच की अनिवार्यता को सुनिश्चित किया जायेगा, जिसकी पूर्व की शिक्षण व्यवस्था में लगभग उपेक्षा ही हो रही थी, साथ ही इन सभी विषयों को स्कूली शिक्षा का भी अनिवार्य अंग बनाया जायेगा, जिसके सुपरिणाम निकट भविष्य में देखने को मिलेंगे। आज जबकि डिजिटल इण्डिया अभियान सम्पूर्ण देश को एक डिजिटल रूप से सशक्त समाज एवं ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था में परिवर्तित करने में अपनी सार्थक भूमिका निभा रहा है। अतः वर्तमान स्थिति को देखते हुये यह कहना सूरज को दिया दिखाने जैसा होगा कि भविष्य में प्रौद्योगिकी शिक्षण व्यवस्था का एक आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य अंग सिद्ध होगी।

निःसन्देह कथक नृत्य की ई. लर्निंग प्रणाली द्वारा विगत कुछ वर्षों में ही कथक नृत्य शैली के

वैश्विक विद्यार्थियों व दर्शक वर्ग में अभूतपूर्व वृद्धि हुयी है इससे जहाँ एक ओर ई. लर्निंग प्रदाता मंचों में अत्यधिक बढ़ोत्तरी हुई है वहाँ इस शैली में व्यवसाय के नवीन आयाम भी जुड़े है। इस क्षेत्र से सम्बद्ध वरिष्ठ गुरु, अध्येता, शिक्षक, शिक्षाविदों का समन्वयात्मक प्रयास तथा तकनीक के क्षेत्र में डिजिटल माध्यमों के उन्नत ज्ञान के समन्वित प्रयोग द्वारा निश्चित ही निकट भविष्य में यह नृत्य शैली विश्व का सर्वाधिक प्रचलित व ई. लर्निंग समर्थित विषय बन सकता है।

सन्दर्भ सूची :-

1. भारतीय संगीत का इतिहास-शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे, 1968, पृ0 127
2. icd translation.com/history of e-learning
3. https://eduexpost.in/online_edu
4. SWAYAM (https://swayam.gov.in/)
5. https://swayam.gov.in
6. https://www.ndtv.com

चित्र सूची :-

1. एम. एस. पॉवर प्वाइण्ट प्रेजेन्टेशन स्लाईड (मनोज कुमार के., साइंटिस्ट- (E-CS Inflibnetcentre/ UGC) द्वारा प्राप्त)
2. www.learnkathakonline.com
3. www.dancewithmadhuri.com
4. https://m.facebook.com/kathakshastra/?_rdr
5. https://m.facebook. com/sangeetnatak/ photos/a. 9275472 90589303/ 3255179574 492718/ ?type=3&source=48
6. https://m.facebook.com/sangeetnatak/ photos/a.1099584256718 938/34446865 68875350/?type=3&source=54&ref=page_internal

मध्य प्रादेशिक की लोक चित्रकला परम्परा : एक अध्ययन

डॉ. किरन मिश्रा

अमरनाथ झा मार्ग, जार्ज टाउन प्रयागराज

शोध सारांश

एक चित्र हजारों शब्दों के बराबर होते हैं। यर्थात में भी ऐसा ही होता है। किसी भी चित्र के जो भाव होते हैं वास्तव में उसे देखने वाले व्यक्ति के मनोभावों से मिलकर अभिव्यक्त होते हैं। दृश्य अभिव्यक्ति में लोक परम्परा की एक लम्बी यात्रा शामिल होती है। उस परम्परा का लोप कर हम दृश्य अभिव्यक्ति को ठीक तरह से प्रस्तुत नहीं कर सकते हैं। इस कारण अनादिकाल से ही समृद्ध भारत की लोक चित्रकला परंपरा को संरक्षित रखना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। इस दिशा में काफी प्रयास भी किये जा रहे हैं। सरकारी एवं स्थानीय स्तर पर लगातार जनजाति चित्रकला का संरक्षण, प्रशिक्षण एवं प्रचार-प्रसार किया जा रहा है। इस सन्दर्भ में मध्य प्रदेश की लोक चित्रकला परम्परा को समझाना ज्यादा समीचीन है। मध्य प्रदेश क्षेत्र में स्थापत्य कला, मूर्तिकला, शिल्प कला तथा लोक कलाओं को संरक्षित करने वाले महान साम्राज्यों का यह क्षेत्र रहा है। मध्यप्रदेश में अवंति में हैहय राजवंश, शिशुनाग वंश, मौर्य वंश, शक वंश कुशाण वंश, गुप्त राजवंश, चालुक्य और चंदेल वंशजों ने यहां पर शासन किया और असंख्य भवनों, मंदिरों, जलाशयों, किलों और महलों के साथ ही कूपो का भी निर्माण कराया। जिसके चिन्ह आज भी हमको बड़ी आसानी से दिखाई देते हैं। मध्य प्रदेश की चित्र कला और वास्तुकला विश्व के उत्कृष्ट उदाहरणों में से एक है।

कीवर्ड

चौकपुरबा, मेंहदी महावर, हात्यो (स्वास्तिक), कोड़र, जिरोती

मध्य प्रादेशिक की लोक चित्रकला परम्परा : एक अध्ययन

मध्य प्रदेश की लोक चित्रकला परम्परा अनादिकाल से ही समृद्ध रही। यहां की समृद्ध चित्रकला परम्परा इतिहास को स्पष्ट रेखांकित करती है। मध्य प्रदेश की गुफा चित्रों में भीमबेटका गुफा तथा वहां की गुफा में पाए गए चित्र प्राचीनतम उदाहरण है। मध्य प्रदेश क्षेत्र में स्थापत्य कला, मूर्तिकला, शिल्प कला तथा लोक कलाओं को संरक्षित करने वाले महान साम्राज्यों का यह क्षेत्र रहा है। मध्यप्रदेश में अवंति में हैहय राजवंश, शिशुनाग वंश, मौर्य वंश, शक वंश कुषाण वंश, गुप्त राजवंश, चालुक्य और चंदेल वंशजों ने यहां पर शासन किया और असंख्य भवनों, मंदिरों, जलाशयों, किलों और महलों के साथ ही कूपो का भी निर्माण कराया। जिसके चिन्ह आज भी हमको बड़ी आसानी से दिखाई देते हैं। मध्य प्रदेश की चित्र कला और वास्तुकला विश्व के उत्कृष्ट उदाहरणों में से एक है।

उपकल्पना

मध्य प्रदेश की लोक चित्रकला परंपरा में प्रकृति की झलक दिखाती है।

मध्य प्रदेश की लोकचित्रकला परंपरा भागवान के प्रति आस्था पर केन्द्रित है।

शोध प्रविधि

शोध पत्र के निष्पादन अवलोकन विधि द्वारा किया गया है। असहभागी अवलोकन के माध्यम से मध्य प्रदेश के जनजातिय समाज की लोक परंपरा और उस दौरान बनाये जानी वाली आकृति, प्रयोग किये जाने वाले पदार्थ के संबंध में तथ्यों का संकलन एवं मान्यताओं को सूक्ष्माता से लिपिबद्ध किया गया। तथ्यों के संकलन के दौरान चित्रों की छायाप्रति भी एकत्र की गईं।

मध्य प्रदेश की कलाएं :- मध्य प्रदेश कला और संस्कृति के मामले में आदि काल से अग्रणी रहा है। यहां पर शिल्प कला, मूर्तिकला, चित्रकला, स्थापत्य कला, लोक कला, जनजातीय कला का बिखरा हुआ सांस्कृतिक समग्र हमको पूरे प्रदेश भर में देखने को मिलता है। यहां की कला संस्कृति के बारे में हिंदू प्राचीन ग्रंथों में जगह-जगह पर वर्णन मिलता है। यह कला संस्कृति मान्यताओं, धर्म, संस्कृत, जीवन पद्धति, उत्सव, विवाह, संस्कार, चमत्कार प्रदर्शन में भी देखने को मिलता है।

सांस्कृतिक क्षेत्रों की लोक चित्रकलाएं :- जब किसी भूभाग या अंचल के खान-पान, जीवन जीने के तरीकों, संस्कारों और बोल-चाल की भाषा में एकरूपता होती है, तो उस भूभाग को एक विशिष्ट सांस्कृतिक क्षेत्र कहते हैं। इस एकरूपता को बड़े ही आसानी से समझा जा सकता है। सांस्कृतिक सीमायें हमेशा अस्पष्ट होती हैं। एक अंचल की संस्कृति, भाषा तथा विशेषता धीरे-धीरे कम होने लगती हैं, तो दूसरी भाषा या संस्कृति प्रभावी होने लगती है। इसलिये दो संस्कृतियों के बीच स्पष्ट सीमांकन नहीं किया जा सकता है। यही कारण है की दो सांस्कृतिक क्षेत्रों के बीच एक मिश्रित क्षेत्र होता है, जहां पर दोनों संस्कृतियों के प्रभाव देखने को मिलता हैं। भारत के मध्य क्षेत्र को मोटे तौर पर बुन्देलखण्ड सांस्कृतिक क्षेत्र (उत्तर-पूर्व), निमाड़ सांस्कृतिक क्षेत्र (दक्षिण) मालवा सांस्कृतिक क्षेत्र (पश्चिम) बघेल सांस्कृतिक क्षेत्र (दक्षिण-पूर्व) में विभाजित किया जा सकता है।

बुंदेली लोक चित्रकला परम्परा :- बुन्देलखण्ड मध्य भारत का एक प्राचीन क्षेत्र है। इसका प्राचीन नाम जेजाकभुक्ति है। बुन्देलखण्ड मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश दोनों के अन्तर्गत आता है। बुंदेली इस क्षेत्र की मुख्य बोली है। इस क्षेत्र में उत्तर प्रदेश के जालौन, झांसी, ललितपुर, चित्रकूट हमीरपुर, बाँदा और महोबा जिले तथा मध्य-प्रदेश के सागर, दमोह, टीकमगढ़, छतरपुर, पन्ना, दतिया जिलों के अलावा भिंड जिले की लहार तहसील और ग्वालियर जिले की मांडेर तहसील तथा रायसेन और विदिशा जिले का कुछ भाग भी शामिल है। इस क्षेत्र में अनेक लोक चित्रों को बनाया जाता है जो निम्नलिखित हैं।

उरैन :- बुंदेलखण्ड में अनेक त्योहारों, व्रतों और विवाह संस्कारों के समय घर के दरवाजे के सामने गोबर से लीपा जाता है, यहां पर इसको उरैन, टहाल और लीपबो के नाम से भी जाना जाता है। उरैन को भी बुंदेलखंड में एक लोक चित्रकला के तौर पर देखा जाता है। होली, दीपावली, शिवरात्रि, विवाह संस्कार, व्रत, उपवास, पाणिग्रहण संस्कार या किसी देवी देवता की पूजा करने के पूर्व घर के

बाहर की डेहरी और पूजा स्थलों पर गोबर से लीप कर उस पर गेहूं के आटे से चौक बनाकर, किसी भी देवी देवता की पूजा की जाती है।

चौकपुरबोः- बुंदेलखण्ड में महिलाओं द्वारा किसी भी पूजा या धार्मिक अनुष्ठान के पहले उस स्थान को लीपकर उस पर गेहूं के आटे से चौक बनाया जाता है। चौक के रूप में अष्ट दल का रेखांकन किया जाता है, जिसमें दो दोहरी रेखाएं समकोण पर एक दूसरे को काटती हुई बनाई जाती है। इसका

चित्रांकन घर के आंगन में बनाया जाता है। इस फूल चौक पर लकड़ी का पटरा या पीढ़ा रखकर उस पर प्रथम बार ऋतुवती हुई नववधू को बैठाया जाता है और उस पर फूलों की वर्षा की जाती है।

कमूरा :- बुंदेलखण्ड में लोक चित्रकला के अन्तर्गत गोबर से लीप कर आयताकार चबूतरे के अंदर दोहरी डणीचे बनाकर उसके ऊपर त्रिकोण बनाया जाता है, फिर उस पर दो आड़ी-तिरछी डणीचे बनाई जाती है। इसे ही कमूरा लोक चित्रकला कहा जाता है। यह कमूरे मुख्य रूप से सुअटा को बनाने वाले स्थान पर चबूतरे के चारों तरफ बनाए जाते हैं। कभी-कभी यह रंगीन दोहरी रेखाएं भी बनाई जाती हैं। त्रिकोणों के सिर पर दो-दो आड़ी और तीन खड़ी रेखाएं खीची जाती हैं।

गाय बीज :- बुंदेलखण्ड में आषाढ़ महीने की शुक्ल पक्ष में आसाड़ी देवता और देवियों को पूजने की परम्परा है। इस पूजा में शुक्रवार या सोमवार में सप्तमी तिथि में गाय बीज के हाते की पूजा सम्पन्न की जाती है। इस पूजा में संतान की सुरक्षा के लिए पूजा घर की दीवार पर गोबर से एक त्रिकोण बनाया जाता है। इसके उपरांत उसके बीच में महिला अपने दांये हाथ से देसी घी की छाप दीवार पर लगाती है।

बहुंए (कुलघुसू पूने) :- आषाढ़ महीने की गुरू पूर्णिमा को गुरू का पूजन किया जाता है। इस दिन घर के अंदर कमरे के चारों कोने में भित्ति पर चार बहुओं का चित्र बनाकर हल्दी से पूजा कर दूध चावल से भोग लगाते हैं। इन चारों चित्रों के सर पर छत्र और पैरों के नीचे चौकी बनाई जाती है।

बघेली लोक चित्रकला :- बघेलखण्ड ऐतिहासिक-सांस्कृतिक क्षेत्र, छत्तीसगढ़ राज्य एवं मध्य प्रदेश राज्य में स्थित है। बघेलखंड मध्य प्रदेश राज्य के दक्षिण-पूर्व में है। इसमें मध्य प्रदेश का अनूपपुर, रीवां, सतना, शहडोल, सिधी, उमरिया और उत्तर प्रदेश का सोनभद्र जिला तथा पूर्वी इलाहाबाद कुछ हिस्सा आता है। इस क्षेत्र में टोंस, सोन व उनकी सहायक नदियाँ बहती हैं। मुसलमानों के आगमन से पूर्व बघेलखंड दहाला के नाम से जाना जाता है। यहां कलचुरी वंश (छठी से बारहवीं शताब्दी) ने शासक किया। जिनका मजबूत गढ़ कालिंजर था।

कोड़र :- "बघेली सांस्कृतिक क्षेत्र में मांगलिक अवसरों पर कोड़र वेदी के रूप में बनाया जता है। इसे बनाने के लिए स्त्रियां आंगन को गोबर से लीप कर चौक पूरती हैं। आंगन के मध्य में गोल आकृति बना कर उसमें स्वास्तिक बनाया जाता है।"[56] कोड़र त्रिभुजों चर्तुभुजों एवं बिन्दुओं के योग से बनाये जाते हैं। कोड़र में एक गोला बना कर उसके उपर कई गोलों का जाल बनाया जाता है। इन आकृतियों में विभिन्न हरे, पीले, लाल रंगों को भरने पर कोड़र बहुत ही आकर्षक लगते हैं।

गुदना :- "गुदना एक शारीरिक अलंकरण के रूप में शरीर पर सुईयों के प्रयोग से बनाया जाता है। स्त्रियां सौभाग्य, मातृत्व और सम्पनता के रूप में बनवाया जाता है।"[60] बघेलखण्ड में गोंड, भील, कोल, बैगा, सहरिया जनजाति के लोग अलग-अलग गोदने बनवाते हैं। इसे स्त्रियां पुरूषों के मुकाबले अधिक बनवाती हैं। गुदना शरीर के अंगों पर बनवाया जाता है। इसके अन्तर्गत तोता, मोर, मछली, हिरन, तितली, फूल पत्ती, बिछू, जल, कुम्भ आदि अनेक ज्यामिती आकृतियां बनाई जाती हैं। गुदना बनाने के लिए सुई, सींक, काजल का लेप और रूई का प्रयोग किया जाता है।

मेंहदी महावर :- "मेंहदी महावर अंग चित्र के रूप में सौभाग्य सूचक चित्रकला है।"[61] मेंहदी के अन्तर्गत मेंहदी पेड से तोड़ी हुई पत्तियों, सूखे और हरे रूप में पीसकर घोली जाती है। जिसे स्त्रियां अपने हांथों और पैरों पर सींक से अनेक आलेखनों और आकृतियों के रूप में लगाती हैं। इसमें फूल, पत्ती, पान, सूरज, चंद्रमा, घड़ा, मछली, बेल, त्रिभुज, गोल, चतुर्भुज, षटकोण, स्वास्तिक आदि चित्रआकृतियों को बनाया जाता है। मेंहदी सूखने के बाद इसे छुड़ा कर तेल लगाया जाता है जिससे इसका रंग खिल कर आता है। "इसी तरह महावर भी सौभाग्य सूचक होता है। जिसे सुहागन स्त्रियां तीज त्योहार तथा धार्मिक अनुष्ठानों पर पैरों में लगाती है। इसमें लाल रंग को घोल कर पैरों की उंगलियों पर लगाया

जाता है।"[62] महावर में फूल, पत्ती, बेल तथा बिन्दी आकृतियों से चित्रकारी की जाती है।

मालवा की लोक चित्रकला :- मालवा सांस्कृतिक क्षेत्र मध्य प्रदेश के पश्चिमी भाग में स्थित है। इसे प्राचीनकाल में मालवा या मालवा के नाम से जाना जाता था। मालव क्षेत्र देवी लक्ष्मी के आवास का हिस्सा कहलाता है। समुद्व तल से इसकी औसत ऊंचाई 496 मीटर है। यह कर्क रेखा द्वारा दो हिस्सों में विभाजित है। "मालवा क्षेत्र में इंदौर, भोपाल, ग्वालियर व जबलपुर संभागों के लगभग 18 जिले और महाराष्ट्र व राजस्थान के कुछ हिस्से शामिल हैं। इसमें प्राचीन अवंति, अकारा और दरसन के कुछ क्षेत्र शामिल हैं। मालवा का अधिकांश भाग चंबल नदी तथा इसकी शाखाओं द्वारा सिंचित है, पश्चिमी भाग माही नदी द्वारा सिंचित है।"[63] इस क्षेत्र में अनेक लोक चित्रों को बनाया जाता है जो निम्नलिखित हैं।

मालवा में लघु चित्रकथा शैली :- मालवा क्षेत्र में अनेक लघु चित्रकथाओं को बनाने की परम्परा है। यह लघु चित्र अत्यन्त आकर्षक और सादगी पूर्ण होते हैं। "मालवा शैली में भारतीय परम्परागत विषयों का मुख्य रूप से चित्रण किया जाता है। इसमें रागमाला, बारहमासा, गीतगोविन्द, रसिक प्रिया, देवीमहत्ता, अमरूशतक, रामायण, कृष्णलीला आदि से सम्बन्धित चित्र अत्यधिक रूप में बनाये जाते हैं।"[64]

मांडना :- मालवा क्षेत्र मांडने के अर्थ में मंडप, आंगन, घर द्वार, देहरी, चौपाल को सजाने से है। लोक चित्र में मांडना बनाने के लिए रूई या कपड़े को उंगलियों से दबाकर जमीन पर बनाया जाता है। इसे जमीन पर खड़िया, गेरू, लाल, पीले, नीले, सफेद रंगों से बनाया जाता है। दीवाली, होली, मकर संक्रांती त्योहारों एवं मांगलिक अवसरों पर परम्परागत रूप से ज्यामिती आकृतियों के समूहों से बनाया जाता है। हांथ के छापे :- मालवा क्षेत्र में तीज त्योहारों, मांगलिक अवसरों और उत्सवों पर परिवार की मंगल कामना के लिए घर की महिलाएं घर के दरवाजे के दोनों ओर हांथ के पांच-पांच छापे बनाती हैं। छापों को लगाने के लिए चावल को पीसकर उसका गाढ़ा घोल तैयार किया जाता है। इसमें हल्दी या सिन्दूर डाला जाता है, इसे ऐपड़ कहते हैं। छापे लगाने के बाद उंगलियों के ऊपरी भाग से सिन्दूर की बिन्दियां लगाई जाती हैं। पांच छापों के बीच में स्वास्तिक का चित्र बनाया जाता है। दीवाली के अवसर पर घर के पालतु पशुओं पर भी हांथ के छापे लगाये जाते हैं।

हात्यो (स्वास्तिक) :- हात्यो एक प्रकार का मंगलसूचक चिन्ह है। हात्यो का चिन्ह चार की संख्या के रूप में चारों वेदों, चारों वर्णों, चारो दिशाओं, चारो पुरूषार्थों तथा चारो आश्रमों को इंगित करता है। भारत में प्राचीन काल से ही किसी भी शुभ कार्य को प्रारम्भ करने में हत्यो या स्वास्तिक का प्रयोग किया जाता रहा है।

कुमकुम के पगल्ये :- मालवा क्षेत्र में नव वधु के प्रथम गृह आगमन के समय कुमकुम या सिन्दुर के घोल वाली थाली में पैर रखते हुए नव वधु घर में कुमकुम या सिन्दुर के पैरों की छाप छोड़ते हुए आगे बढ़ती है। इसी को मालवा क्षेत्र में कुमकुम के पगल्ये कहते हैं। ऐसी मान्यता है कि जब पूरे पैर के चित्र बनते हैं, तो नव वधु के आगमन से घर में धन-धान्य में वृद्धि होगी और अगर पूर्ण नहीं बनते हैं तो वह नव वधु की चंचलता और घर में खालीपन को दर्शाता है।

संजा :- मालवा क्षेत्र में क्वार मास के श्राद्ध पक्ष में शाम के समय कुंवारी कन्याएं अपने-अपने घर के सामने की दीवारों को गोबर से लीपकर उसपर गोबर से चौकोर घेरा बनाती हैं। घेरे में गोबर से प्रतिदिन अनेक प्रकार की आकृतियां बनाई जाती हैं। इन आकृतियों पर फूल की पंखुडियां चिपका कर रंगबिरंगा बनाया जाता है। इन चित्र आकृतियों पर कुमकुम लगाकर पूजा की जाती है, भोग चढ़ाया जाता है और प्रसाद बाटा जाता है।

जिरोती :- निमाड़ क्षेत्र में जिरोती भित्ति चित्र रंग विधान की दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर और निमाड़ की स्त्रियों का अत्यन्त प्रिय त्योहार है। यह त्योहार श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की अमावस्या को मनाया

जाता है। लोग इसे जिरोती अमावस्या या हरियाली अमावस्या भी कहते हैं। जिरोती लोक चित्र बनने की रूपरेखा त्योहार के सात दिन पहले से ही बना ली जाती, जिरोती का सम्पूर्ण चित्र बन जाने बाद घर की बहू बेटियां हरियाली अमावस्या के दिन प्रातः काल नहा कर, साफ कपड़े पहन कर जिरोती देवी की पहले से बनी आंखों में काली, सफेद पुतलियां बना कर उनकी आंखें खोल देती हैं और दूध दही, चावल, कुमकुम से पूजा कर प्राण प्रतिष्ठा करती है।

जनजातीय लोक चित्रकला :- मध्य प्रदेश क्षेत्र में अनेक जनजातियां निवास करती हैं। इन जनजातियों में इन लोकचित्र परम्पराओं के कुछ लोक चित्रों के अलावा उनके खुद के अलग-अलग जनजातियों के हिसाब से लोक चित्रों या जनजातिय चित्रों को बनाने की परम्परा है। इन जनजातियों में मुख्य तौर पर गोंड, भील, कोरकू, बैगा जनजातियों में लोक चित्रों को बनाने की विशेष परम्परा है।

गोंड लोक चित्रकला :- गोंड जनजाति के लोग अपने घर को सजाने के लिए दीवारों पर हाथी, घोड़ा, मोर, चिड़िया, बैलों और मनुष्यों का चित्र बनाते है। इन भित्तियों के किनारे दीवार की तह से पतली डिजाइन बनाकर कजली, गेरू या नील से रंगा जाता है। कहीं-कही मुख्य दरवाजे के चारो तरफ दो-तीन रंगों से चित्रकारी की जाती है। विवाह के अवसर पर घर की दीवारों पर फूल-पत्ती बनाया जाता है। विवाह के ही समय कोहबर में गेरू और चूने से हल्का चित्र बनाया जाता है। दीवारों पर गोंड महिलाएं मिट्टी से उभरी रेखाएं बनाती हैं, इसको नोहडोरा कहा जाता है। इसी से गोंड चित्रकला का जन्म हुआ है। भित्तियों के किनारे देवी देवताओं के मिथकीय चित्र के साथ फूल पत्ती बनाये जाने की परम्परा है, यही आधुनिक गोंड चित्रकला के रूप में विकसित हुई है। जिसे गोंड परधान चित्रकारों के द्वारा नया आयाम दिया गया है। गोंड जनजाति की स्त्रियों में गोदना गुदवाने की भी परम्परा है।

भील लोक चित्रकला :- भील जनजाति अपने घरों को सुन्दर और आकर्षक बनाने के लिए मांगलिक अवसरों पर घर की दीवारों पर आम का पेड़, बैल, गाय, सांप, शिकार करने के औजारों का चित्रण करते हैं। इन चित्रों को गोतरेज कहते हैं। गोतरेज बनाने के बाद देवी देवताओं, भूत-प्रेतों, पूर्वजों के नाम से टीके लगाये जाते हैं।

कोरकू लोक चित्रकला :- कोरकू जनजाति के लोग अपने घरों की दीवारों पर प्रवेश द्वार के आस पास अनेक चित्रों को बनाते हैं। इस चित्रकला को गुदनी कहा जाता है। ये चित्र दीवाली की रात को कोरकू ग्वालन स्त्रियां सफेद खड़िया, लाल मिट्टी (हिरमची), मिट्टी से बनाती हैं। गुदनी मंगल सूचक चित्र होते हैं।

कोरकू लोगों में पांच वर्ष से गुदना गुदवाने की परम्परा है। गुदना करवाना एक पवित्र कार्य माना जाता है। शरीर को आकर्षक दिखाने के लिए कोरकू कुआरी स्त्रियां हाथों और पैरों पर विभिन्न गुदना चित्रों, सांकल, बहुत से बिन्दू, त्रिकोण, आड़ी तिरछी छोटी रेखाओं से सुन्दर गुदना गुदवाती हैं।

बैगा लोक चित्रकला :- बैगा जनजाति अपने घरों के प्रमुख द्वार के किनारे गेरू और काजल से दो मोटी रेखाएं उकेरते हैं। बैंगा महिलाएं घर की दीवारों पर नोहडोरा बनाती हैं। जिसमें पौन इंच मिट्टी की रेखएं खीची जाती हैं। इसी चौखाने में पशु पक्षी के चित्र, बेल-बूटे, फूल-पत्ती के चित्र बनाती हैं। बैगा स्त्रियां शरीर के हर हिस्से पर गोदना गोदवाती हैं।

भारिया लोक चित्रकला :- भारिया जनजाति के लोगों में घरों की बाहरी दीवारों पर गेरू, काली मिट्टी, छूही मिट्टी से चित्र बनाने की परम्परा है। ये लोग दीवारों पर एक या डेढ़ इंच से अधिक मोटी रेखाओं से खूटिंयों के आस पास सजावट की जाती है। इन्ही दीवारों के कोने पर सिर, पूछ, मुह, कान बनाकर घोडे, कुत्ते बिल्ली के रूपांकर बनाये जाते हैं। कही-कही मानवीय आकृतियों का भी चित्रण किया जाता है। भारिया स्त्रियों में भी शरीर पर गुदना गुदवाने की परम्परा है।

कोल लोक चित्रकला :- कोल जनजाति में लिपी हुई दीवारों पर पीली मिट्टी, सफेद मिट्टी और गेरू आदि से घर के प्रमुख द्वारा के आसपास और बाहरी भित्ति पर ज्यामिती आकृतियों, पशु पक्षी, बेल-बूटे

के चित्रों को बनाने की परम्परा है। कोल स्त्रियों में भी शरीर पर गुदना गुदवाने की परम्परा है।

निष्कर्ष

मध्य प्रदेश में लोक चित्रकला परंपरा में भागवान के प्रति अटूट आस्था है। जनजाति समाज के लोक दीवारों पर पीली मिट्टी, हल्दी, गेहूं का आटा, सफेद मिट्टी, चावल,गोबर और गेरू तथा प्राकृतिक रंगों से कलाकृतियां बनाते हैं। उन कलाकृतियों में भागवान के प्रति जनजाति समाज का सपर्ण एवं प्रकृति के प्रति प्रेम स्पष्ट रूप से झलकता है। यहां की कला संस्कृति के बारे में हिंदू प्राचीन ग्रंथों में जगह-जगह पर वर्णन मिलता है। यह कला संस्कृति मान्यताओं, धर्म, संस्कृत, जीवन पद्धति, उत्सव, विवाह, संस्कार, चमत्कार प्रदर्शन में भी देखने को मिलता है।

संदर्भ सूची

1. http://www.mptourism.com/tourist-places/bhimbetka-caves-rock-shelters.html
2. http://www.mptourism.com/tourist-places/bhimbetka-caves-rock-shelters.html
3. गैरोला वाचस्पति (1963) भारतीय चित्रकला, मित्र प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड, पेज 76
4. चौमासा, मध्य प्रदेश आदिवासी कला परिषद, अंक 34, पेज 28
5. https://bundelkhand.in/
6. प्रताप डॉ. रीता (2012), भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पेज 469
7. https://historyhindi.com/madhya-pradesh-history-hindi/
8. https://historyhindi.com/madhya-pradesh-history-hindi/
9. प्रताप डा. रीता (2012), भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पेज 537
10. https://historyhindi.com/madhya-pradesh-history-hindi/
11. http://www.indiapicks.com/Indianart/Main/MP_Central_India.htm
12. http://hindi.indiawaterportal.org/madhy-pradesh-ka-saanskrtik-parichay
13. गुप्त नर्मदा प्रसाद (प्रथम संस्करण 1995), बुंदेलखण्ड की लोक संस्कृति का इतिहास, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, ISBN 81-7119-224-X
14. मिश्र महेश कुमार (2006) सुराती, आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादमी मध्य प्रदेश संस्कृति परिषद पेज 39-41

संगीत और पर्यावरण का सम्बन्ध

डॉ चिंकी रानी

एस.ए. जैन कॉलेज, अम्बाला सिटी

भूमिका

संगीत और प्रकृति दोनों जीवन में पर्यावरणीय चेतना जगाने का कार्य करती है संगीत सिर्फ एक संदेश संचार करने का जरिया ही नहीं बल्कि एक श्रोता की चेतना में गहराई तक किसी भी संदेश को बनाए रखने के लिए शक्तिशाली हथियार है संगीत और के प्रकृति मिलन से को पर्यावरण बचाया जा सकता है भारतीय सभ्यता के आरंभ से ही पर्यावरण को सुरक्षित रखने की जागरूकता लोगों में मौजूद थी। वैदिक एवं वैदिककाल के बाद का इतिहास इस बात का साक्षी है लेकिन आधुनिक काल में विशेष रूप से स्वतंत्रता के बाद से आर्थिक प्रगति को उच्च प्राथमिकता मिलने के कारण पर्यावरण कुछ कम महत्वपूर्ण स्थान पर रह गया था केवल 1972 में पर्यावरण नियत योजना एवं सहयोग के लिए राष्ट्रीय कमेटी के गठन के लिए कदम उठाए गए जो धीरे-धीरे पर्यावरण का अलग विभाग बना और 1985 में यह पूर्ण रूप से पर्यावरण एवं वन मंत्रलय के रूप में परिवर्तित हुआ शुरुआत में भारत के संविधान में पर्यावरण को बढ़ावा देने या उसके संरक्षण के लिए किसी प्रकार के प्रावधान नहीं थे लेकिन 1977 में हुए 42 वें संविधान संशोधन में कुछ महत्वपूर्ण धाराएं जोड़ी गई जो सरकार पर एक स्वच्छ एवं सुरक्षित पर्यावरण प्रदान करने की जिम्मेदारी सौंपती है।

जब कोरोना महामारी की भयावहता के कारण 3 महीनों का लोक डाउन हुआ ऐसे दौर में जब मानव समुदाय का एक बड़ा हिस्सा अपने आप को घरों में बंद रखने को मजबूर हो और घर से बाहर निकलने घूमने फिरने से परहेज कर रहा था तो धरती पर जो जगह हमने खाली कि उसको भरने के लिए प्रकृति कदम बढ़ा कर सामने आ गई पिछले लोक डाउन के इन महीनों में मैंने कई चिड़ियों को अपने आसपास की बिल्डिंग पर गाते हुए सुना पौधों को गार्डन और उसके बाहर भी बहुत तेजी से बढ़ते हुए देखा यह सब देख कर मेरे मन में यह विचार आया कि यह संकट पूर्ण समय इंसान और प्रकृति को एक दूसरे से ज्यादा पास से जानने और जोड़ने का समय भी हो सकता हैं। पक्षियों का इस प्रकार गाना गुनगुनाना कहीं ना कहीं इस बात का प्रतीक है कि के पर्यावरण संगीत जुड़े हुए हैं।

संगीत के शाब्दिक अर्थके बारे में बात की जाए तो संगीत गायन वादन और नृत्य इन तीनों के मेल से बना है तथा शब्द पर्यावरण दो शब्दों के मेल से बना है परिआवरण 'परि' का अर्थ है चारों और 'आवरण' जो हमें चारों और से घेरे हुए है इस प्रकार पर्यावरण सभी भौतिक, रासायनिक एवं जैविक कारकों की समीष्टगत ईकाई है। जो जीवधारी अथवा परितंत्रेय आबादी को प्रभावित करती है।

मानव मन किस प्रकार भौगोलिक पर्यावरण को देखकर उस पर आसक्त होता है तथा सुख व शान्ति का अनुभव करता है उसी प्रकार भारतीय संगीत भी मनुष्य को शान्ति प्रदान करता है। ऐसा सर्वविदित है कि अच्छी सोच, अच्छे विचार तथा अच्छा संगीत सभी अच्छे पर्यावरण का निर्माण करते हैं नदी का बहना, वायु का प्रवाहमान होना, वृक्षों की सांय-सांय की आवाज सभी सुखद संगीत की ही ध्वनि है।

संगीत और पर्यावरण का सम्बन्ध

संगीत और पर्यावरण के सम्बन्ध की अगर बात की जाए तो संगीत की उत्पत्ति के विषय में कहीं ना कहीं इसे पर्यावरण से भी जोड़ा गया है। इसके लिए विद्वानों ने अनेक मत दिए हैं जोकि इस प्रकार है।

कहा जाता है कि 'अकबर' के समय में उनके दरबारी गायक 'तानसेन' जब अपनी कला का प्रदर्शन करते थे तो आस-पास के वातावरण पर इतना प्रभाव पड़ता था कि पेड़-पौधे पशु पक्षी सब मस्त होकर झूमने लग जाते थे जब तानसेन राग मल्हार गाते थे तब बादल झूमकर वर्षा करते थे इस प्रकार संगीत द्वारा पर्यावरण पर प्रभाव को प्रदर्शित किया गया है।

एक अन्य मत के अनुसार 'भरत मुनि' जी ने 'नाट्य शास्त्र' में उन्होंने संगीत के स्वरों की उत्पत्ति का माध्यम पशु पक्षियों को माना है। 'भरत मुनि' के अनुसार मोर 'सा' (षड्ज) स्वर में चातक 'रे' (ऋषभ), बकरा 'ग' (गन्धार), कौआ 'म' (मध्यम), कोयल 'प' (पंचम) मेंढक 'ध' (धैवत) तथा हाथी 'नि' (निषाद) स्वर में बोलते हैं।1

फारसी के एक विद्वान 'हजरत मूसा' जी एक बार पहाड़ों पर घूम रहे थे तभी आकाशवाणी हुई 'या मूसा हकीकी तू अपना असा' (असा एक प्रकार की लकड़ी होती है जो फकीरों के पास होती है) उसको पत्थर पर मार। जब उन्होंने साथ पड़े पत्थर पर मारा तो उसके सात टुकड़े हो गए तथा उन सातों टुकडों से पानी की धारा बहने लगी उसी धारा की आवाज से सात स्वरों की उत्पत्ति हुई।

एक अन्य फारसी मत के अनुसार पहाड़ों पर 'मूसीकार' नाम का एक पक्षी होता है, जिसकी चोंच में सात सुराख होते हैं बांसुरी की तरह उन्हीं सात सुराख की आवाज से सात स्वर उत्पन्न हुए।2

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि संगीत और पर्यावरण का अटूट सम्बन्ध है तथा ये कहीं ना कहीं एक दूसरे से जुड़े हुए है। इसी शब्दों को सार्थक करते हुए 'गैमी अर्वाड' विजेता संगीतकार प्रोफेसर रिकी केज ने 'म्यूजिक फॉर प्लेनेट' कार्यक्रम में कहा कि 'संगीत और प्रकृति' दोनों जीवन में पर्यावरणीय चेतना जगाने का कार्य करती हैं। संगीत सिर्फ एक संदेश संचार करने का जरिया ही नहीं बल्कि एक श्रोता की चेतना में गहराई तक किसी भी संदेश को बनाए रखने के लिए शक्तिशाली हथियार है। संगीत और प्रकृति के मिलन से पर्यावरण को बचाया जा सकता है।[3]

जब हम किसी भी वाद्य पर 'सा' स्वर बजाते हैं तो उसके साथ अन्य स्वर भी उत्पन्न होते हैं जिसे 'स्वयंभू' स्वर कहा जाता है अर्थात् अपने-आप उत्पन्न होने वाला तो हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि हमने तो सिर्फ 'सा' बजाया तो यह अन्य स्वर जो खुद व खुद उत्पन्न हुए वे हमें प्रकृति से प्राप्त हुआ इसलिए यह सत्य है कि यह प्रकृति प्रदत्त है और प्रकृति और संगीत आपस में जुडे हुए हैं।

मनुष्य का शरीर पंच तत्वों से बना हुआ है ये पंच तत्व जो कि पर्यावरण का हिस्सा है अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी और आकाश विद्वानों ने इन पंच तत्वों से भी स्वरों की उत्पत्ति के उदाहरण दिए है विद्वानों के अनुसार सा स्वर पृथ्वी, रे, ग जल तत्व, म, प - अग्नि तत्व ध - वायु तथा नि आकाश तत्व के प्रतिनिधि है।

इस प्रकार संगीत और पर्यावरण के बीच आपसी सम्बन्ध को ये सभी उदाहरण सिद्ध करते हैं।

निष्कर्ष

संगीत और पर्यावरण के बीच गहरे एवं अभिन्न रिश्ते का अहसास हर कोई संवेदनशील व्यक्ति महसूस कर सकता है। संगीत को सृष्टि का सृजनकर्ता कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी, संगीत सभी जड़ व चेतन में व्यापत है सरिताओं की मोहक कल-कल मधुर ध्वनि से कौन है जो मोहित नहीं होगा, पक्षियों की चहचाहट, वृक्षों का सरसराहट इत्यादि चारों तरफ संगीत की परिचायक हैं हम चाहकर भी संगीत और पर्यावरण को अलग नहीं कर सकते।

संदर्भ

1. https://hi.wikipedia.org/wiki/भारतीय संगीत का इतिहास
2. संगीत-विशारद पृ. 19
3. https://navbharattimes.indiatimes.com/metro/lucknow/other-news/music-and-nature-can-be-saved-from-the-union-of-the-environment/articleshow/64484067.cms

हिंदी चित्रपट संगीत का आठवां दशक

डॉ. देश गौरव सिंह

संगीत अध्यापक,
शिक्षा निदेशालय, एन.सी.टी., दिल्ली सरकार

सारांशः

चलचित्र संगीत के आठवें दशक में आधुनिकता से सराबोर स्वर, ताल और लय की ऐसी धारा बही कि उसमें समाज का हर वर्ग प्रवाहित हो चला। शास्त्रीय संगीत, भजन एवं गजल जैसी प्राचीन एवं परंपरागत शैलियां भी दिखीं तो एक बदले हुए नए अंदाज में। पूर्व के संगीतकार भी दिखे तो वो भी ज़्यादातर मॉडर्न दिखने की कोशिश में लगे हुए। संगीत ने पुरानी रूढ़ियों एवं मान्यताओं को दरकिनार कर फिल्म संगीत को एक उन्मुक्त वातावरण प्रदान किया जिसमें उस समय तक फिल्म संगीत में व्याप्त औपचारिकता, यथाविधि आचार आदि का ना के बराबर स्थान था। दशक का संगीत अत्याधुनिक था। यकीनन संगीत के इस आधुनिकीकरण में प्रयोगवादिता को अधिक प्रश्रय मिला परन्तु उस प्रयोगवादिता के चलते मधुरता का कहीं भी ह्रास नहीं दिखा। संगीत में माधुर्य अब भी पूरी तरह से बरकरार रहा।

संकेत शब्दः

आर. डी. बर्मन, आर्केस्ट्रेशन, प्रयोगवादी संगीत, लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल, कल्याणजी- आनंदजी

आधुनिकीकरण छठवें और सातवें दशक तक हिंदी फिल्मों का संगीत अपने पूर्ण यौवन पर पहुँच गया था। परन्तु सातवें दशक के मध्य तक सिने-संगीत की तमाम शैलियों में एक स्थिरता दिखने लगती है। सातवें दशक के अंतिम वर्षों में शंकर-जयकिशन, ओ. पी. नैयर जैसे कई नामी-गिरामी संगीतकारों का प्रभुत्व घटने लगा और उनके स्थान पर नई पीढ़ी के संगीतकारों, वादकों एवं संगीत संयोजकों का आगमन हुआ। सातवें दशक के अंतिम 2-4 वर्षों में इन संगीतकारों एवं संगीत संयोजकों द्वारा स्वर रचना, वाद्य संयोजन इत्यादि को लेकर तमाम नए-नए प्रयोगों की शुरुआत होने लगी जिसका अधिक विकसित एवं परिष्कृत रूप हमे अगले दशक में देखने को मिला और इस प्रकार आरम्भ हुआ हिंदी चित्रपट संगीत के आठवें दशक का।

यह दौर था आर. डी. बर्मन, लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल और कल्याणजी-आनंदजी जैसे युवा संगीतकारों का। इनकी तिकड़ी ने पूरे दशक पर राज किया। सर्वप्रथम चर्चा करते हैं आर. डी. बर्मन (पंचम) के संगीत की। पंचम के गीत 'चिंगारी कोई भड़के' (फिल्म-अमर प्रेम, 1972) के बारे में बात करते हुए प्रसिद्ध गिटारिस्ट भूपेंद्र सिंह जी बताते हैं कि इस गाने में उन्होंने F sharp minor कॉर्ड में G खुला छोड़ कर एक नया कॉर्ड लगाया,जो गाने में एक अदभुत प्रभाव पैदा करता है। वह बताते हैं कि यह टुकड़ा उनका स्वयं का बनाया हुआ है। यह कॉर्ड पूरे गाने को एक रिदम देता है और पूरे गाने में जगह-जगह पर प्रयोग किया गया है जो संपूर्ण गीत को एक दिव्य रुप प्रदान करता है। इस गीत में पंडित हरिप्रसाद चौरसिया द्वारा बजाई

गई बांसुरी की धुन संपूर्ण गाने को और भी दिव्य बना देती है। पंचम द्वारा बनाए गये गीत 'दम मारो दम' (फिल्म-हरे रामा हरे कृष्णा, 1971) के बारे में भूपेंद्र सिंह बताते हैं कि उन्होंने अपना पहला सोलो गिटार का टुकड़ा इस गीत में बजाया। उसके बाद से लेकर 1985 तक पंचम के गीतों में प्रयुक्त सारे इलेक्ट्रिक, एकॉस्टिक या क्लासिकल गिटार के टुकड़े उनके द्वारा ही बजाए गए।

बात करते हैं फिल्म कटी पतंग (1970) के गीत 'न कोई उमंग है' की। यद्यपि इस गीत की जड़ें शास्त्रीय संगीत के धरातल में ही समाहित हैं फिर भी इसकी संरचना जिस प्रकार की गयी है वह बिल्कुल अपरम्परागत है। केरसी लॉर्ड (संगीत संयोजक) के कथनानुसार इस गीत में उदात्त प्रभाव उत्पन्न करने के लिए बीच-बीच में इसराज, पंडित हरिप्रसाद चौरसिया जी द्वारा बजाई गई बांसुरी एवं पंडित शिव कुमार शर्मा जी द्वारा बजाये गये ईरानी संतूर का प्रयोग किया गया है। इसी फिल्म के गीत 'ये शाम मस्तानी' में इलेक्ट्रिक गिटार के कॉर्ड्स के साथ सीटी का बेहतरीन इस्तेमाल किया गया है।

पंचम दा के संगीत की तमाम विशेषताओं में से एक यह भी विशेषता रही है कि उनकी कंपोजीशन में रिदम की अभिव्यक्ति अधिकतर ताल वाद्यों के द्वारा ना होकर गाने के डायनमिक्स से होती थी। उदाहरण के तौर पर 'चुरा लिया है तुमने जो दिल को' (फिल्म- यादों की बारात, 1973), 'ये लड़का हाय अल्लाह' (फिल्म-हम किसी से कम नहीं, 1977) इत्यादि गीतों में इनकी पंक्तियों में छंद के चलन के माध्यम से रिदम खुद-ब-खुद व्यक्त हो जाता है। जिसमें वर्ल्ड डेंसिटी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। पंचम ने अपने रिदम अरेंजर मारुति राव कीर के साथ मिलकर विभिन्न ताल प्रयोग किए। शास्त्रीय संगीत पर आधारित गीत के लिए ड्रम और पाश्चात्य संगीत पर आधारित गीत में ड्रम के साथ तबला बजा कर अनेकानेक प्रयोग किये। भारतीय वाद्यों का प्रयोग भी वह अपने संगीत में इतनी कुशलता से करते थे कि वह बिल्कुल नए एवं अत्याधुनिक सुनाई पड़ते थे। आर. डी. बर्मन ने पंडित सामता प्रसाद के एकल तबला वादन का फिल्म शोले (1975) में गब्बर द्वारा बसंती का पीछा किए जाने वाले एक दृश्य के बैकग्राउंड म्यूजिक में बेहतरीन इस्तेमाल किया। फिल्म 'चरित्रहीन' (1974) के आशा भोंसले द्वारा गाए गए गीत 'तेरी मेरी यारी बड़ी पुरानी' की शुरुआत 'चाइनीस सिंबल' (इस वाद्य की परिधि पर त्पअमजे लगे होते हैं) से होकर बेस गिटार के साथ इलेक्ट्रिक गिटार के टुकड़े से होती है। इस गीत में सिंपल 2×4 बीट रिदम में टिम्पनी, ब्लउइंस और Triangle Stokes का बहुत क्लिष्ट टाइमिंग के साथ प्रयोग किया गया है। George द्वारा बजाई गई ट्रंपेट के टुकड़े को प्रत्येक लाइन के बाद इस प्रकार रखा गया है कि यह टुकड़ा गाने का एक अभिन्न अंग बन गया है। प्रत्येक बार गाना गाते समय बिना ट्रंपेट के इस के टुकड़े को गाए बगैर आगे नहीं बढ़ सकते हैं। पंचम के ऑर्केस्ट्रा के ट्रोम्बोन प्लेयर ब्लास्को मोंसोरेट का शंकर अय्यर द्वारा लिए साक्षात्कार के दौरान वह कहते हैं कि ''पंचम दा की रिकॉर्डिंग में चार ट्रोम्बोन का इस्तेमाल होता था। संगीत की दृष्टि से यह चार ट्रोम्बोन एक कॉर्ड के चार स्वर बनाते थे जिनमें से तीन जमदवत ट्रोम्बोन और एक इें ट्रोम्बोन हुआ करता था।''

चर्चा करते हैं आठवें दशक में पंचम के संगीत निर्देशन में बनी फिल्मों के कुछ उल्लेखनीय बैकग्राउंड म्यूजिक की। फिल्म 'जहरीला इंसान' (1974) में आर. डी. बर्मन ने ऋषि कपूर और नीतू सिंह के बीच प्रेम के भाव को दर्शाने के लिए बैकग्राउंड म्यूजिक में मनोहरी सिंह से ऑल्टो सैक्सोफोन पर एक बेहतरीन टुकड़ा बजवाया। आठवें दशक की फिल्मों के बैकग्राउंड की चर्चा हो रही हो और फिल्म 'शालीमार' की चर्चा ना हो ऐसा संभव नहीं है। पंचम के ग्रुप के गिटारिस्ट भूपेंद्र सिंह 'शालीमार' के टाइटल म्युजिक के बारे में बताते हैं- "उस समय जितना भी मुश्किल काम होता था वह मेरे पास आता था। फिल्म 'शालीमार' (1978) के टाइटल म्यूजिक में गिटार का जो टुकड़ा बजा हुआ है, आज तक गिटार वाले उसे बजा नहीं पा रहे हैं और उसके लिए लोग आज भी मुझे फोन करते

हैं। उस 11 मात्र में गिटार का पैटर्न ही कुछ अलग है।" फिल्म 'शालीमार' (1978) के इस अनोखे बैकग्राउंड स्कोर के पीछे जिस व्यक्ति का हाँथ था, उनका नाम है केरसी लार्ड, जिन्होंने इसका संगीत संयोजन किया था।

अरेंजर केरसी लॉर्ड का अरेजमेंट अपने समय से काफी आगे था। जो पूर्व के या उस समय के अन्य अरेंजर से बिलकुल अलग था। लॉर्ड पूर्व के दशकों में होने वाले अरेंजमेंट के बारे में प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि उस दौर में गाने की मेलोडी ऊपर जाती है तो कॉर्ड भी ऊपर जाते दिखाई देते हैं जिससे गाने के अरेंजमेंट में पुरानापन सुनाई पड़ता है। उनका कहना है ''अरेंजमेंट करते समय मैं इस बात को विशेष ध्यान देता था कि मेरा गाना सबेस्टियन या एंथनी (एंथोनी गोंसाल्वेस) जैसा साउंड ना करे।''

वास्तव में उस दौर में बॉलीवुड में पंचम दा जैसी टीम किसी के पास नहीं थी। पंचम की टीम के सभी कलाकार चाहे वह केरसी लॉर्ड हों या उनके असिस्टेंट वासुदेव चक्रवर्ती, मनोहरी सिंह, मारुति राव हों या स्वपन चक्रवर्ती। वादकों में भूपेंद्र सिंह, रमेश अय्यर, भानु गुप्ता व सुनील कौशिक (गिटार), टोनी वाज, चरनजीत सिंह (बेस गिटार), केरसी लॉर्ड (पिआनो, सिंथेसाइजर), बज्जी लार्ड, फ्रैंको वाज (ड्रम) या फिर ब्लास्को, मनोहारी सिंह (ट्रंपेट) ये सभी क्रांतिकारी म्यूजिशियन्स रहे हैं। ये सभी सोच से बहुत मॉडर्न थे और हमेशा कुछ न कुछ नया करने के लिए तत्पर रहते थे। इस दशक तक इन तमाम म्यूजिशियन्स की एक साथ पंचम की टीम में उपस्थिति ने पूरे बॉलीवुड संगीत के ट्रेंड को बदल कर रख डाला। इस प्रकार दशक में फिल्म -संगीत में संगीत-संयोजन के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर हुए आधुनिकीकरण का सबसे बड़ा कारण पंचम दा को मानना अतिशयोक्ति नहीं होगा।

पंचम के अलावा आठवें दशक में आए कुछ नए युवा संगीतकारों की रचनाओं में संगीत-संयोजन काफी आधुनिक दिखा। उन सबसे पूर्व चर्चा करते हैं उस दशक में चोटी के संगीतकार लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल की। ऑर्केस्ट्रा का जितना आधुनिक एवं वृहद प्रयोग लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल ने अपने संगीत में किया उतना भारतीय सिने संगीत के किसी अन्य संगीतकार ने नहीं किया। प्यारेलाल जी को तो सर्वमत से भारतीय सिने संगीत का सर्वश्रेष्ठ अरेंजर माना जाता है। रमेश अय्यर का इस सन्दर्भ में कहना है कि हैवी ओर्केस्ट्रेशन शंकर-जयकिशन ने भी किया परंतु आधुनिक प्रसंग में इसका प्रयोग प्यारेलाल जी ने किया। वर्ष 1972 में प्रदर्शित फिल्म 'दास्तान' में संगीतकार लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल के द्वारा आशा भोसले और महेंद्र कपूर द्वारा गाए हुए युगल गीत 'मारिया माय स्वीटहार्ट' को अत्याधुनिक ओर्केस्ट्रेशन से सजाया गया है। इसी वर्ष प्रदर्शित फिल्म 'शोर' का गीत 'एक प्यार का नगमा है' में संगीतकार लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल ने बिल्कुल नए अंदाज में अपनी ऑरकेस्ट्रा का प्रयोग किया है यह प्रयोग जितना नया है उतना ही मधुर है। इसी प्रकार फिल्म 'सत्यम शिवम् सुन्दरम' (1978) के गीत 'भोर भई पनघट पे' की मेलोडी और भजन जैसे साहित्य पर अत्याधुनिक रिदम पैटर्न एक दूसरे के पूरक लगते हैं। इस दौर में आधुनिकीकरण के चक्कर में यदाकदा मधुरता का ह्रास होता रहा है लेकिन यह कमी हमें लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल के संगीत में नहीं दिखती।

प्यारे लाल जी के आवास पर हुई वार्ता के दौरान दशक के संदर्भ में यह पूछे जाने पर कि 'आठवें दशक में जो आधुनिकीकरण का दौर चल पड़ा था क्या उसने आपको कभी प्रभावित नहीं किया?', उनका जवाब था - "बिल्कुल... हम भी प्रभावित हुए थे। आप 'ओम शांति ओम' गीत सुनिए।" दशक के बिलकुल अंत में लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल द्वारा संगीतबद्ध फिल्म 'कर्ज' के संगीत ने धूम मचा दी । फिल्म के गीत 'ओम शांति ओम', 'दर्दे दिल दर्दे जिगर' एवं जार्ज बंसन के गीत 'We As Love' पर आधारित बेहतरीन थीम म्यूजिक पर बना गीत 'एक हसीना थी एक दीवाना था' इत्यादि अत्याधुनिक रचनाएं थी। इस फिल्म में गीतों को पहली बार चार ट्रैक स्टीरिओफोनिक साउंड पर रिकॉर्ड किया गया था। वास्तव में फिल्म 'कर्ज' में

संगीतकार लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल का उनके अब तक के कैरियर का आधुनिकतम संगीत रहा।

आठवें दशक में आर. डी. बर्मन एवं लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल के अलावा तीसरे प्रमुख संगीतकार कल्याण जी-आनंदजी वैसे तो अपने पूरे करियर में काफी मौलिक और देसी (भारतीय) दिखे। परन्तु दशक के कुछ गीतों में उनकी स्वर रचना एवं वाद्य-संयोजन में नवीनता दिखी। दशक के प्रारंभ में ही प्रदर्शित फिल्म 'पूरब और पश्चिम' (1970) के गीत 'मेरे देश की धरती में' कल्याणजी-आनंदजी ने अपनी ऑर्केस्ट्रा में 125 वादकों एवं इतने ही कोरस गायक-गायिकाओं का प्रयोग किया। अपनी फिल्म डॉन (1978) के संगीत-संयोजन में अपने पूर्व की प्रवृति से काफी अलग सुनाई पड़े। अपने पुत्र वीजू शाह के साथ मिलकर इस फिल्म में इन्होंने सिंथेसाइजर इत्यादि नवीन वाद्यों का इस्तेमाल करके कुछ अत्याधुनिक वाद्य-संयोजन से युक्त रचनाएं प्रस्तुत कीं । सेक्सोफोन की आवाज में फिल्म के शीर्षक गीत की धुन को सुनें या फिर आशा भोंसले की आवाज में 'ये मेरा दिल प्यार का दीवाना' के रिदम प्रयोग एवं इसमें प्रयुक्त सिंथेसाइजर की धुन को। फिल्म के बैकग्राउंड में विजु शाह द्वारा बजाए गए सिंथसाइजर की धुन को भला कौन भूल सकता है?

वर्ष 1970 में प्रदर्शित फिल्म 'प्रेम पुजारी' का गीत 'रंगीला रे' (लता मंगेशकर) में दादा बर्मन का संगीत उनकी बढ़ती उम्र के साथ-साथ दिनोंदिन जवान प्रतीत होता है। कर्णप्रिय स्वर-रखाव एवं आधुनिक वाद्य -संयोजन एवं गायन का उदाहरण है यह गीत। दादा नें आठवें दशक में शर्मीली' (1971), गैम्बलर (1971) इत्यादि फिल्मों में एक से बढ़कर एक आधुनिक वाद्य संयोजन से सजी रचनायें प्रस्तुत की।

संगीतकार सलील चौधरी ने अपने तमाम गीतों में कोरस के प्रभाव से पाश्चात्य सिंफनी जैसा असर पैदा किया। सप्तक परिवर्तनों को लेकर हार्मोनी को प्रवाहित करते हुए उन्होंने अनेक गीत बनाएं। "एक ही संगीत कृति के भीतर कई स्वतंत्र संगीत धाराओं को एक साथ समाहित करना, स्केल परिवर्तन की अनूठी शैली को पूर्व के संगीतकारों की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक और संश्लिष्ट रूप में प्रस्तुत करना सलिल की ऐसी विशेषताएं हैं जो उनके गीत में जगह-जगह प्रकट होती हैं।" ऐसे गीतों में फिल्म 'आनंद' (1970) का गीत 'जिंदगी कैसी है पहेली' फिल्म 'छोटी सी बात' (1975) का गीत 'ना जाने क्यों होता है ये जिंदगी के साथ' इत्यादि सर्वदा स्मरणीय है। दशक में सलिल चौधरी की सप्तक परिवर्तन एवं अत्याधुनिक संगीत-संयोजन को लेकर बनी रचनाओं में फिल्म 'अन्नदाता' (1972) के गीत 'रातों के साए घने' (लता मंगेशकर), 'गुजर जाएँ दिन' (किशोर कुमार), फिल्म 'मेरे अपने' (1971) का गीत 'कोई होता जिसको अपना' (किशोर कुमार) इत्यादि को सुनने का अपना अलग ही मजा है। फिल्म 'अन्नदाता' (1972) के गीत 'गुजर जाएँ दिन' (किशोर कुमार) को तो स्केल परिवर्तन को लेकर बनाई गई जटिलतम रचनाओं में से एक माना जा सकता है। इस दशक में उनकी रचनाओं का पहले की अपेक्षा अधिक शहरी, परिष्कृत, संभ्रांत एवं अधिक मॉडर्न रूप सुनाई पड़ता है । चाहे हम फिल्म 'रजनीगंधा' (1974) के गीत 'रजनीगंधा फूल तुम्हारे' की बात करें या इसी फिल्म के गीत 'कई बार यूं ही देखा है' की। बासु चटर्जी की फिल्म 'छोटी सी बात' (1975) के गीत 'जानेमन जानेमन तेरे दो नयन' की बात करें या फिर इसी फिल्म के 'ये दिन क्या आए' गीत की बात करें। सभी एक से बढ़कर एक आधुनिक संगीत संयोजन से युक्त रचनायें हैं।

आठवें दशक के उत्तरार्द्ध में आये युवा संगीतकार राजेश रोशन के गीतों का अरेंजमेंट बिल्कुल ताजा सुनाई देता है। "राजेश रोशन के गीतों की अपनी खास विशेषता थी। वह अपने गीतों में म्युटेड वायलिन के बैकग्राउंड एवं कांगो के रिदम का प्रयोग किया करते थे इससे पूरे गाने में श्रोताओं को एक चलायमान प्रवाह की अनुभूति होती थी। ऐसे गीतों में फिल्म 'काला पत्थर' (1978) का गीत 'एक रास्ता है जिंदगी' (किशोर कुमार, लता मंगेशकर), फिल्म 'देस-परदेस' (1978) का गीत

'नजराना भेजा किसी ने प्यार का' (किशोर कुमार) आदि प्रमुख हैं। कांगो या ड्रम के सपोर्टिंग बीट के साथ धुन को फैलता प्रभाव देना राजेश रोशन के संगीत की विशिष्टता रही है। उदाहरण के रूप में फिल्म 'स्वामी' (1977) का गीत 'पल दो पल ये क्या हो गया', 'यादों में वो सपनों में है', 'आज की रात कुछ होगी ऐसी बात' इत्यादि।

"संगीतकार राजेश रोशन की दूसरी फिल्म 'जूली' (1975) तो एक ताजी,नई शैली लेकर आयी। इस शैली के मुहावरे आधुनिक थे, पर यह आधुनिकता शोरगुल वाली आधुनिकता न होकर एक परिष्कृत, नरम, छू लेने वाली आधुनिकता थी जो अंग्रेजी पढ़े-लिखे शहरों के युवा वर्ग को बहुत पसंद आई। इस आधुनिकता में जो शैली थी, वह रोशन की शैली से बिल्कुल भिन्न थी। जहां रोशन की मेलडी बांसुरी और सारंगी के साथ उभरती थी वहीं राजेश रोशन की धुनें परकशन पर केंद्रित थीं। राजेश रोशन का कहना है- "मैं आज भी जूली के गीत 'दिल क्या करे जब किसी को किसी से प्यार हो जाए' को ही अपनी जिन्दगी का बेस्ट गीत मानता हूं।" इस फिल्म का गीत 'दिल क्या करे' उस दौर की सबसे ताजी एवं मॉर्डन कंपोजीशन में से एक थी। इस गीत में शब्दों के छोटे-छोटे समूह के बीच Pause के द्वारा धुन को जिस प्रकार आगे बढ़ाया गया है वह काबिले-तारीफ है। यह प्रयोग उस दौर में ही नहीं बल्कि आज भी बिल्कुल नया सुनाई पड़ता है।

आठवें दशक के उत्तरार्द्ध में राजेश रोशन की कंपोजीशन का अंदाज सबसे निराला दिखा। इस युवा संगीतकार की धुनें उस दौर में बिल्कुल आधुनिक सुनाई पड़ती हैं। "अपने कई गीतों में राजेश रोशन गाने की गति और रवानगी को धीरे-धीरे बढ़ाते हैं और यह विस्तार इतनी सुंदरता और कलात्मकता के साथ होता है कि वह संगीत की निरंतरता के लिए अपरिहार्य लगता है। फिल्म 'बातों बातों में' (1979) के 'सुनिए, कहिए ,कहिए ,सुनिए' की धीमी शुरुआत 'कहते सुनते बातों बातों में' के द्वारा हल्की गति पकड़ते हुए 'प्यार हो जाएगा' के साथ संपूर्ण लगने लगती है। उसी तरह फिल्म 'खट्टा मीठा' (1977) के 'थोड़ा है थोड़े की जरूरत है' (लता, किशोर) अपनी धीमी थपकाने वाली लय में शुरू होकर 'सुन-सुन-सुन हवा चली' के बाद तेजी पकड़ते हुए 'बादल पे उड़ना होगा' के साथ चरम सौन्दर्य पर पहुँचकर इस गीत को अविस्मरणीय बना देता है।" फिल्म 'मामा-भांजा' (1977) के गीत 'एक बात मेरे होंठो तक' का ऑर्केस्ट्रेशन बिलकुल आधुनिक सुनाई पड़ता है। फिल्म 'स्वामी' (1977) में राजेश रोशन ने अपनी विशिष्ट शैली में नई एवं ताजी धुनें बनाईं। इस फिल्म में राजेश रोशन के गीतों का रिदम उनकी खास विशेषता रही। कांगो और ढोलक का प्रयोग करके 'आज की रात कुछ होगी ऐसी बात', 'पल भर में ये क्या हो गया' इत्यादि काफी सराहनीय है। कांगो के प्रयोग से नई रिदम वाले गीतों में इसी वर्ष आयी फिल्मों के गीत 'छोड़ो यह निगाहों का इशारा' (फिल्म-इनकार), 'सुनो रानी' (फिल्म- मामा-भांजा), 'बिन साथी के जीवन' (फिल्म- एक ही रास्ता) इत्यादि उल्लेखनीय हैं। दिनोंदिन युवा संगीतकार राजेश रोशन की ख्याति अपनी ताजी, आधुनिक एवं दिल को छू लेने वाली धुनों के चलते बढ़ती जा रही थी।

आठवें दशक में आये एक अन्य युवा संगीतकार बप्पी लहरी ने फिल्म 'चलते चलते' (1976) में इससे पूर्व की अपनी कुछ फिल्मों से बिल्कुल हटकर नया संगीत दिया। फिल्म का शीर्षक गीत 'चलते चलते मेरे गीत याद रखना', 'दूर दूर तुम रहे' एवं 'जाना कहां है प्यार यहां है' एवं 'प्यार में कभी कभी ऐसा हो जाता है' इत्यादि अच्छे एवं आधुनिक बन पड़े हैं। बप्पी की इस आधुनिकता में मेलॉडी के तत्व भी दृष्टिगत होते हैं जो आगे के दशक में ना के बराबर दिखते हैं। वर्ष 1978 में प्रदर्शित फिल्म 'टूटे खिलौने' में बप्पी दा ने सीटी और कोरस का प्रयोग कर के आधुनिक ओर्केस्ट्रेशन पर यसुदास से एक बेहद खूबसूरत, रोमांटिक एवं अत्याधुनिक गीत 'माना हो तुम बेहद हंसी' गवाया। येसुदास को लेकर ऐसा प्रयोग बहुत कम किया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आठवें दशक के

संगीत में पूर्व के दशकों की अपेक्षा काफी बदलाव आया। संगीतकारों द्वारा मेलोडी नए अंदाज में नए वाद्यों के साथ प्रयुक्त की गयी। वाद्य संयोजन में पूर्व के दशकों की अपेक्षा क्लिष्टता दिखती है। नवीन प्रयोगों के लिहाज से दशक फिल्म-संगीत का अतिशय प्रयोगवादी दौर रहा। इसका प्रतिनिधित्व किया संगीतकार आर. डी. बर्मन ने। अतिशय नवीन प्रयोगों के बावजूद भी एक खास बात जो दशक के गानों में दिखती है वह यह थी कि अधिकांश गीतों में मेलोडी अभी भी बरकरार थी। हाँ, यह मेलोडी का बदला हुआ रूप अवश्य था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अय्यर, रमेश, प्रत्यक्ष साक्षात्कार-कांदीवली, मुंबई. मार्च 30, 2016, 7:35
- प्यारेलाल, प्रत्यक्ष साक्षात्कार, मुंबई, मार्च 09, 2016, 6:28
- राग, पंकज, धुनों की यात्रा, नई दिल्ली : राजकमल, 2010, पृ. 276, 471, 552, 605, 693, 694.
- लार्ड, केरसी, प्रत्यक्ष साक्षात्कार, बांद्रा, मुंबई, फरवरी 27, 2016, 12:42
- सिंह, भूपेंद्र, प्रत्यक्ष साक्षात्कार, मुंबई, फरवरी 02, 2016, 5:25
- Iyer,Shanker. "Blasco Monsorate : blowing away to glory". The Unsung Heroes. Swar Alaap: Mumbai, 2010, p. 54.
- Ranade, Ashok D. Hindi Film Song : Music Beyond Boundaries. New Delhi: Promilla & Co., 2006, p.303.
- Tikhe, Veerendra. "Assistants". panchammagic.org. Web. 16 Jan. 2017. http://panchammagic.org/2015/06/mere-naina-sawan-bhadon/
- Tikhe, Veerendra. "Teri Meri Yari Badi Purani". panchammagic.org. Web. 23 Dec. 2016. http://panchammagic.org/2013/11/teri-meri-yari-badi-purani/
- Tikhe, Veerendra. "Ye Silsila Pyaar Se Chala". panchammagic.org. Web. 18 May 2016.http://panchammagic.org/2013/12/ye-silsila-pyaar-se-chala/

Music listening in Workplace Environment - A Review Study

Deepika Theagarajan
Research Scholar,
Department of Music, Queen Mary's College, Autonomous, Chennai

Dr. Shanti Mahesh
Assistant Professor,
Department of Music, Queen Mary's College, Autonomous, Chennai.

Abstract

Music based interventions are effectual and cost-effective that can be used among the employees working in different setups. Listening to music and recreational music making is suggested to improve the mood states and have a positive impact on the quality of work. This paper aims to do a critical review of the existing studies and findings that use music as a tool to improve the quality of work among the working population. In addition, the objective of this review is to offer implications for future research studies.

The review has been prepared using peer review journal articles extracted from electronic databases like Oxford academic, SagePub, PubMed, etc. During the collection of articles, search terms specific to the subject were used to search and identify the articles. Furthermore, the references used in these selected articles were also investigated and used. Data were extracted and categorized using tools primarily developed for the research. Literature articles were chosen from the peer review sources based on inclusion and exclusion criteria. The studies that have been chosen will be critically analysed and reviewed to ascertain the use of music as a tool to improve the quality of work both inside and outside of the working space of an employee.

The findings will recommend music listening practices to improve the physical, emotional, social and cognitive well-being of the employees and discuss the scope for further research in this field.

Keywords

Music listening, Music in workplace, Work productivity, Music in organisation, Music in office-based workplace

Introduction

The World Health Organisation has estimated an economic loss of one trillion dollars per year globally due to mental health conditions instigated by work environments. The current workplaces are filled with a lot of challenges and opportunities. Some of the challenges of

the employees at different workplaces include economic pressures, globalization, management of workforce diversity, improving customer services, improving required skills, stimulating innovation, adapting to organisational change, work-life conflicts, coping with 'temporariness,' working in networked organisations, creating positive work environment, and improving ethical behaviour (Robbins, 2013).

An obnoxious working environment can lead to both physical and mental health issues, use of substance, create absenteeism and an overall loss of productivity in work. Work stress can become chronic and make you feel overwhelmed. Stress can become severe and harmful resulting in anxiety, insomnia, psychosomatic ailments, high blood pressure, and a weakened immune system. It can also lead to depression, obesity, and heart disease. People who deal with excess amounts of stress manage them in the most unhealthiest way such as overeating, eating unhealthy foods, smoking cigarettes, or abusing drugs leaving stress amplified.

Today, most of the organizations have developed a workplace culture to keep their employees exuberant. The focus is primarily on establishing a more positive, collaborative work environment that will lead to a reduction in aggravation, stress, and productivity slumps. The good news is, music in the workplace environment can help de-escalate this growing issue. Studies have shown that listening to music can enhance productivity. Recent research recommends that specific genres are more motivating than others.

Music Listening

Music has become an irreplaceable part of our daily life. Music listening is an arcane human behaviour. Musical interests are seen among people across diverse cultures. Empirical studies on musical functions and listening patterns of people have shown heterogeneous results. Philosophers and scholars from different spectrums have proposed various theories and concepts on the psychology of music.

Music influences human behaviour by affecting the brain. In turn, it affects human anatomy in ways which are observable, identifiable, measurable, and predictable. It provides the necessary foundation for therapeutic applications. Over hundreds of years, music has been used as a medium to treat several illnesses thus helping in reinstating the tranquillity of one's mind. Recently many scientific studies have attempted to measure the potential benefits of listening to music. Music can be used to calm and improve the moods of disabled and distressed children. It also encourages coordination and communication among autistic children, dementia patients and people with other mental health issues, thus, in turn, improving their quality of life.

Furthermore, it has been established in several literature that music listening can help reduce the sensation and distress of both chronic and postoperative pain. It has also been found that music can relieve depression and increase self-esteem among people. Beneficial effects can be found in physiological functions such as keeping optimal heart rate, reducing blood pressure and decrease in anxiety and stress levels through music listening. To sum up, music has the potential to function as a stress management tool in our lives.

Music at Workplace

The aim of the paper is to explore music listening practices in office-based

workplaces. This will help in finding detailed information about the functions of music, what type of music the respondents listen to, and whether and how music is used in these contexts as a means of regulating mood and improving well-being. Hence in this paper, we will explore the effects of music and critically analyze their benefits to relieve anxiety and stress among employees. Unfortunately there is very little knowledge about the use of music listening at work despite the available body of research.

Studies of music used in the workplace have often investigated the effects of imposed music on productivity and morale (e.g., Fox, 1971; Uhrbrock, 1961; Wokun, 1969), and less often explored effects of self-selected music on psychological well-being. Two intervention-studies have investigated the effects of self-selected music listening on work performance and effective responses. Studies suggest that employee productivity and collaboration is positively impacted with self-selected music in office-based working environments.

Method

In searching for studies, we aimed to include all published studies on music used in a work setting. The review was prepared using peer review journal articles extracted from electronic databases like PsychINFO, Oxford academic, SagePub, PubMed and Medline. During the collection of articles, a multitude of search terms specific to the subject was used to search and identify the articles. Furthermore, the references used in these selected articles were also investigated and used. Data were extracted and categorized using tools primarily developed for the research.

Four articles were chosen from the peer review sources based on inclusion and exclusion criteria. Studies that tended to focus on improvement in mental health by listening to music are included. The studies that were selected were critically evaluated and analysed to determine the use of music as a tool to improve the quality of work both inside and outside of the working space for a worker.

Critical Review of Literature

Since the late 19th Century numerous studies have been done to identify the physiological and psychological effects of music on human behaviour. The results of these studies indicate that Music can effect changes in an individual's blood pressure, improve muscular efforts, increase respiratory rates, etc. With growing evidence linking job stress and depression to illness, finding an effective means of stress management, and lowering depression has become a challenging international endeavor.

Although music has attracted the attention of various fields as a promising method for alleviating stress and reducing depression, lack of standardization and scarcity of data have served as impediments to widespread utilization. It seems that several investigators have empirically arrived at results which would be predicted from the current concepts of 'Music listening' and its role in activating and maintaining mental health during work and thus improving productivity. In this study, the literature that addresses the relationship between music and work has been identified and critically reviewed. The aim, target, methodology, and results

of these studies are deliberated in detail and reviewed below.

Research by social historians and folklorists has shown that work songs, i.e. songs sung by workers as they labour, were commonplace among several of the most populous occupations in pre-industrialised Britain – weavers (Thompson, 1968; Elbourne, 1980), agricultural labourers (Palmer, 1979; Pickering, 1982; Flora Thompson, 1954), drivers of horses, cattle and wagons (Palmer, 1979, p.19; Clayre, 1974), miners (Lloyd, 1967), sailors (Hugill, 1961; Proctor, 1992), hawkers (Palmer, 1979; Cohen, 1993) cobblers (Porter, 1995), tailors (Richards and Stubbs, 1979, p.57), those employed in tweed waulking (Campbell and Collinson, 1969), and those undertaking domestic labour (Clayre, 1974; Pickering, 1982). Repetitive tasks were done more efficiently with background music, says a 1972 study published in Applied Ergonomics.

Music plays a pivotal role even with life saving professionals like surgeons, as found by the Journal of American Medical Association in 1994. The study showed that surgeons had better accuracy and efficiency with music playing overhead. The study also showed that surgeons performed better with researcher selected music than with no music playing. Certainly the best results came with participant selected music. Playing classical or rock music allows study participants to identify numbers more quickly and accurately, says a 1999 study in the Journal of Neuroscience and behavioural physiology. Positive moods, better quality of work, improved efficiency are some of the benefits software developers found while listening to music, according to a 2005 research from the Journal of Psychology of Music. The participants also had a learning curve while using music to alter their moods. While these are snapshots of the research, the benefits of music on employees' work is already evident for all to see.

Music and Work

The first study is an empirical study conducted by Anneli Beronius Haake (2003) to understand the music listening practices in workplace settings. In this study a survey was conducted among 295 participants and data was gathered using quantitative and qualitative collection methods on work. The study identified workplace stress, the range and style of music listening throughout work, the listening technologies used, the amount of control the respondent had over music in their workplace, the tasks performed simultaneously while listening to music, and the apparent functions that listening to music had for the respondent. This research explained if and how listening technologies were incorporated into workplaces, the kind of tasks done with music listening and the role music listening had as perceived by the employees.

The participants felt increased capability to deal with stressful situations and increased positive attitudes towards clients/colleagues. Some of the qualitative comments from the participants in the study indicate that listening to their music of interest is an essential element in improving both well-being and work performance. The use of headphones could further enhance the functions of music at work as per statistical analysis. The results of this study show enough

evidence that the participants listened to music to improve their well-being in the workplace. This in turn induced a positive mood at work and led to improved work performance. Previous research also suggests that musically induced mood at work can influence work performance, though it needs more empirical data to support the idea (Oldham *et al*., 1995).

The second study (Jiang 2011) evaluates the effect of music and induced mental load in a word processing task. A total of eight subjects participated in the study. In this study, applied typing force, typing productivity and electromyography (EMG) of the left-hand extensor digitorum muscle were measured. The study was done by implementing a 2x2 repeated measure design with or without background music and induced mental load. While the overall typing productivity was impacted by the music, there was a reduction of the wrong finger touch while typing. The behaviour changes by music resulted in an increased extensor digitorum muscle activity for lifting and controlling fingers. The study scrutinized how music could be utilized to influence human work performance in the workplace.

There are many studies that have found background music to influence human behavior. Background music has become commonplace in everyday life and the study endeavors to understand how listener fondness for types of music has a bearing on worker concentration. A previous study conducted by Huang (2008) analysed how the several types of background music and the degree of preference for the background music can affect listener concentration in attention testing through Randomized Controlled Trial (RCT). In this study, data were collected from eighty-nine workers who ranged in age between 19 and 28 years old. The study suggests that the background music influences listeners attention, and this has more to do with listener fondness for the music than with the type of music. It is imperative to not select background music that can negatively affect worker concentration.

The third study by Bittman (2003) examines the clinical and potential economic impact of a 6-session Recreational music making (RMM) protocol on burnout and mood dimensions, as well as on Total Mood Disturbance (TMD) in an interdisciplinary group of long-term care workers. The study is a moderated, prospective, randomized study with a sample size of 112 employees participating in the 6-session RMM protocol. The sessions in the studies focused primarily on building support, communication, and interdisciplinary respect. These sensitizations were achieved by utilizing group drumming and keyboard accompaniment. The variations in burnout and mood fluctuations were measured using the Maslach Burnout Inventory and the Profile of Mood States, respectively. The cost savings of the office were projected by an independent consulting firm, which developed an economic impact model. The result of this study shows statistically significant reductions of multiple burnout and mood dimensions, as well as TMD scores. Findings based upon pre- and post-differences associated with the experimental intervention, coupled with data displaying a persistent effect 6 weeks post-intervention and a control trend toward distress, divulge associations that justify further attention.

The potential impact of these RMM findings should be considered in the context of the unique intervention, the representative interdisciplinary subject sample, and the experimental design. It must be emphasized that the specificity of the RMM components used in this protocol are considered essential for the established outcomes, hence it is necessary to be cautious against generalizing similar conclusions for other approaches. Long-term follow-up with ongoing scrutiny of actual retention data is necessary to determine the extent of enduring effects and to validate and predict the economic impact.

Another study also examines the effects of a Recreational Music-Making (RMM) group drumming protocol; however, this was evaluated on Japanese male corporate employees. In this study, a total of twenty volunteers participated in a one-hour RMM session while twenty volunteers were engaged in leisurely reading as a control group. Mood state questionnaire was administered to collect data of pre and post intervention. Blood samples of the participants were also taken before and after the intervention. Individual and group mean values for natural killer (NK) cell activity, NK cell percentage, and cytokine gene expression were analysed. The RMM group increased the NK cell activity among individuals with low pre-intervention levels and decreased among those with high pre-intervention levels. The RMM group demonstrated enhanced mood, lower gene expression levels of the stress-induced cytokine interleukin-10, and higher NK cell activity when compared to the control. Based on documented changes in NK cell activity, coupled with gene expression changes for interferon-g, interleukin-10, and improved mood, this RMM protocol has significant potential for utilization in the corporate wellness environment.

The fourth study from the University of Windsor Canada was conducted by Teresa Lesuik (2015). The study had fifty-six developers working in a software company in Canada as participants. The researcher found a positive impact on the quality of work when music was present and negative impact on the quality of work when music was not present. The participants took a longer time to finish their task without music. With positive mood alteration and increased productivity being very evident with music playing at work, this study would suggest a very pro-music argument.

Changing of the hold music played to customers of a call center was done as a field experiment to evaluate the effect of prosocial lyric in reducing customer aggression in the workplace. The sample comprised customer service representatives working for a branch of an organization that provides outsourced call center services to businesses in the United Kingdom (Niven, 2015). 25 staff were from the call center elected to take part in the research, the results of a 3-week study suggested that music significantly affected customers, but not in the way suggested by previous laboratory experiments; compared with days when instrumental background music was played, caller anger and employee exhaustion were lower on days when callers were played popular music with neutral, but not prosocial, lyrics (Niven, 2015). While the prosocial lyric effect cant be generalized from the laboratory to the call center, the findings suggest that

music influences customer aggression. In call centres, the purpose of many calls is to complain and here, being played certain types of music might function as an irritant (Niven, 2015). People do not prefer to listen to music when it doesn't match their moods (Friedman, Gordis, and Förster 2012).

Discussion

The above researchers have irrefutably established that Music listening has demonstrated a highly significant effect on the output in a workplace environment. Based on the analyses, it is suggested that Music Listening especially in a broad and diverse range of sources is most effective in improving mental health and productivity in an office setting. Given the acceptance and use of Music for individuals, and the interest in their modes of processing music, it is important that the strength and weakness of the studies may be further highlighted based on analysing the use of assorted styles of Music with this population.

As we find that the subsequent literature that is available in the field is often narrative, the review is also narrative on purpose to better evaluate and understand the types and styles of music used. We believe there is a huge opportunity to do further research on music listening and its impact on work environments. Such research will unearth more ways to use music among service workers and contemporary workplaces and its impact on such workers. This work would, for instance, go beyond studies by Oldham et al. (1995), and the references made by Bull (2000; Bull, 2005), and explore the use of new portable music technologies in the workplace (e.g., iPod).

The exploration of the changing role of music in woke regulation has a significant focus on the broad patterns identified by different bodies of research. This should not preclude researchers from examining cases which do not sit easily with these broad patterns. From the above, we could conclude that Music at work can contribute to relaxation by channelling your stress and negative emotions and can remind you of not being at work. It can also provide a mini break from being mentally active and allow you to rest and recover. In this sense, music can create a sense of eudemonia amongst the employees by keeping them in a good mood.

India, being a nation with a diverse population, is very rich in art and culture. The life of an Indian can be divided into secular and religious parts. The art of the people has a huge part to play on the overall development of the country. Despite having several references of occupational songs in our ancient literature, there is no empirical study on the effect of music on the office-based working population that works under the shield of an organisation in India. Like this literature review, there is an unmet need for more empirical research of Music listening practices with unbiased and controlled paradigms to answer the questions of what types of Music are most effective to achieve a specific outcome with the employees. More light can be shed on the effectiveness of music listening among workers and employees by conducting studies and concurrent investigations on music and sound processing.

References

Balakrishnan, Shyamala. (1969). Folk music in the life of Tamil Nadu.

Bittman, B., Bruhn, K. T., Stevens, C., Westengard, J., & Umbach, P. O. (2003). Recreational music-making: a cost-effective group interdisciplinary strategy for reducing burnout and improving mood states in long-term care workers. *Advances in Mind Body Medicine*, *19*(3/4), 4-15.

Dileo, C. (2000). *Ethical thinking in music therapy*. Jeffrey Books.

Fox, J. G., & Embrey, E. D. (1972). Music—an aid to productivity. *Applied ergonomics*, *3*(4), 202-205.

Friedman, R. S., Gordis, E., & Förster, J. (2012). Re-exploring the influence of sad mood on music preference. *Media Psychology*, *15*(3), 249-266.Gray, R. (1998). Workplace stress: A review of the literature. *UK: Kumpania consulting. Retrieved from http:// www. rodericgray. com/workplacestress. pdf Hopstaken, JF, Vanderlinden, D., Bakker, AB & Kompier, AJ (2014). A multifaceted investigation of the link between mental fatigue and task disengagement. Psychophysiology*, *51*(9).

Haake, A. B. (2006). Music listening practices in workplace settings in the UK: an exploratory survey of office-based settings. In *Proceedings of the Ninth International Conference on Music Perception and Cognition*.

Huang, R. H., & Shih, Y. N. (2011). Effects of background music on concentration of workers. *Work*, *38*(4), 383-387.

Jiang, X., & Sengupta, A. K. (2011). Effect of music and induced mental load in word processing task. In *2011 IEEE International Conference on Systems, Man, and Cybernetics* (pp. 3261-3266). IEEE.

Kaplan, S., Bradley, J. C., Luchman, J. N., & Haynes, D. (2009). On the role of positive and negative affectivity in job performance: A meta-analytic investigation. *Journal of Applied psychology*, *94*(1), 162.

Korczynski, M. (2011). Stayin'Alive on the factory floor: An ethnography of the dialectics of music use in the routinized workplace. *Poetics*, *39*(2), 87-106.

Krout, R. E. (2001). The effects of single-session music therapy interventions on the observed and self-reported levels of pain control, physical comfort, and relaxation of hospice patients. *American Journal of Hospice and Palliative Medicine®*, *18*(6), 383-390.

Lesiuk, T. (2005). The effect of music listening on work performance. *Psychology of music*, *33*(2), 173-191.

Loo, M. K., Salmiah, M. A., & Nor, S. AR (2015). The sources and the impacts of occupational stress among manufacturing workers. *International Journal of Current Research and Academic Review*, *2*, 166-173.

Mantere, S., Sillince, J. A., & Hämäläinen, V. (2007). Music as a metaphor for organizational change. *Journal of Organizational Change Management*, *20*(3), 447-459.

Mental health in the workplace (2019), Retrieved from: https://www.who.int/mental_health/ in_the_workplace/en/

Niven, K. (2015). "Can music with prosocial lyrics heal the working world? A field intervention in a call center." *Journal of applied social psychology* 45, no. 3 (2015): 132-138.

Oldham, G. R., Cummings, A., Mischel, L. J., Schmidtke, J. M., & Zhou, J. (1995). Listen while you work? Quasi-experimental relations between personal-stereo headset use and employee work responses. *Journal of Applied Psychology*, *80*(5), 547.

Prichard, C., Korczynski, M., & Elmes, M. (2007). Music at work: An introduction.

(Skewes, K. (2002). A review of current practice in group music therapy improvisations. *British Journal of Music Therapy*, *16*(1), 46-55.

Smith, M. (2008). The effects of a single music relaxation session on state anxiety levels of adults in a workplace environment. *Australian Journal of Music Therapy*, *19*, 45.

Upadhyay, D., Shukla, R., & Chakraborty, A. (2016). Factor structure of music preference scale and its relation to personality. *Journal of Indian Academy of Applied Psychology*, *43*(1), 104-113.

Wachi, M., Koyama, M., Utsuyama, M., Bittman, B. B., Kitagawa, M., & Hirokawa, K. (2007). Recreational music-making modulates natural killer cell activity, cytokines, and mood states in corporate employees. *Medical Science Monitor*, *13*(2), CR57-CR70.

Yehuda, N. (2011). Music and stress. *Journal of Adult Development*, *18*(2), 85-94.

संगीत, कला और प्रारब्ध - ज्योतिषीय दृष्टिकोण से

श्रीमती प्रज्ञा त्रिवेदी
भूतपूर्व छात्रा, एम.ए. (गायन),
रायपुर (छ.ग.)

डॉ. स्नेहाशीष दास
विभाग प्रमुख, संगीत विभाग
महिला महाविद्यालय, अमरावती

सारांश

बहुत सें संगीतज्ञो को ज्योतिषशास्त्र का भी जानकार देखा, बहुत से संगीतज्ञों को चित्रकार भी देखा, मन में प्रश्न उठता था क्या कारण है कि ये सभी शुक्र शासित क्षेत्र के विज्ञ अन्य कलाओं के भी माहिर है, कौन सी ग्रह सिथतियॉ उन्हें कला की ओर ले गई, ऐसी कौन सी बात है जो ये सब कला के प्रति इतने आसक्त है। ये आसक्ति ऐसी क्यों दिखती है जैसे जन्म जन्मांतर से कला प्रेम हो।

ये सारे प्रश्नों को लेकर कुछ संगीतज्ञों संगीत प्रेमियों की कुंडलियॉ देखी और आश्चर्यजनक परिणाम देखने को मिले। इस बात की पुष्टि लग्न, नवमांश और डी-60 वर्ग कुंडलियों को देखकर हो गई किये सभी पूर्व जन्मों से कला लेकर चले आ रहे है। कर्मानुबंध जब तक पूरा नही हो जाता ये साधना चलती रहेगी।

पूर्वजन्मजनितं पुराविद कर्मेवमिति सम्प्रचक्षते।
उदयमेन तदुपार्जित सदा वाक्षितं फलति नैव केवलम।।

पूर्व जन्म में किया गया कर्म भाग्य कहलाता है, वह बीज है तात्कालिक कर्म उस बीज को पोषित करते है इस पोषण से उत्तम कोटि का बीज अच्छी तरह उन्नति करता है, कभी क्षीण नही होता है। उसी प्रकार पूर्व जन्मार्जित कर्म इस जन्म में शुभकर्म से अभिवादित होता है, अन्यथा क्षीण होता है या प्रयत्न न करने पर क्षीण होता है।

संकेत शब्द

प्रारब्ध, फलादेश, लग्न कुंडली, नवमांश, शटबल

प्रस्तावना

शास्त्रीय संगीत हो या अन्य कोई भी कला, उसमें पारंगत होना आसान नही। कई लोग बरसों बरस मेहनत करके भी कला के क्षेत्र में उॅचाई प्राप्त नही कर पाते और कई लोग किसी भी विषय को पल भर में समझ लेते है। किसी कला के प्रति गहरी रूचि मेहनत मांगे लेकिन प्रतिफल भी दे ये जायज है, लेकिन ये मेहनत जब जूनून बन जाये, रात और दिन केवल, दिमाग में अपनी पूज्य कला ही गूंजती रहे तो हर कोई ये कहेगा, ये जरूर अनेक जन्मों का संबंध है। बस यही बात है जो इस विषय को लौकिकता से परे, पारलौकिक बनाती है, आशा है ये अनूठा विषय इस क्षेत्र को एक नई दिशा देगा।

शोध का उद्देश्य :-

- संगीत और ज्योतिषशास्त्र का आपस में गहरा संबंध है, ये सिद्ध करना।
- सभी कलाएं शुक्र से आती है लेकिन गुरू

प्रबल न हो तब तक कुछ संभव नही, ये सिद्ध करना क्योंकि संगीत विशुद्ध गुरूमुखी विद्या है।

- कला प्रारब्ध से आती है ये सिद्ध करना।
- कला केवल इस जन्म की अर्जित विद्या नही है बल्कि जन्मों से जो कार्य अधूरा है उसे पूर्ण करने इस जन्म में भी कला मिली है जब तक उद्देश्य पूर्ति न हो ये चक्र चलता रहेगा, ये सिद्ध करना।

शोध की परिकल्पना

- कला और ज्योतिषीय संबंध के अन्य शोध पक्ष की ओर रूचि बढ़ेगी।
- कला और प्रारब्ध के अदृश्य सम्बन्ध को और मजबूत करने की इच्छा शक्ति बढ़ेगी।
- कला और प्रारब्ध को और गहराई से समझने की ओर रूझान बढ़ेगा।

शोध प्रणाली

- अलग अलग क्षेत्रों के गायक कलाकारों की, संगीतज्ञों की कुण्डली लेकर उसका अध्ययन केवल कला को आधार मानकर किया गया।

शोध की मर्यादा

- कुछ शास्त्रीय और सुगम संगीत के गायकों से उनकी जन्मतिथि, जन्म समय और जन्म स्थान आदि जानकारी लेकर उनके जन्माक्षर बनाये गए।
- जन्माक्षर में लग्न कुंडली, चन्द्र कुंडी, नवमांश कुण्डली, और डी-60 वर्ग कुण्डली का मुख्य रूप से अध्ययन किया गया।
- मंगवाई गई कुण्डली के जातक सभी अलग फील्ड से थे, लेकिन सभी गायक थे, इसमें वादक, नर्तक आदि को शामिल नही किया गया है।

विषय-प्रवेश

शिक्षा कल्पों व्याकरणं निरूक्तं छन्द समिति। ज्योतिशामयनं चैव शडंगो वेद उच्यते।।

शिक्षा उच्चार शास्त्र, कल्पसूत्र, व्याकरण (शब्द/व्युत्पत्ति शास्त्र, निरूक्त कोष, छन्द वृत्त, और ज्योतिष समय/खगोलशास्त्र ये छः वेदांग कहे गए है। यहां उच्चार शास्त्र और दंदों जिसे हम संगीत भी कह सकते है ज्योतिष शास्त्र के सहोदर हुए। पर बात यहां इतनी सी नही है, ये सभी कलाएं आपस में जुडी हुई है, ये सब हम जानते है पर कुछ ऐसा भी है जो नही जानते। वह ये कि ज्योतिषशास्त्र के कुछ सूत्र ये स्पष्ट कहते है कि कोई कलाकार (गायक, वादक, मूर्तिकर, चित्रकार) अपने प्रारब्ध के बिना सरस्वती जी का कृपापात्र नही हो सकता। यही नही, कई गायकों कलाकारों की कुण्डली के अध्ययन से भी निकल कर आया कि इनमें से कुछ पूर्व जन्मों से ये कला लेकर चले आ रहे है और आगे भी कला सेवा करते हुए इसे आगे ले जाने वाले है।

कौन से वे सूत्र और कैसे मै ये दावे के साथ कह सकती हूँ, जाहिर है प्रमाणिकता के साथ अपनी बात रखने के लिए ठोस सूत्र चाहिए, कुण्डली में उनका स्पष्टीकरण चाहिए। एक-एक कर वह बिन्दु आप तक पहुंचाना चाहती हूँ। एक प्रश्न सभी कलाकारों खास कर संगीतकारों और गायकों से करना चाहती हूँ। आपने कभी कोई राग सीखते समय, जबकि आप एकदम नौसीखिये हो, क्या ये महसूस किया है कि गुरूजन से पहली पंक्ति सुनते ही आपको अगली पंक्ति अपने आप आने लगती है, या कोई सुगम संगीत की नई बंदिश की धुन पहली बार सुनते हुए आगे की सारी बंदिश ऐसा लगता है जैसे आपको आती है, या किसी बडे कलाकार के साथ बडा ख्याल आप हू ब हू दोहराते है, जबकि ख्याल पूर्व नियोजित नही है। आप जानते है। क्या कोई राग पहली बार सुनते ही आपको लगता है कि ये पहले सुना है।

अगर हॉ तो आपकी कुण्डली का डी-60 चार्ट किसी विज्ञ को दिखाये, यकीनन वो पूर्व जन्मों से चले आ रहे है आपके सांगीतिक ज्ञान को कुछ ज्योतिषी सूत्र के रूप में आपको समझाने में सक्षम होंगे। चूंकि वेदो को पढ़ने से पहले उसके छः

अंग शिक्षा, कल्प, निरूक्त, व्याकरण, छंद और ज्योतिषशास्त्र (खगोलशास्त्र) ऋषियों के द्वारा अपने शिष्यों का पढ़ाया जाता था। ज्योतिषशास्त्र मुख्यतः ऋग्वेद से जनित शास्त्र माना जाता है। जैसे कि संगीत सामवेदन अनित शास्त्र है।

उस काल में वेदो के ज्ञात कहे या गुरूजन थे, वशिष्ठ, पराशर, वेदव्यास, जैमिनी, याज्ञवल्क्य, कात्यायन आदि। इनसे लगभी अभी ज्योतिष या खगोल शास्त्र के अच्छे ज्ञात थे, आकाश मण्डल और नक्षत्रीय घटनाओं का मनुष्यों में स्पष्टतः देखते रहे होंगे ऐसा दावे के साथ कह सकती हूँ क्यों कि आज भी वे सूत्र जो श्लोक के रूप में वे लिखे गए कुडली के फलित में शत प्रतिशत सत्य होते है, लेकिन चूंकि ज्योतिष शास्त्र वेदो का नेत्र है, ये विज्ञान दृष्टि विज्ञान है, अर्थात जो दिख रहा है वही मान्य है अतः देश, काल, परिस्थिति अनुसार फलादेश किये जाते है।

हममें से बहुत से लोग ये जानते है कि संगीत और कला का कारक ग्रह शुक्र है। इस आलेख को लिखने से पहले से ही मै इस पर शोध करती आ रही थी कि शुक्र की स्थिति ही कलाकार का जीवन तय करती है इसमें आश्चर्यजनक तथ्यों से दो चार तब हुई जब स्वयं की कुंडली बार बार देखी तब एहसास हुआ कि पूर्व जन्मों से चली आ रही ये ज्योतिष विद्या और संगीत प्रेम मुझमं यूं ही नही आया। ये बात और है कि कुछ अन्य ग्रह स्थितियों ने मुझ संगीत में आगे बढ़ने से रोक लिया और ज्योतिष शास्त्र को उभारा।

एक के बाद एक संगीतज्ञों की कुंडली देखी और स्पश्टतः ये कह सकती हूँ कि जो आज शास्त्रीय संगीत गा या बजा रहे है उन्हें न केवल विरासत में मिला बल्कि पूर्व जन्मों से संगीत मिला है। और सभी अपनी योग्यतानुसार ग्रहों की युति, दृष्टि, अंशबल और स्थिति के अनुसार संगीत सेवा कर रहे है, कोई कम कोई ज्यादा इसलिए कि सबकी कुडलियों की स्थिति अलग अलग है, सबका देश काल स्थिति अर्थात पालन पोषण संस्कार अलग है और फर्क इसी जगह से आता है अन्यथा हजारो साल पहले लिखे ये सूत्र आज भी समसामयिक है।

कुडली में शुक्र ग्रह को आज फैशन ग्लैमर सिनेमा, मॉडलिंग से जोड़कर भी देखा जाने लगा है वही देश काल स्थिति वाला सूत्र लागू होता है पर मुख्यतः तो शुक्र दाम्पत्य सुख का कारक है, धन सम्पत्ति का कारक है, जीवन साथी को प्रदर्शित करता है।

दरअसल रस ही शुक्र है, ये बात और है कि किस तरह के रस में व्यक्ति की रूचि हो ये देश काल तय करता है। वासना में भी रस है, और गायन में भी। दोनो का प्रतिनिधित्व शुक्र करता है। अपनी स्थिति, बल आदि के अनुसार। जैसे पंचम भाव ज्ञान का है, उसमें पडे शुक्र न केवल सांगीतिक या कलात्मक ज्ञान को प्रदर्शित करते है बल्कि जातक के प्रारब्ध को भी करते है क्योंकि पंचम और अष्टम भाव पूर्व जन्मों से आ रहे ज्ञान का भी है। और गहराई से देखना हो तो डी-60 चार्ट है।

पंचम भाव स्वाद और प्रशंसा, कलात्मक गुण, नाट्य रूपांतरण, मनोरंजन, हॉल और पार्टी, रोमांस, प्यार, प्रेम प्रसंग, सिनेमा, मनोरंजन का स्थान, रंगमंच आदि को दर्शाता है। यह भाव सभी प्रकार की वस्तुओं और भौतिक सुखों जैसे खेल, ओपेरा, ड्रामा, संगीत, नृत्य ओर मनोरंजन को दर्शाता है।

कालामृत के अनुसार पंचम भाव कुंडली में एक महत्वपूर्ण भाव होता है क्योंकि यह उच्च नैतिक मूल्य, विवेक, पुण्य और पाप के बीच भेद, प्रार्थना, वैदिक मंत्र और गीतों का उच्चारण, धार्मिक प्रवृत्ति, गहरी सोच, गहन शिक्षा और ज्ञान, विरासत में मिला उच्च पद, साहित्यिक रचना को दर्शाता है।

ऋषि पाराशर के अनुसार, पंचम भाव, दशम भाव से अष्टम पर स्थित होता है इसलिए पंचम भाव उच्च पद प्रतिष्ठा को दर्शाता है। इसके पूर्व जन्म में किये जाने वाले पुण्य कर्मो का पता चलता है। यह भाव प्राणायाम, आध्यात्मिक कार्य, मंत्र-यंत्र, इष्ट देवता, शिष्य और धार्मिक कार्यक्रमों के लिए आमंत्रण को दर्शाता है। यह भावना मानसिक चेतना से आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति को प्रकट करता है। काल पुरूष कुंडली में पंचम भाव पर सिंह राशि

का नियंत्रण रहता है और इसका स्वामी सूर्य है।

पंचम भाव विशेष विषयों में उच्च शिक्षा, फैलोशिप, पोस्ट ग्रेजुएशन, लेखन, पढ़ना, वाद-विवाद, रिसर्च, मानसिक खोज ओर कौशल को दर्शाता है। इस भाव में सट्टेबाजी में होने वाले लाभ, शेयर बाजार, जुआ, मैच फिक्सिंग और लॉटरी से जुड़े मामलों को भी देखा जाता है।

पंचम भाव उन बिन्दुओं को दर्शाता है, जिनसे जीवन में अप कुछ सीखते है। चतुर्थ भाव शुरूआती शिक्षा का कारक होता है, यह प्राथमिक शिक्षा और भवन को दर्शाता है। पंचम भाव गणित, विज्ञान, कला आदि से संबंधित होता है। इससे तात्पर्य है कि आप किस विषय में विशेषज्ञता प्राप्त करें। शेयर बाजार, सट्टे से लाभ, सिनेमा अचानक होने वाला धन लाभ और हानि कुंडली में पंचम भाव से देखा जाता है।

यह भाव धर्म, दर्शन, धार्मिक और आध्यात्मिक मान्यताओं का सबसे उच्च भाव है। यह दर्शाता है कि आपके पिता और गुरू से आप किस प्रकार ज्ञान प्राप्त करेंगे।

कुंडली में पंचम भाव एक महत्वपूर्ण भाव है, यह आपके भूत और भविष्य का निर्धारण करता है। हिन्दू धार्मिक मान्यताओं के अनुसार यदि आप इस जन्म में अच्छे कर्म करते है तो इसका फल आपको अगले जन्म में अवश्य मिलेगा या आप अपने पूर्व जन्म के अधूरे कर्मो को पूरा करने, अपना पूर्व जन्म से संचित ज्ञान बांटने या अधूरा रह गया ज्ञान लेने आये है। जातक, कलाकार हो या सामान्य व्यक्ति, जब तक अपने ऋणानुबंधों से मुक्त नही हो जाता तब तक प्रारंब्धवश पूर्व जन्मों के अधूरे कर्मो को पूर्ण करता रहता है, अगर कलाकार हो तो उसकी जिम्मेदारी ज्यादा बढ़ जाती है।

क्योंकि कला ऐसा क्षेत्र है जहां केवल निजी कुछ नही रह जाता अपनी विरासत, अपना भविष्य, खुद से जुडे लोग सब प्रारब्धवश मिलते है और कारवॉ तैयार होते है। कोई जातक अच्छे कलाकार होने के साथ अच्छा गुरू या शिक्षक भी होगा, अच्छा परफॉर्मर भी हो ये सब शुक्र के साथ अन्य ग्रहों पर भी निर्भर है। सर्वप्रथम तो सूर्य का अच्छी स्थिति में होना आवश्यक है, क्योंकि कलाकार का आत्मविश्वास ही उसकी सबसे बडी खासियत और जरूरत भी है।

किसी भी कलाकार का उस कला से पूर्व जन्मों का संबंध देखना हो तो पंचम, अष्टम, नवम और द्वादश भाव तथा शुक्र, गुरू, बुध, सूर्य, चंद्र की स्थिति देखी जाती है।

अगर पंचम भाव में शुक्र ग्रह की दृश्टि हो, शुक्र स्वयं हो, गुरू हो, लग्न में गुरू हो, चतुर्थ में गुरू चन्द्र हो पंचम में गुरू चन्द्र हो, शुक्र बुध गुरू की युति या दृष्टि संबंध हो, शुक्र बुध चन्द्र गुरू में बलाबल हो, सभी लग्न में हो, उच्च का (मीन राशि में) शुक्र हो, स्वराशि का (वृषभ या तुला राशि में) शुक्र हो, अंशबल में अच्छी स्थिति हो और लग्न दसवें, बारहवे शुक्र हो तो व्यक्ति गायन कला में रूचि रखने वाला या अन्य कलाओं में रूचि रखता है।

यहां कुछ वाग्येयकारों, शास्त्रीय गायकों, संगीतज्ञ गुरूजनों, सुगम गायकों की कुंडली प्रस्तुत कर रही हूँ। किन वजहों से कोई शास्त्रीय संगीत में गहरे उतर पाया, किन वजहों से कोई योग्यता रखकर भी इस विद्या से महरूम रहा ये सब जानते है। यहां यही स्पष्ट करना चाहती हूँ कि शुक्र के उच्चतम प्रभावों के साथ अगर गुरू, बुध, चन्द्र और सूर्य भी बली न हो तो कला सेवा करना असंभव है। जिन जातकों पर यह प्रयोग किया वे सभी इस मापदंड में खरे उतरने के कारण और उक्त सभी ग्रह बली होने के कारण ही कलाकार, गुरू, संगीतज्ञ है। शुक्र के नकारात्मक प्रभाव उनके नही देखे गये।

पंडित गुणवंत माधवलाल व्यास- छत्तीसगढ़ व देश के प्रसिद्ध वाग्येकार, ग्वालियर घराने के पंडित गुणवंत माधवलाल व्यास की कुंडली देखे तो सबसे पहले लग्न कुडली में शुक्र मीन राशि अर्थात उच्च का है, साथ में स्वराशिस्थ गुरू भी है। जब कभी दो गुरूओं की युति (देव गुरू बृहस्पति और दैत्य गुरू शुक्राचार्य) एक साथ होगी और दोनो ही बलशाली होंगे (शडबल में) तो व्यक्ति कलाप्रेमी, कलाकार, हर एक विषय को तुरन्त समझकर गहरे उतर सकने

की क्षमता रखने वाला, बेहतरीन शिक्षक, शोधपरक ज्ञान क्षमता रखने वाला होता है। अनेक कलाओं का ज्ञाता होता है, इसलिये पंडित जी, संस्कृत भाषा, ज्योतिशास्त्र और भेषजीय विज्ञान के भी अच्छे ज्ञाता थे। पंडित गुणवंत व्यास की कुंडली में यही योग लग्न कुंडल से स्पष्ट है। आगे नवमांश सहित, शोडश वर्ग कुंडली में से हर वर्ग कुंडली में शुकर उच्चस्थ है। गुरू का लग्न, पंचम या नवम से सम्बंध हो रहा है जो ये सिद्ध करता है कि पूर्व जन्मों से ये ज्ञान ऋणानुबन्ध के रूप में चला आ रहा था, इस जन्म में अपना सर्वस्व ज्ञान समाज में बांटकर उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया। बारहवें भाव में केतु मोक्षकारक है, बारहवें भाव में चतग्रही योग, प्रवज्या योग भी कहलाता है जहां व्यक्ति में सन्यासी जैसे भाव हेाते है अर्थात समाज के हर वर्ग को क्षमा करने की क्षमता, धन के प्रति उदासीनता, लोभ का संवरण कर सकने की क्षमता आदि। ये एक तरह से सन्यास योग है किन्तु गृहस्थ भी इस योग में बस हर बुराई के प्रति बदले की भावना न रखकर उदासीन हो जाते है। मोह माया से परे। डी-9चार्ट में और डी-60 चार्ट में देखे तो शुक्र और गुरू की स्थिति धर्म त्रिकोण (लग्न, पंचम, नवम) और मोक्ष त्रिकोण (चतुर्थ, अष्टम, द्वादश) से ज्यादा सम्बद्ध है जिसका अर्थ स्पष्ट है वे पिछले जन्मों से कला और संगीत को प्रारब्धवश लेकर आये थे और मोक्ष लेकर गए। शुक्र अर्थ त्रिकोण (द्वितीय, षष्ठ, दशम) से भी संबंध बना रहा है जिसका अर्थ है उनका रोजगार संगीत रहा पर शुक्र धन की दृष्टि से उतना प्रबल कभी नही रहा इसलिये कला से धन कमाना उद्देश्य नही रहा। कुडली में सूर्य शुक्र और गुरू सर्वाधिक बलशाली है। इस वजह से बेहद मान सम्मान मिला, बुध बारहवे होने के कारण जितना ज्ञान था उतना आर्थिक दोहन नही कर पाए क्योंकि यथोचित चालाकी का अभाव था।

डॉ. स्नेहाशीष दास- किराना घराने के प्रसिद्ध वाग्येकार डॉ. स्नेहाशीष दास की कुंडली में गुरू सर्वाधिक बलशाली ग्रह है। उनके जीवन को देखे तो किराना घराना ही नही बल्कि कम से कम सात आठ घरानों के गुरूजनों से आशीष मिला। कुंडली में शुक्र का नवम, पंचम, लग्न, अष्टम, बारहवें से सम्बन्ध संगीत और कला की ओर खोजी प्रवृत्ति, गूढ़ ज्ञान, अतीन्द्रिय शक्तियों को प्रस्तुत करता है। दशम में गुरू राहु का योग धनु राशि में है जो दशम भाव के दुष्प्रभाव के तौर पर कार्यस्थल में व्यर्थ व्यस्तता देगा पर यही योग इसी कर्म भाव में बेहद जुझारू संगीतज्ञ भी बनता है। शुक्र की तुलना में गुरू ज्यादा बलशाली होने के कारण स्वभाव में स्पष्टवादिता रहेगी, शुक्र याने कि धन के पीछे भागने की प्रवृत्ति कभी नही रहेगी। अष्टम से शुक्र गुरू का संबंध ये प्रमाणित करता है कि पूर्व जन्मों से कला की ओर रूझान, पूर्वजों से विरासत के रूप में कला लेकर आये है ओर मोक्ष त्रिकोण से केतु का संबंध ये दिखाता है कि ये जन्म इस सांगीतिक यात्रा का अंतिम पड़ाव है। डॉ. दास अत्यंत लोकप्रिय गुरू है बुध और सूर्य की वजह से आत्मविश्वास ओर तीक्ष्ण बुद्धि विलक्षण है। एक खास बात ये भी दिखी कि बुध अस्त और वक्री दोनो है ये एकरेयर फिनोमिना है, जबकि बुध ग्रह, सूर्य और पृथ्वी के ठीक बीच हो और सूर्य से अस्त हो। ऐसे लोग ट्रेंड सेंटर होते है, इनका हर काम को कने का एक उल्टा अंदाज होता है जिसे लोग तुरंत स्वीकार नही कर पाते पर बाद में देखते है कि काम अद्भूत हुआ। ये लोग आजीवन ही नही बल्कि सदियों याद रखे जाते है।

दीपक व्यास जो कि पंडित गुणवंत व्यास जी के सुपुत्र है यहां ये कुंडली लेने का बहुत विशेष कारण है। आप सभी को ये बताना कि पूर्व जन्मों से किसी कला को लेकर आना किन्ही कारणवश और यह योगो के फलानुसार स्वयं कला की हदों को चाहे न छू पाना लेकिन रात और दिन कला सेवा करना और कला सेवकों को मंच देना। मिथुन लग्न या राषि की ये विशेषता है कि ये सक्सेस स्टोरी मेकर्स होते है खुद उस स्टोरी का हिस्सा हो या न हो। ये लोगो को सफलताएं देते है। इनके ग्रह योग देखे तो गुरू सर्वाधिक बली है, शुक्र लगभग हर त्रिकोण, धर्म, काम, मोक्ष से सम्बन्ध बना रहा है वर्ग कुंडलियों में । अर्थ त्रिकोण से

भी संबंध होने के कारण इसके प्रभाव क्षीण भी हो जाते है। किन्तु गुरू बेहद बली है इसलिये संगीत को धर्म मानकर गुरू आज्ञा को सर्वोपरि मानकर संगीत प्रचार प्रसार कर रहे है। बुध प्रभावी होने के कारण बेहतरीन सांगीतिक कार्यक्रम को बेहतरीन मैनेजमेंट करते है, यहां भी डॉ. दास की तरह बुध अस्त और वक्री दोनो होने के कारण ये किसी ट्रेंड से हटकर हर काम को करेंगे। इन्होंने गायक या कलाकार से भी ज्यादा लोकप्रियता हासिल की है, क्योंकि बुध ऐसी अवस्था में ट्रेड सेंटर बनाता है, स्पष्ट है कि शुक्र से ज्यादा गुरू प्रभावी है।

चौथी कुंडली भारती सिंह राजपूत जी की है जो कि एक सरकारी अधिकारी है। शास्त्रीय गायन केवल स्वांतः सुखाय है, इनका। इनकी कुंडली में शुक्र की स्थिति शटबल में अत्यंत श्रेष्ठ, गुरू की स्थिति मोक्ष और धर्म त्रिकोण से सम्बद्ध है, अतः गुरूजनों का आर्शीवाद मिला है सूर्य बली होने के कारण सरकारी नौकरी में है, शुक्र ने अर्थ त्रिकोण में सम्बन्ध नही बनाया है, अतः संगीत इनका प्रोफेशन नही है। धार्मिक प्रवृत्ति की वजह से गुरू का आशीष बना रहता है।

और अंतिम कुंडली मेरी स्वयं की है। संगीत कला के कारण शुक्र अस्त और वक्री दोनो है, ये यह स्थिति 584 दिनों के बाद आकाश मण्डल में आती है वह भी केवल नौ दिनों के लिये। अर्थात 584 दिनों में शुक्र सूर्य और पृथ्वी के ठीक बीचो बीच आकर अस्त और वक्री दोनो होता है नौ दिनों के लिये। इसी बीच मेरा जन्म हुआ, शुक्र अपने कारक भाव षष्ठ में बैठे है अतः गला ठीक-ठाक होने के बावजूद संगीत साधना नही हुई। लिहाजा सुगम संगीत ही शौकिया गाया जाता रहा है। चूंकि शुक्र वक्र और अस्त दोनो है, ट्रेड से हटकर काम करवाते है, कला का कोई ऐसा क्षेत्र चुनने की ओर अग्रसर कर दे है जो आम नही है लीक से हटकर क्षेत्र का चुनाव और लीक से हटकर उसमें काम करने की प्रवृत्ति लाती है। शुक्र की अस्त और वक्री स्थिति । गुरू मोक्ष भाव में स्वग्रही, बली है। बुध अपने कारक भाव में स्वग्रही है। सूर्य चन्द्र बेहद बली है, सूर्य अष्टम के स्वामी होकर पंचम में बैठे है, ये किसी गूढ़ ज्ञान की ओर इशारा करता है। लग्नेश शनि भी पंचम में है। षष्ठम में चार ग्रह प्रवज्या योग को दिखाते है हालांकि इस भाव में (अर्थ त्रिकोण) प्रवज्या योग बहुत प्रभावी नही है। कुल मिलाकर स्थितियां ज्योतिश शास्त्र के ज्ञान, उससे प्राप्त आदर सम्मान, प्रोफेशन भी इसी ज्ञान का हो, बुध भी इसी तरह की कंसलटेन्सी की ओर इशारा करते है। जीवन का उत्तरार्ध सन्यासी प्रवृत्ति (गृहस्थ रहते हुए विषमताओं का त्याग) और पारलौकिक ज्ञान की ओर खींचता है।

इन सभी की कुंडली से स्पष्ट है कि किन कारणों से ये संगीत से जुडे, क्या आगे ये संगीत को लेकर जाएंगे। क्या इनका कला के प्रति कर्म बंधन छूट गया। क्यों इनमें से कुछ ने इसे प्रोफेशन बनाया, क्यों कुछ सर्वश्रेष्ठ शिक्षक बने। क्यों कुछ लोग सुरीले होकर भी गायक नही है। इनमें से पंडित व्यास और डॉ. दास वाग्नेयकार है क्योंकि इनके बुध, मतलब लेखन कला भी अद्वितीय है। इन्होंने अपने गीत लिखे, कम्पोज किये और गाये भी खुद है, ग्रह स्थितियॉ भी इन्हें मल्टीटेलेंटेड बनाती है, और गुरू की शुभता इन्हें पारलौकिक शक्तियां से परिपूर्ण बनाती है। मजे की बात ये है इनमें से लगभग सभी का जन्म गुरू या शुक्र वार को हुआ मतलब वार का बल भी मिला। इन सभी की कुंडली ये स्पष्ट करती है कि इनका जन्म कला के क्षेत्र विशेष में किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये हुआ है।

ज्योतिष का संगीत से संबंध एक अत्यंत रोचक विषय है, अभी अनेको संगीत महर्षियों की कुंडलियां देखकर और नई शोध की जा सकती है। अनन्त आकाश है हमारा भारतीय ज्योतिष और कला संस्कृति, अनन्त है इन सबके बीच का अद्भूत संबंध।

निष्कर्ष

उपर्युक्त प्रयोगो के आधर पर शोध परिकल्पना के अनुसार सभी कुंडलियों के आधार प ये सिद्ध हुआ कि लगभग एक सी ग्रह स्थिति, शुक्र गुरू

की प्रबलता के अलावा भी एक बिन्दु ऐसा है जहां कलाकार की सफलता तय होती है और वह है, प्रारब्ध अर्थात पूर्वजन्मों के संचित कर्म के रूप में मिली कला।

यह भी सिद्ध हुआ कि कौन सा कलाकार अपने प्रारब्ध और वर्तमान कर्मो से कला को उच्चतम सीमा तक ले जाकर उसमें पारंगत होगा ये सब कुछ उसकी कर्मठता और भाग्य दोनो ही तय करते है।

- उपरोक्त विश्लेषण केवल संगीत के क्षेत्र के लिये किया गया है। जातक के जीवन के अन्य पहलूओं पर नहीं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- वर्ग कुंडलियों से सटीक फलित - लेखक - व्ही. पी. गोयल, पृष्ठ संख्या 309 से 322, प्रकाशन वर्ष - 2014
- भृगु संहिता , महर्षि भृगु द्वारा रचित जिसे फलित प्रकाश के रूप में व्ही. एंड एस पब्लिशर ने प्रकाशित किया है, पृष्ठ क्रमांक 155 से 157, प्रकाशन वर्ष 2020
- भारतीय ज्योतिष, लेखक नेमिचन्द्र शास्त्री, पृष्ठ संख्या 171 से 180, अध्याय, दशवर्ग विचार से, प्रकाशन वर्ष 2012

पं. गुणवंत व्यास

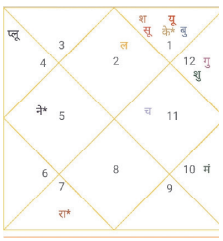

लग्न कुण्डली

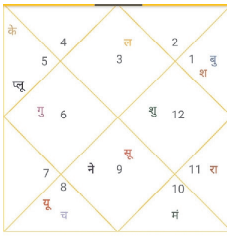

नवमांश कुण्डली

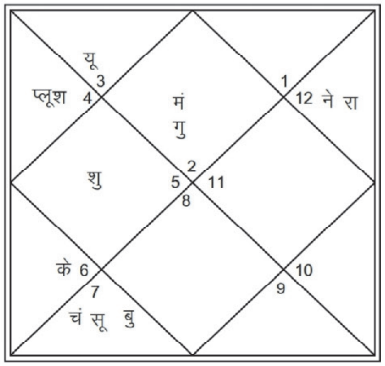

षष्टयांश कुण्डली

डॉ. स्नेहाषीश दास

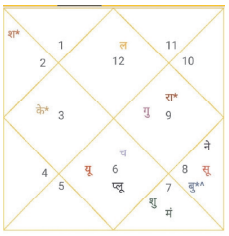

लग्न कुण्डली

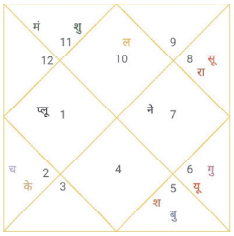

नवमांश कुण्डली

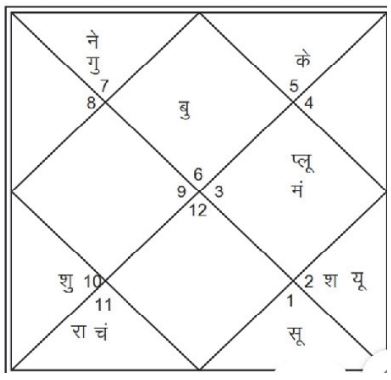

षष्टयांश कुण्डली

दीपक व्यास

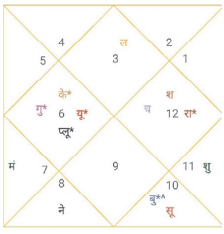

लग्न कुण्डली

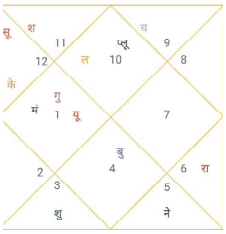

नवमांश कुण्डली

भारतीय सिंह राजपूत

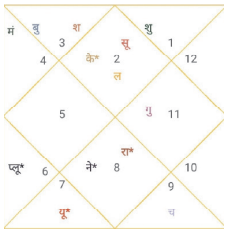

लग्न कुण्डली

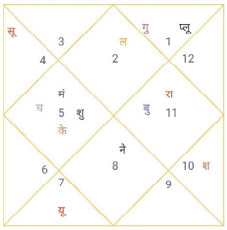

नवमांश कुण्डली

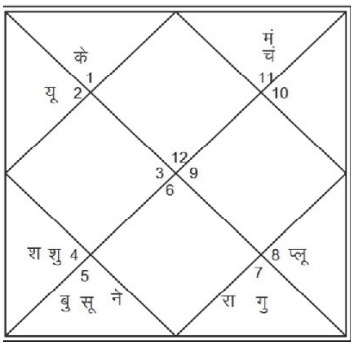

षष्टयांश कुण्डली

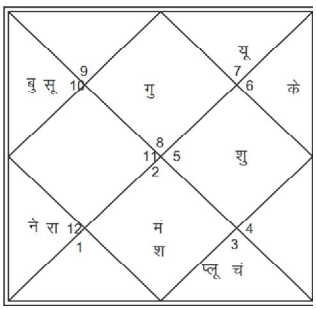

षष्टयांश कुण्डली

Raga Chikitsa through the compositions of Muthuswami Dikshitar

B. Utpala Karanth
Research Scholar,
SVYASA University, Bengaluru

Dr. Varsha Karanth
PDF scholar in Integrative Psychiatry,
Department of Integrative Medicine,
National Institute of Mental Health and Neurosciences, Bengaluru

Abstract

Raga chikitsa is a ancient manuscript that consists of the therapeutic effects of raga (a particular combination of swaras) which creates specific emotions when performed at a set time of the day or season within the listener. Musicologists have combined various elements of music like melody, notes, rhythm to create an aesthetic mood which helps to ward off negative emotions like jealousy, pain, resentment, criticism and replace them with positive thoughts like love, compassion, peacefulness, Enthusiasm, Happiness, and confidence. Any psychosomatic ailments are the result of the manifestation of inner conflicts, stresses, emotions, and beliefs that are counter opposed to positive mental attitudes. The rasas in ragas explain us how the unhealthy rasa (mood) like bhayanaka or bibatsa can be changed to healthy rasa or mood by listening to those ragas that give peaceful (shanta Bhava) mood like raga bhairavi in hindustani and rag sama in Carnatic music. This paper analyses the therapeutic angle on topics like Mantra, Tantra, Sri Vidya, role of siddhi's, Raga chikitsa, Musicology (study of handling ragas) and their usage to the development and upliftment of man-kind and creating a harmonious atmosphere to live in. Though Patanjali yoga sutras confers the usage of Siddhis can hinder the path of self-realization, Dikshitar used them for the betterment of the society at large and attained 'Videha mukti'.

Keywords

Chikitsa, Mantra, Raga, Siddhis, Tantra.

Introduction

Indian classical music is considered as the spiritual music where swaras of Indian classical music took birth from the Vedic chants where lyrics present in Rig-Veda are in mantras, and tuned to particular swaras or notes through Samaveda texts. The strong oscillations

created through the Ragas (melody) travels through the psyhic realm of human allowing it to enter the macrocosm.

This deciphers Dikshitar bringing down rain in parched lands, composing Navagraha kritis to reduce the foul play of planet Jupiter, Nottuswaras that provides overall development in school children. Patanjali yoga sutra confers;

मैत्रि करुणा मुदितोपेक्षाणांसुखदुःख पुण्यापुण्य -विषयाणां भावनातः चित्तप्रसादनम्

Maitri karuṇā muditopekṣ āṇāàsukhaduḥkha puṇyāpuṇyavi ṣayāṇāṁ bhāvanātaḥ cittaprasādanam

By being friendly with pleasant people, by showing compassion to sorrowful, by being happy for people in their joyful moments and being indifferent to people who are wicked we can keep our mind at peace and spread a harmonious atmosphere for all so simultaneously making ourselves mentally and physically healthy (Prabhavananda.S, 1953)

Literature search

Rajalakshmi (2017)- Presents how Dikshitar Nottuswaras could help enhance overall development, intellectual development, cognitive abilities, communication skills, and social-emotional learning in pre-school children. Listening to music (Hindustani or Carnatic) has always been a peaceful and healing experience (Rajalakshmi.M, 2018).

Joyanta Sarkar (2015)- Presents how playing, performing, and even listening to appropriate Ragas can work as a medicine. A Raga is a planned arrangement of selected Swaras (notes) that create an aesthetic'mood' or emotion in a particular combination. It resembles the yoga system through the method of tuneful and mellow rich sounds(Sarkar.J, 2015).

Raghavan (1975)- Biography 'Muthuswami Dikshitar' the work presents The text on the great Navagrha kritis with swaralipi (notation). Dikshitar was a Yogi with an attitude of Bhakta, reflected in his compositions as they were in form of Stotra tradition, depicted his proficiency in Sanskrit grammar (Raghavan V, 1975).

Ravi and Sridhar (2019)- Biography "The Eternal Pilgrim"- This book presents the various works of Dikshitar in detail as he was trained to scientifically handle Ragas which helped to write compositions as per situations ex. Raga Amrutavarshini was written on the spur of the moment when he witnessed drought at a place near to Tiruttani. Created Navagraha kritis as he detected some foul play of Brihaspati (graha)(Sridhar.R, 2019).

Methodology

Syntactical appro.ach

Searching for terms related to Raga chikisa like mind- body therapies, relaxation, musicology and its elements, mantras, ragas, rasas, Holistic healing in *Dīkṣitar's* literature and finding what Dīk*ṣitar* says about these in songs is a method adopted here. The Terms related to Tantra like *Kuṇdalinī, Nādopasana, Suṣumnā* and *Vidyā* are searched for in *Dīkṣitar's* compositions.

Semantical approach

There are several principles of Yoga and their techniques used for treating various psycosomatic diseases created through disturbances caused at Manonmaya level. Understanding the

meaning of *Dīkṣitar's Kṛti*, this work explores how these components Yoga can be found in Dīkṣitar's compositions and their link between Bhakti and various principles of Yoga like Āsana, Prāṇāyama, Kuṇdalinī, and Nādopasana are explored.

Nature and scope of Music Therapy (Raga chikitsa)

Music is the amalgamation of mind, body, and spirit which is increasingly being used for 'Mind-Body Therapy' like Autogenic training, Hypnosis, Imagery, Yoga, Meditaion, Tai chi, group support, Behavioral therapies all for the sake of relaxation. These therapies represents as a part of 'Complementary and alternative medicine' or 'CAM' which provides Holistic models of healing and includes the blending of physical (internal and external harmony), mental and spiritual aspects of a person on the whole. The Table 1 below shows the swaras corresponding rasa and the concerned raga and the disease connected with it:

Table-1

SWARAS	RASA	RAGA CARNATIC	RAGA HINDUSTANI	DISEASE TREATED
RI, DHA komal Bhairava that	Shanta and karuna	Malahari, lalitha	Bhairava, ramkali	hypertension
RI, DHA teevra Kalyan that	Sringara	Mohana, kalyani	Yaman, bhupali	diabetes
RI, DHA komal Marva that	Shanta , karuna	Purvi, sohini	Marva, sohani	Knee problems / bronchitis
RI, DHA teevra Bilaval that	sringara	Arabhi, athana	Behag, durga	arthritis
RI, DHA teevra Khamaj that	sringara	Des, kamboji	Khamaj, des	cancer
GA, NI teevra Kaphi that	Veera rasa	Kaphi, peelu	Asavari, bagesri	atherosclerosis
GA, NI komal Asavari that	Veers rasa	Anandbhairavi, varsini	Bhairavi, jaunpuri	anxiety
GA, NI komal Bhairavi that	Veera rasa	Dhanyasi, janatodi	Bhairavi, malkauns	Back pain
GA, NI komal Todi that	Veera rasa	subhapantuvarali	Todi, gurjari	Chronic disease
RI, DHA komal Purvi that	Santa and karuna	Deepakam, gamakapriya	Puriya , dhanasri	insomnia

Karuna.N, 2013).

Infants recognize and respond to songs or music that they hear while in the mother's womb at 28 weeks of gestation. As the infant comes into the world crying communicating through sounds the feelings like hungry, sad, and sleepy or even when wanting of attention, the new mother understands the distinct way of cries. The development of cognitive abilities and communication is very much connected to the inherent musicality and socio-emotional learning from the infant stage. Early exposure to music could help the child develop into an emotionally stable person and pick up the language and cognitive skills at a faster pace (Khodareza.M, 2015)but the actual mechanism of that linguistic exposure is not clear. Does CDS have any intrinsic qualities that can facilitate or even determine the process of first language acquisition? At first, the importance of CDS in the studies concerning language acquisition is dealt with in this paper. How different theories of language acquisition will treat CDA is discussed with the aim of revealing its function in the process of first language acquisition. The criticality of CDS is the issue that will be treated in the subsequent part of this paper. Its role with respect to the development of vocabulary and grammar in children is investigated in the final section. It is hoped that clarifying these points will contribute in determining the status of CDS in the process of first language acquisition and exhibiting its criticality in the development of language. INTRODUCTION The earliest steps to analyze the children\"s speech were probably the supposedly diary studies which were basically concerned with the children language development. Such studies were mainly conducted by parents (e.g. Stern and Stern, 1907.

Dikshitar's knowledge of Musicology

Dikshitar was trained in scientifically handling of ragas by his father who was a musicologist which helped him to use a particular raga to particular deity and to a particular sahitya or lyric. Raga Hamsadhwani is used for the famous song 'Vatapi Ganapatim Bhaje' as this raga creates enthusiasm, joy and confidence necessary when starting something new which is also related to the deity Lord Ganesha. Dikshitar composed a group of songs called the Nottuswaras due to the influence of the western band and by the suggestions of col. Browne. These compositions helped the children in over all development which includes social-emotional learning, cognitive skills, communications skills too. Significant changes were seen among children having delay in motor development and speech delay. Children with disruptive behaviors also showed positive changes. These songs are helpful for children who are learning the Carnatic music which has soul of Sanskrit but dressed is English clothing (Rajalakshmi.M, 2018).

Dikshitar's Bequeathal of Sri Vidya Upasana

In musical phraseology, the name Dikshitar follows a glorious tradition or heritage with his father Ramaswami Dikshitar, brothers Chinnaswami and Baluswami who were expert and skillful musicians and composers and made an enduring mark in the world of Carnatic music. 'Dikshit' literally means one who

is initiated into 'Sri Vidya Upasana'- the systematic rituals followed during the worship of Devi (divine mother), 'Diksa' means imparting or initiating to teach spiritual knowledge and removal from the bondage of innate ignorance. The predecessors of Dikshitar's known as 'Dikshitar Pentad' (the group of five generations) made rich, numerous, and varied contributions to the golden age of Carnatic music who were highly devoted to Devi and so were inducted to the mantra Diksha and had immense knowledge of the ancient scriptures like Vedas and music. Dikshitar followed the dualism philosophy of Adwaita of Adi shankaracharya which was combined with the knowledge of Tantra in his compositions (Venkatarama.T, 1968).

What is Sri Vidya ritual?

The knowledge or Jnana relating to 'Eshwara' (male deity) is called 'Kalpa' and relating to Eshwari or Goddess Sri Lalita Tripurasundari (female deity) is called 'Vidya' as 'Mother Worship' of various shapes and forms. Vedas is the base for the Sri Vidya rituals like Atharva veda and Rigveda, Upanishads like Rudra Upanishad, Sakthi Upanishad which enumerates the 'Shiva-Shakti' truths. The requisites for the rituals are; The aspirant cleanses his body (internal and external) in order to receive the Sri Vidya mantra, Presence of Guru is essential to attain the knowledge of Brahman as they both are on the same par and has the knowledge of the scriptures and so he intiates his disciple with the 'Moola Mantra'('man' means to think and 'tra'means to protect) in seed (Bija) form called as 'Bala Tripura sundari mantra'. Mantra is deity specific creating an image in the mind of the sadaka (person performing the ritual) useful for meditaion and helps in balancing Ida, pingla and sushumna nadis (nerves for the flow of prana). This ritual revolves round the concept of 'Shiva and Shakti' and helps the devotee to discard the illusionary world through sadhana (spiritual exercise) and lead him into the world of reality seeking difference between world and Ishwara (Vishwanathan.T, 2019).

What are Siddhi's

Siddhi's term is meant to be given to that miraculous power which is spiritual and magical in nature and specifically associated with the human body and mind. The capacity to do anything occult is what can be called Siddhis. In Sanskrit it means 'Perfection'. These powers are culled through extremely rigourous and accomplished spiritual rituals, meditation, control of senses, and mantras. Siddhi's can occur by birth, by use of herbs or drugs, or by Mantras and self-discipline as conferred by Patanjali yoga sutras (chap.4.01)(Prabhavananda.S, 1953).
The ashta siddhis mention in Hinduism are;

- Anima-Reducing one body to the size of an atom.
- Mahima-Ability to expand ones own body to an infinitely large size.
- Garima-Becoming infinitely heavy.
- Laghima-becoming almost weightless.
- Praptika-having unrestricted access to all places.
- Prakhamya-realizing whatever one desires.

- Ishitva-possessing absolute lordship.
- Vashitva-the power to subjugate all (Muktibodhananda.S, 1998).

Dikshitar's attainment of Siddhi's

Dikshitar at the age of sixteen he was proficient in Mantra, Tantra, shastra, Astrology, Vedanta, iconography, Mimamsa, adept in playing Veena and vocalist too. The Yogi took Dikshitar on a pilgrimage to Kasi for six years and under his guidance taught him a life of self-discipline, a sense of equanimity, Vairagya (renunciation), which developed a yearning and clairvoyant wisdom for exploring various matters concerning the spiritual realm. At Kasi, Cidambaranath Yogi gave Dikshitar 'Diksha' (initiation) in 'Sri Vidya shodashakshari Mantram' (a tantric form of worship) helped him to attain mantra siddhi (proficiency in chanting vedic mantras), jnani and Mahapurush (scholar of high standard). Having reached mantra siddhi, Dikshitar was blessed by Goddess Ganga with a unique Veena with Yali Mukhi upwards and Sri Rama inscribed on it in Devanagari script. At tiruttani, Lord Subrahmanya came in a disguise of old man blessed Dikshitar by putting sugar candy in his mouth while he was meditating and chanting 'Sri shodashakshari mantram' for 40 days. This instance initiated Dikshitar to compose songs on Gods and Goddesses (Krishnan.S, 2006).

The creation of composition 'Anandamrutakarshini' in Raga Amrutavarshini proves the siddhi power of Dikshitar. As the name suggest 'Amrut' means nectar and 'varshini' means raining of neactar which is referred to the rain. On his way to Ettayapuram, Dikshitar came across a village facing severe drought with dry parched lands and people dying of thirst. Dikshitar composed and sang the song which brought down so much of rain as to wash away the village till he sang to the Goddess Amruteshwari to stop the rains. The moods (rasa or aesthetics) associated with it are joy, exuberance, appeal, and passionate exultation. The swara combinations in this raga conjure up a grand vision in the mind's eye. This vision when accompanied with an interesting tale of heavy pouring of rains would certainly be acknowledged as the answers to Dikshitar's prayer to the Goddess through the raga gives the ragam almost ethereal quality. Analysing these siddhi's it can be understood that Dikshitar acquired the power to control the elements of nature (Air, water, fire, earth, space) 'Panchbhootas' through mantra siddhi which he chanted in the form of song to invoke the Goddess Amruteshwari to bring down rains in parched lands.

In the famous kriti 'Akshyalinga vibho' Dikshitar was told to leave the temple as it was time to close the doors of the temple. Dikshitar insisted to sing for the deity seated in Garbha gudi (inner sanctum). As he started to sing the doors of the inner temple opened and the lord revealed himself to the devotees. These are the siddhi's revealed through his works.

In the famous kriti Mangala devata of Tiruvarur, Dikshitar expressed his gratitude to the Goddess as she appeared in his wife's dream to cure her infatuation for gold ornaments.

Dikshitar got an intuition that he was nearing his end. He sang the famous kriti

'Menakshi me mudam dehi' praying her to grant salvation to her devotees from entering the cycle of birth and death.

Dikshitar's wife called on to one of his disciples as they were short of groceries for food. The disciples reacted saying she will sell her ornaments and give them the money to buy. Dikshitar got the intuition that she was selling her ornaments for their sake and stopped her from doing so. Dikshitar composed a song on Godess lakshmi 'Hiranmayi Lakshmin', in which he referred humans as maya (illusion) and inferior and conferred that Goddess would help him. Though Dikshitar was surrounded by poverty but always stuck to self-abnegation. It so happened that an elderly official was suppose to visit the village for which groceries was collected to make special food for him. The Goddess helped Dikshitar by cancelling his arrival to the village and the village head felt necessary to give all the groceries to Dikshitar who was considered the most deserved person of the village (Govindarao.T, 1997).

Navagraha kritis

Dikshitar in his spiritual life brought about miracles which is not possible for an ordinary person, the 'Navagraha kritis' is one of them. As the name suggests 'Navagraha Kritis' also known as 'Varakritis', is a set of nine kritis in praise of the nine planets (Graha). Dikshitar has composed seven kritis for each day of the week. The Kriti Brihaspati in Atana raga was composed first to cure the illness of one of his disciples 'Suddha maddalam Tambiyappan' who was suffering from a severe stomach ache. Dikshitar got the intuition that this was the foul play of the planet (graham- Brihaspati) Jupiter and being proficient in Jyotisha composed the kriti to reduce its effect. He is the only composer to use 'Bija mudras' in these kritis that increases the power of the kritis. (Acharya.S, 2000).

Tantra

Tantra is an elevated form of Pū*ja*. Tantra means technique. It includes many methods of Pū*ja* both in ritual and psychological perspectives. It also includes Yantra (different shapes that can make the mind focus and accomplish powers) and Mantra (chants). Even without Tantra, *Pūja* is possible through pure devotion. Yet Tantra makes it more effective. Tantra is an elevated form of Püja because it not only includes rituals, but also the psychological process of purification of mind as well as accomplishments of various powers. In devotional literature of music, various aspects of Bhakti can be seen with many composers. But only in rare composers, Tantra's aspects can be seen in detail. Dikshitar is of such a kind.

Tantric tools are observed in Atharavana Veda. Tantra opened gates to all the religions and with no differentiation of sex, caste, or creed. Tantra believes in the existence of six chakras in the human body various nadis present in the body out of which Ida, Pingla and Sushumna nadis are the three principle nadis (channels for the energy such as prana to flow). Dikshitar reveals his devotion to the Goddess as she protects Dikshitar and is capable of granting liberation as she releases devotees from the bondage of birth and death cycle which was reaffirmed in one of his dhyana Kriti. He imposed onto himself the rigorous

restrictions of the grammar while using the Sanskrit language to maintain the dignity of the language and give a proper interpretation of the kritis.

Dikshitar can be considered as the pioneer of both fusion music and *Rāga Cikitsā* since his compositions follow the *stotra* tradition (chanting of *mantrās*). The chanting and toning involved in Veda hymns in praise of God has been used to cure several disharmonies in the individual and enhances immunity, helps calm the mind, and Vedic *Mantrās* help in balancing the *Cakrā's* or psychic centers in our body. *Mantrās* provide us with enigmatic and mystical experience and it represents the combination of clairvoyance and sound. *Mantrās* provide a meditative mood through monotonous utterances. Dikshitar's contribution to Tantric worship is the famous Navavarana kritis. These monumental compositions are uniquely written with musical and poetic excellence at its core and have religious significance describing specialized rituals consisting of worship of Sri Chakra, Sri Yantra and consisting of nine enclosures or avarnas these enclosures are termed as 'Navavarna'(Archana. MV, 2013). Dikshitar's Tantric worship reflects in his compositions below;

दश विंशद्वर्ण गर्भिणीकुण्डलिन्याः

Daśa viṁśadvarṇa garbhiṇī kuṇḍalinyā

She is the *Kuṇḍalini* encompassing the fifty letters (of the Sanskrit alphabet) (31-C).

कुण्डलिनी नागध्वनि सहिते

Kuṇḍalinī nāgadhvani sahite

She is the *Kuṇḍalinī śakti* (470-6th stanza)

मूलाधारक्षेत्रस्थितायै

Mūlādhārakṣetrasthitāyai

She resides at *Mūlādhāra kṣetra* (203-AP).

मूलाधार चतुर्दळ पंकजमध्यस्थं

Mūlādhāra caturdaḷa paṅkajamadhyasthaṁ

He is the center of *Mūlādhāra* which is the form of four-petalled lotus (84-C).

Tiruvarur is referred as 'Muladhara kshetra' and mukti kshetra which consists of many temples of Mahaganapati, Kamalamba, Vishwanatha and other deities. Dikshitar compossed 55 songs only on the deities of Tiruvarur temple.

श्री मूलाधार चक्र विनायक Śrī Mūlādhāra cakra vinā***yaka***

Who is established in the *Mūlādhāra Cakra* (141-P)(Pallavi).

मूलाधारक्षेत्रस्थितं

Mūlādhārakṣetrasthitaṁ

He is the presiding deity of *Mūlādhāra Kṣetra* (334-C).

मूलादि नवाधारव्यावृत्त दशध्वनि

Mūlādi navādhāravyāvṛtta daśadhvani

Who is inherent in the nine centers-*Cakras* of the mystical yogic body *Mūladhāra* etc, knows how to pierce through the sounds (119-C).

विशुद्धचक्रस्थिते Viśuddhacakrasthite

Seated in the *Viśuddha cakra* (190-C).

विशुद्धयादि निलयं Viśuddhayādi nilayaṁ

Remains in the *Viśuddhi cakra* (332-C).

विशुद्धिचक्रस्थितं विनोदकारिणं

Viśuddhicakrasthitaṁ vinodakāriṇaṁ

He is established in the *Viśuddhi Cakra* (340-C).

विशुद्धचक्रनिलयाय नित्य

Viśuddhacakranilayāya nitya

Established in *Viśuddha cakra* (345-AP) (Anupallavi).

विशुद्धचक्रनिवासिनीं
Viśuddhacakranivāsinīṁ

She is the presiding deity of *Viśuddha Cakra* (426-C).

सहस्रदळ सरसिजमध्य निवासिनः
Sahasradaḷa sarasijamadhya nivāsinaḥ

Who resides amidst thousand-petalled lotus (213-C).

This composition explains the complete Kundalini awakening in the light of Tantric worship. The various steps are clearly depicted with the merging of Siva and Shakti.

मूलधारमणिपूरकाद्यजभेदन स्फुरत्कुण्डलिनि सहस्रदळब्रह्मरन्ध्रस्थ कमलान्तर्गत शिवसम्मेळन गळित परमामृतबिन्दुसेचन
Mūladhāramaṇipūrakādyabjabhedana sphuratkuṇḍalini sahasradaḷa Brahmarandhrastha kamalāntargata śivasammeḷana gaḷita paramāmṛtabindusecana

Invokes the blossoming of Kuṇḍalini śakti, transcending the flowering of Mūladhāra and Maṇipūrakā. The Goddess joins in the harmonious union with Lord Shiva, who is seated in the thousand-petalled- Sahasradaḷa-lotus (335-C).

मूलमन्त्रयन्त्रस्वरूपिणि
Mūlamantrayantrasvarūpiṇi

You are inherent of Mūlamantra and Yantra (193-C)(Charanam).

श्रीविद्याराजगोपालं भजेहं
Śrī vidyārājagopālaṁ bhajehaṁ

I sing on lord Rajagopala, who is the form of *Śrī Vidya*. The beautiful image of the shrine icon is where the lord is merged with the Goddess Ambaltoo so it is known as *Ardhanārīśvara mūrti*, Lord Vishnu and Goddess Ambal are the same *Śakti*, they together represent the protection and preservation of life (372-P) (Govindarao.T, 1997).

Conclusion

Indian classical music has been manifested into a glorious art form through its variety of melodic elements and one of being is Ragas. The ornamentation of notes and rhythmic patterns uniting the performer and the listener in the experience of emotions of Classical music of India besides being a soothing entertainer for a common man is also a means to god realization revealed by the ancient texts and wise seers. The concept of rasa brings out the therapeutical aspect of music as these emotions change our thought process towards the life by changing the sad mood to happy mood , anger to calm, disgust to love and passion and frightening mood to peaceful mood. This paper recognises the significance of enigmatic utterances of Mantras and Vedic hymns where the chanting and toning involved in Veda hymns in praise of God has been used to cure several disharmonies in the individual and enhances immunity, help calm the mind, and Vedic *Mantras* help in balancing the *Cakras* or psychic centres in our body.

References

Acharya.S. (2000). *Karnataka Sangeet Deepika*.

Archana. MV. (2013). *Karnataka Sangeetada Rachanegallali Sri Vidyeya Ullekha*.

Govindarao.T. (1997). Compositions of Muthuswami Diksitar. In *Biography on the*

translation works of Muthuswami Dikshitar (first edit, p. 426). Gyanamandir Publications.

Karuna.N. (2013). Review of Rāgās and its Rasās in Indian music and its possible applications in therapy. *International Journal of Yoga - Philosophy, Psychology and Parapsychology*, *1*(1), 21. https://doi.org/10.4103/2347-5633.123288

Khodareza.M. (2015). On the status of child directed speech: does Motherese determine the process of first language acquisition? *Indian Journal of Fundamental and Applied Life Sciences*, *5*(S2), 1358–1367. www.cibtech.org/sp.ed/jls/2015/02/jls.htm

Krishnan.S. (2006). Muthuswami Dikshitar and Tiruvarur. In *Autobiography* (p. 79). The C.P. Ramaswami Aiyar Foundation.

Muktibodhananda.S. (1998). *Hatha Yoga Pradipika* (Third edit). Yoga Publications trust.

Prabhavananda.S. (1953). Patanjali yoga sutras. In *Aphorisms* (p. 166). Sri Ramkrishna Math.

Raghavan V. (1975). Muthuswami Dikshitar. In N. Ramanathan (Ed.), *Mahakavya* (First edit, p. 55). National Center for Performing Arts.

Rajalakshmi.M. (2018). Influence of early acquaintance with Dikshitar's Nottuswaras on Cognitive development, Communication and Social Emotional Learning in Preschool children. *Shodhganga*.

Sarkar.J. (2015). Indian classical ragas to cure diseases. *International Journal of Advanced Science and Research*, *1*(1), 9–13.

Sridhar.R. (2019). the Eternal Pilgrim. In *Biography on Muthuswami Dikshitar.* (p. 172).

Venkatarama.T. (1968). Muthuswami Dikshitar. In N. D. National book trust of India (Ed.), *National Biography Series*. (p. 78). Secretary, National Book Trust of India, New Delhi 13.

Vishwanathan.T. (2019). Shri Vidya. In *The Concept of Sri Vidya* (p. 40). Bhaskara Prakasha Ashram. www.bhaskaraprakasha

Influence of World music on Indian music

Snigdha Haldar

Research Scholar, Vocal music
Rabindra Bharati University, Kolkata

Abstract

Indian music has established itself as one of the prime components in music throughout the world. When we speak about Indian music the first thing that comes to our mind is Indian classical music. Beside classical music there are other genres also like Rabindra Sangeet, Nazrul Geeti, Folk songs, semi classical music, Filmy music, etc. This article focuses on the fact that Indian music had to face a lot of impacts of foreign music and due to that fact, we can see a lot of varieties in tone and arrangements in our Indian music which make it euphonious. Therefore, we can say that foreign components of music have enriched our music. But on the other hand, if we scrutinize it from traditional point of view this foreign impact has deteriorated our musical backdrop.

Keywords

Indian classical music, Carnatic music, foreign music

Origin of Music

First of all let us know about the origin of Indian music and for that reason we have to go to the Vedic Age. Among the four Vedas, namely: 'Rigveda', 'Samveda', 'YajurVeda' and 'AtharvaVeda', the second one is the main component of Indian music. The hymns of 'Samveda' are called 'Samgana' and from those 'Samganas' music developed in our country. But if we have to find out the origin of music in the entire world there are of quite a few opinions regarding that thing. A few literary persons believe that music evolved from Nature. It is believed that in the Koh-Kaff Mountain region in the Middle-East there is a bird is called Phoenix. There is a legend in which musicians believe that the Phoenix bird has seven pores in its beak. When air flows from those holes sound comes out and, in this way, the seven tunes of music originated. So, one theory of origination of music is from Yunan province. On the other hand, famous historian "Olasinism" in his book "Viswa-ka-Sangeet" opined that music actually originated from the bird called "Bulbul". Ancient people of that time were attracted to its voice and for their entertainment they used to copy its tunes. 'Olasinism' described 'Bulbul' as a heavenly creature which arrived in

the world as the creator of music.

There is another legend in Arabic that once upon a time 'Paygambar Hajrat Musa' was travelling through waters. Suddenly an angel appeared and gave him a stone. He told 'Paygamber' never to lose that stone. One day when he was returning from jungle he felt thirsty. All on a sudden water started to flow from that stone and it broke into seven pieces. It is believed that seven tunes of music came into existence in the world through those seven pieces of that stone.

At the beginning I pointed out that Indian music is believed to have evolved from 'Samgana'. But in Hindi literature it is said that music has evolved from birds and animals. According to Pandit Damodar, the seven swaras of music has evolved from the tones of birds and animals in this way- 'Sadaj' from 'Peacock', 'Rishav' from 'Skylark', 'Gandhar' from 'Goat', 'Madhyam' from 'Crane', 'Pancham' from 'Cuckoo', 'Dhaibat' from 'Frog' and 'Nishad' from 'Elephant'.

There is a proverb in Bengali which is "Nana Munir Nana Mot" meaning different people have different opinions. Therefore, we cannot be sure about how music came into existence in the world. It may be heavenly intervenes or beauty of our Mother Nature but we cannot take either for granted.

Indian and Foreign music

I already have mentioned earlier that India music has different genres like classical, semi classical, folk, Rabindra-sangeet, etc. In Indian classical music there are two components i) Hindustani classical music of North India and ii) Carnatic music, the South Indian expression. Now in terms of foreign music we can take music of China, America, Greece, Iran for our discussion. In Chinese music it is sung in five swaras which is similar to Raag Bhupali of Hindustani classical music.

Among the verities of foreign music the most famous one is Western music. This western music is basically country music. In countries such England, France and America music evolved mainly from folklores. Whatever western music we hear today are nothing but the developed version of their folk music and one of the prime components of this developed version of western classical music.

Impact of foreign music on Indian music

We all know that the foundation stone of Indian music was laid in the Vedic era. But there are hell and haven differences in Indian music of modern age and of Vedic period. During this transition of period our songs of three tunes of terms of Vedic age has now transformed into music of seven tunes. The main transformation of Indian music occurred during the reign of Mughal Empire and this musical transformation has created massive upon our musical backdrop. Our Vedic music almost got vanished during Mughal era. Our Dravidian hue in music gradually decreased and imaginations, likes of Mughals took its place. For example – in the court of Allauddin Khilji the musical exponent was Amir Khusrow who was an Indo-Persian sufi singer. The music which was famous in that court is now known as 'Qawwali' and has gone deep into the roots of Indian

music. In earlier days the music which was sung was mainly to worship God and Goddesses and Dhrupad was main form of the culture. Mia Tansen himself was an excellent Dhrupad singer. But when he became one of the parts of Navaratna in the court of Emperor Akbar his Dhrupad also got impacted by Mughal culture. But whatever raagas we are hearing today are mainly the compositions of Niyamat Khan and Firoz Khan. They, by the pen name of Sadarang and Adarang, changed the style of khayal of Hindustani classical music in the 18th century into the form which is performed today. Before the invasion Mughals Indian classical music had no different part. But after that it was divided into two parts- i) North Indian classical music and ii) South Indian classical music. Whereas Hindustani classical music got a massive 'Middle-East' impact, as Delhi was the capital of Mughals, Carnatic music succeeded to survive to a large extent due to the failure of Mughals to conquer southern part of our country.

After getting Middle East impact during the reigns of various Sultans our Indian music faced the western impact in the 19th century. The English, French and Portuguese brought their own musical culture and spread that throughout our country. During that period the Indian people of higher status like Zamindars, Raibahadurs, started to like and learn western music. Among them there is one great person who is known to the world as Rabindranath Tagore. His music is famous as Rabindra sangeet throughout the whole world. He failed to keep himself out of the effect of foreign music. Frequently he used to travel here and there throughout the world and used to get impressed and inspired by the culture of those countries. Among those countries he was most affected by the Irish music culture. Among his songs which are inspired by western music some are-

i) Phoole Phoole Dhole Dhole.
ii) Purano Sei Diner Kotha.
iii) Koto Bar O Bhebechhinu.
iv) Sara Jibon Dilo Alo.
v) Tomar Holo Shuru Amar Holo Sara.
Etc

These songs got applauded in the whole world.

Now when we discus about the modern era, all of us are very much acquainted with the word 'Fusion'. In fact the whole world is now merged in fusion. This fusion can be said is derived from western music. In 1960s Jazz fusion started in America. Fusion is a blend of two different music and the combination of these two music creates a new one. This fusion music has played a massive role in Indian musical world. From classical music to Bollywood songs a lot of the compositions are the result of fusion music. Pandit Ravi Sankari has a creation of fusion on

Hindustani classical and western orchestra which has received great appreciation throughout the world. After being inspired by Ravi Shankarji a lot of fusion compositions were created and are being created by different composers. Not only in instruments but in songs also a variety of fusions are created by blend of Hindustani classical music and western music.

Besides, Bollywood songs, Punjabi folk songs, etc. today all are under the ambit of fusion. Fusion has fast rhythm and for this reason this has received

massive popularity in this fast moving world. These songs got applauded in the whole world.

In western classical music the songs of Mozart, Ludwig van Beethoven, Johann Sebastian Bach, etc. inspired and impacted the world the most. Apart from western music, the music of China, Japan, Korea, Greece, etc. have a notable effect in Indian music also.

Result of Foreign impact on Indian music

There are huge differences in music of old days and today. During the transition of time the taste of music of people has changed a lot. This is due to the fact that whenever the foreigners invaded our country they brought their own cultural backdrop along with them which have left a great impact on the change of tastes and likings of our countrymen. This the main reason for the change in the music world of India as we see a lot differences from the music of our Vedic age and modern days. The music of Vedic period was something different which was filled with divine grace. Later, as the test of people change, there came change in music also which resulted in a form of Gandharva Geeti. But the main transformation occurred during the reign of Mughals and in that period we got the test of Khayal, Thumri etc.

But as a result of all these fast things we are gradually losing our classical cultural heritage. On the other hand the modern world is fast moving. The taste of people change here rapidly. That is why the fast rhythm of fusion is more cherishable to people than anything else and for this particular reason we see that the classical music shows 2-3 hours of old days have now become shows of 30-45 minutes. In this way it not only saves time of people but also creates new forms of music.

Not only in singing but in instruments also foreign music has left a great impact on our Indian culture. For instance- Brij Bhushan Khabra popularized guitar which is a western musical instrument in Indian classical music and it got appreciation too. Pandit Vishwa Mohan Bhatt, also known as V.M. Bhatt, introduced a new musical instrument in Indian classical music known as Mohan-Veena (slide guitar) which is a blend of guitar and veena. Along with these

Instruments there are some other instruments like- Mandolin, Saxophone, etc. have become part of Indian music also.

Harmonium, which is another western musical instrument, is one of the integral components in musical scenario of modern days. Along with its western flavour it has made our music more euphoric. Beside Hindustani classical music, in Carnatic music we find the flavour of western music too. Vishnu Govind Jog introduced Violin in his performances which became famous throughout our musical environment of Carnatic music.

Conclusion

If the music of our country had remained in its primal form it could not have received the grandeur and magnitude in the world stage. Indians have always welcomed anything which is beautiful from any part of the world. In case of music it happened also. Our country received the new and modern elements

of music of foreign countries and cultures with great warmth. Indian music of Vedic age had a solid base. Modern elements of foreign music got mixed with that base and took it to the new heights in the world stage. Following the taste of time this blend of music removed the monotony of Vedic age which was warmly accepted by people as it gradually became rich in grandeur time to time. This richness of musical culture took our music, our musicians, and our country to the new heights in the world as example- Pt. Ravi Shankar ji to A. R. Rahman sir etc.

References

Brihaspati, K. (2000), Dhrupad aur uska vikas, Patna, Bihar Rastra Bhasa Parisad.

Chatterjee, G. (2009), Sangeet Vimarsh, Varanasi, Abhinabh Gupta Academy.

Garg, L, Sangeet Visarad, Hathras UP, Sangeet Karjalay.

Kumar, A. (2018), Sangeet Ratnabali, Chandigarh, Abhishek Publication.

Misra, K. (2018), Kashi ki sangeet parampara ebong sangeetjogot ko kashi ka jogdaan, Varanasi, Lumens books.

Patwardhan, B. (2012), Sangeetmay Benaras, Varanasi, Sharada sanskriti sansthan.

Pathak, J.N (February 1989), Sangeet Sastra Pravin, Allahabad. Pathak Publication.

Sagar, B.D.K, (1998), Sree Matangmunikrit Brihaddesi, Jaipur India, Publication scheme.

Snehi, S, Sarswat A. UGC Sangeet, Merut, Arihant Publication.

Role & Relevance of I.C.T in modern teaching of Music: A Survey Study

Harmeet Singh
Research Scholar
Department of Music, GNDU Amritsar

Abstract

Both music and music education have an important place in Indian culture. The state of music education that we have today is not established by any invention. It has basically grown and developed, which is the construction of the present situation. Contemporary Hindustani music education is progressive and represents a new era of educational tradition. Today there are new discussions to improve music education in educational institutes. In field of education, we are proud to use a special type of scientific & communication tools. In the modern times, many advances have been made in the world by science and technology. A revolutionary change has accrued in many professional and industrial due to the new and fast evolving technology. Education is one of such area which is growing very fast in adapting new technology and trends. This tremendous technology advancement all around us has greatly influenced the process of teaching and learning. The tools and resources of progress and technology which are visible around us today, these selling fundamental driving force is the infinite aspiration of the human mind to surrender itself. As a result of the efforts made for the success of expression, today we have moved towards the development of humanity with the help of many types of communication devices. A large numbers of teaching ads have been adopted in educational institutions, in the field if music education uses of scientific tools and resources highly recommended and adopted by music teachers and scholars.

Key words

Education, Gharana, Music, Learning, Scientific Tools

Introduction

Education is a basis of all-round advancement of human being. Education develops the personality and refines the inherent innate powers of human beings by cleansing the defective powers. As mentioned in Manu Smriti- 'Vidhayamritamashnute' that shows the importance of education. Acquiring knowledge is known as 'Vidhaya' and imparting knowledge to another person

is called 'Shiksha'. The specific method used for conveying the education is 'Shiksha-system'. The word 'education' has the main existence of two characters 'Master and Disciple'.

The existence of both Master and Disciple is important for the process of teaching. The teaching process is an experimental in which both the teacher and the learner must be active. As far as the question of music teaching method prevalent in different periods is concerned. "During Vedic period, music teaching was famous as 'Gurukul' method. Even in the 'Naradiya' education of direct 'Samaveda', it said that it is better to get knowledge from 'Acharya's' vowels."[1] During the Buddhist period, some special Universities were established such as Nalanda, Vikramshila Tadantapuri, Takshashila as reported in literature. Master-disciple tradition in music teaching was converted into a 'Gharana' system. Music was predominant during the time of 'Gharana' system emergence. 'Gharana' music was prevalent only in the court of kings and in social events. With the passage of time, classical music entered in the institutional education system as a separate subject.

Music teaching in the Vedic period

The oldest age in the history of Indian culture is considered to be the Vedic age. Although Indian music is considered to be eternal, the specific shape of Indian music is available only in the Vedas. Of the four Vedas, only the 'Sama' Veda is important from the point of view of Music. In the Vedic period, the music used in religious acts by enlightened sages and musicologists was completely regulated. In Vedic music, classical music is known as 'Sama'. Evidences were also found in the basic elements of ancient literary material that in ancient times the functional form of music as well as classical knowledge was given enough importance. It has also been mentioned in Naradiya Shiksha that although the genre of singing is basically oral, the genre of music is incomplete without acquiring knowledge of hymns. In general, there are indications that three forms of Sam training are prevalent in Vedic literature- 1) as father to son, (2) as Guru-Shishya tradition and (3) in Gurukula. In Gurukul Ashrams, Sam's training was given orally.

Therefore, it is clear that in the Vedic period, the music-education system has been given special importance in Indian culture. This art has been accepted as a major part of education by considering as an important part of the development of human personality. In that period, the ashrams of sages were equivalent to schools or education centers. Takshashila and Kashi centers were major educational centers during Buddhist and Jain times.

Music teaching in the middle Ages

In the pre-Middle Ages, around the eighth century, there were clashes among the kings. As a result, the development of music from an artistic or spiritual point of view was blocked and erotic feelings began to prevail. "Although the existence of music halls in the palaces was mentioned, there are no independent reports of any music halls or music centers established for the general public".[2] Therefore, musicians either kept their art to themselves or started to impart this knowledge to their children. Probably

this situation was proved as reason for the foundation and moving forward of the 'Gharanas'.

In the musical tradition, diversity, continuity and co-existence, these three special qualities have always been and mainly diversity provided artistic beauty to the functional side and this was considered as genre distinction. The truth is that whenever uniqueness was identified in diversity, style distinction was also recognized. In this order 'Gharanas' were born. So the artistic unity within diversity is always maintained. Unity, diversity and inter-artistic relationships was characteristics of a 'Gharana'. 'Gharanas' were considered as the special achievements for Indian classical music tradition i.e. 'Guru-Disciple'.[3] 'Gharana' is a specialty of Hindustani music. The 'Gharana' word is derived from the Sanskrit word 'Griha'. A class of a master and disciple like the family, house, family lineage, etc., is designated as the house by the three-four generations, so in the music the 'Gharana' is a distinct singing-style, playing-style, dance-style and special Indicates. Each house have its own particular style, some facts are notable, such as

1. Restriction of lyrics
2. Voice Mode
3. Use of voice and speech tones
4. Melody and expansion
5. Specialization of vocal tones and Styles
6. The choice of Ragas

On any one of these aspects, a household becomes empowered. The disciple carries forward this tradition of his guru. In the teaching tradition of the Gharanas, it is felt that artists and gurus belonging to the Gharanas have tried to block the process of 'transformation', as a result of which the main goal of Gharanedaar singing has remained only imitation. However, imitation also has its own special importance in music because it is not easy to understand the subtle nuances of art like music. Imitation in the Gharana method prevalent in classical music has also been important in this view. Music was patronized by such efforts, but in the course of time the obstruction in the natural process of change probably caused the 'Gharana' to weaken.

Music teaching in modern times

The end of the 18th century and the beginning of the twentieth century are considered to be the period of Indian music revival. At this time, music art, which was ostracized and dispensed from civilized society, became a means of luxury entertainment of the King Maharajas, that art was favorable religious, social, political and the cause of an unnecessary consciousness from the cultural environment. "'Pandy Vishnu Narayan Bhatakhand' and 'Pt-Vishnu DagbarPulpsar made many important changes in North Indian Music. It will not be exaggerated to say that today the classical music we are dealing in the entire North India, the current format has been determined by them"[4]. He made music free and made it all accessible by placing space in schools. Although the education of music under the institutions is about 1880 in almost Jamnagar 'P. Adityaram ',' Mr. Maulabhash and Kalakatta in Baroda, 'Surendra Mohan Tagore had consequently, but the real form of the

era of institutional education of music is Vishnu Dagambar & Vishnu Narayan Bhatkhande 'was done only.

"After receiving independence, the widespread progress of music has been done in the country and the classical music is open to achieve higher education in both Theoretical and Practical"[5]. Music in schools, colleges and universities got appropriate and importance place. As well as, music was considered not only as a fine art, but also as a subject. As a result, the music was also rare to listen by the normal person, he got the opportunity to learn and understand the music. This attracted to large learner-class music. According to a topic of music, the recognition increased as a subject, it became substantial conditions for higher education. Today, there are musical research in almost all top universities of the country, students are being given high-level titles like graduate postgraduate, doctoral and is being educated at the broader level. There is no lack of books published on any subject related to music. In colleges & Universities libraries, music-'Shastra' are available as a guru. Seeing these positive achievements of music in the field of higher education, eyes cannot be melted on behalf of its negative side. It is true that today there is an adequate opportunity to get higher education in music today, but it is equally true that today's level of music is also going down. The present form of music is completely remained in the books. It appears that the main goal of the students is to get the degrees. A large number of Music-Scholars are being researched; the subject is not getting benefit in that proportion.

Uses of Scientific Tools and resources in Modern Era

The tools and resources of progress and technology which are visible around us today, these selling fundamental driving force is the infinite aspiration of the human mind to surrender itself. As a result of the efforts made for the success of expression, today we have moved towards the development of humanity with the help of many types of communication devices. In the history of human civilization, Music has been part of our religious tradition and culture since time immemorial. Has been an integral part and has achieved the golden status of the present times by crossing hundreds of stages of development. Due to British rule in the late 19th century and early twentieth century, Western customs, ethics, their education system and other things began to effect on the public mind. As a result of all this, the idea of new education system in Indian &music also started scientific instruments in music teaching.

The 20th century in Indian music will be inscribed in golden period. The first half of the twentieth century can be called the heyday of the Scientific Revolution, where some of the instruments that promoted classical music under scientific inventions and those that were used to preserve classical music, came into being. Many scientific instruments played an important role in the propagation of the teaching system of classical music, which is described as follows:

Computer:

There is such an achievement in the field of computer science that has established an important place in the field

of music. Learners use the Internet to collect research material related to music. To learn music, learners can learn singing through the Internet.

Recording Studio:

A new revolution has emerged in the field of new innovations of science & in the field of music. Artists can record their singing by dividing it into small portfolios, called dubbing. If there is a mistake in the part of the song while recording, there is no need to re-sing the part is fixed by the punching machine. Similarly, if the performer is not able to sing on a high tone, it can be converted to a higher tone after singing it on the lower tone.

Electrical Tanpura:

Electronic tanpura is also a product of science, which is an electric instrument. This device is small in size. This instrument is easy to vocalize. It is also easy to take it from one place to another, at the present time all the artists are using this machine during performance.

Electric Tabla

This electrical device was invented in 1988. This instrument feeds the locks of the locks and their rhythms can be adjusted more or less as per their wish. This tool has proved to be of great benefit to learners. Electronic Table can be used to sing the restrictions.

Gramophone:

Thomas Elva Edison invented this device in 1877. He was a resident of America. The gramophone captures the characteristics of early twentieth-century artists that are available to the general public in modern time. This was an invention through which it was possible to preserve the art of the artists of that time, their singing and stylistic features till the present time. Records of artists related to classical and accessible music are available in the musical libraries.

Radio:

With the advent of radio in the category of the invention of scientific instruments, there was a wave of revolution not only in the field of Indian music but in the whole world. Radio has attracted the attention of every person of the society. A mature broadcast began in India in 1925 at the Radio Club Calcutta. Initially, all broadcasts of radio were run under the Indian Broadcasting Company. In 1936 'Indian State Broadcasting Service' name was changed to 'Akashvani'. Many classical musical telecast, Music programs on music education,Ideas on different musical topics, Singing styles of various artists, broadcasting recordings of various ceremonies, broadcasting of film songs based on ragas, etc. are broadcast many programs. Teachers can motivate students to listen by noting the time of the program being broadcast on the radio. Earlier, the students did not get the opportunity to listen to any other artist other than their teacher, but this opportunity has been received by All India Radio. Radio is the simplest means of listening to all genres of music.The objective of AIR is to broadcast good programs music, culture, social news, literature and science, agricultural family welfare etc. to entertain and educate the public. In this way, 'Akashwani' proved

a powerful medium in bringing classical music to the people.

Film Music:

The introduction of the screen under scientific progress was nothing short of a miracle. In 1931, the film music era started with the first-ever film 'Alamara'. In which the artists of classical music also sang and made some compositions, people listen and learn their singing styles.

Tape-recorder:

In 1898 Waldimar Palsan invented this learning device named Tape recorder. Tape recorders are very important in modern times. This device performs its full role even without the presence of the teacher. The teacher can also recite the singing of another artist while teaching the raga. Learners can listen to the raga by recording the teacher repeatedly. Music students can record their voice so that they can overcome their faults by listening to their singing.

Video Recorders:

It seems necessary to describe the video cassette recorder as another scientific achievement. Today, this tool is also being used in educational institutions. Video recordings of interviews of artists of many musicologists are available at the Sangeet Natak Akademi, researchers can use for their work.

Transistor:

In 1948 transistor was invented in which radio programs could be heard without the help of any electrical equipment. It was possible to take it easily anywhere.

Television:

In the technical field, audio-visual is an important event of the latter period. The first television center was set up in Delhi in 1959, which was a part of All India Radio. Many classical music programs were broadcast on television through 'Doordarshan'. Now not only listening to many artists, but. Seeing them also became easy for the public. This instrument has also proved to be extremely beneficial in the field of music teaching.

Compact Disc (CD):

The entire work in a compact disc is of a small computer and laser rays. In this system, the entire recording is done by computer and laser rays only, so it seems very easy to see. The voice whose sound has to be recorded is first transmitted to a computer via sensors, which starts measuring the sound signals at a rate of 44320 times in one second. Today compact disc has proved to be a useful medium for classical music. Digital music is also used in modern music synthesizers. Later, digital methods will be used for marking clean sound. It must be said that the miracle of science is that the journey of recording system started from gramophone to compact disc smoothly. But the process of scientific research and experiment did not stop herewith this; a new path was progressed, which resulted in a state-of-the-art DVD.

Online music teaching:

Maintenance of Guru Shishya tradition, the invaluable fund of Indian music, has also become difficult. Keeping this problem in mind, our music giants

are trying to find an alternative to provide high quality music education to those students. Due to lack of time and money or living in remote places, they are not able to get music education from the family or high-class academics. In this direction, communication technology i.e. Information Technology or Internet is playing a successful role in this time. Today with the help of internet, information related to any subject can be obtained from Google on Wikipedia. That is, we are acquiring knowledge of the scriptural aspect of music from Wikipedia. But, since music is a functional art, it can be accepted only by sitting in front of the Guru. For that too, our music connoisseurs have opted for 'online music education' through experts in communication technology through which music education can be imparted to music enthusiasts sitting in any corner of the world. Today, our music disciples are benefiting from online musicians from high-class musicians right from home. Today, in addition to music, our musicians are becoming aware of new scientific instruments and inventions of media and their use. Therefore, today the distance between the Guru and the disciples has been erased.

Where it used to be impossible for an ordinary music student to get music education from high-class artists, now with the help of internet, music students can realize their dream of learning classical music from high-class artists. Today, the facility of learning Indian music online on the internet has bridged the distance between the teacher and the disciple and has brought classical music to the corner-2 of not only India but the world. In this subject, Pt. Ajoy Chakraborty says in his website Learn Hindustani Classical Music Live from Pandit Ajoy Chakrabarty that "To make different branches in different parts of the world it's not at all possible that is why I thought that I would have to go to the other parts of world through the sky internet facility[6].

At the same time, describing the Internet as a great substitute for Guru Shishya tradition, "To substitute Guru Shishya Parampara this is the best way that if I take classes and if I can communicate with them and if the class is kept for some time they can practice with me every day keeping in mind the value of our Guru through which we can start seeing inner selves through which only music can be developed. Apart from this, time and money are also saved by teaching online. Music education is imparted in person to person. Today, many high-ranking 'Gharana' singer-players are benefiting countless disciples through their 'Online Music Education Websites'. In which the names of Pt. Ajoy Chakraborty, Pt. Sanjay Bandopadhyay, Shankar Mahadevan, Sandeep Bhatatacharya, etc. are notable. Important 'Online Music Education' websites are as follows:-

1. Learn Hindustani Classical Music Live from Pt. Ajoy Chakrabarty https: // ajoychakrabarty.com[7] on this website known as Shruti Nandan, students can learn Indian classical music from renowned singer Pt. Ajoy Chakraborty.
2. IML Indian Music Academy[8] since (2002), Students can learn from renowned sitar player Pt. Sanjay Bandopadhyay Sitar, Sarod, Tabla as well as Khyal, Thumri etc.
3. Learn Hindustani Classical Music in Shankar Mahadevan academy[9]: On the website presented the well-

known composer, musician and playback singer Shankar Mahadevan, who is Provides classes of Indian classical music as well as light music to students.

4. Sandipbhattacharjee.com>online_class[10]: - This website is available on the Internet for the knowledge of the semi classical singing styles of Indian music, Thumri, Dadra, Bhajans, Ghazals and Bengali songs which Sandeep Bhattacharya provides online or by Skype.

Apart from these, Swar Ganga, Ali Akbar Music Foundation, i-Gurukul, etc. are other sites which are working to uplift the Indian classical music education[11]. With the help of online methods, Indian classical music & music education has not only reached in all-over India but also in every corner of the world.

Mobile & Online Applications

During covid-19, when all the institutions were closed for almost a year, the trend of online classes increased in the educational institutes. This not only prevented the loss of education of the students but also skill development programs for the teachers were organized by the educational institutions. In the words, it can be said that free time was used properly. This was made possible by these mobile and online applications. The names of some application which are commonly using in the educational institutes are as follows:-

Skype, Google Meet, WebEx, Zoom, Webinar, WhatsApp Groups, Gmail, Facebook lives, YouTube lives etc.

Apart from these many other applications are also playing their important role in the field of education.

Conclusion

It is clear from the above thoughts that since the beginning music has had a deep connection with science. Of course, electrical equipment's cannot take the place of a guru in music, but still have played an important role in promoting and popularization of music & music education. It is through these electrical devices that the art of artists can be handled and preserved for future generations. Scientific tool and resources has transformed music education in many ways. Today, a person can learn any musical lesson by just watching a video on YouTube; even universities are providing online courses through their websites. Ph.D. scholar has a facility to give his Annual presentation, Viva, Pre-submission, Summary via video conferencing. Now, journals, magazines or articles in newspapers being published from different parts of the world are also available online for scholars on their respective websites. So, from listening to learning, internet has made it all. Concluding this, media has played a vital role in positive transforming of music education.

References

1. शर्मा डॉ. राधिका, भारतीय संगीत को मीडिया और संस्थानों का योगदान, पृ. 170
2. परांजपे डॉ. शरच्चन्द्रश्रीधर, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ.39
3. Kapoor vinay, 'Gharanas of Indian Classical music', March 2009 Page No. 42
4. ऋषितोष डॉ. कुमार, संगीत शिक्षण के विविध आयाम, पृ. 39
5. Neer Vim. Van. Der, 'Hindustani music in 20th century' 1980 Page No. 67
6. https://youtu.be/jSvcpAJE-WI
7. https://ajoychakrabarty.com
8. www.saregamamusicacademy.com
9. www.shankarmahadevanacademy.com
10. www.Sandipbhattacharjee.com